MAHS-12

जीवन काल विकास

Life Span Development

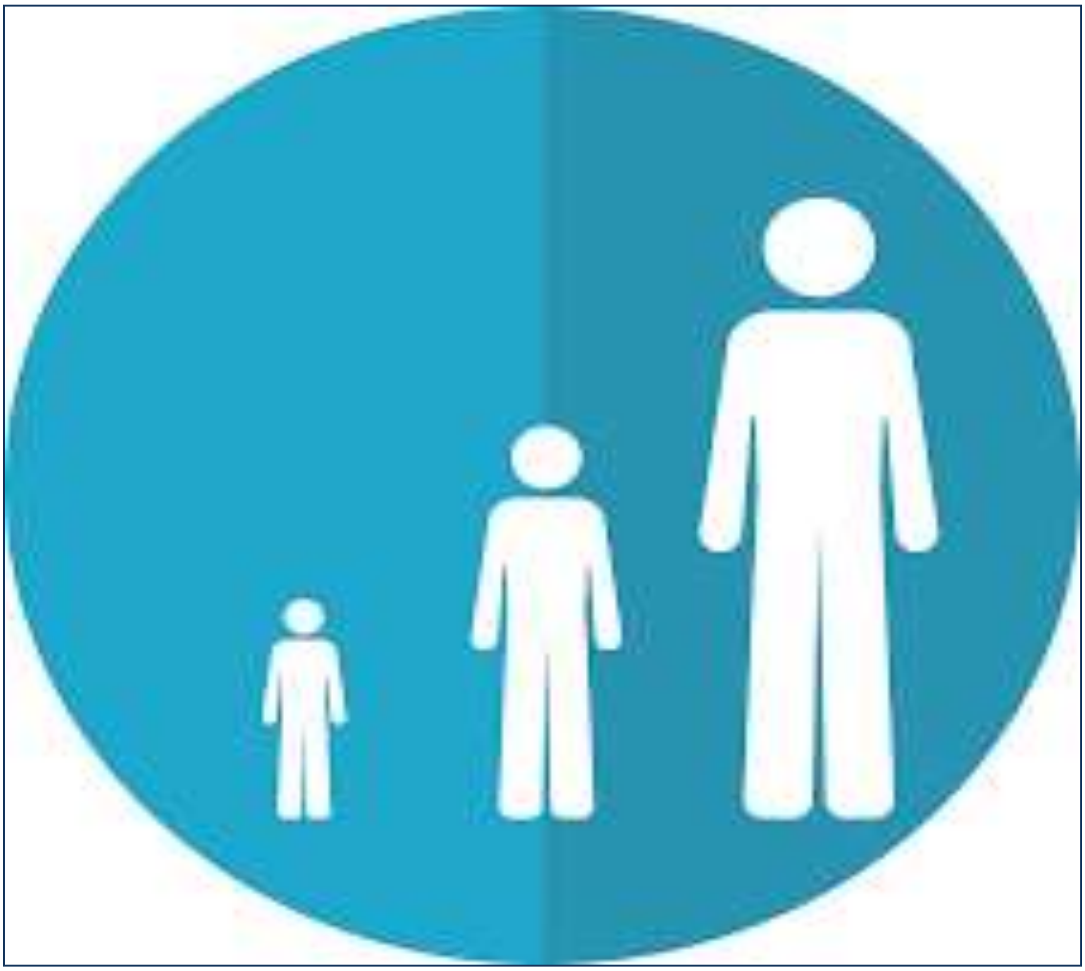

स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MAHS-12

जीवन काल विकास

Life Span Development

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
तीनपानी बाई पास रोड, ट्रांसपोर्ट नगर के पास, हल्द्वानी-263139
फोन नं. 05946- 261122, 261123
टोल फ्री नं. 18001804025
फैक्स नं. 05946-264232, ई-मेल: info@uou.ac.in
http://uou.ac.in

अध्ययन बोर्ड

प्रोफेसर आर0 सी0 मिश्र निदेशक स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर रीता एस0 रघुवंशी अधिष्ठाता, गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर लता पाण्डे विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	डा0 हिना के0 बिजली सह- प्राध्यापक, सामुदायिक संसाधन प्रबंधन एवं विस्तार सतत शिक्षा विद्यापीठ इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड		

विषय विशेषज्ञ समिति

प्रोफेसर आर0 सी0 मिश्र निदेशक स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 मनीषा गहलौत प्रोफेसर, वस्त्र एवं परिधान विभाग, गृह विज्ञान महाविद्यालय गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पन्तनगर, उत्तराखण्ड	डॉ0 अपराजिता विभागाध्यक्ष, गृह विज्ञान विभाग इंदिरा प्रियदर्शिनी राजकीय महिला स्नातकोत्तर वाणिज्य महाविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 छवि आर्या सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग डी0एस0बी0 कैम्पस कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, उत्तराखण्ड	डॉ0 लोतिका अमित सहायक प्राध्यापक, गृह विज्ञान विभाग मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम संयोजक	पाठ्यक्रम संपादन	पाठ्यक्रम अनुवादन	
डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	श्रीमती मोनिका द्विवेदी अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड इकाई 13, 14	डॉ0 ज्योति जोशी अकादमिक एसोसिएट उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड इकाई 15, 16, 17

इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या
बी0ए0 गृह विज्ञान, HSC-102 (बाल विकास) का संशोधन एवं रूपांतरण	1,2,3	सुश्री प्रिया टमटा अतिथि शिक्षक गृह विज्ञान विभाग एल०एस०एम०रा० महाविद्यालय पिथौरागढ़ उत्तराखण्ड	4,5	सुश्री पूजा शर्मा अतिथि शिक्षक गृह विज्ञान विभाग एल०एस०एम० रा० महाविद्यालय पिथौरागढ़ उत्तराखण्ड	6,7	सुश्री पूजा कोहली अतिथि शिक्षक गृह विज्ञान विभाग एल०एस०एम० रा० महाविद्यालय पिथौरागढ़ उत्तराखण्ड	8,9

इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या	इकाई लेखन	इकाई संख्या
डॉ0 प्रीति बोरा अकादमिक एसोसिएट गृह विज्ञान विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	11	डॉ0 तारा कोरंगा अतिथि शिक्षक गलगोटियाज यूनिवर्सिटी ग्रेटर नोएडा उत्तर प्रदेश	10, 12	डॉ0 रागिनी मिश्रा सहायक प्राध्यापक गृह विज्ञान महाविद्यालय जी०बी०पन्त० कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंतनगर	13,14,15,16,17

ISBN-

समस्त लेखों/पाठों से सम्बन्धित किसी भी विवाद के लिए लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद के लिए जूरिसडिक्शन हल्द्वानी (नैनीताल) होगा।

कॉपीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष: 2020

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139 (नैनीताल)

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

जीवन काल विकास

Life Span Development

MAHS-12

खण्ड	इकाई	पृष्ठ संख्या
1 प्रसव पूर्व विकास और शैशवावस्था	इकाई 1: जन्मपूर्व अवधि	2-38
	इकाई 2: शैशवावस्था में शारीरिक, क्रियात्मक, संज्ञानात्मक एवं भाषा विकास	39-94
	इकाई 3: शैशवावस्था में सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास	95-127
2 प्रारम्भिक एवं मध्य बाल्यावस्था	इकाई 4: प्रारम्भिक बाल्यावस्था	129-155
	इकाई 5: मध्य बाल्यावस्था- I	156-183
	इकाई 6: मध्य बाल्यावस्था- II	184-211
	इकाई 7: प्रारम्भिक एवं मध्य बाल्यावस्था में परिवार एवं समाज की भूमिका	212-235
3 किशोरावस्था	इकाई 8: किशोरावस्था में शारीरिक विकास	237-253
	इकाई 9: किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास	254-275
	इकाई 10: किशोरावस्था के दौरान विभिन्न संबंध	276-292
	इकाई 11: किशोर मार्गदर्शन	293-315
4 प्रारम्भिक एवं मध्य वयस्कता	इकाई 12: प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता: विशेषताएँ व विकास	317-331
	इकाई 13: प्रारम्भिक एवं मध्य वयस्कता में विकासात्मक परिवर्तन	332-348
	इकाई 14: प्रारम्भिक एवं मध्य वयस्कता में सामाजिक और भावनात्मक विकास	349-361
5 वृद्धावस्था	इकाई 15: वृद्धावस्था में विकासात्मक परिवर्तन	363-379
	इकाई 16: वृद्धावस्था में सामाजिक और भावनात्मक विकास	380-393
	इकाई 17: वृद्धावस्था में समस्यायें	394-412

खण्ड 1: प्रसव पूर्व विकास और शैशवावस्था

इकाई 1: जन्मपूर्व अवधि

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 गर्भकालीन विकास के लक्षण एवं संकेत

1.3.1 गर्भावस्था की पहचान

1.3.2 मुख्य गर्भकालीन विकास

1.3.3 गर्भकालीन विकास का अवलोकन

1.4 गर्भकालीन विकास की अवस्थाएं

1.4.1 गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

1.4.2 गर्भाकालीन देखभाल

1.4.3 जन्म प्रक्रिया

1.5 नवजात शिशु के आगमन की तैयारी

1.6 नवजात

1.6.1 नवजात से तात्पर्य

1.6.2 नवजात शिशु की विशेषताएं

1.6.3 नवजात शिशु की देखभाल

1.7 शिशु के पालन पोषण की विधियां

1.8 शिशु के स्वाथ्य की देखभाल एवं टीकाकरण

1.9 सारांश

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

वृद्धि एवं विकास जोकि गर्भावस्था से ही शुरू हो जाता है वह आनुवंशिक वंशानुक्रम के साथ-साथ व्यक्ति विशेष के वातावरण से सम्बन्ध से प्रभावित होता है। निषेचन की प्रक्रिया से

पूर्व माँ का पूर्ण रूप से स्वस्थ एवं ठीक होना आवश्यक है जिससे कि वो मातृत्व को सफलतापूर्वक पूरा कर सके। माँ को गर्भावस्था के लक्षण, गर्भावस्था की परेशानियाँ तथा जटिलताएं तथा प्रसव के बाद माँ और शिशु की देखभाल के बारे में जागरुक होना चाहिए।

इस इकाई में हम गर्भकालीन विकास के विभिन्न लक्षणों के बारे में पढ़ेंगे जिससे कि इसकी प्रक्रिया की निगरानी की जा सके तथा गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारक, जन्म प्रक्रिया तथा प्रसव के प्रकार के विषय में चर्चा करेंगे। शिशु के जन्म के बाद उसकी विशेषताओं तथा देखभाल के साथ-साथ शिशु के स्वास्थ्य एवं टीकाकरण के बारे में जानकारी होना आवश्यक है जिससे कि शिशु का जन्म के बाद स्वस्थ विकास हो सके। इसलिए यह आवश्यक है कि हमें गर्भकालीन विकास, प्रसवपूर्व देखभाल, नवजात शिशु के आगमन हेतु तैयारी, नवजात शिशु की देखभाल के विभिन्न तरीके, शिशु के पालन पोषण की विधियों तथा शिशु की स्वास्थ्य सुरक्षा आदि के बारे में अच्छी जानकारी हो। यह सब जीवन चक्र के विभिन्न चरणों में बच्चे के विभिन्न प्रकार के विकास में मदद करते हैं।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात आप निम्न के बारे में जान पायेंगे:

- गर्भकालीन विकास की विभिन्न अवस्थाएं;
- गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्व;
- जन्म प्रक्रिया एवं प्रसव के प्रकार;
- माता-पिता को नवजात के आगमन के लिए तैयार करना;
- नवजात की विशेषताओं की पहचान; तथा
- बालक के पालन पोषण की विधियाँ एवं शिशु की स्वास्थ्य सुरक्षा।

1.3 गर्भकालीन विकास के संकेत एवं लक्षण

गर्भकालीन विकास गर्भकालीन अवस्था द्वारा होता है जोकि मानव जीवन की सबसे प्रथम एवं मुख्य विकास की अवस्था है। यह अवस्था गर्भाधान से बच्चे के जन्म के समय तक होती है। जन्म से पहले गर्भकालीन विकास बहुत तीव्र होता है, मुख्य रूप से शारीरिक विकास,

जिसमें समस्त शारीरिक अंगों का विकास आता है जो माँ के शरीर के अंदर ही हो जाता है। मनुष्य में गर्भ का समय औसतन 266 दिन या 38 हफ्ते या 9 माह का होता है।

गर्भकालीन विकास के दौरान, जो गर्भधान से शुरू होता है, गर्भावस्था की पहचान के बहुत सारे लक्षण एवं संकेत होते हैं तथा इस अवधि के दौरान भ्रूण में कई महत्वपूर्ण विकास होते हैं। आइये उनके बारे में पढ़ें।

1.3.1 गर्भावस्था की पहचान

माँ के पेट में गर्भकालीन विकास शुरू हो गया है इसका पहला संकेत गर्भावस्था की पहचान से मिलता है। बहुत सारे संकेत एवं लक्षण हैं जो गर्भावस्था की ओर इशारा करते हैं, जैसे:

- मासिक चक्र का रुक जाना।
- स्तनों में परिवर्तन
- मूत्र विसर्जन की आवृत्ति बढ़ना।
- जी मिचलाना तथा उल्टी होना।
- आधारीय शरीर तापमान।
- गर्भाशय में निरंतर वृद्धि तथा गर्भावस्था की पहचान के लिए अन्य जैविक जांचें।

आइये अब इन लक्षणों एवं संकेतों के विषय में विस्तार से पढ़ें।

- **मासिक चक्र का रुक जाना:** यदि एक स्त्री स्वस्थ है तथा पूर्व में उसके मासिक चक्र नियमित रहे हैं, यदि ऐसी स्त्री के मासिक चक्र में रुकावट आती है तो उसके गर्भवती होने की प्रबल संभावना है।
- **स्तनों में परिवर्तन:** स्तनों के बड़े होने के साथ-साथ उनमें जलन का एहसास भी हो सकता है तथा स्तनों के आकार में वृद्धि पूरी गर्भावस्था के दौरान होती रहती है। निपल्स और अधिक काले तथा उन्नत हो जाते हैं। ये सभी परिवर्तन पहले भी गर्भ धारण कर चुकी महिलाओं की अपेक्षा प्रथम गर्भावस्था वाली महिलाओं में अधिक दिखाई देते हैं।
- **मूत्र विसर्जन की आवृत्ति में वृद्धि:** गर्भावस्था की शुरुआत में मूत्र विसर्जन की आवृत्ति में वृद्धि हो जाती है क्योंकि गर्भाशय के स्थान में परिवर्तन से मूत्राशय के आधार में खिंचाव आ जाता है। गर्भावस्था के प्रथम तीन माह में यह महसूस होता है

कि मूत्राशय भरा हुआ है। हालांकि अकेले इस लक्षण को गर्भावस्था का संकेत नहीं मान सकते क्योंकि इस प्रकार का मूत्र विसर्जन किसी तंत्रिका तनाव के कारण भी हो सकता है।

- **जी मिचलाना तथा उल्टी होना:** सवेरे के समय जी मिचलाना तथा उल्टियां होना एक सामान्य लक्षण है जो 3 या 4 हफ्ते से शुरु होता है। ये अक्सर तभी शुरु होता है जब भ्रूण क्रियाएँ महसूस होने लगती हैं।
- **आधारीय शरीर तापमान:** आधारीय शरीर तापमान में वृद्धि गर्भावस्था का पता लगाने में एक मददगार संकेत होता है यदि गर्भाधान से पूर्व तथा गर्भाधान के बाद ये नापा जाए।
- **गर्भाशय में वृद्धि:** गर्भाशय के रूप, आकार और स्थिति में परिवर्तन गर्भावस्था के संभावित संकेतक हैं।
- **वजन में वृद्धि:** सामान्यतया एक स्त्री का गर्भावस्था के दौरान कुल 10 से 12 किलो वजन बढ़ जाता है। वजन में यह वृद्धि भ्रूण, नाल, झिल्ली और तरल पदार्थ, स्तनों में वृद्धि तथा शरीर के कुछ अन्य ऊतकों में वृद्धि के कारण होती है।
- **जैविक जांच:** गर्भावस्था की शुरुआत में रक्त एवं मूत्र जांच की जाती हैं जिससे ये पता लगता है कि स्त्री गर्भवती है या नहीं।

आप गर्भावस्था के संकेत एवं लक्षणों के प्रति जागरुक हो चुके हैं। अब हम गर्भावस्था के दौरान होने वाले गर्भकालीन विकास के बारे में पढ़ेंगे।

1.3.2 मुख्य गर्भकालीन विकास

भ्रूणावस्था के दौरान शारीरिक अनुपात में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। दूसरे माह में भ्रूण का सिर उसकी कुल लम्बाई का आधा होता है। 8वें हफ्ते के अंत में भ्रूण की लम्बाई केवल 1 इंच होती है जो 5 वें माह के अंत में लगभग 1 फीट हो जाती है तथा वजन लगभग 1 पाउंड हो जाता है। शिशु का तंत्रिका तंत्र तंत्रिका कोशिकाओं से भरा हुआ होता है। 28 वें हफ्ते (7वाँ माह) में शिशु का श्वसन तंत्र इतना विकसित हो जाता है कि यदि उसका समय से पूर्व जन्म हो जाए तो भी वह जीवित रह सकता है। गर्भकालीन अवस्था के अंत में अर्थात जन्म के समय हड्डियों, तंत्रिकाओं, मांसपेशियों की आधारभूत संरचनाओं के साथ-साथ श्वसन तंत्र,

परिसंचरण तथा पाचन तंत्र इतने विकसित हो चुके होते हैं कि वो माँ के शरीर से बाहर कार्य कर सकते हैं।

जन्म से कुछ समय पहले अर्थात गर्भावस्था की समाप्ति के आस पास विभिन्न प्रणालियों के अधिकतर अंग प्राथमिक स्तर पर कार्य शुरु कर देते हैं जैसे हृदय में धड़कन, पाचन प्रणाली में क्रमाकुंचन तथा फेफड़ों तथा छाती का समय से पूर्व फैलना तथा सिकुड़ना।

विभिन्न अंगों के विकास एवं कार्य के अतिरिक्त भ्रूण कुछ विशिष्ट प्रतिक्रियाएं करता है जैसे मुँह खोलना एवं बंद करना। यहाँ तक कि भ्रूणावस्था के अंत में यदि उचित उत्तेजना हो तो स्वाद तथा सूंघने के तंत्र भी कार्य करने को तैयार हो जाते हैं। अधिकतर अनैच्छिक क्रियाएँ जन्म के समय उपस्थित होती हैं तथा दबाव, ऊष्मा, ठण्ड, तेज आवाज तथा तेज दर्द के लिए प्रतिक्रिया भी जन्म के समय से होने लगती है। प्रयोग बतलाते हैं कि मानव भ्रूण की यह प्रवृत्ति होती है कि वो ध्वनि पर प्रतिक्रिया करता है जोकि जन्म का समय निकट आने के साथ-साथ बढ़ती जाती है। आँखें भी जन्म से पहले ही पर्याप्त विकसित हो चुकी होती हैं जिससे वह अँधेरे तथा प्रकाश में फर्क कर सकता है। यह देखा जा सकता है कि गर्भावस्था के सभी विकास क्रमिक होते हैं। तालिका 5.1 में गर्भावस्था के दौरान होने वाले प्रमुख विकास दिए गए हैं:

तालिका 1.1: गर्भावस्था के दौरान होने वाले प्रमुख विकास (गर्भाधान से जन्म तक)

शारीरिक विकास	मानसिक विकास	मनोसामाजिक विकास
• गर्भाधान होना • आनुवंशिक पदार्थों की वातावरणीय प्रभावों से परस्पर क्रिया। • आधारीय शरीर संरचना तथा अंगों का निर्माण। • मस्तिष्क का विकास।	• सीखने और याद करने की क्षमताओं का विकास। • संवेदी उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रिया का विकास।	• भ्रूण माँ की आवाज पर प्रतिक्रिया करता है तथा इसके लिए वरीयता भी विकसित हो जाती है।

• शारीरिक विकास बहुत तेज होता है।		

1.3.3 गर्भकालीन विकास का अवलोकन

पिछले भाग में हमनें मुख्य गर्भकालीन विकास, उनके लक्षण एवं संकेतों के बारे में पढ़ा। अब यह सीखना आवश्यक है कि गर्भकालीन विकास का अवलोकन किस प्रकार किया जा सकता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि ये विकास सही दिशा में हो रहे हैं। अब हम यह सीखेंगे कि किस प्रकार भ्रूण अवलोकन तकनीक द्वारा गर्भकालीन विकास का अवलोकन किया जा सकता है जिसके द्वारा माँ के पेट में भ्रूण के सटीक विकास का पता लगाया जा सके। इसके द्वारा यदि कोई असामान्य विकास हो रहा है तो उसका भी पता लगाया जा सकता है। अल्ट्रासाउंड द्वारा भ्रूण की गतिविधियों का अवलोकन किया जा सकता है। उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों द्वारा भ्रूण के प्रारूप का पता लगाया जा सकता है।

अल्ट्रा साउंड

यह गर्भकालीन विकास के अवलोकन की सबसे सामान्य एवं सरल तकनीक है। अल्ट्रासाउंड एक नैदानिक उपकरण है जो गर्भ में पल रहे भ्रूण का तत्कालीन चित्र प्रदर्शित करता है। अल्ट्रासाउंड को माँ के पेट की ओर निर्देशित किया जाता है जिससे माता-पिता अपने बच्चे का चित्र उससे जुड़ी मॉनीटर स्क्रीन पर देख सकते हैं। अल्ट्रासाउंड का प्रयोग निम्न के लिए किया जाता है:

- भ्रूण विकास
- गर्भावधि
- एकाधिक गर्भ
- गर्भाशय असामान्यताएं
- भ्रूण संरचना में असामान्यता
- भ्रूण जीवित है या मृत, यह पता लगाने के लिए।

अल्ट्रासाउंड द्वारा ऊपर लिखे इन अवलोकनों के अतिरिक्त भ्रूण के विशिष्ट व्यवहारों का अवलोकन सोनोग्राफी द्वारा भी किया जा सकता है, जैसे:

- अंगूठा चूसना

- भ्रूण गतिविधि
- भ्रूण की क्रियात्मक गतिविधि
- भ्रूण की संरचना एवं आकार
- एम्निओटिक द्रव्य की मात्रा
- भ्रूण की हृदय दर
- भ्रूण के चेहरे के हाव भाव
- हस्त गतिविधियां
- लिंग का पता लगाना

कुछ अन्य उपकरण भी प्रयोग में लाये जाते हैं जिनके द्वारा हृदय दर, सक्रियता स्तर में बदलाव, नींद की अवस्था एवं जागृत अवस्था तथा हृदय प्रतिक्रियाशीलाता का अवलोकन किया जा सकता है। गतिविधि तथा क्रियाशीलता का स्तर प्रत्येक व्यक्ति तथा लिंग विभिन्नता को चिन्हित करता है। सम्पूर्ण गर्भावस्था में नर भ्रूण की प्रवृत्ति मादा की अपेक्षा अधिक शक्तिपूर्वक गतिविधियाँ करने की होती है।

1.4 गर्भकालीन विकास की अवस्थाएं

जैसे की हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं गर्भकालीन विकास माँ के गर्भाशय में एक निश्चित समय के लिए होता है जिसे गर्भावस्था या गर्भ का समय कहते हैं। यह गर्भ का समय गर्भाधान से शुरु होता है तथा शिशु के जन्म पर खत्म होता है। यह समय आमतौर पर 266 दिन या 38 हफ्ते या 9 माह का होता है।

गर्भकालीन विकास को तीन अवस्थाओं में बांटा जा सकता है जो तालिका 1.2 में दिया गया है:

तालिका 1.2: गर्भकालीन विकास की अवस्थाएं

क्रम संख्या	अवस्था का नाम	समय अवधि
1.	डिम्बावस्था	शुरुआत के 2 हफ्ते
2.	भ्रूणावस्था	2 हफ्ते से 2 माह

3.	गर्भस्थ शिशु की अवस्था	2 माह से जन्म तक

इन अवस्थाओं के दौरान मूल एक कोशीय जायगोट पहले भ्रूण में विकसित हो जाता है फिर बाद में गर्भस्थ शिशु में। जन्म से पहले तथा जन्म के बाद दोनों में विकास दो आधारीय सिद्धांतों के अनुसार अग्रसर होता है :

- **मस्ताकधोमुखी सिद्धांत (अर्थात सिर से पैर की ओर):** इसका अर्थ है कि विकास सिर से धड़ के निचले हिस्से को होता है। उदाहरण के लिए भ्रूण का सिर, मस्तिष्क तथा आँखें शरीर के अन्य भागों की तुलना में जल्दी विकसित हो जाते हैं।
- **निकट दूर दिशा में (अर्थात नजदीक से दूर):** इस सिद्धांत के अनुसार विकास की प्रक्रिया शरीर के केंद्र से बाहर की ओर होती है। उदाहरणार्थ सबसे पहले भ्रूण का सिर और धड़, फिर पैर तथा भुजाएं और अंत में हाथों की तथा पैर की अंगुलियाँ विकसित होती हैं।

गर्भकालीन विकास की तीनों अवस्थाओं के विशिष्ट गुण नीचे बॉक्स में दिए गए हैं:

बॉक्स 1: गर्भकालीन विकास की विशेषताएं	
बीजवस्था या डिम्बावस्था (गर्भाधान से 2 हफ्ते तक)	• आकार अपरिवर्तित रहता है क्योंकि बाहर से पोषण की कमी रहती है। • तीव्र आतंरिक विकास। • निषेचन के लगभग 10 दिन बाद निषेचित अंडे का गर्भाशय की दीवार पर आरोपण।
भ्रूणावस्था (दूसरे हफ्ते से 2 माह तक)	• सभी मुख्य आतंरिक एवं बाह्य अंगों का निर्माण एवं कार्य आरम्भ हो जाता है। • यौन अंग पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं जिससे कि शिशु का लिंग पता किया जा सकता है। • भ्रूण की लम्बाई डेढ़ से दो इंच तथा वजन 2-3 ऑन्स होता है। • गर्भनाल, नाभि रज्जु तथा एमनीओटिक सैक विकसित हो जाता है।

गर्भस्थ शिशु की अवस्था	• सभी मुख्य आतंरिक एवं बाह्य अंगों का निर्माण एवं कार्य चलता रहता है। • आतंरिक अंग लगभग अपनी पूर्ण विकसित अवस्था तक पहुँच जाते हैं। • व्यवहारिकता की उम्र 6 से 7 महीने में आ जाती है। • शिशु क्रियाविधि शुरु हो जाती हैं (जैसे पैर चलाना)।

बीजावस्था या डिम्बावस्था (गर्भाधान से 2 हफ्ते तक)

बीजावस्था या डिम्बावस्था जो गर्भकालीन विकास की पहली अवस्था है, के दौरान निषेचित अंडा तीव्र कोशिका विभाजन से गुजरता है जिससे वो और अधिक जटिल हो जाता है तथा गर्भाशय की दीवार पर प्रत्यारोपित हो जाता है। अन्य कोशिकाओं की भांति निषेचित अंडा भी 2-2 में विभाजित होकर बढ़ता जाता है। एक प्राकृतिक गर्भधान के 3 या 4 दिन बाद विभाजित कोशिकाओं का समूह जिसे ब्लास्टूला कहते हैं फैलोपियन ट्यूब में नीचे की ओर आता है। उसके बाद वह गर्भाशय में प्रवेश कर जाता है जैसा कि नीचे चित्र 1.1 में दिखाया गया है।

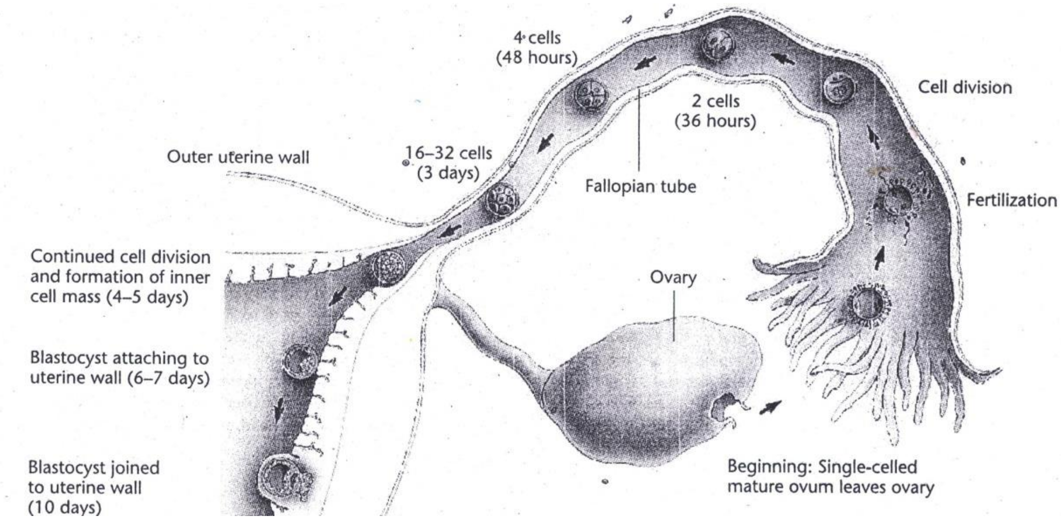
4 cells
(48 hours)
Cell division
2 cells
(36 hours)
Outer uterine wall
16–32 cells
(3 days)
Fallopian tube
Fertilization
Continued cell division
and formation of inner
cell mass (4–5 days)
Ovary
Blastocyst attaching to
uterine wall (6–7 days)
Blastocyst joined
to uterine wall
(10 days)
Beginning: Single-celled
mature ovum leaves ovary

चित्र 1.1: फैलोपियन ट्यूब में गर्भाधान की प्रक्रिया, अंडाणु का शुक्राणु द्वारा निषेचन, निषेचित अंडाणु का फैलोपियन ट्यूब से गर्भाशय की ओर जाना।

सर्वप्रथम ब्लास्टूला जोकि कोशिकाओं से बनी हुई तथा द्रव्य भरी हुई खोखली बॉल होती है तथा गर्भाशय में स्वतन्त्र तैरती रहती है, अंतत: गर्भाधान के लगभग 10 वें या 12 वें दिन गर्भाशय की दीवार पर आरोपित हो जाती है। हालांकि ये आरोपण हमेशा सफल नहीं होता और जब ये असफल होता है तब ब्लास्टूला उस महिला के अगले मासिक चक्र के समय बाहर आ जाता है।

जब ब्लास्टूला गर्भाशय की दीवार पर ठीक प्रकार से आरोपित हो जाता है तब उसके सबसे बाहर की पर्त की कुछ कोशिकाएं गर्भनाल (अम्ब्लीकल कॉर्ड), नाभि रज्जु (प्लेसेंटा) तथा एम्नियोटिक सैक में बदल जाती हैं। प्लेसेंटा भ्रूण से अम्ब्लीकल कॉर्ड द्वारा जुड़ा हुआ रहता है जिसके द्वारा वह शिशु को पोषण तथा ऑक्सीजन प्रदान करता है तथा इसके साथ-साथ उसके शरीर का मल बाहर निकालता है। प्लेसेंटा अजन्मे बच्चे की आतंरिक संक्रमण से रक्षा करता है तथा उसे विभिन्न बीमारियों से लड़ने की क्षमता प्रदान करता है। यह गर्भावस्था में आवश्यक हारमोन पैदा करता है, स्तनों को दूध पिलाने के लिए तैयार करता है तथा अंत में गर्भाशयी संकुचन को उत्प्रेरित करता है जिससे बच्चा माँ के पेट से बाहर निकल सके।

दूसरी ओर ब्लास्टूला के अंदर की कोशिकाओं की दीवार से शिशु का निर्माण होता है। ये कोशिका की दीवार बाह्य, मध्य तथा भीतरी परतों में पृथक हो जाती है। बाह्य परत से शिशु की त्वचा तथा तंत्रिका तंत्र, भीतरी परत से अधिकतर आतंरिक अंग तथा मध्य परत से बचे हुए अंग, मांसपेशियों तथा हड्डियों का निर्माण होता है।

भ्रूणावस्था (2 हफ्ते से 2 माह)

भ्रूणावस्था गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था है जो गर्भाधान के 2 हफ्ते बाद शुरु होती है तथा 2 माह तक चलती है। इस अवस्था के दौरान शरीर के अंग तथा मुख्य तंत्रों जैसे श्वसन तंत्र, पाचन तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र तीव्रता से विकसित होते हैं। यह वह नाजुक समय होता है जब गर्भकालीन वातावरण के बुरे प्रभाव से भ्रूण सर्वाधिक प्रभावित होता है। बहुत अधिक बुरी तरह प्रभावित भ्रूण गर्भावस्था के 3 माह से अधिक जीवित नहीं रह सकता है। इस समय स्वत: गर्भपात जिन्हें सामान्यतया गर्भपात कहा जाता है के होने की बहुत संभावना रहती है जोकि भ्रूण के गर्भाशय से बाहर आने की प्रक्रिया है जबकि वह माँ के पेट के बाहर जीवित नहीं रह सकता है।

जब कोशिका विभेदन पूरा हो जाता है तब विकसित हो रहे जीव को भ्रूण कहते हैं। भ्रूण अब तेजी से बढ़ता है जिसमें उसका ऊपर का आधा भाग निचले आधे भाग की अपेक्षा अधित तीव्रता से वृद्धि करता है। दूसरे शब्दों में सिर और शरीर का ऊपरी भाग शरीर के निचले भाग की अपेक्षा जल्दी आकार ले लेता है अर्थात हाथों का विकास पैरों की अपेक्षा जल्दी होता है। इसी प्रकार आतंरिक अंग हाथ और पैरों से पहले विकसित हो जाते हैं तथा हाथ और पैर हाथों और पैरों की अँगुलियों से पहले। इस अवस्था के अंत में भ्रूण की लम्बाई 1 इंच होती है और अब वह कुछ कुछ मानव आकार का रूप लेने लगता है। सिर अनुपातहीन बड़ा होता है जैसा नीचे चित्र 5.2 में दिखाया गया है। इस अवस्था के अंत तक हृदय दर सुनायी देने लगती है।

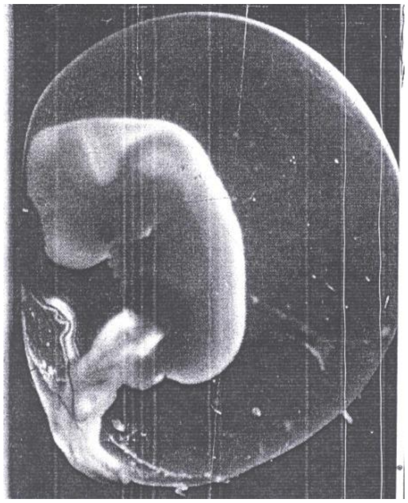

चित्र 1.2: गर्भाधान के 7 हफ्ते बाद का मानव भ्रूण

गर्भस्थ शिशु की अवस्था (2 माह से जन्म तक)

यह गर्भकालीन विकास की तीसरी अवस्था है जो 2 माह से जन्म तक होती है। इसकी विशेषता पहली अस्थि कोशिका का दिखना है। इस अवस्था के दौरान शिशु एक बैग जैसी संरचना के अंदर एक तरल में तैरता रहता है। इस तरल को एम्नीओटिक फ्ल्यूड या एम्नीओटिक द्रव्य कहते हैं जैसा चित्र 1.3 में दिखाया गया है।

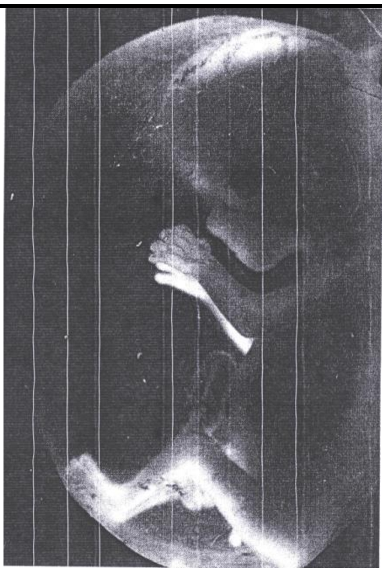

चित्र 1.3: 14 हफ्ते का शिशु

इस अवस्था के दौरान शिशु का विकास बहुत तीव्रता से होता है तथा शिशु अपनी लम्बाई का 20 गुना हो जाता है तथा शरीर के अंग तथा विभिन्न तंत्र और अधिक जटिल हो जाते हैं। इस अवस्था के शुरुआती समय में वृद्धि दर शिखर पर होती है। गर्भावस्था के पहले तीन माह के पश्चात शरीर के सभी महत्वपूर्ण अंग तथा भाग बन जाते हैं। गर्भावस्था के प्रथम तीन माह बहुत नाजुक होते हैं क्योंकि कोई भी प्रतिकूल गर्भकालीन परिस्थिति का विकसित हो रहे भ्रूण या गर्भ पर गलत प्रभाव हो सकता है। गर्भावस्था के प्रथम तिमाही के अंत तक गर्भस्थ शिशु अपने जलीय परिवेश में स्वतन्त्र घूम सकता है तथा अपने हाथ एवं पैर हिला सकता है। तीसरे माह में शिशु जिस अम्नियोटिक द्रव्य में तैर रहा होता है उसे सांस खींचने में निगल लेता है। यह उसके स्वाद एवं सूंघने के नए ज्ञान को उत्प्रेरित करता है।

गर्भावस्था के दूसरे तिमाही के दौरान जो अंग पहले बन चुके हैं उनका विस्तार होता है और वे और अधिक जटिल हो जाते हैं। हड्डियां कठोर हो जाती हैं तथा हृदय दर इतनी मजबूत हो जाती है कि स्टेथोस्कोप द्वारा सुनी जा सकती है। इस अवस्था में तथा जन्म के समय तक “अंतिम रूप” के कार्य जैसे हाथ के नाखून, पैर के नाखून, बाल, पलकें आदि भी विकसित हो जाते हैं। गर्भाधान के 4 माह बाद अधिकतर महिलाओं को शिशु की गतिवधियों का पहली बार अहसास हो जाता है। गर्भवती महिलाओं द्वारा शिशु की गतिविधियों में विभिन्नता महसूस की जाती है। कुछ शिशु पेट के अंदर बहुत घूमते हैं जबकि इनकी तुलना में कुछ बहुत

शांत होते हैं। दूसरे तिमाही के अंत में शिशु के अंदर सीखने की भावना कार्य करने लगती है। एक शिशु माँ के पेट के अंदर जोर की आवाजें सुन सकता है तथा उन आवाजों पर आश्चर्यजनक प्रतिक्रियाएं देता है।

छठे माह तक शिशु बहुत अधिक सीमा तक विकसित हो चुका होता है और यदि इस समय बच्चा पैदा भी हो जाता है तो वह जीवित रह सकता है। जबकि सामान्यतया बच्चा माँ के गर्भ में 38 सप्ताह तक रहता है जिसके बाद उसका जन्म होता है।

शिशु की गर्भकालीन अवस्थाओं तथा गर्भकालीन विकास के दौरान उसके मस्तिष्क के आकार तथा बनावट में भी परिवर्तन होते हैं। 5 माह के शिशु का मस्तिष्क शांत होता है, 7 माह से वह कुछ विशिष्ट संकेत देने लगता है तथा 9 माह तक यह पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि गर्भावस्था में गर्भस्थ शिशु अपनी माँ के पेट में निष्क्रिय अवस्था में नहीं रहते हैं। शिशु साँस लेते हैं, पैर चलाते हैं, पलटते हैं, निगलते हैं, मुक्का मारते हैं तथा अपना अंगूठा चूसते हैं।

ऊपर की गयी चर्चा तीन गर्भकालीन अवस्थाओं पर केंद्रित है। आइये अब प्रत्येक माह में होने वाले गर्भकालीन विकास को देखते हैं जैसा तालिका 5.3 में दिया गया है।

तालिका 1.3: माह दर माह गर्भकालीन विकास

माह	**वर्गीकरण**
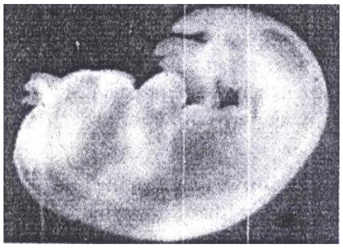 1 माह	• भ्रूण की लम्बाई आधा इंच। • धमनियों एवं शिराओं से रक्त प्रवाह शुरु। • हृदय दर 65 प्रति मिनट। • मस्तिष्क, गुर्दे, यकृत तथा पाचन तंत्र की शुरुआत। • गर्भनाल क्रियान्वित हो जाती है। • सिर पर उभार दिखायी देते हैं जो आँख, मुँह तथा नाक का रूप ले लेते हैं।

	• लिंग निर्धारित नहीं किया जा सकता।
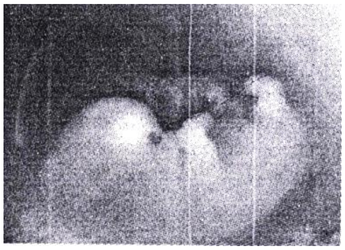 7 सप्ताह	• लम्बाई 1 इंच से कुछ कम तथा वजन एक तिहाई ऑन्स। • सिर शरीर की कुल लम्बाई का आधा। • चेहरे के सभी अंग जीभ तथा दन्त कलियों सहित स्पष्ट रूप से विकसित। • भुजाओं में हाथ, अंगुलियाँ तथा अंगूठा आ गया है। • पैरों में घुटना, एड़ी तथा पैरों की अंगुलियाँ विकसित। • अस्थि कोशिकाएं 7 वें सप्ताह तक विकसित। • यौन अंग विकसित होने शुरु। • ह्दय दर स्थिर।
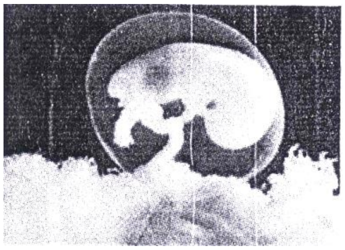 3 माह	• शिशु की लम्बाई 3 इंच। • वजन करीब 1ऑन्स। • अंगुलिओं के नाखून, पैरों के नाखून, पलकें, स्वर रज्जु, होंठ तथा नाक दिखाई देने लगते हैं। • अंग प्रणालियाँ कार्य करने लगती हैं। अत: शिशु साँस ले सकता है, निगल सकता है और कभी-कभी मूत्र त्याग भी कर सकता है। • कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करता है जैसे टाँगे, पैर, अंगूठा तथा हाथ हिलाना।

 4 माह	• सिर शरीर की लम्बाई का सिर्फ एक चौथाई। • शिशु की लम्बाई 7 से 10 इंच। • वजन लगभग 6 ऑन्स। • गर्भनाल शिशु की लम्बाई के बराबर लंबी। • माँ बच्चे का पैर मारना महसूस कर सकती है। • अनैच्छिक क्रियाएँ और अधिक प्रधान हो जाती हैं।
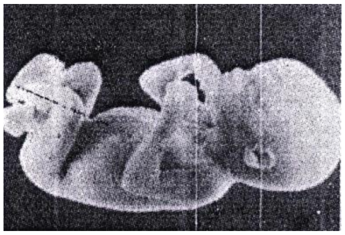 5 माह	• वजन लगभग 1 पाउंड। • लम्बाई करीब 12.5 इंच। • जागने-सोने का निश्चित तरीका आ जाता है। • पैर मारना, शरीर खींचना तथा बराबर हिचकी, ये सभी गतिविधियां और अधिक फुर्ती से करने लगता है। • पलकें, भौहें तथा सिर पर बालों का विकास। • श्वसन तंत्र अभी पूर्णतया विकसित नहीं।
 6 माह	• शिशु की लम्बाई 14 इंच। • वजन सवा पौंड। • त्वचा के नीचे वसा की गद्दियाँ, आँखें पूर्ण तथा खुली हुई, बंद हो सकने वाली तथा सभी दिशाओं में देख सकती हैं। • अपरिपक्व श्वसन तंत्र, अत: यदि इस समय शिशु पैदा होता है तो जीवित नहीं रह सकता है।

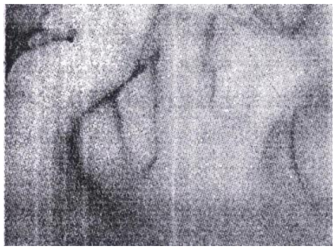 7 माह	• शिशु लगभग 16 इंच लंबा। • वजन 3 से 5 पौंड। • अनैच्छिक क्रियाएँ पूर्ण विकसित। • रोता है, साँस लेता है, निगलता है तथा चूस सकता है। • सिर में बाल अभी भी उग रहे हैं।
 8 माह	• शिशु 18 से 20 इंच लंबा। • वजन 5 से 8 पौंड। • पूरे शरीर की सतह पर वसीय तहें विकसित जो शिशु को पेट से बाहर आने पर बाहर के वातावरण के तापमान के अनुकूल बनाती हैं। • कम गतिविधियां।
 9 माह	• वजन लगभग साढ़े सात पौंड। • लम्बाई लगभग 20 इंच। • वसा तहें अभी भी बन रही हैं। • सभी प्रणालियाँ ठीक प्रकार से कार्य करने लगती हैं। • हृदय दर में बढ़ोत्तरी।

ऊपर की गयी चर्चा से गर्भकालीन विकास के समस्त पहलू स्पष्ट हो गए हैं। आइये अब हम गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में पढ़ें।

1.4.1 गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शिशु के जन्म से पहले के विकास अर्थात माँ के गर्भाशय में विकास को कई तत्व प्रभावित करते हैं। माँ का शरीर शिशु के लिए गर्भावस्था से पहले का वातावरण है जहां वो जन्म से पहले तक रहता है। वस्तुत: वह प्रत्येक वस्तु जो माँ को प्रभावित करती है फिर चाहे वह उसका भोजन हो या फिर उसकी मनोदशा सभी अजन्मे शिशु के वातावरण को प्रभावित करते

हैं और ये सब शिशु के विकास एवं वृद्धि प्रभावित करते हैं। सामान्यतया गर्भाशय के भीतर की परिस्थिति एक स्वस्थ शिशु के लिए आदर्श होती है लेकिन कभी-कभी कोई नुकसानदायक कारक विकास के किसी महत्वपूर्ण समय में प्रवेश कर गर्भकालीन विकास को कुछ समय के लिए या फिर हमेशा के लिए प्रभावित कर देता है। माँ जो खाना खाती है, दवा लेती है, बीमार होती है, जो विकिरण प्राप्त करती है तथा जो भाव महसूस करती है ये सभी पेट के भीतर शिशु को प्रभावित करते हैं।

अब हम उन सभी कारकों के बारे में चर्चा करेंगे जो गर्भकालीन विकास को प्रभावित करते हैं जैसा बॉक्स 2 में दिखाया गया है। इन कारकों को मातृक कारक, बाह्य वातावारणीय नुकसानदायक कारक तथा पैतृक कारकों में बांटा जा सकता है।

बॉक्स 2

क्रम सं0	**गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्व**
1.	मातृ कारक • माँ का पोषण • शारीरिक कार्य • माँ का स्वास्थ्य • विटामिन की कमी • आर एच तत्व • दवाओं का सेवन • माँ की आयु • शराब का सेवन • तम्बाकू का उपयोग • यूटेराइन क्राउडिंग (uterine crowding)
2.	बाह्य वातावारणीय नुकसानदायक कारक • एक्स रे तथा रेडियम • रसायन • अत्यधिक तापमान
3.	पैतृक कारक

	• धूम्रपान, शराब पीना या नशीली दवाओं का सेवन • पिता की आयु

मातृक कारक

अब हम विभिन्न मातृक कारकों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे जो माँ के गर्भ में पल रहे शिशु के विकास को प्रभावित करते हैं। माँ के शरीर में कोई भी परिवर्तन या प्रभाव अजन्मे शिशु के विकास को प्रभावित करता है। हम प्रत्येक कारक के सम्बन्ध में पढ़ेंगे।

माँ का पोषण

अजन्मे शिशु को आहार माँ के रक्त से प्लेसेंटा द्वारा पहुँचता है। शिशु को स्वस्थ रखने के लिए माँ के आहार में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, वसा तथा कार्बोहाइड्रेट होने चाहिए। जो स्त्री गर्भावस्था के समय पर्याप्त वजन प्राप्त कर लेती है ऐसी स्त्री से कम वजनी शिशु होने की संभावना बहुत कम होती है। जो महिलाएं पर्याप्त आहार नहीं लेती हैं उनकी समय से पूर्व प्रसव होने तथा उनके शिशु का वजन कम होने की संभावना अधिक होती है जिनकी या तो जन्म के समय या फिर जन्म के कुछ समय बाद मृत्यु होने की संभावना होती है। कुपोषित महिलाओं में संक्रमण होने का खतरा अधिक होता है जोकि शिशु के लिए हानिकारक होता है। इस सब के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गर्भावस्था के दौरान माँ का पोषण बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि शिशु का विकास एवं स्वास्थ्य इससे सीधा सम्बंधित है।

विटामिन एवं लवण की कमी

विटामिन B6, B12, C, D तथा E की कमी शिशु के सामान्य गर्भकालीन विकास में हस्तक्षेप करती है। वह गर्भवती स्त्री जिसके आहार में विटामिन B, C, D, कैल्सियम, फॉसफोरस, आयरन या आयोडीन की कमी होगी उसके बच्चे के कुपोषित होने की बहुत संभावना होती है। गर्भावस्था के दौरान आयोडीन की कमी से क्रिटीनिजम, तंत्रिका तंत्र सम्बंधित परेशानियाँ तथा थायराइड संबंधी परेशानी होने का खतरा रहता है।

शारीरिक गतिविधि

गर्भवती स्त्री द्वारा नियमित व्यायाम उसे कब्ज से बचाता है तथा श्वसन तंत्र, परिसंचरण तंत्र तथा त्वचीय लोचमयता को बेहतर बनाता है जिससे आरामदायक गर्भावस्था तथा आसान एवं सुरक्षित प्रसव होता है।

माँ का स्वास्थ्य

माँ के स्वास्थ्य का अजन्मे शिशु पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। माँ की बीमारी जैसे अंत:स्त्रावी विकार, संक्रामक रोग, लंबी बीमारियाँ तथा माँ का वजन कम या ज्यादा होना ये सभी गर्भकालीन विकास को प्रभावित करती हैं। अत: गर्भवती स्त्री को इन सभी से बचने का प्रयास करना चाहिए।

आर. एच. तत्व

माँ के रक्त में निर्मित एंटीबॉडी सामान्यतया लाभदायक होते हैं जोकि हमारे शरीर को विभिन्न बीमारियों के संक्रमण से बचाते हैं। जबकि यदि माँ के रक्त में आर. एच. निगेटिव तत्व हैं तो वो अजन्मे बच्चे को नुकसान पहुंचा सकते हैं। ऐसी स्थिति में माँ का रक्त आर. एच. पॉजिटिव के लिए संवेदनशील होता है तथा उसकी प्रतिरक्षा प्रणाली आर. एच. पॉजिटिव के लिए एंटीबॉडी बना लेती है। ये एंटीबाडी प्लेसेंटा को पार कर शिशु के आर. एच. पॉजिटिव युक्त रक्त कोशिकाओं पर आक्रमण कर देती हैं। इसकी ज्यादा गंभीर परिस्थिति में शिशु की मृत्यु भी हो सकती है।

दवाओं का सेवन

माँ जिस भी चीज का सेवन करती है वह बच्चे पर सीधा प्रभाव डालती है। दवाएं ऑक्सीजन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड की भांति प्लेसेंटा को पार करके गर्भ में पल रहे भ्रूण को नुकसान पहुंचा सकती हैं।

माँ की आयु

सामान्यतया 21 वर्ष की उम्र के पश्चात हार्मोन्स की सक्रियता कम हो जाती है अत: इस उम्र में गर्भावस्था के दौरान उच्च रक्त शर्करा, उच्च रक्त चाप तथा गंभीर रक्तस्त्राव होने की संभावना होती है।

यूटेराइन क्राउडिंग (uterine crowding)

गर्भाशय में दो या दो से अधिक शिशु होने पर गर्भाशय क्षेत्र में क्राउडिंग हो जाती है जिससे शिशु की गतिविधि सीमित हो जाती है। अत: शिशु का उचित विकास नहीं हो पाता।

शराब का सेवन

गर्भवती महिला द्वारा अत्यधिक एवं रोजाना शराब का सेवन बच्चे के शारीरिक एवं मानसिक विकास को क्षति पहुंचाता है। अत्यधिक शराब के सेवन से फीटल एल्कोहोल सिंड्रोम हो जाता है जोकि गर्भकालीन तथा जन्म के बाद के विकास के दौरान मानसिक तथा क्रियात्मक विकास में विकृति का मिश्रण है।

चित्र 1.4 फीटल एल्कोहाल सिंड्रोम के साथ जन्मा एक 4 वर्ष का बच्चा

तम्बाकू का सेवन

गर्भावस्था के दौरान सिगरेट का सेवन गर्भकालीन विकास को सर्वाधिक प्रभावित करता है। इससे गर्भपात होने, कम वजन के शिशु के पैदा होने, गर्भकालीन विकास में अवरोध आने तथा शिशु की मृत्यु होने जैसे परिणाम सामने आ सकते हैं।

बाह्य वातावरणीय हानिकारक तत्व

अभी तक हमने उन मातृक कारकों के बारे में पढ़ा जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गर्भकालीन तथा जन्म के बाद के विकास को प्रभावित करते हैं। अब हम उन बाह्य वातावरणीय हानिकारक तत्वों के सम्बन्ध में पढ़ेंगे जो गर्भकालीन विकास को बुरी प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं। इनमें से प्रमुख निम्न हैं:

1. एक्स-रे एवं विकिरण से संपर्क
2. रसायन
3. अत्यधिक तापमान

इन सभी कारकों से शिशु का शारीरिक एवं मानसिक विकास रुक जाता है तथा गर्भ में ही शिशु की मृत्यु भी हो सकती है।

पैतृक कारक

पैतृक कारक अर्थात पिता से सम्बंधित कारक, ये कारक भी गर्भाकालीन विकास को प्रभावित करते हैं। ये कारक निम्न हैं:

1. शराब का सेवन
2. धूम्रपान
3. विकिरण से संपर्क
4. सीसे से संपर्क

ये सभी कारक शुक्राणुओं में विकृति पैदा करते हैं, कम वजनी शिशु होने की संभावना बढ़ा देते हैं , तथा शिशु में कैंसर होने की संभावना भी हो जाती है।

1.4.2 गर्भाकालीन देखभाल

गर्भकालीन विकास के दौरान गर्भवती महिला की देखभाल अत्यंत आवश्यक है। इस दौरान की गयी देखभाल से कम वजनी शिशु तथा समय पूर्व शिशु होने की संभावना कम हो जाती है। गर्भकालीन देखभाल निम्न कारणों से आवश्यक है:

1. यह तब बहुत आवश्यक है जब जुड़वां या दो से अधिक बच्चे हों।
2. कम वजनी शिशु की स्थिति में गर्भकालीन देखभाल तथा जन्म के समय बहुत देखरेख की आवश्यकता होती है।
3. रोजाना डॉक्टर के परामर्श की बहुत आवश्यकता होती है जिससे गर्भवती स्त्री को संतुलित आहार एवं पोषक पदार्थों की महत्ता के विषय में बताया जा सके।

गर्भकालीन देखभाल के दौरान ध्यान देने योग्य बातें :

- गर्भकालीन देखभाल के अंतर्गत किसी प्रशिक्षित व्यक्ति या डॉक्टर द्वारा गर्भवती महिला की जांच, उपचार तथा उसे शिक्षित किया जाना चाहिए।

- सामान्य स्थिति में गर्भकालीन देखभाल के अंतर्गत स्त्री को आने वाले शिशु के लिए तैयार किया जाता है, उसे गर्भावस्था के दौरान क्या क्या आहार लेना चाहिए इसके बारे में बताया जाता है तथा बच्चे को दूध पिलाने के समय उसे क्या अतिरिक्त आहार लेना चाहिए इसके बारे में भी बताया जाता है।
- गर्भवती महिला में वजन में होने वाली वृद्धि की नियमित जांच करनी चाहिए।

1.4.3 जन्म प्रक्रिया

अभी तक हमने जन्म से पूर्व के विकासों के सम्बन्ध में पढ़ा जब तक शिशु माँ के पेट के अंदर होता है। लेकिन जब यह गर्भकाल तथा गर्भकालीन विकास पूर्ण हो जाता है (9 माह में) तब शिशु के जन्म का समय आ जाता है। इस भाग में हम जन्म प्रक्रिया से सम्बंधित विभिन्न पहलुओं पर चर्चा करेंगे जैसे:

1. **जन्म का समय एवं स्थान**
2. **प्रसव की अवस्थाएं**
3. **जन्म के दौरान आने वाली परेशानियाँ**
4. **शिशु जन्म की तैयारियां तथा विकास में परेशानियाँ**

अब हम इन सभी का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

जन्म का समय एवं स्थान

प्रसव का समय गर्भवती स्त्री की डॉक्टर द्वारा पहली जांच से शुरु होता है। इसे गर्भवती स्त्री के अंतिम मासिक धर्म के पहले दिन में 280 दिन जोड़कर निकाला जाता है। अंतिम मासिक धर्म से 38 से 42 सप्ताह के मध्य ही प्रसव प्रक्रिया शुरु होती है।

प्रसव की अवस्थाएं

प्रसव की प्रमुख तीन अवस्थाएं हैं:

प्रथम अवस्था या विस्तारण की अवस्था (stage of dilation)

इस अवस्था में यदि स्त्री का प्रथम प्रसव है तों 12-16 घंटे तथा यदि प्रथम प्रसव नहीं है तो 6-8 घंटे लगते हैं। यह अवस्था प्रसव दर्द के प्रारम्भ होने से योनि के विस्तारण तक रहती है। इसलिए इस अवस्था को विस्तारण की अवस्था कहते हैं। प्रसव की प्रथम अवस्था में गर्भाशय की मांसपेशियों में तीव्र संकुचन होता है जिससे उदर तथा कमर के निचले हिस्से में दर्द प्रारम्भ

हो जाता है। प्रत्येक गर्भाशयिक पेशीय संकुचन के साथ भ्रूण का सिर नीचे योनी की ओर आने लगता है। पेशीय संकुचन से गर्भाशय का ऊपरी भाग कठोर हो जाता है तथा निचला भाग कोमल होकर फ़ैल जाता है अत: यह अवस्था योनी मार्ग के प्रसारण की अवस्था कहलाती है। इस अवस्था के अंत में स्त्री तीव्र संकुचन महसूस करती है जो शिशु को बाहर आने में मदद करने हेतु गर्भाशय में हो रहे फैलाव के कारण होता है।

द्वितीय अवस्था या निष्कासन की अवस्था (stage of expulsion)

द्वितीय अवस्था गर्भाशय के पूरी तरह से खुल जाने पर पूरी होती है जब तक कि उससे शिशु बाहर ना आ जाए। शिशु का जन्म द्वितीय अवस्था के दौरान होता है जिसमें साधारणतया 30 मिनट से 2 घंटे तक लगते हैं। अंदर हो रहे संकुचन शिशु को बाहर की ओर धकेलते हैं तथा शिशु जन्म होता है।

तृतीय अवस्था या सम्पूर्ण निष्कासन की अवस्था (stage of total expulsion)

तृतीय अवस्था केवल कुछ मिनटों की होती है जो प्लेसेंटा तथा अन्य झिल्लियों के निष्कासन तक रहती है।

ऊपर दी गयी प्रसव की विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर यह देखा जा सकता है कि प्रसव का कुल समय 14 घंटे होता है जिसे तीनों अवस्थाओं में निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है:

प्रसव की तीनों अवस्थाओं का समय	
अवस्था	**समय**
प्रथम अवस्था	12 1/2 घंटे
द्वितीय अवस्था	80 मिनट
तृतीय अवस्था	10 मिनट

- **प्रसव के दौरान जटिलताएं**

I. **एनॉक्सिया:** अर्थात शिशु को पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध ना होना जो जन्म प्रक्रिया में जटिलता उत्पन्न कर सकता है। जन्म के समय एनॉक्सिया की स्थिति तब आ सकती है जब या तो प्लेसेंटा बहुत जल्दी अलग हो जाए या नाभि रज्जु (umbilical cord) पर बहुत दबाव हो या उसमें गाँठ पड़ गयी हो। एनॉक्सिया से मस्तिष्क कोशिकाएं नष्ट हो जाती हैं जिससे मस्तिष्क विकलांगता होने का खतरा रहता है।

II. **असामान्य जन्म अवस्था:** ये सामान्यतया उत्पन्न हो जाने वाली जटिलता है जब शिशु प्रसव के समय माँ के पेट में पहले सिर की आदर्श अवस्था में नहीं होता है। असामान्य जन्म अवस्था तब होती है जब शिशु का पहले पैर या कूल्हा बाहर आ जाता है। इस प्रकार की अवस्था को उल्टा प्रसव (breech delivery) कहते हैं।

III. **औजारों व उपकरणों द्वारा प्रसव:** औजारों एवं उपकरणों द्वारा प्रसव उसी परिस्थिति में किया जाता है जब प्रसव में कोई जटिलता हो जैसे उल्टा प्रसव या शिशु किसी परेशानी में हो। हालांकि प्रसव में औजारों का प्रयोग शिशु एवं माँ दोनों के लिए नुकसानदायक हो सकता है। अत: इनका प्रयोग बहुत सावाधानी से एवं योग्य चिकित्सक द्वारा ही किया जाना चाहिए।

IV. **शिशु जन्म के समय दवाओं का प्रयोग:** कुछ परिस्थितियों में डॉक्टर गर्भवती स्त्री के दर्द तथा उसकी घबराहट को कम करने के लिए उसे कुछ दवाएं दे देते हैं जो स्त्री को आराम तो देती हैं किन्तु वो प्लेसेंटा को पार कर शिशु को नुकसान पहुंचा सकती हैं।

1.5 नवजात शिशु के आगमन की तैयारी

नवजात शिशु हेतु की जाने वाली तैयारियां निम्न प्रकार हैं:

प्रसव के सम्बन्ध में जानकारी: जिस महिला को प्रसव के सम्बन्ध में पूर्व से ही जानकारी होती है वह अपनी प्रसव प्रक्रिया में सक्रिय सहभागी के रूप में कार्य करती है जिससे अच्छे परिणाम सामने आते हैं।

शिशु हेतु चिकित्सक की खोज: शिशु हेतु एक अच्छे शिशु चिकित्सक का चुनाव करना चाहिए।

अनुभवी माताओं से जानकारी प्राप्त करना: गर्भवती स्त्री को अनुभवी महिला से शिशु के जन्म एवं देखभाल सम्बंधित जानकारी प्राप्त करनी चाहिए जिससे शिशु का पालन पोषण आसान हो सके।

शिशु हेतु आवश्यक सामानों की खरीद: शिशु हेतु कुछ आवश्यक सामानों की खरीद पहले ही कर लेनी चाहिए जैसे:

- शिशु के कपड़े
- डाइपर एवं वाइप्स
- बेबी लोशन तथा मोइस्चराइजर
- बेबी ऑयल
- हेयर ऑयल तथा शैम्पू
- बेबी क्रीम
- कंघी
- बेबी बैड
- बोतल एवं निप्पल
- बोतल साफ़ करने हेतु ब्रश
- तौलिया
- कम्बल
- शिशु का सामान ले जाने हेतु बैग आदि।

शिशु के पालन पोषण (देखभाल) संबंधी कक्षाएं: माता एवं पिता दोनों को शिशु देखभाल सम्बंधित कक्षाओं में भाग लेना चाहिए जिससे उन्हें नवजात की देखभाल, नवजात के सामान्य व्यवहार, नवजात से घुलने मिलने का तरीका तथा नवजात के लिए चिकित्सक की आवश्यकता आदि की समझ हो सके।

अभ्यास प्रश्न 1

1. गर्भावस्था के संकेत एवं लक्षण बताइये।
2. सही मिलान कीजिए।

कॉलम	कॉलम
1. मस्त्काधोमुखी विकास (cephalocaudal)	a. नजदीक से दूर

2. निकट दूर विकास (proximodistal)	b. सामान्य प्रसव
3. गर्भकालीन विकास की निगरानी	c. विस्तारण
4. स्वाभाविक जन्म	d. आपरेशन द्वारा प्रसव
5. प्रसव की प्रथम अवस्था	e. सिर से पैर की ओर
6. सिजेरियन प्रसव	f. अल्ट्रासाउंड

3. गर्भकालीन विकास की तीन अवस्थाएं क्या हैं?

----

4. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तीन प्रमुख कारकों के बारे में बताइये।

1.6 नवजात शिशु

इस भाग में हम नवजात की परिभाषा, नवजात के विशिष्ट गुण तथा उसकी देखभाल के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.6.1 नवजात से तात्पर्य

नवजात से तात्पर्य है नया जन्म लिया हुआ शिशु। नया जन्म लिया हुआ शिशु वह है जो कुछ घंटे, या कुछ दिन या कुछ सप्ताह का ही होता है।

1.6.2 नवजात शिशु की विशेषताएं

बनावट

सामान्य रूप से एक नवजात 20 इंच लंबा तथा 3.2 किग्रा वजनी होता है। नवजात की त्वचा के ऊपर गर्भकालीन बाल होते हैं जिन्हें लेनुगो कहते हैं जो कुछ ही सप्ताह में गिर जाते हैं। आरम्भ के कुछ मिनट में शरीर का रंग नीला होता है जो रक्त में क्षणिक ऑक्सीजन की कमी से होता है जो बाद में गुलाबी हो जाता है। नवजात का सिर उसके शरीर का एक चौथाई होता है।

नवजात की शारीरिक प्रणालियाँ

रक्त परिसंचरण तंत्र

जन्म के तुरंत बाद शिशु का अपना परिसंचरण तन्त्र कार्य करना शुरु कर देता है। एक नवजात की हृदय दर तेज तथा अनियमित एवं रक्तदाब 10 वें दिन के बाद स्थिर होता है।

श्वसन तंत्र

एक नवजात को बहुत अधिक ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और वह उसे अब स्वयं ही प्राप्त करनी पड़ती है। अधिकतर शिशु बाह्य वातावरण के संपर्क में आते ही साँस लेना शुरु कर देते हैं। यदि शिशु बाहर आने के 5 मिनट बाद भी साँस लेना शुरु नहीं करता तो ऑक्सीजन की कमी के कारण उसके मस्तिष्क को स्थायी क्षति पहुँच सकती है।

पाचन तंत्र

गर्भाशय के भीतर शिशु माँ से भोजन लेने तथा शरीर के अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालने के लिए गर्भनाल पर निर्भर रहता है। किन्तु जन्म के बाद वह स्तनपान करता है तथा उसके अपने पाचक रस उसे पचाने का कार्य करते हैं।

जागरण अवस्था

एक नवजात शिशु सामान्यतया 16 घंटे की नींद लेता है जोकि हर शिशु में थोड़ा बहुत भिन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त वह कुछ अन्य क्रियाविधियां भी करता है। एक नवजात शिशु द्वारा विभिन्न क्रियाविधियों में व्यय समय निम्न प्रकार है:

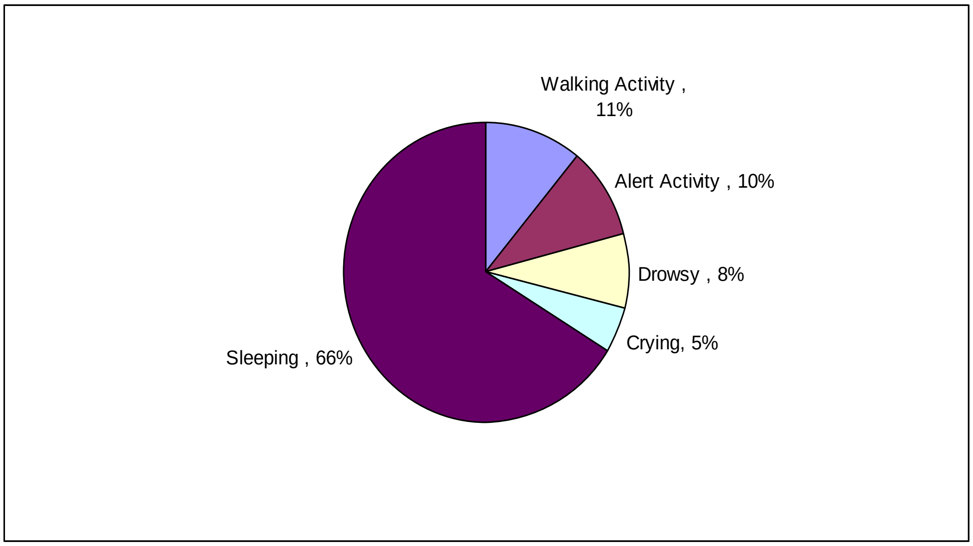

नवजात में अनैच्छिक क्रियाएँ

किसी उद्दीपन के प्रति स्वत: होने वाली प्रतिक्रिया ही अनैच्छिक क्रिया कहलाती है। गर्भाशय से बाहर आने के पश्चात जीवित रहने के लिए बहुत सारी अनैच्छिक क्रियाएँ आवश्यक होती हैं जैसे साँस लेना, दूध पीना, रोना आदि। ये सभी क्रियाएँ शिशु को विभिन्न प्रतिक्रियाओं से समायोजन करने में सहायता करती हैं।

नवजात की संवेदी क्षमताएं

दृष्टि: शिशु जन्म के समय से ही देख सकता है तथा चमकीली रोशनी पर आँखें बंद कर लेता है। यहाँ तक कि दो माह पहले हुआ शिशु भी जन्म के समय ठीक प्रकार से देख सकता है क्योंकि 7 वाँ माह पूरा होने तक आँख के सभी आवश्यक भाग विकसित हो चुके होते हैं।

सुनना: कान गर्भावस्था के अंतिम तिमाह में कार्य करना शुरु करते हैं। नवजात शिशु जब तेज आवाज सुनता है तो और अधिक रोने लगता है तथा कम आवाज उसे बहुत आरामदायक लगती हैं। नवजात शिशु आवाज पर दो प्रकार से प्रतिक्रिया करता है:

1. आवाज की दिशा में अपना सिर घुमाकर।
2. अपनी क्रियाओं को रोककर आवाज सुनने लगते हैं।

स्वाद एवं गंध: ये दोनों इन्द्रियाँ जन्म के समय से ही पूर्ण विकसित होती हैं। शिशु को स्वाद का पूर्ण ज्ञान होता है तथा वह अलग-अलग गंध में अंतर कर सकता है जैसे शिशु माँ की गंध को पहचानता है।

स्पर्श: 5 इन्द्रियों में से पांचवी इन्द्रिय है स्पर्श। नवजात शिशु शरीर के किसी भी हिस्से में स्पर्श करने पर प्रतिक्रिया करता है।

1.6.3 नवजात शिशु की देखभाल

शिशु जन्म के बाद शिशु की उचित देखभाल अत्यंत आवश्यक है। शिशु की देखभाल के अंतर्गत निम्न बातें आती हैं:

1. **नवजात का स्वास्थ्य**

नवजात के स्वास्थ्य की देखभाल के अंतर्गत निम्न बातें आती हैं:

- नवजात की नियमित स्वास्थ्य जांच: अस्पताल छोड़ने से पूर्व शिशु का पूर्ण परीक्षण करा लेना चाहिए जैसे सुनने की क्षमता का परीक्षण।
- सम्पूर्ण टीकाकरण: शिशु का उचित समय पर सम्पूर्ण टीकाकरण करवाना चाहिए।
- रोग के लक्षणों की पहचान: यदि शिशु को स्वास्थ्य सम्बंधी कोई परेशानी हो तो उसे तुरंत पहचानकर डॉक्टर से परामर्श लेना चाहिए।

2. **दैनिक देखभाल**: इसके अंतर्गत निम्न बिंदु आते हैं:

- शिशु के वस्त्रों का चयन सावधानी से करना चाहिए। ऐसे वस्त्र लेने चाहिए जो पहनाने में आसान एवं शिशु के लिए आरामदायक हों।
- शिशु के डायपर एवं नैपी समय समय पर बदलनी चाहिए।
- शिशु की स्वच्छता का ध्यान रखना चाहिए, सप्ताह में एक या दो बार नहलाना चाहिए।
- शिशु के नाखून समय समय पर काटते रहने चाहिए।
- स्नान कराते समय शिशु के कान, आँख एवं नाक भी साफ़ करने चाहिए।

3. **नवजात की पोषण संबंधी देखभाल**

नवजात शिशु अपने भोजन के लिए पूर्ण रूप से माँ के दूध या इन्फैन्ट फार्मूला पर निर्भर होता है। अत: ध्यान रहे कि उसे यह उचित मात्रा में मिलते रहे।

4. **नवजात की सुरक्षा:** नवजात की सुरक्षा हेतु निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए:
    - किसी ऊंचे स्थान से गिरने से बचाना चाहिए।
    - खाना बनाते समय शिशु को गोद में नहीं लेना चाहिए।
    - शिशु का पालतू जानवरों से बचाव करना चाहिए।
    - शिशु के प्रयोग किए जाने वाले सामान जैसे बिस्तर, कम्बल, खिलौने आदि साफ़ एवं शिशु के लिए सुरक्षित होना चाहिए।

5. **नवजात की नींद**

नवजात शिशु आरम्भ में एक दिन में लगभग 16-18 घंटे सोता है। शिशु एक बार में 2-3 घंटे की नींद लेता है, फिर वह दूध पीकर या थोड़ा खेलकर दोबारा सो जाता है।

1.7 शिशु के पालन पोषण की विधियां

शिशु के पालन पोषण के अंतर्गत निम्न बिंदु आते हैं:

- **शिशु को दूध पिलाना एवं डकार दिलाना:** एक नवजात को प्रत्येक 2-3 घंटे में दूध पिलाना चाहिए। शिशु को प्रत्येक बार दूध पिलाने के बाद आवश्यक रूप से डकार दिलानी चाहिए।
- **शिशु को संभालना:** शिशु को पकड़ने से पूर्व अपने हाथ धो लेने चाहिए, शिशु की गर्दन को हाथ से सहारा देकर पकड़ना चाहिए तथा उसे गोद में लेकर ज्यादा हिलाना नहीं चाहिए।
- **शिशु को नहलाते समय ध्यान देने योग्य बातें:**
    I. नहलाने वाला कपड़ा स्वच्छ एवं मुलायम होना चाहिए।
    II. मुलायम तौलिया।
    III. स्वच्छ डायपर।
    IV. स्वच्छ कपड़े।

- **शिशु को मल मूत्र नियंत्रण शिक्षा देना:** शुरुआत में शिशु का अपने शरीर के अपशिष्ट पदार्थों के निकलने पर कोई नियंत्रण नहीं होता है किन्तु धीरे धीरे शिशु को यह सिखाना चाहिए कि अपशिष्ट पदार्थों को निकालने का एक निश्चित स्थान एवं समय होता है। इससे धीरे-धीरे शिशु का शरीर की इस क्रिया पर नियंत्रण हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. नवजात किसे कहते हैं?

----
2. एक नवजात में होने वाली विभिन्न अनैच्छिक क्रियाओं को बताइये।

----
3. नवजात की प्रतिदिन की देखभाल में कौन से बिंदु सम्मिलित हैं?

----
4. शिशु के पालन पोषण के अंतर्गत कौन से क्षेत्र आते हैं?

1.8 शिशु के स्वास्थ्य की देखभाल एवं टीकाकरण

शिशु की स्वास्थ्य की देखभाल में निम्न बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए:

- **नवजात का स्वास्थ्य परीक्षण**
  - शिशु का औसतन वजन 2.5 से 2.9 किग्रा तथा लम्बाई 19 से 20 इंच होती है।
  - शिशु का शारीरिक परीक्षण (दिल की धड़कन, नेत्र परीक्षण, पीठ, जांघ आदि का परीक्षण) किया जाना चाहिए।
  - पहला टीकाकरण जन्म के समय तथा जन्म के तुरंत बाद हो जाना चाहिए।

- **सामान्य स्वास्थ्य समस्याएँ**
  - डायरिया
  - पेट दर्द
  - सर्दी जुकाम
  - पीलिया

- **टीकाकरण**

टीकाकरण से तात्पर्य विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव हेतु शरीर में विशिष्ट प्रकार के एंटीजन को प्रवेश कराकर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना है जिससे विभिन्न बीमारियों से व्यक्ति की सुरक्षा सके। टीकाकरण द्वारा रोकने योग्य बीमारियाँ निम्न हैं:

- टिटनेस
- पोलियो
- डिप्थीरिया
- काली खांसी
- खसरा
- क्षय रोग

नीचे राष्ट्रीय टीकाकरण सारणी दी गई है जिसके अनुसार महिलाओं तथा बच्चों को टीके लगाए जाते हैं।

राष्ट्रीय टीकाकरण सारणी

किसके लिए	**कब**	**टीका**	**मात्रा**
महिला	गर्भावस्था	टिटनेस टाक्साइड	2 (एक गर्भावस्था के शुरुआत में दूसरा एक माह बाद)
नवजात शिशु	जन्म के समय	बी. सी. जी.	1
		ओरल पोलियो वैक्सीन	“0” मात्रा
शिशु	6 सप्ताह	डी. पी. टी.	1
		ओरल पोलियो	पहली

		वैक्सीन	
		बी. सी. जी.(यदि जन्म के समय न दिया गया हो।)	1
	10 वाँ सप्ताह	डी. पी. टी.	दूसरी
		ओरल पोलियो वैक्सीन	दूसरी
	14 वाँ सप्ताह	डी. पी. टी.	तीसरी
		ओरल पोलियो वैक्सीन	तीसरी
	9 माह	खसरा	1
		विटामिन ए की रोकथाम *	पहली
	9 से 18 माह	खसरा , गलसुआ , रूबेला	1
	16 से 24 माह	डी. पी. टी.	पहला बूस्टर
		ओरल पोलियो वैक्सीन	पहला बूस्टर
बच्चे	5 से 6 वर्ष	डी. पी. टी.	दूसरा बूस्टर
	10 वर्ष और 16 वर्ष	टिटनेस टाक्साइड़	2

* 3 साल तक हर 6 माह में।

शिशु के लिए टीकाकरण अत्यंत आवश्यक है तथा यह केवल उस परिस्थिति में रोका जा सकता है जब शिशु गंभीर बीमार हो अन्यथा टीकाकरण अवश्य करवाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न 3

1. टीकाकरण को परिभाषित कीजिए।

2. टीकाकरण द्वारा रोकी जा सकने वाली 6 बीमारियों के नाम लिखिए।
3. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए:
    a) गर्भवती स्त्री को .... टॉक्साइड की 2 खुराकें दी जाती हैं।
    b) बी. सी. जी. का टीका शिशु को .... दिया जाता है।
    c) शिशु को .... का ट्रिपल इंजेक्शन .... की ओरल खुराक के साथ क्रमश: डेढ़ माह, ढाई माह तथा साढ़े तीन माह में दिया जाता है।
    d) खसरा की खुराक शिशु को .... माह में दी जाती है।

1.9 सारांश

इस इकाई में हमने गर्भकालीन विकास के लक्षण एवं संकेतों का विषय में पढ़ा। हमने गर्भावस्था की पहचान, लक्षण एवं संकेतों के बारे में भी जाना। इसके अतिरिक्त गर्भकालीन विकासों की निगरानी द्वारा गर्भकालीन विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों के बारे में पढ़ा। हमने यह भी जाना कि गर्भवती स्त्री को प्रसव पूर्व क्या देखभाल चाहिए तथा शिशु जन्म के बाद शिशु आगमन की तैयारी क्या होनी चाहिए। इसके साथ-साथ नवजात शिशु की विशेषताओं तथा नवजात शिशु की देखभाल एवं बालक के पालन पोषण की विधियों एवं शिशु की स्वाथ्य सुरक्षा एवं टीकाकरण के सम्बन्ध में भी जानाकारी ली।

1.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **गर्भपात:** जब गर्भावस्था समय से पहले पूरी हो जाती है तथा विकसित हो रहा जीव गर्भ से बाहर आकर जीवित नहीं रह पाता।
- **अम्नियोटिक द्रव्य:** जल सदृश द्रव्य जिसमें गर्भस्थ शिशु तैरता रहता है।
- **प्लेसेंटा:** माँ के गर्भ में शिशु का पोषण करता है।
- **अल्ट्रासाउंड:** उच्च आवृत्ति की ध्वनि तरंगों द्वारा भ्रूण की गतिविधि देखना तथा गर्भावस्था की स्थिति पता लगाना।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. गर्भावस्था के लक्षण एवं संकेत: मासिक धर्म का रुक जाना, स्तनों में परिवर्तन, मूत्र त्याग की आवृत्ति में वृद्धि, जी मिचलाना एवं उल्टी होना, आधारीय शरीर तापमान में वृद्धि, गर्भाशय में वृद्धि तथा वजन में वृद्धि।
2. 1 (c) 2 (a) 3 (f) 4 (b) 5 (c) 6 (d)
3. गर्भकलीन विकास की अवस्थाएं निम्न हैं:
   - बीजावस्था (गर्भाधान से दूसरे सप्ताह तक)
   - भ्रूणावस्था (दूसरे सपताह से दूसरे माह तक)
   - गर्भस्थ शिशु की अवस्था (दूसरे माह से जन्म तक)
4. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले 3 प्रमुख तत्व हैं:
   - मातृक कारक
   - बाह्य वातावरणीय हानिकारक तत्व
   - पैतृक कारक

अभ्यास प्रश्न 2

1. एक नए पैदा हुए बच्चे को नवजात कहते हैं।
2. नवजात की विभिन्न अनैच्छिक क्रियाएँ साँस लेना, दूध पीना, रोना, दर्द तथा तापमान पर प्रतिक्रिया करना आदि हैं।
3. नवजात की प्रतिदिन की देखभाल में उसे कपड़े पहनाना, डायपर पहनाना, सुरक्षित स्नान कराना, नाखून की देखभाल, आँख नाक तथा कान की देखभाल, नवजात की सुरक्षा आदि आते हैं।
4. शिशु के पालन पोषण के अंतर्गत शिशु को दूध पिलाना एवं डकार दिलाना, शिशु को संभालना, शिशु को नहलाते समय ध्यान देना तथा शिशु को मल मूत्र नियंत्रण की शिक्षा देना आदि क्षेत्र आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. टीकाकरण से तात्पर्य विभिन्न संक्रामक रोगों से बचाव हेतु शरीर में विशिष्ट प्रकार के एंटीजन को प्रवेश कराकर शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाना है जिससे विभिन्न बीमारियों से व्यक्ति की सुरक्षा सके।
2. टीकाकरण द्वारा रोकने योग्य बीमारियाँ:
   - टिटनेस
   - पोलियो
   - डिप्थीरिया
   - काली खांसी
   - खसरा
   - क्षय रोग
3. रिक्त स्थान भरिये।
   a) टिटनेस
   b) जन्म
   c) डी. पी. टी., पोलियो
   d) 9

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Harris, J.R. and Liebert, R.M. (1987), The Child: Development From Birth Through Adolescence, Second edition, Prentice Hall Inc., New Jersey.
2. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram- Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
3. Marshall, M.H. and Janette B. Benson (2008), Encyclopedia of Infant and Early Childhood Development, Academic Press, San Diego.

4. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
5. Ruth Strang, (1971), An Introduction to Child Study, Fourth edition, The Macmillan Company, New York.
6. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
7. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.
8. http://www.en.wikipedia.org/wiki/infant (August 2014)
9. http://www.nlm.nih.gov/medlineplus/infant and newborn care.html (August 2014)
10. http://kidshealth.org/parent/newborn care/guide parents.html (August 2014)
11. MFN- 006, Public Nutrition (2006), Indira Gandhi National Open University, Laxmi Print India, New Delhi.

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विभिन्न गर्भकालीन विकासों के बारे में बताइये तथा इन विकासों हेतु निगरानी के लिए प्रमुख विधियों का वर्णन कीजिए।
2. गर्भकालीन विकास की प्रमुख विशेषताएं बताइये।
3. गर्भकालीन विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक बताइये।
4. प्रसव की तीन अवस्थाओं तथा प्रसव के दौरान होने वाली जटिलताओं के बारे में बताइये।
5. नवजात की प्रमुख विशेषताएं लिखिए।
6. नवजात के पालन पोषण की विधियां बताइये।

इकाई 2: शैशवावस्था में शारीरिक, क्रियात्मक, संज्ञानात्मक एवं भाषा विकास

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शारीरिक विकास

2.4 क्रियात्मक एवं भौतिक विकास में परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध

2.5 क्रियात्मक विकास

2.6 संज्ञानात्मक विकास की परिभाषा

2.7 जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

2.8 संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

2.9 बुद्धि

2.10 खेल एवं खेल के प्रकार

2.11 शिशु का रचनात्मक (सृजनात्मक) विकास

2.12 भाषा का महत्व

2.13 भाषा विकास के प्रमुख सिद्धांत

2.14 भाषा विकास

2.15 वाणी एवं वाणी दोष

2.16 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

2.17 सारांश

2.18 पारिभाषिक शब्दावली

2.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.21 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम शिशु जन्म के बाद नवजात शिशु की विशेषताओं एवं देखरेख, शिशु के स्वास्थ्य एवं शिशु रखरखाव सम्बंधित बातों का मुख्य रूप से अध्ययन करेंगे। शिशु जन्म के

बाद शिशु जीवन की विभिन्न अवस्थाओं जैसे शैशवावस्था, बाल्यावस्था, स्कूल से पूर्व, स्कूल जाने वाले एवं किशोरावस्था आदि के दौरान होने वाले विभिन्न प्रकार के विकासों जैसे शारीरिक, सामाजिक एवं मानसिक विकास का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण होता है। इस इकाई के अंतर्गत हम शैशवावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास का अध्ययन करेंगे जिसमें सम्पूर्ण शैशवावस्था में शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के दौरान होने विभिन्न परिवर्तनों की जानकारी प्राप्त होगी। कुछ बड़े परिवर्तन जैसे शारीरिक बनावट, संवेदी क्षमता, पेशी, हड्डियों एवं अनैच्छिक क्रियाओं में परिवर्तन पूरी शैशवावस्था में होते रहते हैं। अब हमें शारीरिक एवं क्रियात्मक क्रियाओं के मध्य समन्वय एवं आपसी सम्बन्ध को समझना आवश्यक है। एक शिशु के शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास को पूर्ण रूप से समझने के लिए हमें शैशवावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक परिवर्तनों को समझना आवश्यक है की ये परिवर्तन कब और कैसे होते हैं तथा शैशवावस्था के अंत में प्राप्त होने वाली बड़ी उपलब्धियां क्या हैं।

इस इकाई में हम शिशु के संज्ञानात्मक विकास के बारे में भी पढ़ेंगे। जन्म लेने के बाद बालक जिस वातावरण के संपर्क में आता है, उसके बारे में उसे कोई जानकारी नहीं होती है। उसे जो कुछ भी दिखायी देता है वह उसे समझ नहीं पाता है। किन्तु धीरे-धीरे शिशु परिपक्व होने लगता है तथा वातावरण एवं अपने आस पास की वस्तुओं को पहचानने तथा समझने लगता है। शिशु का यही विकास संज्ञानात्मक विकास कहलाता है।

जैसा कि आप जानते हैं कि भाषा मनुष्य व समाज के बीच संचार को बुनियादी रूप से विकसित करती है। व्यक्ति के विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा माध्यम का कार्य करती है। इसमें विचार, अनुभूति तथा संदेशवाहन को प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया जाता है। बालक के विकास क्रम में भाषा का विकास होना परम आवश्यक है। भाषा विकास बच्चों के मानसिक और सामाजिक विकास में सहायता प्रदान करता है। आयु वृद्धि के साथ जैसे-जैसे भाषा विकसित होती है, वैसे-वैसे बालक में बुद्धिमत्ता के कारण वाक चातुर्यता भी विकसित होने लगती है। प्रत्येक समुदाय तथा समाज द्वारा विचारों के आदान-प्रदान के लिए अलग-अलग भाषा का प्रयोग किया जाता है और उसी भाषा को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जाता है। इस इकाई में हम शिशु में भाषा विकास के बारे में भी जानेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ लेने के पश्चात आप निम्न के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे:

- एक नवजात शिशु का शारीरिक रंग रूप एवं संवेदी क्षमता;

- शैशवावस्था में होने वाले शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय का वर्णन;
- शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास;
- संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक;
- शैशवावस्था में रचनात्मक विकास को समझ पायेंगे;
- भाषा विकास के महत्व तथा भाषा विकास के प्रमुख सिद्धांतों तथा अवस्थाओं के बारे में जानकारी**;** तथा
- भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों तथा वाणी दोष के बारे में जान पाएंगे।

2.3 शारीरिक विकास

शैशवावस्था / नवजात अवस्था के दौरान शारीरिक विकास बच्चे के व्यवहार को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूप से प्रभावित करता है। उदाहरण के लिए यदि बच्चा अपनी उम्र के लिए अच्छी तरह से विकसित है तो वह विभिन्न गतिविधियों जैसे खेल आदि में अपने साथियों के साथ समान रूप से प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम होता है, लेकिन यदि वह शारीरिक रूप से अपने साथियों के समान पूर्ण रूप से विकसित नहीं है, तो वह ऐसी गतिविधियों में अच्छा प्रदर्शन नही कर पाता तथा उस समूह से बाहर हो जाता है। इस क्षण बच्चा बहुत उपेक्षित महसूस करता है और इसका उसके लोगों के प्रति व्यवहार पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

अप्रत्यक्ष रूप से शारीरिक विकास स्वयं के प्रति और दूसरों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करता है जोकि व्यक्ति विशेष द्वारा किए जा रहे सामंजस्य में प्रतिबिंबित होता है। उदाहरण के लिए एक बच्चा जो अधिक वजन का है उसे जल्द ही पता चलता है कि वह अपने पतले हमउम्र साथियों के समान तेज गति से नहीं चल सकता और यह बच्चे में अक्सर एक अपर्याप्तता की भावना को जन्म देता है। यह उसकी आत्म अवधारणा पर एक चिह्नित प्रभाव डालता है।

इसलिए, बच्चे के जीवन के विभिन्न चरणों में व्यवहार पर विकास के प्रभाव को समझने के लिए सामान्य रूप से होने वाले भौतिक विकास को समझाना महत्वपूर्ण है। इससे विभिन्न बच्चों में अंतर तथा एक ही बच्चे में अलग-अलग उम्र में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान होता है। इस अनुभाग में हम शैशवावस्था की अवधि के दौरान बच्चे की शारीरिक और क्रियात्मक क्रियाओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। शैशवावस्था जन्म से 12 महीनों या एक वर्ष तक की अवधि है।

नवजात शिशु की शारीरिक बनावट

नवजात शिशु के सिर से पैर तक छोटे छोटे अंग होते हैं, वे बीस इंच लंबे और 3.0 किग्रा (7.5 पाउंड) वजन के होते हैं। इनके दिल की धड़कन एक वयस्क की अपेक्षा दुगनी होती है यानी लगभग 120 धड़कन प्रति मिनट तथा वे वयस्कों की अपेक्षा दुगनी रफ़्तार से सांस लेते हैं यानी एक मिनट में 33 बार। जन्म के समय शिशु का सिर विशाल (शरीर के बाकी हिस्से के सापेक्ष) होता है तथा अनैच्छिक क्रियाएँ होती हैं। बारह महीनों के अंतराल में शिशु बैठने, खड़े होने, झुकने, चढ़ने और शायद चलने में सक्षम हो जाता है।

आकार एवं बनावट

एक औसत नवजात शिशु 20 इंच लंबा और लगभग 3.0 किलो वजन का होता है। हालाँकि ये 15 से 24 इंच लम्बाई में और 2.5 से 4 किलो वजन में भिन्न हो सकते हैं। लड़के लड़कियों की अपेक्षा थोड़े लंबे और भारी होते हैं, और एक पहले जन्मे बच्चे का बाद में जन्मे बच्चों से कम वजनी होना संभव है। पहले कुछ दिनों में तरल पदार्थ की हानि के कारण उनके शरीर के वजन में 10 प्रतिशत की कमी आ जाती है। पांचवें दिन से वह पुन: वजन हासिल करने लगते हैं और आम तौर पर दसवें से चौदहवें दिन तक जन्म के वजन पर वापस आ जाते हैं।

नवजात शिशुओं के विशिष्ट लक्षणों में एक बड़ा सिर (एक-चौथाई शरीर लंबाई), छोटे अंग और एक दबी हुई ठोड़ी है। एक नवजात का सिर माँ के कूल्हे से बाहर आने में आराम हेतु होने वाली "मोल्डिंग' के कारण लंबा और कुरूप हो सकता है। यह अस्थायी मोल्डिंग संभव होती है क्योंकि एक शिशु की खोपड़ी की हड्डियां लगभग 18 महीनों तक आपस में पूरी तरह से नहीं जुड़ी होती। नवजात के सिर पर कुछ स्थान ऐसे होते हैं जहाँ हड्डियां एक साथ विकसित नही होती हैं जैसे सॉफ्ट स्पॉट या फोंटानेल्स जो एक कड़ी झिल्ली द्वारा कवर रहता है। जन्म के समय सिर का कपाल भाग बड़ा और चेहरे का क्षेत्र छोटा होता है।

नवजात शिशुओं की त्वचा गुलाबी होती है जो इतनी पतली होती है कि रक्त प्रवाह कोशिका को भी मुश्किल से ढक पाती है। शुरुआत के कुछ दिनों में, कुछ नवजात शिशुओं के शरीर पर बहुत बाल होते हैं ये लेनुगो के कारण होते हैं। लेनुगो जन्म से पूर्व के बाल होते हैं जो कुछ समय तक नहीं गिरते हैं। सभी नवजात शिशुओं पर तेल का सुरक्षा कवर, वर्निक्स केसिओसा या "पनीर का वार्निश" होता है जो उन्हें संक्रमण से बचाता है तथा पहले कुछ दिनों के भीतर ही सूख जाता है।

जन्म के समय, नवजात शिशु की उंगलियाँ नाजुक होती हैं तथा पैर के नाखून और चेहरा पूर्ण विकसित होता है। ये विशेषताएं नवजात को जन्म की प्रक्रिया की मुश्किलों से बचाती हैं। शुरुआत में माथा बड़ा गोलाकार तथा उन्नत होता है जो बहुत जल्द चपटा तथा आकार में

छोटा होना शुरु हो जाता है। जन्म के समय, पैर आनुपातिक बहुत छोटे होते हैं और हाथ बहुत लंबे। नवजात शिशु के पैर इतने छोटे और लचीले होते हैं की उनके तले एक दूसरे के सामने रहते हैं। जैसे जैसे पैर लंबे होते जाते हैं, सीधे होते जाते हैं।

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है की पूरे समय के बच्चे समय से पूर्व हुए बच्चों से भिन्न होते हैं। समय से पूर्व हुए बच्चे पूरे समय में हुए बच्चों से छोटे होते हैं तथा वो मंदबुद्धि भी हो सकते हैं। शिशुओं के शरीर के आकार में बदलाव को प्रभावित करने वाले कारक बॉक्स 1 में दिखाए गए हैं:

बॉक्स 1: शरीर के आकार में बदलाव को प्रभावित करने वाले कारक	
• शरीर संरचना	शिशु को निम्न तीन प्रकार की शरीर संरचना के आधार पर वर्णित किया जा सकता है: एंडोमोर्फ- गोल एवं मोटा, मीसोमोर्फ- भारी, कठोर एवं आयताकार तथा एक्टोमोर्फ- लंबा एवं बेलनाकार।
• पारिवारिक प्रभाव	ये आनुवंशिक एवं पारिवारिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। आनुवंशिक कारकों से बच्चा दूसरे बच्चों की अपेक्षा मोटा एवं भारी हो सकता है। वातावरण के प्रभाव से भी बच्चे का भार प्रभावित होता है।
• पोषण	अच्छे पोषित शिशु निम्न पोषित शिशुओं की अपेक्षा अधिक लंबे होते हैं।
• लिंग	लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक लंबे एवं भारी होते हैं।
• जाति	जातीय पृष्ठभूमि के कारण शरीर के आकार में बदलाव हो सकता है।
• सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति	निम्न सामाजिक एवं आर्थिक स्तर वाले शिशु अन्य शिशुओं की तुलना में कम तेजी से विकसित और दूसरों की तुलना में छोटे होते हैं।

अब हम नवजात शिशु की संवेदी क्षमताओं के बारे में पढ़ेंगे जो जीवन के शुरुआती महीनों में तेजी से विकसित होती हैं।

नवजात की संवेदी क्षमताएं

पिछली इकाई में हम इस बारे में चर्चा कर चुके हैं कि कैसे एक नवजात शिशु विभिन्न संवेदी क्षमताओं से सुसज्जित इस संसार में आता है। अब हम नवजात की कुछ अन्य संवेदी क्षमताओं जैसे सुनना, देखना, सूंघना, स्वाद लेना, छूना, दर्द आदि के बारे में जानेंगे। नवजात शिशु तक सभी जानकारियाँ एवं संवेद देखने, सुनने, छूने, स्वाद लेने, सूंघने एवं अन्य संवेदनाओं द्वारा पहुंचते हैं। संवेदनाओं के बिना नवजात का दिमाग संसार से पृथक हो जाएगा और वह एक बेस्वाद, रंगहीन और भावना रहित प्राणी की तरह गहरी चुप्पी में रहने लगेगा।

अब हम नवजात की प्रत्येक संवेदी क्षमताओं की समीक्षा करेंगे। इन संवेदी क्षमताओं का एक सारांश तालिका 6.1 में दिखाया गया है:

तालिका 2.1: नवजात की संवेदी क्षमताएं

संवेद	शिशु की क्षमता
देखना	• दोनों आँखों से एक ही बिंदु पर ध्यान केंद्रित करते हैं, सबसे अच्छा ध्यान केंद्रित बिंदु 8 इंच दूर है। • अपनी आँखों से किसी घूमती हुई वस्तु का पीछा करते हैं। जन्म के समय ठीक प्रकार से विकसित नहीं होती किन्तु बहुत तीव्रता से क्षमता में सुधार हो जाता है। • दो सप्ताह से कुछ रंगों में भेद करने लगते हैं।
सुनना	• विभिन्न ध्वनियों का जवाब देते हैं, विशेष रूप से उन ध्वनियों का जिनकी पिच और प्रबलता मानव ध्वनि के बराबर होती है। • थोड़ी सी भिन्नता वाली ध्वनियों जैसे पा तथा बा के मध्य अंतर करने लगते हैं। • 6 महीने के हो जाने पर या उससे पहले ही शिशु उस दिशा का पता लगा लेते हैं जहाँ से ध्वनि आ रही है। • लयबद्ध आवाज द्वारा उसे शांत किया जा सकता है।
सूंघना	• कुछ बदबू पर दृढ़ता से प्रतिक्रिया।
स्वाद	• नमकीन एवं मीठे स्वाद में फर्क कर सकते हैं तथा मीठे को वरीयता देते हैं। • खट्टे एवं कड़वे स्वाद के मध्य भी अंतर कर लेते हैं।

दृष्टि (देखना)

देखना या दृष्टि जन्म के समय सबसे कम विकसित संवेद है। जन्म के समय शिशु को अँधेरे एवं प्रकाश के लिए बहुत कम समझ होती है। शिशु की आँखे एक वयस्क की आँखों की अपेक्षा बहुत छोटी होती हैं, रेटिना संरचना अधूरी होती है तथा ऑप्टिक तंत्रिका भी अविकसित होती है। नवजात तीव्र प्रकाश पड़ने पर पलकें झपका लेते हैं। पैरिफैरल दृष्टि बहुत कमजोर होती है तथा जो 2 से 10 वें सप्ताह तक दुगनी हो जाती है। किसी ऊपर नीचे, एक किनारे से दूसरे किनारे या फिर गोलाई में घूमती हुई वस्तु का पीछा करने की क्षमता शुरुआत के महीनों में उसी तरह तेजी से बढ़ती जाती है जैसे कि रंगों का ज्ञान।

एक वर्ष के भीतर ही दृष्टि बहुत तेज हो जाती है। द्विनेत्री दृष्टि, जिसमें शिशु दोनों आँखों का प्रयोग कर गहराई और दूरी का अंदाजा लगाते हैं, 4 से 5 महीने के बीच विकसित हो जाती हैं। शुरुआत में अश्रु ग्रन्थियाँ अविकसित होती हैं हालाकि बच्चे बहुत जोर से रोते हैं, किन्तु आंसू कई हफ्ते बाद आते हैं। एक हफ्ते के भीतर बच्चे की दोनों आँखें एक साथ कार्य करने लगती हैं। 6 माह की उम्र तक बच्चे की देखने की क्षमता इतनी विकसित हो चुकी होती है कि वो कुछ रंगों जैसे लाल तथा नारंगी को वरीयता से देख सकता है। एक साल की उम्र तक शिशु की दृष्टि इतनी अच्छी विकसित हो चुकी होती है कि वो चलती हुई दूरस्थ वस्तुओं जैसे पक्षी तथा हवाई जहाज आदि का अनुसरण कर सकते हैं।

सुनना

शिशु जन्म के तुरंत बाद सुन सकते हैं। सुनने की क्षमता मां के पेट में जन्म से पहले ही क्रियात्मक होती है। ध्वनियों के बीच भेदभाव करने की क्षमता जन्म के बाद तेजी से विकसित होती है। 1 महीने की उम्र में शिशु " बा " और "पा " दो करीबी ध्वनियों भेद कर सकते हैं। एक नवजात आवाज की ध्वनि की ओर पलटकर देखता है। इसके अलावा शिशु एक पिच से दूसरे को अलग कर सकते हैं, उदाहरण के लिए वह आसानी से पहचान सकते हैं कि दो अलग-अलग संगीत ध्वनियां चलायी जा रही हैं। कम पिच की ध्वनि से रोता हुआ शिशु शांत हो जाता है, जबकि उच्च पिच की ध्वनि तनाव को बढ़ावा देती है।

नवजात शिशु प्रबलता के विभिन्न स्तरों के लिए अलग तरह से प्रतिक्रिया करते हैं। शिशु केवल 35 से 40 डेसीबल तीव्रता की ध्वनि सुन सकते हैं, और इस स्तर से ऊपर की तीव्रता की ध्वनि से शिशु की हृदय की दर और क्रियात्मक प्रतिक्रियाएं भी उसी अनुपात में बढ़ जाते हैं।

चूंकि सुनना भाषा के विकास के लिए महत्वपूर्ण है अत: श्रवण दोष की पहचान और जितनी जल्दी हो सके उसका निदान किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान ने सभी शिशुओं की पहले तीन महीनों के भीतर सुनने की समस्या संबंधी जांच कराने की सलाह दी है।

सूंघना

शिशु जन्म के तुरंत बाद सूँघ सकते हैं। सूँघने की क्षमता भी मां के पेट में जन्म से पहले ही कार्यात्मक हो जाती है। जन्म के बाद भोजन के जायके और गंध का हस्तांतरण स्तन के दूध के माध्यम से होता है, जैसे यह भ्रूण को एमनियोटिक द्रव के माध्यम से हस्तांतरित होता है। एक नवजात शिशु जन्म के बाद पहले कुछ दिनों के दौरान अच्छी गंध के लिए एक प्राथमिकता विकसित करता है। छह दिन का स्तनपान कराया हुआ शिशु एक नर्सिंग माँ से अपनी माँ के स्तनों की गंध पसंद करते हैं, लेकिन 2 दिन का शिशु ये नहीं कर पाता। यह पता चलता है कि बच्चों को उनकी माताओं की गंध जानने के लिए कुछ ही दिनों की जरूरत होती है। नवजात शिशु तेज और हल्की गंध के लिए घूमकर, वहाँ से हटकर या सांस लेने में परिवर्तन दिखा कर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।

स्वाद

स्वाद का ज्ञान भी शिशु को जन्म से पहले ही माँ के पेट में हो जाता है। कुछ स्वादों के प्रति प्राथमिकता शिशु में जन्म से ही होती है। स्वाद कलिकाएँ भ्रूण जीवन में अच्छी तरह से विकसित हो जाती हैं। नवजात शिशु खट्टे या कड़वे की अपेक्षा मीठा स्वाद अधिक पसंद करते हैं। उदाहरण के लिए, मीठे पानी द्वारा रोते हुए नवजात शिशु को शांत किया जा सकता है तथा दूसरे उदाहरण में अगर मां के स्तन के निप्पल को एक मीठे द्रव्य में डुबाया जाए तो शिशु की चूसने की क्षमता बढ़ जाती है।

स्पर्श

स्पर्श पहली भावना का विकास होता है और पहले कई महीनों के लिए यह सबसे परिपक्व संवेदी प्रणाली है। उदाहरण के लिए, जब एक नवजात शिशु का गाल मुँह के पास छूता है, तो शिशु उसमें निप्पल ढूँढने का प्रयास करता है तथा अपने होठों को वही आकार देता है जो वो दूध पीते हुए बनाता है। यह देखा गया है कि गर्भ के 32 वें सप्ताह (8 माह) से, शरीर के सभी भाग छूने के प्रति संवेदनशील होते हैं और यह संवेदनशीलता जीवन के पहले पांच दिनों के दौरान बढ़ जाती है।

यह देखा गया है कि बच्चों को दर्द का एहसास भी होता है, यहां तक कि जीवन के पहले दिन से ही उसे ये एहसास होने लगता है, और अगले कुछ दिनों के दौरान वो और अधिक संवेदनशील हो जाते हैं। लंबे समय तक या गंभीर दर्द नवजात शिशुओं के लिए दीर्घकालिक नुकसान कर सकता है और उस दर्द से राहत दिलाना आवश्यक होता है।

ऊपर हमारी चर्चा में हमने देखा एक नवजात शिशु में कौन सी संवेदी क्षमताएं मौजूद हैं और वे जीवन के पहले बारह महीनों के दौरान कैसे बदलती और विकसित होती हैं। अब हम बचपन की अवधि में अन्य परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

शैशवावस्था के माध्यम से परिवर्तन

जन्म के समय, नवजात शिशु में कुछ विशेषताएं जैसे शारीरिक बनावट, आकार और आकृति, शुरुआती संवेदी क्षमताएं, निश्चित शरीर प्रणाली, अच्छी तरह से विकसित मांसपेशियां, हड्डियां और मस्तिष्क होती हैं। ये सभी 12 महीने के शैशव काल में परिवर्तित होते रहते हैं और एक वर्ष के शिशु में ये सभी विशेषताएं जन्म के समय से बिलकुल भिन्न होती हैं। अब हम शैशवावस्था के दौरान होने वाले इन परिवर्तनों के सम्बन्ध में विस्तार से पढ़ेंगे।

- **आकार और आकृति**

आकार में परिवर्तन अन्य पक्षों के अलावा आम तौर पर शिशुओं की लम्बाई और वजन में होने वाले विशिष्ट परिवर्तन में आता है। शिशुओं की लम्बाई और वजन में पहले कुछ महीनों के दौरान तेजी से वृद्धि होती है जितनी तेजी से फिर कभी नहीं होती। सामान्य नियम यह है कि एक शिशु 5-6 महीने में अपने जन्म के समय के वजन का दोगुना और पहले साल के अंत तक तीन गुना हो जाता है। जन्म के बाद पहले 3-4 दिनों में शिशुओं का वजन आम तौर पर कम होता है। यह कमी 10 प्रतिशत तक हो सकती है। यह मुख्यतः शरीर के तरल पदार्थ हैं, जो पानी के चयापचय तथा गर्भाशय जीवन में समायोजन करने के लिए जिम्मेदार होता है। एक आदर्श शिशु जो जन्म के समय 20 इंच का होता है एक वर्ष के भीतर लगभग 10-12 इंच बढ़ जाता है अर्थात 30 इंच तक हो जाता है। एक छोटे लड़के का 5 महीने में औसत वजन जन्म वजन का दोगुना, लगभग 6 किलो तक हो जाता है और एक वर्ष में तीन गुना लगभग 9 किलो तक हो जाता है। एक लड़के की ऊंचाई आम तौर पर पहले साल के दौरान 10 इंच तक बढ़ जाती है। लड़कियों में भी वृद्धि का यही स्वरूप होता है किन्तु कुछ धीमा होता है।

दांत निकलना शैशवावस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता है जो आमतौर पर 3 से 4 महीने में शुरु होती है, जब शिशु कोई भी वस्तु उठाकर मुंह में डालना शुरु कर देता है लेकिन पहला दांत 5 से 9 महीने के बीच या इसके बाद आता है। पहले जन्मदिन पर बच्चे के आम तौर पर छह से आठ दांत होते हैं। सबसे पहले नीचे के सामने के दो तथा फिर ऊपर के सामने के 4 और इसके बाद नीचे के सामने के अगल बगल के 2 और दांत आते हैं।

पूर्व की चर्चा से यह कहा जा सकता कि एक पहले आधे वर्ष के दौरान शारीरिक वृद्धि बहुत तेजी से होती है किन्तु शारीरिक परिवर्तन अपेक्षाकृत कम होते हैं।

अब हम शिशुओं की मांसपेशियों में होने वाले परिवर्तनों की समीक्षा करेंगे।

सिर

जन्म के बाद सिर शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा कम बढ़ता है। जन्म के समय सिर कुल शरीर लंबाई का 22 प्रतिशत होता है। बच्चे का सिर वयस्क की तुलना में चौड़ा होता है। लंबाई चौड़ाई वृद्धि प्रतिमान लड़कों और लड़कियों में लगभग समान होता है हालांकि लड़कों का सिर हर उम्र में लड़कियों से थोड़ा बड़ा होता है।

चेहरा

क्रेनियम इसका विकास जल्दी पूर्ण करता है इसलिए सिर के ऊपर का हिस्सा चेहरे की अपेक्षा बहुत बड़ा प्रतीत होता है। स्थायी दांतों में परिवर्तित होने के दौरान ऊपरी और निचले दांतों की साथ-साथ फिटिंग होती है जो चेहरे के निचले हिस्से के आकार को प्रभावित करती है। चेहरे का आकार एवं मुखाकृति दोनों परिवर्तित हो जाते हैं।

धड़

शुरुआत में शिशु की गर्दन नहीं होती है तथा उसका सिर कंधों के ऊपर टिका रहता है। धीरे धीरे एक छोटी सी गर्दन विकसित होती है। शिशु के धड़ में बहुत तीव्रता से परिवर्तन होते हैं। पहले साल में शिशु का शरीर कुछ मोटा होता है।

टाँगें एवं भुजाएं

जन्म के समय टाँगें आनुपातिक छोटी होती हैं, भुजाएं बहुत लंबी होती हैं तथा हाथ एवं पैर बहुत छोटे होते हैं। जन्म से 2 वर्ष की उम्र तक भुजाएं 60 से 75 प्रतिशत लंबी हो जाती हैं। जैसे जैसे पैर लम्बाई में बढ़ते हैं सीधे होते जाते हैं जो पूर्व में लचीले एवं झुके हुए थे। टाँगे लगभग 40 प्रतिशत तक लंबी हो जाती हैं।

शरीर के अनुपात या आकार में परिवर्तन 'अतुल्यकालिक विकास' या 'विभाजन विकास' के कारण होता है जिसका मतलब है शरीर के विभिन्न भागों का तेजी से और धीमी गति से विकास का अपना समय है और प्रत्येक का अपनी परिपक्वता तक पहुँचने का अपना समय है। प्रारंभिक अवस्था के दौरान शरीर के विभिन्न भागों में परिवर्तन नीचे दिए गए हैं:

- **माँसपेशी**

जीवन के पहले वर्ष के दौरान मांसपेशियां भी विकसित हो जाती हैं। शिशु के जन्म के समय हड्डियां उपस्थित नहीं होती हैं। इसके विपरीत सभी मांसपेशियां ऊतकों के साथ जन्म के समय से ही उपस्थित होती हैं, लेकिन शरीर अविकसित होता है। उम्र बढ़ने के साथ ही

मांसपेशी ऊतक की लंबाई, चौड़ाई और मोटाई भी बढ़ती जाती है। हड्डियों और लम्बाई की तरह मांसपेशी ऊतक भी किशोरावस्था तक काफी तेजी से तथा लगातार बढ़ते जाते हैं। यह स्पष्ट है कि औसतन पुरुष महिलाओं से अधिक मजबूत होते हैं जो इस कारण होता है क्योंकि पुरुषों में कुल शरीर द्रव्यमान का 40 प्रतिशत पेशियाँ होती हैं जिसका प्रतिशत महिलाओं में केवल 24 है।

शरीर के वजन में मांसपेशियों का भी योगदान है। जन्म के समय वे शरीर के वजन का पांचवा या एक चौथाई भाग होती हैं। मांसपेशियां शरीर के महत्वपूर्ण अंगों जैसे हृदय, पाचन तंत्र और ग्रंथियों को विनियमित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं। वे शक्ति और गतिविधि के समन्वय के लिए भी जिम्मेदार हैं। 5 वर्ष की आयु में मांसपेशियों की वृद्धि शरीर के वजन वृद्धि के अनुपात में हो जाती है। 5 से 6 साल के मध्य मांसपेशियों की वृद्धि में एक तेजी से उछाल आता है जो बाद में धीमा हो जाता है और फिर से यौवनवस्था में फिर बढ़ने लगता है।

जन्म के बाद कोई नया मांसपेशी ऊतक नहीं बनता है। नवजात शिशु में मांसपेशियों का सबसे बड़ा विकास आंख और श्वसन तंत्र में होता है। हाथों की मांसपेशियाँ पैर की तुलना में बेहतर विकसित होती हैं। शुरुआत के वर्षों में बड़ी मांसपेशियां छोटी मांसपेशियों की तुलना में अधिक पर्याप्त रूप से कार्य करती हैं।

मांसपेशियों में परिवर्तन का अध्ययन करने के बाद हड्डियों के विकास का अध्ययन करना महत्वपूर्ण है। हम अगले भाग में हड्डियों में परिवर्तन पर चर्चा करेंगे।

- **हड्डियां**

जन्म के बाद हड्डियां निम्न तीन प्रकार से विकास के साथ परिवर्तित होती हैं:

हड्डियों की संख्या

शरीर को देखने से हाथ, कलाई, टखने और पैर की हड्डियों की संख्या में सबसे ज्यादा वृद्धि का पता चलता है। एक वर्ष के शिशु में कलाई और हाथ में केवल केवल 3 हड्डियां होती हैं जिसकी तुलना में वयस्कों में 28 अलग हड्डियां होती हैं। शेष 25 हड्डियां बाद में विकसित हो जाती हैं जिनका किशोरावस्था तक पूरा विकास हो जाता है।

हड्डियों का लंबा एवं बड़ा हो जाना

क्योंकि हड्डी की संरचना में परिवर्तन और संख्या में वृद्धि होती है तो हड्डियों का आकार भी बदल जाता है। यह पैर और हाथ की लंबी हड्डियों में विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है जो बचपनावस्था में तेजी से बढ़ती हैं। इन हड्डियों का विकास तभी रुकता है जब हड्डियों के सिरे पूरी तरह से कठोर हो जाते हैं। जन्म के समय बच्चे में खोपड़ी की कई हड्डियां होती हैं, साथ में बीच में एक नरम क्षेत्र फोंटानेल्स भी होता है। अधिकांश शिशुओं में फोंटानेल्स 2 वर्ष

की उम्र तक अस्थि द्वारा भरा जाता है जिससे कई हड्डियों के बजाय वहाँ केवल एकल खोपड़ी की हड्डी हो जाए।

हड्डियों का मजबूत हो जाना

शिशुओं में कुछ हड्डियों अभी भी उपास्थि के रूप में होती हैं और सभी हड्डियाँ नरम होती हैं जिनमें उच्च मात्रा में जल उपस्थित होता है। हड्डियों का सख्त होना अस्थिकरण या ओसिफिकेशन कहलाता है। यह प्रक्रिया जन्म से किशोरावस्था के मध्य तेजी से होती है।

अस्थिकरण की दर शरीर के विभिन्न भागों के लिए भिन्न होती है। सिर की हड्डियों की तरह हाथ और कलाई की हड्डियाँ भी काफी जल्दी कठोर या मजबूत हो जाती हैं। इसके विपरीत पैर की लंबी हड्डियाँ किशोरावस्था तक मजबूत होती हैं। अस्थिकरण की दरों में लिंग भेद का प्रभाव पड़ता है, वहाँ भी उम्र के हर स्तर पर लड़कियाँ लड़कों से आगे होती हैं।

हड्डियों का विकास जीवन के पहले वर्ष के दौरान तेजी से फिर किशोरावस्था के समय तक धीमी गति से तथा उसके बाद और अधिक तेजी से होता है। प्रसव के बाद जीवन के प्रारंभिक महीनों में हड्डियों के ऊतक मुलायम और स्पंजी होते हैं। वहाँ कुछ स्थानों पर कार्टिलेज या झिल्ली होती है जहां बाद में हड्डी बन जाती है।

- **मस्तिष्क**

इस भाग में हम बच्चे के जन्म के बाद मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करेंगे। जन्म के समय शिशु का मस्तिष्क अपने वयस्क वजन का केवल 25% होता है, और यह वजन 1 साल से कम समय में 70% तक पहुँच जाता है तथा 3 साल की उम्र लगभग 90% तक पहुँच जाता है। 6 साल की उम्र तक यह लगभग वयस्क मस्तिष्क के आकार का हो जाता है लेकिन मस्तिष्क की वृद्धि और विशिष्ट भागों के कार्यात्मक विकास वयस्क होने तक होते रहते हैं। जन्म के बाद आकार और बनावट में परिवर्तन के साथ ही मांसपेशियों और हड्डियों में होने वाले परिवर्तन काफी आसानी से देखे जा सकते हैं लेकिन मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र में परिवर्तन को महसूस करना इतना आसान नहीं है। जन्म के समय मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र पूरी तरह से विकसित नही होते हैं एवं पूर्ण क्रियाशील भी नहीं होते हैं जिस प्रकार शिशु के अन्य अंग जैसे हृदय, फेफड़े या संचार प्रणाली।

मस्तिष्क के प्रमुख भाग

मानव मस्तिष्क 3 मुख्य वर्गों; सेरीब्रल कोर्टेक्स, मध्य मस्तिष्क और मस्तिष्क स्टेम का बना होता है। जन्म के समय मध्य मस्तिष्क और मस्तिष्क स्टेम, कोर्टेक्स से ज्यादा अच्छी तरह विकसित होते हैं, कोर्टेक्स जीवन के शुरुआत के कुछ वर्षों में विकसित हो जाता है।

जन्म के समय रीढ़ की हड्डी और मस्तिष्क स्टेम लगभग विकसित हो चुके होते हैं। सेरिबैलम जीवन के पहले वर्ष के दौरान सबसे तेजी से बढ़ता है। सेरिबैलम मस्तिष्क का सबसे बड़ा हिस्सा है जो बाएँ एवं दाएँ गोलार्द्धों में विभाजित होता है जो ऊतक के एक मजबूत बैंड, कोर्पस कैलोसम द्वारा जुड़े हुए होते हैं जो उन्हें जानकारी साझा करने और आदेशों का समन्वय करने के लिए अनुमति देता है। कोर्पस कैलोसम बचपन के दौरान नाटकीय ढंग से बढ़ता है तथा 10 साल की उम्र तक अपने वयस्क आकार में पहुँच जाता है।

मस्तिष्क में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों का अध्ययन निम्न के अंतर्गत किया जा सकता है:

1. **कोर्टिकल विकास**
2. **माइलीनेशन**

1. कोर्टिकल विकास

जन्म के समय मध्यमस्तिष्क या मिडब्रेन में निहित मस्तिष्क के भाग पूरी तरह से विकसित हो चुके होते हैं। मध्यमस्तिष्क खोपड़ी के निचले भाग में स्थित होता है जो आधारभूत गतिविधियों जैसे ध्यान लगाना, रहन-सहन, सोना,जागना और निष्कासन आदि को नियंत्रित करता है। ये गतिविधियाँ नवजात बच्चे में बहुत अच्छी तरह से देखी जा सकती हैं।

जन्म के समय मस्तिष्क का सबसे कम विकसित भाग कोर्टेक्स है जो मध्यमस्तिष्क के आसपास लिपटा हुआ होता है, यह बुद्धिमत्ता से सम्बन्धित है जो शारीरिक गतिविधियों और सभी जटिल सोच और भाषा से संबद्ध है। कोर्टेक्स जन्म के समय मौजूद होता है, लेकिन कोशिकाएं अच्छी तरह से नहीं जुड़ी हुई होती हैं। पहले दो वर्षों के दौरान कुछ नयी कोर्टीकल कोशिकाएं जुड़ जाती हैं तथा मौजूदा कोशिकाओं से बड़ी हो जाती हैं। वे और अधिक सम्बन्ध सूत्रों का निर्माण करती हैं। यह प्रक्रिया छह महीने में लगभग 50% और 2 वर्ष की उम्र तक लगभग 75 प्रतिशत पूर्ण हो जाती है। कोर्टेक्स में 50% परिवर्तन जन्म के बाद छह महीने के भीतर ही हो जाते हैं लेकिन अभी भी पूरा कोर्टेक्स समान रूप से विकसित नही होता। कोर्टेक्स के कुछ हिस्से जो देखने और सुनने में शामिल होते हैं जन्म से पहले ही अच्छी प्रकार से विकसित होते हैं तथा वो क्षेत्र जो सिर और धड़ की गति को नियंत्रित करते हैं काफी जल्दी विकसित हो जाते हैं। कोर्टिकल विकास का यह क्रम बच्चे द्वारा की जाने वाली गतिविधियों के आधार पर भिन्न-भिन्न होता है।

2. माइलीनेशन

तंत्रिका तंत्र के विकास में एक दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया प्रत्येक नस के आवरण का विकास है जो उन्हें एक दूसरे से अलग-अलग करता है जिससे नसों को संदेश आसानी से पारित किए जा सकें। इस आवरण को म्यान तथा म्यान को विकसित करने की प्रक्रिया को माइलीनेशन

कहा जाता है। उदाहरण के लिए जन्म के समय रीढ़ की हड्डी पूरी तरह से मायालीनाइज्ड नहीं होती है और इस आवरण के बिना बच्चे की शरीर के नीचे के भाग के साथ संवाद करने की क्षमता बहुत कम होती है। शिशु के धड़ और पैरों में संवेदना होती है लेकिन क्योंकि नसों में संदेश आसानी से प्रेषित नहीं किए जा सकते हैं अत:बच्चे का अपनी मांसपेशियों पर बहुत कम नियंत्रण होता है। लगभग 2 वर्ष की उम्र तक मायालीनाइजेशन की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

आरंभिक अनैच्छिक क्रियाएँ

निचले मस्तिष्क केन्द्र भी नवजात शिशु की अनैच्छिक प्रक्रियाओं पर नियंत्रण के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये दूसरी अनैच्छिक क्रियाओं जैसे श्वास और हृदय की दर का भी नियंत्रण करते हैं। ये मस्तिष्क के वह भाग हैं जो जन्म के समय सबसे अधिक माइलीनेटेड होते हैं। ये अनैच्छिक क्रियाएँ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र और मांसपेशियों के प्रारंभिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। एक अनुमान के अनुसार मानव शिशुओं में सत्ताईस प्रमुख अनैच्छिक क्रियाएं होती हैं जिनमें से कई जन्म के समय उपस्थित होती हैं या जन्म के तुरंत बाद आ जाती हैं। अधिकांश क्रियाएँ छह महीने से एक वर्ष के दौरान गायब हो जाती हैं।

इन अनैच्छिक क्रियाओं के बारे में हम 'प्रारंभिक अवस्था में अनैच्छिक क्रियाएँ' शीर्षक में विस्तार से अध्ययन करेंगे। हमने नवजात शिशु की भौतिक संरचना एवं संवेदी क्षमताओं के साथ-साथ शिशु की लम्बाई, वजन, हड्डियों, मांसपेशियों में परिवर्तन के ऊपर चर्चा की। अब हम पुनरावृत्ति करेंगे कि हमने अब तक क्या सीखा है।

अभ्यास प्रश्न 1

---

1. शरीर के आकार में विभिन्नता को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

....

....

2. रिक्त स्थानों की पूर्ती कीजिए।
   a. नवजात शिशु .... इंच लंबे तथा ....किग्रा भार के होते हैं।
   b. .... जन्म के समय कम विकसित संवेग है।
   c. .... महीने के आसपास दाँत आने शुरु हो जाते हैं।
   d. नसों के चारों ओर आवरण बनने की प्रक्रिया को .... कहते हैं।

अब हम क्रियात्मक विकास के अगले विषय क्षेत्र के बारे में पढ़ेंगे जिसमें हम क्रियात्मक एवं भौतिक विकास के परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध के बारे में चर्चा करेंगे।

2.4 क्रियात्मक एवं भौतिक विकास में परस्पर समन्वय एवं सम्बन्ध

पिछले भाग में हमने मुख्य रूप से बच्चे के जन्म से शैशवावस्था के मध्य शारीरिक विकास पर चर्चा की है। अब यह काफी स्पष्ट है कि बच्चे का शारीरिक विकास निश्चित रूप से क्रियात्मक विकास के साथ कुछ संबंध और समन्वय रखता है। इस इकाई में हम क्रियात्मक विकास के महत्व, शारीरिक और क्रियात्मक विकास के बीच समन्वय एवं संबंधों का अध्ययन करेंगे। यह सत्य है कि समुचित क्रियात्मक विकास के लिए शारीरिक विकास भी हो जाता है। क्रियात्मक क्षमताओं में प्रवीणता भौतिक विकास और शारीरिक संरचना पर निर्भर करती है। एक अवधारणा के अनुसार क्रियात्मक विकास की प्रवृत्ति होती है कि ये नवजात की प्रबल अनुक्रिया और सामान्य गतिविधियों से बड़े बच्चे तथा एक वयस्क में विभिन्नता, विशिष्टता तथा एकीकरण की ओर होता है। बच्चे क्या कर सकते हैं या महसूस कर सकते हैं ये उनके विकास और केंद्रीय तंत्रिका प्रणाली के कुशल संचालन पर निर्भर करता है।

1. शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के सिद्दांत

शारीरिक विकास एवं क्रियात्मक विकास दोनों निम्न सिद्धांत का पालन करते हैं:

1. मस्ताकाधोमुखी विकास क्रम
2. निकट दूर विकास क्रम

मस्त्काधोमुखी विकास क्रम में शारीरिक क्रियाएं सिर से प्रारम्भ होकर पैर की ओर बढ़ती हैं। सर्वप्रथम बालक के सिर, मुँह और गर्दन की क्रियाएं विकसित होती हैं, फिर धड़ की और अंत में पैरों की। जन्म के समय शिशु का सिर पैरों के अनुपात में बड़ा होता है लेकिन धीरे-धीरे शरीर के निचले हिस्से तथा पैरों का विकास हो जाता है और सिर छोटा लगाने लगता है। क्रियात्मक विकास भी इसी सिद्धांत का पालन करता है जिसमें शिशु निचले हिस्से से पहले ऊपर के हिस्से पर नियंत्रण रखना सीखता है। वो अपने धड़ पर नियंत्रण से पहले वस्तुओं को देखना आरम्भ कर देते हैं तथा पैरों से चलना सीखने से पहले हाथों से कई कार्य करना शुरु कर देते हैं। जैसे जैसे शिशु की नई मांसपेशियां परिपक्व होती जाती हैं वैसे वैसे पहले धड़ में, फिर पैरों में और अधिक एवं नियंत्रित गति होती जाती है।

निकट दूर विकास क्रम सिद्धांत के अनुसार विकास पहले शरीर के केन्द्रीय भागों में होता है फिर केंद्र से दूर के भागों में। अर्थात वे अंग जो सुषुम्ना नाड़ी एवं मस्तिष्क के जितना अधिक पास होते हैं उनमें विकास उतना ही पहले आता है। जैसे बालक की आँख, मुख, गर्दन, धड़ आदि अंग मस्तिष्क के पास होते हैं तथा हाथ एवं पैर मस्तिष्क से दूर। इसलिए बालक पहले अपने कंधों पर नियंत्रण करना सीखता है बाद में वह कुहनियों और कलाई पर नियंत्रण करना सीखता है और अंगुलियों पर सबसे अंत में। कारण स्पष्ट है कि बालक के मुख एवं कंधे उसके मस्तिष्क के बहुत ही पास होते हैं, जबकि कुहनी, कलाइयाँ एवं अंगुलियाँ अपेक्षाकृत दूर होती हैं। इसी प्रकार पैर मस्तिष्क से काफी दूर होते हैं। इस कारण पैरों का विकास सबसे अंत में होता है।

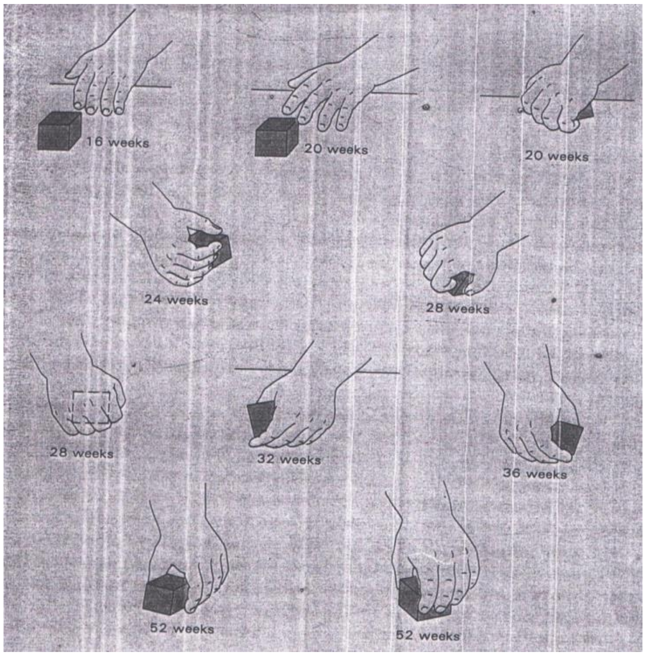
16 weeks
20 weeks
20 weeks
24 weeks
28 weeks
28 weeks
32 weeks
36 weeks
52 weeks
52 weeks

चित्र संख्या 2.1: 16वें हफ्ते से 1 वर्ष के मध्य शिशु की वस्तुओं को पकड़ने की क्षमता

2. क्रियात्मक विकास शारीरिक परिपक्वता एवं शिक्षण पर निर्भर करता है।

बालक के क्रियात्मक विकास पर परिपक्वता तथा शिक्षण दोनों का प्रभाव पड़ता है और इन्हीं के द्वारा वो क्रियात्मक विकास को प्राप्त करता है। परिपक्वता वह विकास है जो जीन्स में परिवर्तन होने पर होता है ना कि सीखने या अनुभवों द्वारा। यह बालक के एक निश्चित आयु एवं आकार में पहुँचने पर होता है और वातावरण एवं बाह्य प्रभावों से स्वतन्त्र होता है। उदाहरण के लिए गोल घूमना एवं चलना परिपक्वता के कार्य हैं।

मस्तिष्क के क्रियाशील क्षेत्रों का विकास और शरीर पर नियंत्रण का विकास दोनों साथ-साथ होते हैं। मस्तिष्क के दो भाग सेरीबेलम एवं सेरीब्रम शुरुआत के वर्षों में ही विकसित एवं परिपक्व हो जाते हैं इसी तरह नियंत्रित कुशल गति भी शुरुआत के वर्षों में ही विकसित हो जाते हैं।

3. बच्चा तभी कार्य कुशलता सीखता है जब वो परिपक्व हो जाता है।

शिशु को उसके तांत्रिक तंत्र एव माँसपेशियों के विकसित होने से पूर्व कार्य कुशलता सिखाने की कोशिश करना एक बेकार प्रयास है। अत: शिशु तब तक नहीं सीख सकता जब तक कि वह पूर्ण रूप से परिपक्वता प्राप्त न कर ले। यदि वह फिर भी सीखता है तो कुछ क्षणिक फायदे दिखते हैं किन्तु वह लंबे समय तक नहीं रहते।

4. हाथों तथा आँख में समन्वय।

हाथों तथा आँख में समन्वय को दृश्य गतिक समन्वय भी कहा जाता है क्योंकि इसमें दृश्य गतिक दोनों ही कौशल क्षमताएं आती हैं। इसमें शिशु अपनी गतिविधियों का मार्गदर्शन खुद देखकर करता है। उदाहरणार्थ एक घेरा बनाना, चम्मच को भोजन के नीचे ले जाना या फिर किसी दिखायी दे रही वस्तु के पास जाना, ये सभी दृश्य गतिक समन्वय के प्रारम्भिक रूप हैं।

साधारणतया शिशु 4 माह की उम्र में वस्तुओं के पास पहुँचने लगता है। इस समय वो वस्तुओं को पकड़ने की कोशिश भी करता है किन्तु ठीक से नहीं पकड़ पाता है। 5-6 महीने के मध्य शिशु दोनों हाथ वस्तु के पास लाकर उसे पकड़ने की कोशिश करता है। इस समय शिशु अपने दोनों हाथों को इधर उधर हिलते हुए देखता है और बहुत खुश होता है। अपने हाथों को हिलाकर तथा उन्हें हिलाता हुआ देखकर उसके हावभाव से दृश्य प्रतिक्रिया प्राप्त करते हैं इससे उनकी मांसपेशियां निर्देशित होती हैं।

5. स्थूल क्रियात्मक कौशल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास।

मस्ताकाधोमुखी विकास क्रम तथा निकट दूर विकास क्रम के अतिरिक्त विकास को स्थूल क्रियात्मक कौशल, अर्थात वो कौशल जिनमें बड़ी मांसपेशियां कार्य करती हैं जैसे हाथ पैर हिलाना आदि तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल जिनमें बारीक या सूक्ष्म गतिविधि होती है जैसे किसी वस्तु को हाथों से पकड़ना आदि, के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। इस प्रकार के कौशलों का विकास शरीर के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित करने में मदद करता है जो स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल के मध्य समन्वय को प्रभावित करता है।

जन्म के समय शिशु की छाती एवं भुजाओं में कोई समन्वय नहीं होता। लगभग 2 माह के शिशु में यह क्षमता आ जाती है कि वह अपना चेहरा नीचे की ओर झुकाकर अपनी छाती को ऊंचा उठा लेता है तथा 4 माह की उम्र से शिशु वस्तुओं के साथ संपर्क बनाये बिना दृष्टि की

सीधी रेखा के भीतर रखी वस्तु तक पहुँचने की कोशिश करता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इस स्तर पर दोनों हाथ एक साथ काम नहीं करते और पकड़ने तथा देखने के मध्य अभी समन्वय स्थापित नहीं हुआ होता है। 5 माह की उम्र में शिशु सहारा लेकर बैठ सकता है तथा वस्तु को हाथ से पकड़ सकता है। 6 माह की उम्र में वह लेट कर लुढ़कने लगता है तथा 11 माह की उम्र से चलना भी शुरु कर सकता है।

6. हाथ और मुँह में समन्वय।

इस समन्वय में हाथ को मुँह में डालना सीखना सबसे जल्दी आने वाला समन्वय है। हाथ एवं मुँह के मध्य समन्वय स्थापित होने का उद्देश्य स्तनपान के बजाय हाथों से भोजन ग्रहण करना है।

इस उद्देश्य के अलावा हाथ मुँह समन्वय का एक और रूप है और वह है मुँह का खोजी अंग के रूप में उपयोग। 6 से 9 माह का शिशु किसी भी वस्तु के बारे में पता लगाने के लिए उसे तुरंत मुँह में डाल लेते हैं। यह वस्तु के बारे में अपनी जानकारी बढ़ाने का शिशु का अपना एक तरीका होता है।

अधिकतर नवजात शिशुओं में हाथ मुँह समन्वय 4 माह के आसपास शुरु हो जाता है, जोकि 6 माह तक परिपक्व हो जाता है तथा 12 माह तक शिशु इसमे निपुण हो जाता है। लेकिन भोजन ग्रहण हेतु हाथ मुँह के मध्य उद्देश्यपूर्ण समन्वय 1 वर्ष से पूर्व विकसित नहीं होता है तथा आने वाले कई वर्षों तक इसका विकास होता रहता है। एक वर्ष के बाद अंगूठे तथा अंगुलियों के मध्य समन्वय से शिशु वस्तुओं को इधर उधर करने मे कुशल हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

---

1. **निम्न के बारे में संक्षेप में बताइये।**

   a. मस्त्काधोमुखी विकास क्रम सिद्धांत

....

....

   b. निकट दूर विकास क्रम सिद्धांत

....

....

   c. हाथ आँख में समन्वय

…………………………………………………………………………………………………

…………………………………………………………………………………………………

d. स्थूल क्रियात्मक कौशल

…………………………………………………………………………………………………

…………………………………………………………………………………………………

e. सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल

…………………………………………………………………………………………………

…………………………………………………………………………………………………

ऊपर की चर्चा से स्पष्ट है कि नवजात अवस्था के दौरान शारीरिक वृद्धि एवं क्रियात्मक क्षमता में एक निश्चित अंत:सम्बन्ध एवं समन्वय होता है। जैसे जैसे उम्र बढ़ती है तथा अंगों में भौतिक परिपक्वता आती है, क्रियात्मक क्षमताएं स्वत: विकसित होने लगती हैं। यदि शारीरिक विकास उचित नहीं होता है या फिर देर से होता है तो विभिन्न क्रियात्मक क्षमताएं भी देर से विकसित होती हैं।

अब हम नवजात अवस्था के दौरान विभिन्न अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ेंगे।

2.5 क्रियात्मक विकास

इस भाग में हम नवजात अवस्था के दौरान होने वाली प्रमुख अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ेंगे। किन्तु अनुक्रियाओं के बारे में चर्चा करने से पूर्व हम क्रियात्मक विकास के अर्थ तथा क्रियात्मक विकास का किसी व्यक्ति के जीवन में महत्व पर चर्चा करेंगे।

जैसे जैसे शिशु का शरीर परिपक्व होता है वो कई जटिल तरीकों से कार्य करने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। इसके साथ-साथ शारीरिक वृद्धि, क्रियात्मक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक परिवर्तन भी होते हैं जो शिशु को इस संसार के बेबुनियाद तथा असहाय जीवन से सुचारू रूप से एकीकृत तथा एक स्वतंत्र सदस्य की ओर अग्रसर करते हैं। इसके अंतर्गत स्वयं के शरीर पर नियंत्रण, स्वयं के बारे में तथा इस संसार के समस्त जीवों के बारे में सीखना सम्मिलित है।

हम अनुक्रियाओं के बारे में बात करने से पूर्व क्रियात्मक विकास के महत्त्व के बारे में पढ़ेंगे।

क्रियात्मक विकास का महत्त्व

क्रियात्मक विकास का मतलब है शरीर एवं उसके भागों की गति के ऊपर नियंत्रण का बढ़ जाना। नवजात शिशु पूर्ण रूप से असहाय संरचना है जिसमें निम्न कोटि का समन्वय होता है।

शिशु का प्रथम वर्ष अपने शरीर के ऊपर नियंत्रण स्थापित करने में निकल जाता है। इनमें स्थूल क्रियाएं जैसे चलना, खड़े होना, कूदना, दौड़ना आदि तथा सूक्ष्म समन्वय जैसे पकड़ना, फेंकना, गेंद पकड़ना, लिखना आदि आते हैं।

एक बच्चे का अपने शरीर पर नियंत्रण निम्न कारणों से होना आवश्यक है:

कारक	**क्रियात्मक विकास का सहयोग**
अच्छा स्वास्थ्य	अच्छा स्वास्थ्य जोकि बच्चे के विकास के लिए अति महत्वपूर्ण है आंशिक रूप से व्यायाम पर निर्भर है। यदि क्रियात्मक विकास सही न हुआ हो तो बच्चा इस प्रकार की किसी भी शारीरिक गतिविधि में भाग नहीं लेना चाहता।
भावनात्मक निष्कासन	व्यायाम के द्वारा बच्चा अपने अंदर दबी हुई ऊर्जा से छुटकारा पा जाता है जिससे उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से आराम मिलता है।
स्वतंत्रता	बच्चा जितना अधिक अपना काम स्वयं करेगा वो उतना ही स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर बनेगा।
स्व मनोरंजन	बच्चे का क्रियात्मक विकास उसे कुछ ऐसी गतिविधियों में व्यस्त करता है जिससे उसका खुद का मनोरंजन होता है चाहे फिर वह अकेला ही क्यों न हो।
सामाजिकता	अच्छा विकास बच्चे को समाज द्वारा अपनाने एवं सामाजिक कौशल सीखने का अवसर देता है।
स्व:धारणा	क्रियाओं में नियंत्रण बच्चे में शारीरिक सुरक्षा की भावना तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा की ओर अग्रसर करता है। मनोवैज्ञानिक सुरक्षा आत्मविश्वास में वृद्धि करती है जो बच्चे के व्यवहार के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करती है।

नवजात शिशु में क्रियात्मक विकास का महत्व समझने के पश्चात आइये अब हम नवजात शिशु में होने वाली अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ें।

शुरुआती मानव अनुक्रियाएं

नवजात शिशु एक खाली मस्तिष्क का जीव नहीं होता है। अन्य बातों के अलावा शिशु में कुछ आधारभूत अनुक्रियाएँ भी होती हैं जो आनुवंशिकता द्वारा ले जाए जाने वाली अस्तित्व

क्रियाए हैं। ये अनुक्रियाएं नवजात की गतिविधियों को संचालित करती हैं जो स्वचालित होती हैं और नवजात के नियंत्रण से बाहर होती हैं। नवजात शिशु बहुत सारी अनुक्रियाएं लेकर पैदा होता है। ये स्वचालित भौतिक अनुक्रियाएं हैं जो किसी विशिष्ट उद्दीपक द्वारा अनायास ही सक्रिय हो जाती हैं। उद्दीपक के प्रति ऐसी स्वचालित जन्मजात अनुक्रिया को अनुक्रिया व्यवहार या सहज प्रक्रिया व्यवहार या रिफलेक्स बिहेवियर कहते हैं। अनुक्रिया व्यवहार निचले मस्तिष्क केन्द्रों द्वारा नियंत्रित किए जाते हैं। ये अन्य अनैच्छिक प्रक्रियाओं जैसे सांस लेना तथा हृदय की धड़कन आदि को भी नियंत्रित करते हैं। अनुक्रिया व्यवहार केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र तथा मांसपेशियों के शुरुआती विकास को उद्दीपित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मानव शिशु में अनुमानित 27 बड़ी अनुक्रियाएं होती हैं जो जन्म के समय या फिर उसके तुरंत बाद उपस्थित होती हैं। नीचे तालिका में कुछ शुरुआती मानव अनुक्रियाएं दी गयी हैं।

तालिका 2.1: शुरुआती मानव अनुक्रियाएं

अनुक्रिया	**उद्दीपन**	**शिशु का व्यवहार**	**उपस्थिति की विशिष्ट उम्र**	**लोप होने की विशिष्ट उम्र**
मोरो	शिशु शोरगुल सुनता है	पैर, हाथ एवं अंगुलियों को फैलाना, पीठ ऐंठाना, सिर पीछे की ओर पलटना	गर्भावस्था के 7वें माह में	3 माह
डारविनियन	शिशु के हाथ की हथेली पर हाथ फेरना	कसकर मुट्ठी बाँध लेता है	गर्भावस्था के 7वें माह में	4 माह
टोनिक निक	शिशु सीधा लेटा हुआ हो	सिर को एक तरफ मोड़ लेना, अपने हाथ पैरों को अपनी पसंदीदा दिशा में फैलाना	गर्भावस्था के 7वें माह में	5 माह
बेब्किन	शिशु का दोनों हथेलियों को एक साथ पकड़ना	मुख खुला, आँखें बंद, गर्दन इधर उधर घूमती हुई, सिर आगे को झुका हुआ	जन्म से	3 माह
बाबिंसकी	शिशु के पैर के टेल को	पैर की अंगुलियों को	जन्म से	4 माह

	छूना	बाहर को फैला देते हैं, पैर मोड़ लेते हैं		
रूटिंग	शिशु के गाल पर अंगुलियों का या निप्पल का छूना	सिर घुमाना, मुख खुला हुआ, चूसने की गतिविधि शुरु	जन्म से	9 माह
चलना	शिशु को बांह से पकड़कर समतल पर पैर छुआना	पैर चलाता है जो एक अच्छे समन्वय वाली चाल को दिखाता है।	1 माह	4 माह
तैरना	शिशु को पानी में सिर नीचे की ओर करके रखना	तैरने में समन्वय दिखायी देता है।	1 माह	4 माह

Rooting reflex

Darwinian reflex

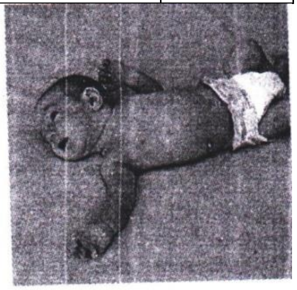
Tonic neck reflex

Moro reflex

Babinski reflex

Walking reflex

प्राथमिक अनुक्रियाएँ: जैसे चूसना, निप्पल को पकड़ना तथा मोरो अनुक्रिया जीवित और सुरक्षित रहने के लिए आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। पकड़ने की अनुक्रिया मानव विकास की विरासत का एक भाग है।

आसान अनुक्रियाएं: जैसे स्थान और संतुलन में बदलाव के प्रति प्रतिक्रिया 2 से 4 माह के मध्य विकसित हो जाती है जब उच्च मस्तिष्क केन्द्र क्रियाशील हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि नवजात को नीचे की ओर झुकाया जाए तो वह खुद को गिराने से बचाने के लिए अपने हाथ फैला लेता है।

निम्न क्रियात्मक अनुक्रियाएं: जैसे चलने और तैरने की अनुक्रिया। ये अनुक्रियाएं स्वैच्छिक गतिविधियों से समानता रखती हैं जो तब तक प्रदर्शित नहीं होती जिस माह तक अनुक्रियाएं गायब न हो जायें।

नवजात शिशु में उपस्थित अधिकतर अनुक्रियाएं जैसे खाँसना, पलक झपकाना, उबासी लेना, छींक लेना तथा कंपकपाना आदि जीवन भर बने रहते हैं। इनमें से अधिकतर अनुक्रियाएं वयस्कों में भी उपस्थित होती हैं उदाहरण के लिए आँखों से हवा टकराने पर आँख झपका लेना या फिर तेज प्रकाश पड़ने पर आँख की पुतली को संकुचित कर लेना। अधिकतर शुरुआती अनुक्रियाएं 6 माह या 1 वर्ष के मध्य लुप्त हो जाती हैं क्योंकि नवजात के मस्तिष्क के कार्य परिपक्व होने लगते हैं और कई क्रियाओं पर स्वैच्छिक नियंत्रण आरम्भ हो जाता है। अनावश्यक अनुक्रियाओं का अपने समय से लुप्त हो जाना इस बात का प्रतीक है कि कार्टेक्स में क्रियात्मक राह आंशिक रूप से मायालीनेटेड हो गया है जो उसे स्वैच्छिक गतिविधियों की ओर परिवर्तित करता है। अत: कुछ निश्चित अनुक्रियाओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति से शिशु में मानसिक विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। नवजात अवस्था में होने वाली अनुक्रियाओं के बारे में पढ़ने के बाद अब हम यह जानेंगे कि नवजात अवस्था के अंत तक प्राप्त होने वाले बड़े मील के पत्थर क्या हैं? जैसे कि हम पहले ही यह पढ़ चुके हैं कि नवजात अवस्था के दौरान कौन-कौन से महत्वपूर्ण शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास हुए हैं। अब हम नवजात अवस्था के अंत तक शिशु द्वारा प्राप्त मील के पत्थर या निर्णायक विकास पर चर्चा करेंगे। यह हमें इस बात को स्पष्ट करेगा कि 12 माह में शिशु का क्रियात्मक विकास की दृष्टि से कितना विकास हुआ है जिसमें शिशु का अपने शरीर पर नियंत्रण, शारीरिक गतिविधियां तथा अनुक्रियाएं आदि आते हैं।

नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त प्रमुख उपलब्धियाँ

क्रियात्मक विकास में उपलब्धियों की एक श्रंखला है जो उन उपलब्धियों को संदर्भित करती हैं जो क्रमानुसार विकसित हुई हैं। प्रत्येक नई क्षमता शिशु को अगली क्षमता के लिए तैयार

करती है। बच्चा पहले साधारण कौशल सीखता है, फिर उसे जटिल क्रियाओं से जोड़ देता है जो उसे अधिकाधिक गतिविधियों के लिए प्रेरित करती हैं जिससे उसका वातावरण पर और अधिक नियंत्रण हो जाता है। उदाहरण के लिए अपनी पकड़ को विकसित करने के लिए नवजात सर्वप्रथम वस्तुओं को अपने पूरे हाथ से उठाने का प्रयास करता है और अँगुलियों को हथेली के उलटी ओर बंद करने का प्रयास करता है। बाद में बच्चा प्रथम पकड़ में महारथ हासिल कर लेता है जिसमे बच्चा अपने अंगूठे और तर्जनी अंगुली की सहायता से छोटी-छोटी वस्तुओं को उठा लेता है। दूसरा उदाहरण है चलना सीखना, नवजात पहले प्रत्येक अलग-अलग अंग जैसे बांह, पैर तथा पंजे पर नियंत्रण सीखता है तत्पश्चात सारे अंगों की गतिविधियों को एकसाथ रखकर पहला कदम रखता है।

डेनवर विकास जांच परीक्षण नामक परीक्षण का उपयोग 1 माह से 6 वर्ष के मध्य होने वाले विकास की सारणी बनाने में होता है जिससे ये पता लगाया जा सके कि कौन से बच्चे का विकास उचित एवं पूर्णरूप से नहीं हो रहा है। इस जांच द्वारा स्थूल क्रियात्मक कौशल जैसे पलटना और गेंद पकड़ना आदि तथा सूक्ष्म कौशल जैसे खिलौना पकड़ना और घेरा बनाना आदि मापे जाते हैं। तालिका 2.2 में डेनवर प्रशिक्षण नियमावली के अनुसार क्रियात्मक विकास की प्रमुख उपलब्धियाँ दिखायी गयी हैं।

तालिका 2.2: नवजात अवस्था के दौरान क्रियात्मक विकास की प्रमुख उपलब्धियाँ

कौशल	**50 प्रतिशत**	**90 प्रतिशत**
पलटना	3.2 माह	5.4 माह
खिलौने पकड़ना	3.3 माह	3.1 माह
बिना सहारे बैठना	5.9 माह	6.8 माह
सहारे से खड़े होना	7.2 माह	8.5 माह
अंगूठे तथा अंगुली से पकड़ना	8.2 माह	10.2 माह
बिना सहारे खड़ा होना	11.5 माह	13.7 माह
चलना	12.3 माह	14.9 माह

इस तालिका से हमें वह अनुमानित आयु पता लगती है जब 50 से 90 प्रतिशत बच्चे प्रत्येक कौशल का प्रदर्शन कर सकते हैं।

अब हम नवजात अवस्था की मुख्य उपलब्धियों एवं मील के पत्थरों को पढ़ेंगे।

1. स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास

इन कौशलों के बारे में हम पूर्व में ही पढ़ चुके हैं, उन्हें ही दोहराने के लिए यहाँ हम इस बात पर जोर देंगे कि स्थूल एवं सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल का विकास क्रियात्मक विकास की महत्वपूर्ण

उपलब्धि है। स्थूल क्रियात्मक कौशल वो कौशल हैं जिनमें बड़ी मांसपेशियों की गतिविधियों का उपयोग होता है जैसे चलना, चढ़ना, बैठना, उठना आदि और सूक्ष्म क्रियात्मक कौशल में लिखना, वाद्ययंत्र बजाना तथा पकड़ना आदि आते हैं।

जन्म के समय नवजात की छाती और भुजाओं में अच्छा समन्वय नहीं होता। 3 से 4 माह की उम्र तक दृष्टि और पकड़ में कोई समन्वय विकसित नहीं हुआ होता है किन्तु शिशु उन वस्तुओं तक पहुँचने का प्रयास करता है जो नवजात की दृष्टि की लाइन में सीधे रखी हुई हों। वस्तु से संपर्क किए बिना नवजात किसी सहारे से बैठ जाता है और वस्तु को पकड़ लेता है। 6 माह की उम्र में नवजात को अगर लिटाया गया हो तो वो पलट सकता है। 11 माह की उम्र तक नवजात एक वयस्क की मदद से चल सकता है तथा 12 से 14 माह का नवजात खुद से सीधा खड़े होने का प्रयास करता है, फिर अकेले खड़ा हो जाता है और लगभग 15 माह की उम्र तक वह चलने लगता है।

यह देखा गया है कि ये क्रियात्मक विकास क्रमबद्ध विकास अनुक्रम का अनुकरण करते हैं। बच्चा शारीरिक अवस्था नियंत्रण में सिर से पैर की ओर के सामान्य आदर्श का पालन करता है। सबसे पहले बच्चा सिर और गर्दन में नियंत्रण करना सीखता है, फिर छाती, फिर पीठ और धड़ का निचला हिस्सा और अंत में पैर।

यद्यपि सभी बच्चे क्रियात्मक विकास के इसी नियम का पालन करते हैं किन्तु हर बच्चे का विकास का अपना तरीका तथा दर भिन्न होती है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक बच्चे में किसी भी क्रियात्मक विकास के दिखाई देने का समय भिन्न-भिन्न होता है। उदाहरणार्थ कुछ बच्चे बैठने, पेट के बल खिसकने तथा चलने आदि क्रियाओं में सुस्त होते हैं जबकि कुछ अन्य बच्चे इन सभी गतिविधियों में तेज हो सकते हैं।

2. अनुक्रिया एवं अनुक्रिया गतिविधि का विकास

इसके बारे में हम इसी इकाई में पूर्व में चर्चा कर चुके हैं कृपया इस संदर्भ में उसी का अनुसरण करें।

3. सिर पर नियंत्रण

जैसा कि हम पूर्व में पढ़ चुके हैं कि शरीर पर नियंत्रण सिर से धड़ तथा फिर पैर की ओर अग्रसर होता है।

जन्म के समय कई नवजात अपने सिर को एक दिशा से दूसरी दिशा को घुमा लेते हैं जब वह पीठ के बल लेटे हुए होते हैं तथा जब वे पेट या छाती के बल लेटे हुए होते हैं तो वो अपना सिर इतना उठा सकते हैं कि पलट सकें। 2 से 3 माह के मध्य शिशु का अपने सिर तथा गर्दन पर और अधिक नियंत्रण हो जाता है जिससे वो अपना सिर ऊँचा और ऊँचा उठा लेते हैं जिससे कभी-कभी नियंत्रण खोकर पीठ के बल लुड़क जाते हैं। 4 माह की उम्र से लगभग

सभी नवजात अपने हाथों को सीधा रख सकते हैं जब उन्हें पकड़ कर या फिर सहारा देकर बैठाया गया हो।

4. हाथों का नियंत्रण

अभी तक हमने मुख्य रूप से एक नवजात में बड़ी मांसपेशियों की क्रियाविधि के विकास के बारे में पढ़ा। इन बड़ी मांसपेशियों की क्रियाविधि के अलावा हाथों और अँगुलियों के प्रयोग में भी एक क्रमिक वृद्धि होती है।

जन्म के समय शिशु अपने हाथों को उद्देश्यहीन हिलाते रहते हैं जो धीरे धीरे वस्तु को हाथ से दबाने में बदल जाता है और फिर हाथ से पकड़ना और अंत में अंगूठे एवं अँगुलियों का प्रयोग। शिशु का जन्म पकड़ने की अनुक्रिया के साथ होता है। उदाहरण के लिए यदि शिशु की हथेली को छुआ जाए तो वह अपने हाथ को हल्के से बंद कर लेता है। लगभग साढ़े तीन माह में अधिकतर नवजात मध्यम आकार की वस्तुओं को पकड़ लेते हैं किन्तु छोटी वस्तुओं को पकड़ने में उन्हें परेशानी होती है। धीरे धीरे वो एक हाथ से वस्तु को उठाना आरम्भ कर देते हैं तथा उसे दूसरे हाथ में हस्तांतरित कर लेते हैं, और उसके बाद वो छोटी छोटी वस्तुओं को भी पकड़ लेते हैं किन्तु उठा नहीं पाते। कभी-कभी 7 से 11 माह के मध्य शिशु के दोनों हाथों के मध्य छोटी वस्तुओं को उठाने के लिए समन्वय स्थापित हो जाता है। इसके बाद हाथ पर नियंत्रण बहुत प्रभावी हो जाता है तथा 15 माह तक औसतन सभी बच्चे 2 क्यूब का टावर बनाने योग्य हो जाते हैं। नवजात अवस्था के दौरान विकसित होने वाले विभिन्न हस्त कौशल निम्न हैं:

- **अँगुलियों एवं अंगूठे का प्रयोग**

इसे नीचे चित्र में दिखाया गया है :

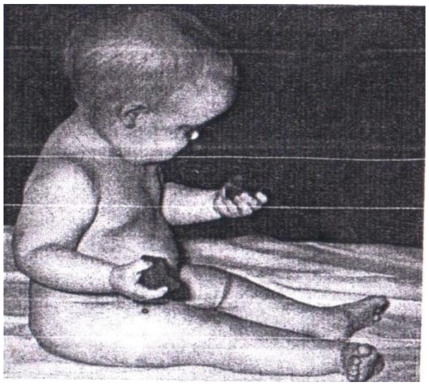

चित्र 2.2: वस्तु को पकड़ने में अंगूठे एवं अंगुली का प्रयोग

- **हाथ एव दृष्टि समन्वय**

इसका वर्णन इसी इकाई में शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय के विषय पर चर्चा के समय किया जा चुका है। कृपया उसका संदर्भ लें।

- **वस्तुओं को गिराना**

जीवन के शुरुआती महीनों में नवजात वस्तुओं को गिरा देता है क्योंकि किसी वस्तु को गिराना है या पकड़ कर रखना है इसके लिए उसने अभी तक अपनी मांसपेशियों पर स्वैच्छिक नियंत्रण करना नहीं सीखा होता है। बच्चा वस्तु को उसी वक्त गिरा देता है जैसे ही उसकी पेशीय ऊर्जा या ध्यान कहीं और चला जाता है। 6 से 8 माह के मध्य जब उसे वस्तुओं को गिराना उद्देश्यपूर्ण लगने लगता है तो यह बच्चे का पसंदीदा खेल हो जाता है कि वो वस्तु को नीचे फर्श पर गिराए और कोई और उसे उठाकर वापस दे दे।

- **हाथ और मुख समन्वय**

इसका वर्णन भी इसी इकाई में शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय के विषय पर चर्चा के समय किया जा चुका है। कृपया उसका संदर्भ लें।

5. चलना

अभी तक हमने मुख्य रूप से हाथ की गति एवं नियंत्रण, सिर एव गर्दन, छाती एवं बांह आदि की वृद्धि के बारे में पढ़ा जो जीवन के शुरुआती महीनों में बहुत आवश्यक हैं। अब विभिन्न प्रकार की चलित गतिविधियों के बारे में पढ़ना भी फायदेमंद साबित होगा जैसे पलटना, घिसकना, बैठना, खड़े होना, कदम बढ़ाना तथा चलना जोकि नवजात अवस्था के विभिन्न चरणों में घटित होती हैं। इन सभी गतिविधियों को हम एक एक करके पढ़ेंगे जो नीचे तालिका में दी गयी हैं:

संख्या	चलित गतिविधियाँ	आयु
1.	पलटना	5 माह
2.	खिसकना	6 से 10 माह
3.	बैठना	7 माह
4.	सहारा लेकर खड़ा होना	8 से 9 माह
5.	बिना सहारे खड़ा होना	12 माह
6.	कदम बढ़ाना	6 से 7 माह
7.	सहारा लेकर चलना	9 से 11 माह

8.	अकेले चलना	12 माह

• पलटना

लगभग 5 माह से, साधारणतया बच्चे पेट से पीठ की ओर लुढ़कते हैं, बाद में पीठ से पेट की ओर।

• बैठना

बच्चा बैठना या तो लेटे हुई अवस्था से उठने के लिए या फिर खड़ी अवस्था से नीचे बैठने में सीखता है। साधारणतया बच्चे 4 माह में तकिए का सहारा लेकर बैठते हैं तथा 7 माह में बिना सहारे के ।

• रेंगना / खिसकना

चलने से पहले बच्चा कई अन्य चरणों से होकर गुजरता है। खिसकने की क्रिया में बच्चा अपनी भुजाओं का प्रयोग करके अपने शरीर को आगे को खींचता है। खिसकते समय बच्चे का पेट तो जमीन से लगा रहता है किन्तु कंधा एवं सिर ऊपर की ओर उठे रहते हैं। खिसकने की क्रिया के बाद रेंगने की क्रिया 7 से 9 माह में आरम्भ हो जाती है। रेंगते समय बालक अपने कंधे एवं सिर को ऊपर उठा लेता है तथा घुटनों एवं हाथों के बल चौपायों की तरह आगे को बढ़ता जाता है।

• कदम बढ़ाना

लगभग 6 या 7 वें माह में यदि बच्चे को बांहों से पकड़ा जाए तो वह कदम रखने का प्रयास करने लगता है।

• खड़ा होना

साधारणतया एक बच्चा 7 माह की आयु से किसी सहारे से खड़ा हो सकता है। इसके 4 माह बाद या उसके बाद अधिकतर बच्चे बिना सहारे के खड़े हो सकते हैं। साधारणतया सभी बच्चे अपने पहले जन्मदिन के कुछ पहले ठीक तरह से खड़े होने लगते हैं।

• चलना

चलना शारीरिक समन्वय की ओर एक कदम है जो काफी महीनों के बाद विकसित होता है। ऊपर बताए गए सभी विकास नवजात अवस्था के एक बड़े क्रियात्मक विकास को प्राप्त करते हैं जिसे चलना कहते हैं। सामान्य तौर पर एक शिशु लगभग 9 से 11 माह से किसी सहारे से चलना आरम्भ कर देता है और लगभग 12 माह से खुद अकेले चल सकता है। पहले जन्मदिन के कुछ समय बाद सामान्य बच्चा अच्छी प्रकार से चलने लगता है और अब वह

बचापनावस्था में कदम रखता है। चलने के पश्चात करीब 17 माह से बच्चा दौड़ने लगता है तथा सीढ़ी चढ़ने लगता है तथा 20 माह में कूदने लगता है।

ऊपर बतायी गयी चलने संबंधी जानकारी से हम यह कह सकते हैं कि 9 से 18 माह का समय चलने में होने वाले तीव्र बदलावों का समय है। यह वह समय है जब बच्चा रेंगना शुरु करता है, खड़ा होता है, चलता है तथा अब वह अपने शरीर पर अच्छे से नियंत्रण कर सकता है।

इस इकाई में हमने नवजात अवस्था के विभिन्न चरणों में होने वाले शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के बारे में पढ़ा। यह ज्ञान हमें शिशु के जीवन के विभिन्न चरणों में होने वाले मानसिक एवं सामाजिक विकास के बारे में समझने में मदद करेगा। आगे बढ़ने से पूर्व आइये कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 3

1. नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त क्रियात्मक विकास के मील के पत्थर की सूची बनाइये।

....

....

2. नवजात अवस्था के विभिन्न चरणों में होने वाली चलित गतिविधियां बताइये।

....

....

अब हम शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन करेंगे।

2.6 संज्ञानात्मक विकास की परिभाषा

संज्ञानात्मक विकास से तात्पर्य ऐसी क्रियाओं से है जिसमें चिंतन, तर्क, प्रत्यक्षीकरण तथा विभिन्न समस्याओं का हल सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में संज्ञानात्मक विकास एक ऐसी उच्च मानसिक प्रक्रिया है जो हमें अपने आस पास के वातावरण को समझने तथा उसके साथ समायोजन करने में सहायता प्रदान करती है। संज्ञानात्मक विकास को स्टाट द्वारा निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है:

“समाज एवं प्रभाविकता के साथ कार्य करने तथा बाह्य पर्यावरण से सुविधाजनक ढंग से व्यवहार करने की योग्यता ही संज्ञान है।”

संज्ञानात्मक प्रक्रिया के प्रमुख उत्क्रम

संज्ञानात्मक विकास के प्रमुख उत्क्रम निम्न हैं:

1. **छवि या प्रतिकृति निर्माण:** कोई भी प्राणी जन्म लेने के पश्चात सर्वप्रथम इन्द्रियों द्वारा अपने चारों ओर के वातावरण से अनुभव प्राप्त करता है। वही अनुभव प्रत्यक्ष होकर उसके मस्तिष्क में एक छवि का निर्माण करते हैं। अत: विभिन्न अनुभवों के आधार पर व्यक्ति भिन्न-भिन्न छवि बनाता है।

2. **संकेत:** व्यक्ति अपने अनुभवों द्वारा बाह्य जगत का प्रत्यक्षीकरण करने पर उद्दीपनों के सम्बन्ध में संकेतों द्वारा समझने का प्रयास करता है। संकेत वह उद्दीपन होते हैं जो उस समय वहाँ अनुपस्थित वस्तु का वर्णन करते हैं।

3. **भाषा:** संज्ञानात्मक विकास क्रम में तीसरा उत्क्रम है भाषा। अपने आस पास के वातावरण की वस्तुओं का ज्ञान होने पर व्यक्ति के मस्तिष्क पर जिस छवि का निर्माण होता है उस सम्बन्ध में अपनी उत्सुकता का समाधान वह इस उत्क्रम द्वारा करता है। वह उस छवि के सम्बन्ध में प्रश्न पूछता है तथा अपने ज्ञान का विस्तार करता है।

4. **तर्क:** लगभग 1 वर्ष की आयु से ही बच्चे में तर्क करने की क्षमता विकसित होने लगती है, अत: जब भी वे अपने आस पास के वातावरण में किसी नयी वस्तु या घटना को देखते हैं तो उसके संबन्ध में तर्क करने लगते हैं तथा इससे उनमें नये विचारों का निर्माण होता है।

5. **अवधारणा का निर्माण:** विचार मानसिक और संरचनात्मक विकास का एक महत्वपूर्ण अंग होते हैं। यह किसी देखी गयी वस्तु की वास्तविक छवि होते हैं। अवधारणा निर्माण से ही संज्ञानात्मक विकास होता है।

विभिन्न आयु वर्गों में संज्ञानात्मक विकास

जीन पियाजे ने सम्पूर्ण संज्ञानात्मक विकास को 4 चरणों में विभाजित किया है

1. संवेदी पेशीय अवस्था (जन्म से 2 वर्ष)

यह संज्ञानात्मक विकास का प्रथम चरण है जो जन्म से 2 वर्ष की अवस्था तक रहता है। जन्म के समय शिशु में केवल सहज क्रियाएँ ही विकसित होती हैं। इन्हीं की सहायता से शिशु को वस्तु, ध्वनि तथा विभिन्न गंधों का अनुभव होता है। इस अवधि की समाप्ति तक बच्चे के अंदर विचार तथा कल्पना करने की क्षमता का विकास शुरु हो जाता है।

2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2 से 6 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा दूसरे व्यक्तियों से संपर्क बनाकर ज्ञान तथा नयी जानकारियों एवं अनुभवों को एकत्र करने लगता है। संवेदी पेशीय अवस्था की अपेक्षा किसी भी समस्या का समाधान करने में अधिक सक्षम होता है। बच्चा रटकर कोई भी चीज याद कर लेता है किन्तु उसे किसी कार्य के होने का कारण और वह कार्य क्यों हो रहा है इस बात का ज्ञान नहीं होता है। अर्थात बालक में इस समय संज्ञानात्मक परिपक्वता का अभाव होता है।

3. स्थूल संक्रियात्मक अवस्था (7 से 12 वर्ष)

इस अवस्था में बालक का विकास सूक्ष्म से स्थूल की ओर होता है क्योंकि अब बालक में तर्क वितर्क करने की क्षमता आ जाती है। इस अवस्था में बच्चा लम्बाई, भार, आकार, गणित, बीजगणित तथा ज्यामितीय प्रत्ययों को समझ पाने की योग्यता का विकास करता है। बच्चा अपनी समस्याओं का समाधान करने के लिए खुद के कुछ नियम बना लेता है, इसलिए इसे नियमीकरण की अवस्था भी कहते हैं। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में बच्चे को आयतन व भार का ज्ञान, संख्यात्मक ज्ञान आदि हो जाता है।

4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (12 वर्ष से प्रौढ़ावस्था तक)

संज्ञानात्मक विकास की यह अंतिम अवस्था है। इस अवस्था में होने वाले प्रमुख विकास निम्न प्रकार हैं:

- समस्या का समाधान करने की क्षमता का विकास
- तार्किक चिंतन करने की क्षमता का विकास
- मूर्त व अमूर्त में अंतर कर पाने की क्षमता का विकास
- परिकल्पनाओं को विकसित करने की क्षमता का विकास

इस प्रकार जीन पियाजे ने यह प्रतिपादित किया कि जैविक विकास ही सभी प्रकार के विकास का आधार है। बच्चों में संज्ञानात्मक विकास जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है। संज्ञानात्मक विकास के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों को सोच समझकर कार्य करने की, विचार विमर्श करने की, कार्य के परिणामों पर विचार करने की तथा आत्म संयम की शिक्षा देनी चाहिए।

शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास

I. **नवजात शिशु से 3 माह तक:** बच्चे को ऊंचे स्वर पसंद होते हैं तथा वह उनकी ओर पलट कर देखता है। 6 माह की आयु के शिशु को आपकी अनुपस्थिति का एहसास नहीं हो पाता है तब भी जब आप उसके पास नहीं हो। वह यह भी नहीं समझ पाता कि

आप ही वह व्यक्ति हो जो हर वक्त उसके साथ रहते हो। वह अनजान व्यक्तियों से डरता भी नहीं है।

II. **3 से 6 माह तक:** इस समय शिशु कुछ समझने लगता है। शिशु वस्तुओं को श्रेणीबद्ध कर सकता है। जैसे यदि आप उसे 6 चित्र बिल्लियों के दिखाएँ और अगला चित्र कुत्ते का दिखायें तो शिशु आश्चर्यचकित सा दिखाई देता है। 5वें माह पर यदि आप उसे लेकर 2 या 3 शीशों के सामने बैठ जाएँ तो वह आपको 2 या 3 स्थानों पर देखकर बहुत खुश होता है किन्तु जब उसे पता चलता है आप एक ही हो तो वह बहुत दुखी होता है। 6 माह तक उसका इतना विकास हो जाता है कि वह अपने खिलौनों को भी पहचान सकता है।

III. **7 से 9 माह:** अब शिशु अपना नाम पहचानने लगता है। वह अनजान व्यक्तियों तथा अनजान स्थानों पर असहज होता है। वह अपने कोमल खिलौनों के ऊपर लुढ़ककर जा सकता है तथा मेज के नीचे क्या है यह भी देखने की सोच सकता है। अब शिशु खिलौनों का सही सही प्रयोग करने लगता है, वह ड्रम बजा सकता है या ईंटों को टकराकर आवाज कर सकता है। बच्चा आपकी नक़ल करने लगता है जो आपने उससे पहले किया हो। लेकिन शिशु को आंखमिचोली समझ नहीं आती है। अत: यदि आप उसका कोई खिलौना छिपा दें तो संभवत: वह नहीं ढूंढ पायेगा।

IV. **9 से 12 माह:** शिशु आपके आने पर चहकने लगता है तथा आपके जाने पर उदास हो जाता है। स्वयं को शीशे में देखने पर वह यह नहीं समझ पाता कि वह उसका प्रतिबिम्ब है। शिशु सार्थक शोर करता है जो उसके प्रथम शब्द बन जाते हैं।

V. **12 से 18 माह:** बच्चा अपनी आवश्यकता को कुछ शब्दों तथा कुछ हाव भाव से बता सकता है। यहाँ तक कि वह आपके द्वारा पिछले सप्ताह किए गए किसी कार्य की नक़ल भी कर सकता है। वह अलमारी खोल सकता है तथा ड़ब्बे खाली कर सकता है। किसी समस्या के आने पर वह उसके एक के बाद एक कई समाधान निकाल सकता है। यदि उससे कोई चीज छिपाई जाए तो वह अब उसे ढूंढ़ सकता है।

VI. **18 से 24 माह:** इस समय बच्चा शब्दों को जोड़ना सीख लेता है। अब वह कई कार्य केवल सोचकर ही करने लगता है। इसके लिए उसे प्रयत्न करने या गलती करने की आवश्यकता नहीं होती है। इस समय बच्चे प्रेमी तथा स्नेही हो जाते हैं, वो झगड़ालू या चिढ़चिढ़े, जिद्दी तथा अपने कार्य के प्रति बहुत अवास्तविक हो सकते हैं। 18 वें माह में बच्चे को इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता है कि कोई बच्चा उसके खिलौनों से खेल रहा है। उसे दूसरे बच्चों के साथ रहना अच्छा लगने लगता है लेकिन वह उनके साथ तभी खेलता है जब वे उम्र में कुछ बड़े हों। बच्चा यदि किसी व्यक्ति को मारता है तो वह यह सोचता है कि जैसे उसे दर्द नहीं होता उसी प्रकार उसे भी दर्द नहीं होगा जिसे वह मार रहा होता है। इसी प्रकार यदि बच्चा एक कुर्सी में जोर से बैठ जाए और उसे चोट लग जाए तो वह कहेगा कि कुर्सी ने उसे मारा है। इसी आयु वर्ग के बच्चे को यदि आप उसके माथे पर लिपस्टिक लगाकर शीशे के सामने बैठा दो तो वह लिपस्टिक साफ़ करने के लिए शीशे को साफ़ करने लगता है। 21 माह की आयु तक उसे यह समझ आने लगता है कि लिपस्टिक उसके लगी है तथा वह अपना माथा साफ़ करने लगता है।

2.7 जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

यदि शैशवावस्था की बात करें तो यह कह सकते हैं कि इस दौरान न केवल शारीरिक बल्कि संज्ञानात्मक या मानसिक विकास भी होता है। शारीरिक विकास और परिवर्तन को तो आसानी से देखा और मापा जा सकता है किंतु संज्ञानात्मक विकास को मापना कठिन है। आइये अब संज्ञानात्मक विकास के सम्बंध में पियाजे का सिद्धांत पढ़ते हैं:

जीन पियाजे ने शैशवावस्था के संज्ञानात्मक विकास को छ: उपचरणों में बाँटा है:

1. प्रतिक्षेप क्रियाकलाप

यह उपचरण जन्म से 1 माह तक चलता है। इस समय बच्चा माँ का दूध या फिर बोतल से दूध पीने जैसे कार्यों में संलग्न रहता है तथा वह यह सीख रहा होता है कि अपने आस पास के वातावरण के प्रति किस प्रकार प्रतिक्रिया करनी है।

2. प्राथमिक संचरित प्रतिक्रियाएं

यह अवस्था 1 से 4 माह तक होती है। इस समय बच्चा जानबूझकर उस क्रिया को बार-बार दोहराता है जिससे उसे मनपसंद परिणाम तथा खुशी मिलती है। इस समय बच्चे में एक क्रिया को दूसरी क्रिया से जोड़ने की क्षमता विकसित हो जाती है।

3. द्वितीयक संचरित प्रतिक्रियाएं

यह उप अवस्था 4 से 8 माह तक चलती है। यह अवस्था भी पूर्व अवस्था के समान ही है। इन दोनों अवस्थाओं में केवल इतना अंतर है कि पिछली अवस्था में बच्चा केवल अपने शरीर में क्रिया को बार-बार दोहराने के स्थान पर वातावरण के ऊपर क्रिया दोहराते हैं।

4. द्वितीयक योजनाओं का समन्वय

यह अवस्था 8 से 12 माह तक होती है। इस अवस्था में बच्चे किसी भी कार्य का कारण तथा प्रभाव जानने की कोशिश करते हैं। जैसे वो कोई खिलौना जमीन पर फेंककर देखना चाहते हैं कि फेंकने का क्या प्रभाव होगा।

5. तृतीयक संचरित प्रतिक्रियाएं

यह अवस्था 12 से 18 माह तक होती है। इस समय बच्चा जो भी वस्तु उसे मिले उसे पकड़कर उससे खेलने लगता है फिर चाहे वह वस्तु चाकू हो, बिजली का सामान हो या फिर कोई गर्म वस्तु। अत: माता-पिता को इस समय बच्चे पर बहुत ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

6. आरम्भिक विचार

यह शैशवावस्था की अंतिम उपावस्था है जोकि 18 से 24 माह तक चलती है। इस अवस्था तक आते आते बच्चा अपने मस्तिष्क में किसी भी वस्तु की एक सामान्य छवि बना लेता है तथा उसे समय आने पर प्रयोग करता है। इस अवस्था में बच्चे की याद करने तथा पहचानने की क्षमता भी बहुत विकसित हो जाती है।

इस प्रकार पियाजे ने 6 चरणों में शैशवावस्था के संज्ञानात्मक विकास को समझा दिया है। आइये अब हम संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के सम्बंध में पढ़ें।

2.8 संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

संज्ञानात्मक विकास केवल मानसिक विकास नहीं है अपितु इसके साथ-साथ संवेदों तथा स्मरण शक्ति का विकास भी निहित है। अत: इसके विकास में व्यवधान का अर्थ है अन्य विकासों में भी बाधा उत्पन्न होना। अत: यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कौन से कारक इसके विकास को प्रभावित करते हैं। तो आइये इन कारकों के सम्बंध में पढ़ते हैं।

1. **आनुवंशिक कारक:** आनुवंशिक कारक संज्ञानात्मक विकास को बहुत महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। इसके अंतर्गत बच्चे में उपस्थित जन्मजात बीमारियाँ आती हैं जोकि बच्चे का मानसिक विकास होने में विलम्ब पैदा करती हैं। इस प्रकार की आनुवंशिक बीमारियों से युक्त बच्चे में कुछ मानसिक क्षमताएं ठीक प्रकार से विकसित नहीं हो पाती हैं।
2. **वातावरणीय कारक:** इसके अंतर्गत बच्चे के परिवार का सामाजिक स्तर आता है। निम्नवर्गीय परिवार के बच्चों में विकास की दर धीमी होती है तथा अन्य बच्चों की तुलना में कम अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। ऐसे बच्चे अकसर कुपोषण के भी शिकार होते हैं। इस प्रकार के परिवारों में माता-पिता बच्चे के साथ बहुत कम समय व्यतीत करते हैं अत: वह बच्चे के साथ किसी भी कार्य में सम्मिलित नहीं होते हैं। इस प्रकार क्योंकि बच्चे को माता-पिता का निर्देशन नहीं मिल पाता है अत: उसका संज्ञानात्मक विकास प्रभावित होता है।
3. **पोषण:** पोषण बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को बहुत प्रबल तरीके से प्रभावित करता है। यहाँ तक कि जन्म से पहले भी पोषण का शिशु के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जब शिशु माँ के पेट में होता है यदि उस अवस्था में उसे प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में न मिले तो बच्चे का विकास गर्भ के भीतर तथा बाहर दोनों जगह धीमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त जिन बच्चों को माँ का दूध तथा उसके पोषक तत्व मिलते हैं ऐसे बच्चे भविष्य में अच्छी बुद्धिलब्धि वाले होते हैं।
4. **स्वास्थ्य:** ऐसे बच्चे जिनका स्वास्थ्य शुरुआत से ही अच्छा होता है तथा जो बीमारियों के प्रभाव से मुक्त रहते हैं उनमें संज्ञानात्मक विकास की गति रोगग्रस्त बच्चों की तुलना में तीव्र होती है।
5. **यौन भिन्नता:** लैंगिक भिन्नता का भी संज्ञानात्मक विकास पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिये लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ भाषा विकास तथा शब्द प्रभाव में प्राय: अधिक अंक प्राप्त करती हैं।

ये ही कुछ मुख्य कारक हैं जो बच्चे के संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। अत: इन कारकों को ध्यान में रखकर हम बच्चे के संज्ञानात्मक विकास में और सुधार ला सकते हैं।

2.9 बुद्धि

बुद्धि एक ऐसी शक्ति है जो हमें अपनी परिस्थितियों के साथ समायोजन करने की क्षमता प्रदान करती है। बुद्धि के आधार पर ही किसी भी व्यक्ति की योग्यताओं को निर्धारित किया जाता है। जो व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमता का प्रयोग करके अपनी समस्याओं का समाधान आसानी से कर लेता है वह योग्य और कुशल कहलाता है। बुद्धि कोई तत्त्व नहीं है अपितु विभिन्न मानसिक योग्यताओं का एक समूह है।

बुद्धिलब्धि

बच्चे की शारीरिक आयु एवं मानसिक आयु के अनुपात को ही बुद्धिलब्धि कहते हैं। किसी भी व्यक्ति की बुद्धिलब्धि निकालने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं:

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{शारीरिक आयु}} \times 100$$

बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण

किसी भी बच्चे का मानसिक स्तर ज्ञात करने के लिये बुद्धिलब्धि का वर्गीकरण किया जाता है जो निम्न प्रकार है:

बुद्धिलब्धि	बुद्धि
900 या इससे अधिक	अत्यधिक प्रतिभाशाली
140 से 200	प्रतिभाशाली
120 से 140	अति उत्कृष्ट
110 से 120	उत्कृष्ट
90 से 110	सामान्य
80 से 90	मंद बुद्धि
70 से 80	निर्बल बुद्धि
50 से 70	मूर्ख
20 से 50	मूढ़
20 से नीचे	जड़ बुद्धि

बुद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

बुद्धि एक जन्मजात योग्यता है। किंतु वंशानुक्रम के अतिरिक्त बुद्धि पर अन्य कारकों का भी प्रभाव पड़ता है। ये कारक निम्नलिखित हैं:

1. वंशानुक्रम: विभिन्न अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई है कि बुद्धि बहुत हद तक वंशानुक्रम योग्यता होती है। बुद्धिमान माता-पिता से बुद्धिमान संतान तथा मंदबुद्धि माता-पिता से कम बुद्धि वाली संतानें होती हैं। कभी-कभी बुद्धिमान माता-पिता से भी मंद बुद्धि वाली संतानें हो जाती हैं। यह या तो वंशानुक्रम में दोष आने के कारण या फिर कई अन्य प्रकार के कारणों से होता है। किंतु यह सत्य है कि अन्य कारकों की अपेक्षा वंशानुक्रम बुद्धि को सर्वाधिक प्रभावित करता है।

2. शहरी या ग्रामीण वातावरण: हम सभी यह जानते हैं कि गावों के बच्चों की अपेक्षा शहर के बच्चों को अपनी जन्मजात योग्यताओं को विकसित करने के लिये अच्छा वातावरण प्राप्त होता है। अत: वे बुद्धि परीक्षणों में अच्छे अंक प्राप्त करते हैं।

3. माता-पिता का व्यवसाय: माता-पिता के व्यवसाय की प्रकृति तथा व्यवसाय के स्तर का भी बच्चे की बुद्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि मजदूर, घरेलू नौकरों, किसान तथा कम शिक्षित कर्मचारियों की अपेक्षा इंजीनियर, डॉक्टर, प्रोफेसर, कलाकार या किसी उच्च पद पर आसीन सरकारी कर्मचारी आदि व्यक्तियों के बच्चों की बुद्धिलब्धि बहुत अधिक होती है।

4. यौन विभेद: यह पाया गया है कि कई क्षेत्रों जैसे कलाकार, नेता, प्रतिभाशाली दार्शनिक तथा अन्य प्रकार की विभूतियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या कम है। इसका तात्पर्य यह बिल्कुल नहीं है कि पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होते हैं अपितु इसका कारण यह है कि अधिकांश सामाजिक व्यवस्थाओं में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अपनी बौद्धिक क्षमता का विकास तथा प्रयोग करने के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं।

5. स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास: किसी भी बड़ी उपलब्धि को हासिल करने के लिये शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य दोनों का सही होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि बच्चे का स्वास्थ्य सही नहीं है तो वह अपने दिमाग का पूर्ण उपयोग नहीं कर पायेगा तथा वह जगह हासिल नहीं कर पायेगा जो वह करना चाहता है। शारीरिक दोष जैसे मस्तिष्क कोशिकाओं का अपूर्ण विकास तथा शारीरिक रूप से अपंगता का भी बच्चे की बुद्धि पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चे को होने वाली बीमारियों से भी बुद्धि प्रभावित होती है।

इस प्रकार हमने यह देखा कि वंशानुक्रम के अतिरिक्त भी कई कारक हैं जो बुद्धि को प्रभावित करते हैं। आगे बढ़ने से पहले आइये कुछ प्रश्नों को हल करके अपने ज्ञान को परखें।

अभ्यास प्रश्न 4

1. जीन पियाजे ने शैशवावस्था के संज्ञानात्मक विकास को किन 6 उपचरणों में बाटा है सभी को सूचीबद्ध कीजिये?

   ----

2. संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को संक्षेप में समझाइये?

   ----

3. बुद्धिलब्धि से आप क्या समझते हैं?

2.10 खेल एवं खेल के प्रकार

खेल से बच्चे के दोस्त तो बनते ही हैं, इसके साथ-साथ बच्चा सामाजिकता भी सीखता है, उसे मनोभावों की समझ हो जाती है तथा वह अपने मनोभावों को प्रकट करना भी सीख लेता है। इस सबके अतिरिक्त बच्चे को खेलने में बहुत आनंद आता है।

बच्चे को निम्न प्रकार के खेलों में सम्मिलित किया जा सकता है

- **स्वतंत्र या खुला खेल:** इस खेल में बच्चा चारों ओर देखता रहता है तथा उसका कोई स्पष्ट लक्ष्य नहीं होता है।
- **एकाकी खेल:** इस प्रकार के खेल में बच्चा अकेले खेल सकता है उसे किसी साथी की आवश्यकता नहीं होती है।
- **दर्शक खेल:** इसमें बच्चा दूसरे बच्चों को खेलते हुए देखता है किन्तु खेल में भाग नहीं लेता है।
- **समानांतर खेल:** इस प्रकार के खेल में बच्चा दूसरे बच्चों के साथ-साथ खेलता है किन्तु उनकी आपस में कोई बातचीत नहीं होती है। कभी-कभी तो वो एक ही प्रकार की वस्तु से खेल रहे होते हैं तथा एक दूसरे के बारे में जानते भी हैं लेकिन आपस में बात नहीं करते हैं।
- **संबद्ध खेल:** इसमें बच्चे एक दूसरे के आस पास खेल रहे होते हैं तथा आपस में सामान भी बाँट रहे होते हैं लेकिन साथ में नहीं खेलते हैं।
- **सहयोगी खेल:** इस खेल में बच्चे एक समूह में खेलते हैं तथा उनके खेल के नियम सभी के लिए सामान होते हैं और वे एक सामान लक्ष्य के लिए खेलते हैं।

बच्चे की आयु के अनुसार उसे उपरोक्त खेल खिलाए जाते हैं जो भिन्न-भिन्न आयु वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

2.11 शिशु का सृजनात्मक विकास

सृजनात्मकता किसी व्यक्ति की वह योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नये विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नई वस्तु की खोज करता है। प्रत्येक व्यक्ति में सृजन की सम्भावनाएं होती हैं बस उनका उचित विकास होना आवश्यक होता है।

सृजनात्मकता का विकास:

बच्चों में सृजनात्मकता का विकास बाल्यावस्था से प्रारम्भ हो जाता है। इसे निम्न अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है:

1. प्रथम क्रांतिक अवस्था (5 से 6 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा विद्यालय जाना प्रारम्भ कर देता है तथा वहाँ से वो नैतिक शिक्षा प्राप्त करता है तथा इसके साथ-साथ घर के नियमों का भी पालन करता है। किंतु यदि बच्चे पर परिवार एवं विद्यालय का अधिक नियन्त्रण रहता है तो उसकी सृजनात्मकता अवरोधित हो जाती है।

2. द्वितीय क्रांतिक अवस्था (8 से 10 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा साथियों के साथ समूह बनाने में बहुत रुचि रखता है। बच्चे को अपने साथियों से यदि बराबर सम्मान प्राप्त होता है तो उसका संतुलन बना रहता है तथा उसकी सृजनात्मकता का विकास सामान्य रूप से होता रहता है।

3. तृतीय क्रांतिक अवस्था (13 से 15 वर्ष)

इस अवस्था में बच्चा अपने साथियों से स्वीकृति की चाह करने लगता है मुख्य रूप से विपरीत लिंग से। किंतु यदि बच्चा स्वीकृति ही प्राप्त करने में ही लगा रहता है तो उसका सृजनात्मक विकास उचित रूप से नहीं हो पाता है।

4. चतुर्थ क्रांतिक अवस्था (17 से 19 वर्ष)

इस अवस्था में किशोर केवल दूसरों से स्वीकृति का ही प्रयास ही नहीं करता अपितु अपने भविष्य की चिंता भी करने लगता है। अवस्था के इस चरण में उसे अपने कार्यों को करने के

लिये थोड़ी स्वतंत्रता भी देनी चाहिए क्योंकि अधिक अंकुश लगाने से उसकी सृजनात्मकता अवरोधित हो सकती है।

अनेक अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि सृजनात्मकता का विकास 20 वर्ष की आयु तक अपनी चरम अवस्था तक पहुंच जाता है और इसके बाद विकास होना बंद हो जाता है। यदि वातावरणीय परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो बच्चा समय से पहले ही विकास की चरम अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

बच्चों में सृजनात्मकता को बढ़ावा देने के तरीके

- बच्चे के माता-पिता तथा अभिभावकों का यह कर्तव्य है कि बच्चे को सृजनात्मकता के उचित विकास के लिए समुचित वातावरण उप्लब्ध करायें जिससे उसके विकास में अवरोध ना उत्पन्न हो सके।
- बच्चे में धनात्मक सामाजिक प्रवृत्तियाँ विकसित करने का प्रयास करना चाहिए जिससे उसका अपने साथियों, शिक्षकों तथा संरक्षकों से सम्बंध ना बिगड़े तथा उचित सृजनात्मक विकास भी हो सके।
- बच्चे को हर समय पारिवारिक गतिविधियों में व्यस्त नहीं करना चाहिए। उसे कुछ समय के लिये सभी कार्यो से मुक्त रखना चाहिए जिससे वह अपनी सृजनात्मकता का विकास करने की दिशा में प्रयास कर सके।
- बच्चे को टूटे फूटे खिलौने तथा साधन उपलब्ध कराने चाहिए जिससे वह उन्हें जोड़ने का प्रयास कर सके और उसमें सृजनात्मकता का विकास हो सके।
- बच्चे को कुछ मनोरंजन की गतिविधियों में व्यस्त करना चाहिए किंतु उसे टी.वी. अधिक नहीं देखने देना चाहिए। इसके स्थान पर उसे किसी चित्रकारी में, किसी प्रसिद्ध लेखक द्वारा लिखी हुई किताबों को पढ़ने में तथा किसी नाटक का अभ्यास करने के लिये प्रेरित करना चाहिए।
- इस समय बच्चे के मन में कई तरह की जिज्ञासाएं जन्म ले रही होती हैं अत: माता-पिता को चाहिए कि बच्चे की इन जिज्ञासाओं को शांत करने का प्रयास करें।
- बच्चे को कुछ कार्य उसे खुद से करने दें चाहे वह उस कार्य में गलतियां करे या असफल हो जाये। इससे वह बार-बार उस कार्य को करेगा जब तक कि वह उसमें सफल ना हो जाये। इसके अलावा वह असफल होने से नहीं डरेगा तथा अपनी सृजनात्मकता को और अच्छे तरीके से प्रदर्शित करेगा।

आइये अब कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 5

1. खेल के प्रकार बताइये।

   ----

2. सृजनात्मकता से आप क्या समझते हैं?

आइए अब हम शिशुओं में भाषा विकास का अध्ययन करें।

2.12 भाषा का महत्व

भाषा विचारों, भावों व संवेगों को व्यक्त करने का माध्यम है। भाषा शैक्षिक, बौद्धिक, शारीरिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रों में लाभ पहुँचाती है। भाषा वह शक्ति है जिसके कारण मानव ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति कर समस्त प्राणी जगत में स्वयं को सर्वोत्तम सिद्ध करने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

आइए, भाषा की उपयोगिता के बारे में जानें।

- **सामाजिक संबंधों के निर्माण में सहायक:** भाषा वह माध्यम है जिसमें सामाजिक व सांस्कृतिक परम्पराएं, रीति-रिवाज, आदर्श एवं नियम एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। जो बच्चे बहिर्मुखी होते हैं वह अपने साथियों में लोकप्रिय होते हैं तथा उनके सामाजिक संबंध भी अपने समूह व साथियों से अच्छे होते हैं। इसके विपरीत अंतर्मुखी बालक लोकप्रिय नहीं होते। भाषा में लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता होती है।
- **सामाजिक समायोजन में सहायक:** भाषा द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होने के कारण बच्चों को सामाजिक समायोजन में कठिनाई नहीं होती है। जो व्यक्ति कई भाषाओं का ज्ञाता होता है, उसे समाज में समायोजित होने में आसानी होती है।
- **नेतृत्व विकास में सहायक:** भाषा के माध्यम से ही बालक में नेतृत्व की क्षमता विकसित होती है क्योंकि भाषा के द्वारा ही लोगों तक अपने विचारों को आसानी से पहुँचा कर उनका ध्यान आकर्षित किया जा सकता है।

- **स्व-प्रत्यय निर्माण:** विचारों को व्यक्त करने हेतु भाषा का इस्तेमाल अपने व्यक्तित्व का मूल्यांकन कर स्व-प्रत्यय निर्मित करता है जो व्यक्तित्व निर्माण में सहायक होता है।
- **शैक्षिक उपलब्धि:** भाषा के ज्ञान द्वारा ही जीवन में शैक्षिक उपलब्धियाँ संभव होती हैं। शब्द-भंडार के विशाल होने पर वाक्य विन्यास व विषय के प्रस्तुतीकरण में सौंदर्य व मधुरता अधिक प्रबलता से पाई जाती है।
- **मानव विकास का आधार:** भाषा विकास द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का उचित विकास होता है। अपने विचारों के प्रस्तुतीकरण में संतुलित, सीमित व प्रभावशाली होने की क्षमता जिस बालक में होती है, वे अपने जीवन के हर क्षेत्र में विकास करते हैं।
- **साहित्य सृजन में सहायक:** साहित्य एवं भाषा को एक दूसरे का पूरक भी कहा जा सकता है क्योंकि किसी भी साहित्य को उसकी भाषा द्वारा ही आंका जाता है।
- **संस्कृति का प्रतिबिम्ब:** किसी भी व्यक्ति, समुदाय, समाज व राष्ट्र की सभ्यता व संस्कृति भाषा द्वारा ही प्रतिलक्षित होती है। जिन समूहों की भाषा अविकसित होती है उनकी सभ्यता व संस्कृति भी अविकसित होती है।

2.13 भाषा विकास के प्रमुख सिद्धांत

जैसा कि आप जानते हैं कि भाषा का विकास शिशु के प्रथम क्रन्दन से ही प्रारम्भ हो जाता है परन्तु लम्बे व विलष्ट शब्दों का प्रयोग शिशु कब और कैसे करता है, इसका पता लगाने के लिए मनौवैज्ञानिकों ने कई अध्ययन किए एवं पता लगाया कि भाषा विकास कुछ सिद्धांतों पर आधारित होता है। उनमें से कुछ प्रमुख सिद्धांतों का वर्णन निम्न प्रकार है:

- **स्वर अंगों की परिपक्वता:** बोलने की प्रक्रिया में कई अंग एक साथ कार्य करते हैं, जैसे गला, जीभ व स्वरयंत्र, होंठ, फेफड़े आदि। इन सभी अंगों की परिपक्वता भाषा विकास के लिए आवश्यक है।
- **अनुकरण की प्रणाली:** मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा विकास के लिए न केवल अंगों की परिपक्वता का अपितु अनुकरण का होना भी आवश्यक है। बालक प्रारम्भ में अपने आसपास रहने वाले व्यक्तियों द्वारा बोले गए शब्दों की ध्वनियों एवं उच्चारण का अनुकरण करता है, तत्पश्चात आयु वृद्धि के साथ स्वरयंत्र में परिपक्वता आती है एवं बालक व्यंजनों का उच्चारण भी सीख जाता है। अतः माता-पिता को बालक के समक्ष स्पष्ट तथा शुद्ध उच्चारण करना चाहिए। यदि बालक गलत उच्चारण करे तो उसे सुधारें। अनुकरण द्वारा बालक शब्दों को बार-बार बोलकर आनंद की प्राप्ति करता है।
- **अनुबंधन की प्रणाली:** कुछ मनोवैज्ञानिकों ने भाषा विकास को अनुबंधन प्रणाली पर आधारित बताया है। इसे उद्दीपन अनुक्रिया (Stimulus response) के बीच स्थापित

सहचर्य के आधार पर जाना जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालक द्वारा भाषा को अर्जित करना, ध्वनि एवं ध्वनि संयोजक के चयनात्मक पुनर्बलन पर निर्भर करता है। प्रारंभ में बालक अर्थहीन शब्दों का उच्चारण करता है परंतु जब उसके समक्ष उच्चारित शब्दों को साथ में प्रदर्शित किया जाता है तो वह अपने द्वारा उच्चारित शब्दों के अर्थ का संबंध वस्तु के साथ जोड़ लेता है।

- **बोलने के लिए प्रेरणा:** जैसा कि आप जानते हैं कि प्रारंभ में बालक टूटे-फूटे, अर्थहीन एवं निरर्थक शब्दों का उच्चारण करता है परंतु आयु वृद्धि एवं तंत्रिका तंत्र के परिपक्व होने के साथ वह धीरे-धीरे अर्थपूर्ण शब्दों को उच्चारित करने लगता है। बालक अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बोलना सीखता है। यदि वह संकेतों व हाव-भाव के प्रयोग से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करता जाता है तो उसका भाषा विकास कुंठित हो जाता है। यदि बालक को बोलने के लिए उचित प्रोत्साहन व प्रेरणा मिले तो भाषा विकास सुचारू रूप से होगा, साथ ही बालक का शब्द भण्डार भी विकसित होगा।
- **कोमास्की का सिद्धांत:** कोमास्की ने बालक के भाषा विकास "Language Acquisition Device (LAD)" के आधार पर समझाया। उनका मानना है कि बालक में जन्म से ही एक ऐसी प्रणाली होती है जिसे LAD कहते हैं। इस प्रणाली में बालक भाषा समझने एवं बोलने की प्रक्रिया स्वयं ही करता है तथा उसे समझने के बाद उसका पुनरुत्पादन करता है। कोमास्की के अनुसार जिस प्रकार आँख एवं तंत्रिका तंत्र प्रकाश की विभिन्न तरंगों को विश्लेषित कर रंगों का ज्ञान करते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रवण तंत्रिका तंत्र भी मस्तिष्क की तंत्रिकाओं से उसी तरह संबंधित होते हैं। विभिन्न ध्वनियों को तंत्रिकाओं तक भेज दिया जाता है जिसे श्रवण तंत्रिकाएं ग्रहण करती हैं तथा उसे तंत्रिका तंत्र में विश्लेषण हेतु भेज दिया जाता है जिससे ध्वनियों/शब्दों का ज्ञान होता है।
- **भाषा का स्नायुविक आधार:** भाषा विकास स्नायु तंत्रों के विकास एवं परिपक्वता पर आधारित होता है। हमारे मस्तिष्क के cerebrum भाग के दो हिस्से होते हैं जिसे क्रमशः बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर तथा दायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर कहा जाता है। बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर व्यक्ति के भाषा विकास से संबंधित है। यदि गर्भावस्था या जन्म के समय किसी कारणवश बच्चे का बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर क्षतिग्रस्त हो तो उसका भाषा विकास कुंठित व बाधित हो जाता है व बालक देर से बोलना सीखता है।

अगले भाग में भाषा विकास पर चर्चा से पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयास करें।

अभ्यास प्रश्न 6

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दें।

1. भाषा विकास व्यक्ति के सामाजिक समायोजन में किस प्रकार सहायक है?
2. कोमास्की ने बालक के भाषा विकास को किस आधार पर समझाया?
3. मानव मस्तिष्क का कौन-सा भाग भाषा विकास से संबंधित है?

2.14 भाषा विकास

भाषा का विकास एकाएक नहीं होता। यह एक लम्बी व जटिल प्रक्रिया है। भाषा विकास का प्रारंभ बालक के भीतर तभी होता है जब वह शब्दों को सही ढंग से उच्चारित करे। प्रारंभ में बालक अपनी आवश्यकताओं को हाव-भाव एवं प्रतीकात्मक शारीरिक चेष्टाओं द्वारा व्यक्त करता है। भाषा विकास के दो पक्ष हैं; गत्यात्मक पक्ष (Motor aspect) तथा मानसिक पक्ष (Mental aspect)। गत्यात्मक पक्ष बालक में कुछ ध्वनियों को बोलने की योग्यता से संबंधित है अर्थात् विभिन्न ध्वनियों में इस प्रकार का संयोजन हो कि इन संयोजित ध्वनियों को शब्द कहा जा सके। भाषा विकास का मानसिक पक्ष बोले गए शब्दों का अर्थ जानने की योग्यता से संबंधित है। बालक के भाषा विकास में कई अवस्थाएं आती हैं जो शिशु के क्रंदन से शुरु होकर वाक्य निर्माण तक पहुँचती हैं। इस इकाई में हम भाषा विकास के इन चरणों पर चर्चा करेंगे।

भाषा विकास की अवस्थाएं

बच्चों के भाषा विकास की अवस्थाओं को दो प्रमुख उप-अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है; भाषा विकास से पूर्व सम्प्रेषण (Pre-speech forms of communication) तथा वास्तविक वाणी विकास (Speech development)।

भाषा विकास से पूर्व सम्प्रेषण: इस अवस्था के अंतर्गत निम्न अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित हैं जो वास्तविक भाषा विकास से पूर्व विकसित होती हैं:

- **क्रन्दन (Crying):** शिशु के जीवन की शुरुआत क्रन्दन या रूदन से होती है। अतः यही उसकी प्रारंभिक भाषा होती है। इस अवस्था में शिशु को स्वर व व्यजनों का ज्ञान नहीं होता है। लगभग चार माह की अवस्था तक शिशु जो ध्वनियाँ निकालता है, उनमें स्वरों की संख्या अधिक होती है। प्रारंभिक सप्ताहों में शिशु का रोना सर्वदा अनियमित होता है परन्तु आयु वृद्धि होने के साथ शिशु अपनी अनुभूतियों की आवश्यकता व लोगों का ध्यान आकर्षित करने हेतु क्रन्दन का सहारा लेते हैं। अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि लगभग दो माह तक के शिशुओं में रोने का मुख्य कारण भूख लगना होता है। कुछ अन्य कारणों की वजह से भी शिशु

अभिव्यक्ति हेतु रोने का सहारा लेते हैं जैसे शोर, तीव्र प्रकाश, शरीर में किसी प्रकार का दर्द, सोने में व्यवधान, थकान, भूख, भय, सोने की असहज स्थिति आदि। शिशु का क्रन्दन का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है, कुछ शिशु अपेक्षाकृत अधिक रोते हैं तथा कुछ कम। यह मुख्यत: इस बात पर निर्भर करता है कि शिशु के संकेतों को संरक्षक कितनी अच्छी तरह तथा जल्दी समझता है। आयु में वृद्धि के साथ बच्चा कुछ शब्द बोलना शुरु करता है तथा कुछ शारीरिक हाव-भावों से अपनी बात को समझा पाता है जिससे शिशु के क्रन्दन के स्वभाव में कमी आती है। अध्ययनों में पाया गया है कि रोने से बच्चे की मांसपेशियों में समन्वय बढ़ता है तथा संवेगात्मक तनाव भी दूर होता है परंतु आवश्यकता से अधिक रोना बच्चे के लिए शारीरिक तथा मानसिक दोनों रूप से हानिकारक होता है।

- **कूइंग एवं बबलाना (Cooing and Babbling):** बच्चे का रोना ही कुछ समय बाद उसके कूइंग/बबलाने या विस्फोटक ध्वनियों में परिवर्तित होता है जो शब्दोचारण के विकास में सहायक होता है। जन्म के लगभग दो माह बाद ही शिशु कुछ सरल ध्वनियाँ निकालने लगता है। ये ध्वनियाँ अधिगमित नहीं होती हैं परन्तु सभी बच्चों में देखी जा सकती हैं। इन खेलयुक्त ध्वनियों को कूइंग की संज्ञा दी जाती है। इनमें से कुछ ध्वनियाँ बबलाने में परिवर्तित हो जाती हैं तथा कुछ स्वत: समाप्त हो जाती हैं। शिशु का बबलाना दूसरे माह से प्रारंभ होकर लगभग 15 माह तक चलता है। स्वर-यंत्र की परिपक्वता के लिए बबलाना आवश्यक है। बबलाने की क्रिया अनुकरण पर आधारित होती है। इसमें एक ही ध्वनि व स्वरों की पुनरावृत्ति होती है जैसे मा-मा-मा-मा, जिससे शिशु को आनंद की अनुभूति होती है। अधिक बबलाने से शिशु ध्वनि के संयोजन को भी सीखता है जिसके आधार पर उसका भाषा विकास होता है।
- **हाव भाव (Gestures):** बच्चों में हाव-भाव का आविर्भाव बबलाने के साथ होता है। वास्तविक भाषा बोलने से पूर्व की अभिव्यक्तियों में हाव-भाव का प्रयोग भी एक महत्वपूर्ण चरण है। भाषा विकास में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चे शब्दों के स्थान पर हाव-भाव प्रदर्शित करते हैं। मुस्कुराकर, हाथ फैलाकर, उँगली दिखाकर, ऐसे कई हाव-भावों द्वारा बच्चे अपनी भावनाओं और विचारों को मूक भाषा में व्यक्त करते हैं। कई बार बच्चे अपनी बात को बेहतर तरीके से समझाने के लिए हाव-भावों के साथ कुछ शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। जैसे-जैसे भाषा का विकास बढ़ता है, बच्चे के हाव-भावों का प्रयोग कम होता जाता है।

वास्तविक वाणी विकास: इस अवस्था में वास्तविक भाषा विकास की अभिव्यक्तियाँ सम्मिलित हैं जिनकी विस्तृत चर्चा हम आगे आने वाली इकाईयों में करेंगे। यहाँ पर हम संक्षिप्त में इस अवस्था की विभिन्न अभिव्यक्तियों पर दृष्टि डालेंगे।

- **आकलन शक्ति (Comprehension):** अन्य व्यक्तियों की भाव-भंगिमाओं तथा क्रियाओं को समझने की बालक की योग्यता ही उसकी आकलन शक्ति कहलाती है। बच्चों

में इस शक्ति का विकास शब्दों के प्रयोग से पूर्व ही हो जाता है। बालक जितने शब्दों को बोल पाता है उससे अधिक शब्दों को वह समझ पाता है। ध्यान लगाकर सुनने से तथा आपस में अधिक वार्तालाप करने से बच्चे की आकलन शक्ति का विकास अधिक होता है।

- **उच्चारण:** जन्म के बाद लगभग छह माह तक शिशु अनेक निरर्थक ध्वनियाँ उच्चारित करता है परन्तु एक वर्ष का होने तक उसके शब्दों के उच्चारण में सुधार होने लगता है। यह उच्चारण वह अनुकरण द्वारा सीखता है। बालक में शब्दों के सही उच्चारण हेतु उचित मार्गदर्शन तथा वातावरण की आवश्यकता होती है।
- **शब्द भण्डार:** आयु में वृद्धि के साथ-साथ बालक के शब्द भण्डार में भी वृद्धि होती है। उसके शब्द भण्डार में न केवल नए शब्द जुड़ते हैं अपितु वह कई पूर्व में सीखे गए शब्दों के नए अर्थ भी सीखता है। शब्द भण्डार की दृष्टि से बच्चों में वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है जिसका कारण बुद्धि, वातावरण, प्रेरणा तथा अधिगम के उचित अवसरों की उपलब्धता है। बालक के शब्द भण्डार में सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकार के शब्द भण्डार होते हैं। सामान्य शब्द भण्डार में वे सभी शब्द सम्मिलित हैं जिनका उपयोग बालक सामान्य परिस्थितियों में करता है। विशिष्ट शब्द भण्डार में मुख्यत: निम्न क्षेत्रों से सम्बन्धित शब्द आते हैं:
    - ➢ रंगों से सम्बन्धित
    - ➢ संख्याओं से सम्बन्धित
    - ➢ समय तथा धन से सम्बन्धित
    - ➢ शिष्टाचार से सम्बन्धित तथा अशिष्ट शब्द भण्डार
- **वाक्य निर्माण:** यह भाषा विकास की सबसे प्रमुख अवस्था है। इस अवस्था में बच्चा अपने शब्द भण्डार में से शब्दों का चयन कर कुछ वाक्यों का निर्माण करता है जिसके द्वारा वह अपने विचारों तथा आवश्यकताओं को व्यक्त कर पाता है। यह अवस्था आयु में वृद्धि के साथ-साथ और ज्यादा परिष्कृत होती जाती है अर्थात बच्चा नए-नए तथा जटिल वाक्यों का निर्माण करना सीखता है।

अभ्यास प्रश्न 7

रिक्त स्थान भरिए।

1. शिशु के जीवन की प्रारंभिक भाषा .... होती है।
2. भाषा विकास की आरम्भिक अवस्था में शिशु के बबलाने की क्रिया .... पर आधारित होती है।

3. बालक के शब्द भण्डार में .... तथा .... दो प्रकार के शब्द भण्डार होते हैं।

2.15 वाणी एवं वाणी दोष

वाणी व भाषा दो ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग लोगों द्वारा सामान्य बोलचाल में एक दूसरे के पर्याय के रूप में किया जाता है हालांकि दोनों शब्दों का अर्थ अलग-अलग है। वाणी में हम भाव को व्यक्त करने के लिए मुख से ध्वनि या शब्दों को उच्चारित करते हैं। स्पष्ट व नियंत्रित ध्वनि को ही वाणी कहा जाता है। विकास क्रम के आरंभ में शब्द अस्पष्ट व अनियंत्रित उच्चारित होते हैं परन्तु स्नायु मंड़ल के विकास के साथ ही वाणी में स्पष्टता आ जाती है। बालक द्वारा उच्चारित सभी ध्वनियाँ वाणी नहीं होती हैं। जब बालक को उच्चारित शब्दों के अर्थ का ज्ञान हो तभी उत्पन्न ध्वनियाँ वाणी कहलाती हैं। वे ध्वनियाँ जिन्हें बालक के आस-पास रहने वाले व्यक्ति आसानी से समझ सकें, उसे वाणी विकास कहा जाता है। इस प्रकार ध्वनियों व शब्दों के सम्मिलित रूप को वाणी कहा जाता है। भाषा विकास वाणी विकास का विस्तृत रूप है। वाणी विकास से ही भाषा विकास की शुरुआत होती है। जन्म के उपरान्त कुछ माह तक शिशु वाणी के माध्यम से ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

अगले भाग में हम वाणी दोष के बारे में चर्चा करेंगे।

वाणी दोष

बालक की भाषा में कई प्रकार के दोष पाए जाते हैं। यह दोष स्वर यंत्र के पूर्ण रूप से परिपक्व न होने के कारण जीवन की प्रारंभिक अवस्था में देखने को मिलते हैं। ये दोष सामान्यतः अस्थायी होते हैं एवं आयु वृद्धि के साथ लुप्त हो जाते हैं। यदि वाणी दोषों को सुधारा नहीं जाए तो ये स्थायी हो जाते हैं जो बच्चों में हीन भावना विकसित कर उनके व्यक्तित्व विकास को कुंठित कर देते हैं। वाणी दोष से ग्रसित बच्चों को सामाजिक समायोजन में भी कठिनाई होती है।

हरलॉक के अनुसार बच्चों के वाणी दोष का संबंध उनकी दोषपूर्ण तथा अशुद्ध भाषा से होता है। दोषपूर्ण शब्द का प्रयोग अधिकांशतः उच्चारण संबंधी दोषों के लिए किया जाता है लेकिन विस्तृत अर्थों में इसका प्रयोग किसी भी प्रकार के भाषा दोष के लिए किया जा सकता है। विकार शब्द का प्रयोग उच्चारण के गंभीर दोषों के लिए किया जाता है। बच्चों में पाए जाने वाले कुछ सामान्य वाणी दोष निम्न प्रकार हैं:

- **भ्रष्ट उच्चारण (Lisping):** यह बच्चों में पाए जाने वाला एक सामान्य दोष है। भ्रष्ट उच्चारण के कई कारण होते हैं जैसे जबड़ों, दाँतों व होंठ की रचना का ठीक न होना, बच्चे

की शैशव कालीन भाषा को दोहराने की प्रवृत्ति व माता-पिता द्वारा भाषा का उच्चारण स्पष्ट न होना आदि। जिस उच्चारण का संबंध वातावरण या शैशव कालीन भाषा से होता है, वह विद्यालयी अवस्था में लुप्त हो जाता है। ऐसा दूसरे बच्चों के द्वारा उपहास से बचने के प्रयास में होता है। भ्रष्ट उच्चारण का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि बच्चों के इस प्रकार के उच्चारण का उनके संरक्षक आनन्द लेते हैं जिससे इस प्रकार के विकार को बढ़ावा मिलता है।

- **अस्पष्ट उच्चारण (Slurring):** अस्पष्ट उच्चारण से अभिप्राय है बच्चे का शब्द के किसी एक अक्षर को ठीक से उच्चारित न कर पाना। यह दोष प्रायः होंठ, जीभ व जबड़े की निष्क्रियता व मांसपेशियों में विकृति, उत्तेजना, संवेगात्मक तनाव व बहुत जल्दी-जल्दी बोलने के कारण होता है। यदि 4 वर्ष की आयु तक यह दोष दूर न किया जाए या स्वतः दूर न हो तो यह स्थाई रूप ले लेता है।
- **तुतलाना (Stuttering):** तुतलाने में बालक किसी शब्द के प्रथम अक्षर या समूह को या पूरे शब्द को ही कई बार दोहराता है, जैसे ग ग ग ग गाड़ी। इसमें बालक की वाणी में पूर्ण सामंजस्य का अभाव होता है तथा वाणी पुनरावृत्ति वाली होती है। तुतलाने का वाणी दोष जीवन की प्रारंभिक अवस्था अर्थात ढाई वर्ष में ही शुरु हो जाता है जबकि कुछ बच्चों में तुतलाना 6 वर्ष की अवस्था में प्रारंभ होता है। तुतलाने का कोई निश्चित कारण नहीं होता है। कुछ बच्चे केवल माता-पिता के सामने ही तुतलाते हैं जबकि कुछ बच्चे अजनबी व्यक्तियों के साथ समायोजित न कर पाने की स्थिति में भय व घबराहट के कारण तुतलाते हैं। बालक का समायोजन जैसे-जैसे अच्छा होता जाता है, उसका तुतलाना कम होता जाता है।
- **हकलाना (Stammering):** हकलाना तुतलाने से भिन्न होता है। तुतलाने में किसी ध्वनि को बार-बार दोहराया जाता है जबकि हकलाने में ध्वनि अवरुद्ध हो जाती है। अर्थात ध्वनि का अवरुद्ध होना ही हकलाने का प्रमुख कारण है। हकलाने की उत्पत्ति संवेगात्मक परिस्थितियों अर्थात भय और घबराहट के कारण होती है। इस स्थिति में बालक के चेहरे में तथा शारीरिक स्थिति में असंतुलन या परिवर्तन आते हैं। हकलाना स्वर यंत्र, गला, जीभ, फेफड़ों तथा होंठों के बिगड़े हुए संतुलन के कारण उत्पन्न दोष होता है। ट्रेविस ने हकलाने का कारण मस्तिष्क में श्रवण और वाक् केन्द्रों का विकृत हो जाना बताया है। हकलाना बालक के समायोजन एवं विकास को प्रभावित करता है।
- **तीव्र अस्पष्ट वाणी (Cluttering):** इस प्रकार के वाणी विकार में बोलने की गति तीव्र होती है तथा शब्द अस्पष्ट होते हैं जिस कारण भाषा पूर्ण रूप से समझ नहीं आती है।

वाणी दोषों के बारे में जानने के बाद आइए इन दोषों को दूर करने के उपायों की चर्चा करें।

वाणी दोष दूर करने के उपाय

वाणी दोष बालक के सर्वांगीण विकास को प्रभावित करता है एवं उनमें हीनता के भाव को उत्पन्न करता है। बच्चों को वाणी संबंधी दोषों से बचाने के लिए माता-पिता व शिक्षकों को ऐसे बच्चों की सहायता करनी चाहिए तथा कुछ उपाय करने चाहिए। ये उपाय निम्न हैं:

- प्रशिक्षण: बच्चों को प्रारंभ से ही उचित एवं सही उच्चारण का प्रशिक्षण देना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो बच्चों को वाणी विशेषज्ञों की सहायता से प्रशिक्षण दिलाना चाहिए।
- उपहास न करना: बच्चों द्वारा बोले गए शब्दों के लिए उनका उपहास नहीं करना चाहिए एवं सबके सामने उनकी हँसी नहीं करनी चाहिए। इससे उनके मन में हीन भावना विकसित होती है एवं उनके व्यक्तित्व पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- वाणि दोषयुक्त बच्चों से सहानुभूति पूर्वक व्यवहार करना चाहिए। उनके इस दोष के लिए उन्हें हीन भावना से नहीं देखना चाहिए।
- बच्चों के मस्तिष्क से भय, संघर्ष, संकोच, घबराहट आदि का निवारण करना चाहिए।
- अस्पष्ट उच्चारण की प्रवृत्ति को बढ़ावा नहीं देना चाहिए।
- माता-पिता को बच्चों पर कठोर नियंत्रण नहीं करना चाहिए। इससे उनमें संवेगात्मक तनाव उत्पन्न होता है।
- माता-पिता व शिक्षकों को स्पष्ट उच्चारण करना चाहिए क्योंकि बच्चे शब्दों के उच्चारण में उन्हीं का अनुकरण करते हैं।
- अपने आयु वर्ग के बच्चों के साथ उठने-बैठने व खेलने के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने चाहिए तथा उन्हें आपस में वार्तालाप के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- यदि बालक में वाणी दोष जन्म से ही आरंभ हो तथा ज्यादा समय तक बना रहे तो इसके निवारण हेतु चिकित्सकीय सलाह लेनी चाहिए।

वाणी दोषों को दूर कर बालक के जीवन को स्वस्थ एवं सरल बनाया जा सकता है।

2.16 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

भाषा विकास प्रत्येक बालक में एक समान होता है। कुछ बच्चों के शब्द भण्डार विस्तृत होते हैं एवं उच्चारण में स्पष्टता होती है। इसके विपरीत कुछ बच्चों के शब्द भण्डार अपेक्षाकृत कम विस्तृत होते हैं तथा उच्चारण अस्पष्ट होता है। यह अंतर व्यक्तिगत भिन्नताओं तथा भाषा के विलम्बित या सीमित विकास के कारण होता है। भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्व निम्न हैं:

1. **परिपक्वता:** भाषा का विकास भी क्रियात्मक विकास के समान प्रारंभिक अवस्था में स्नायुओं की परिपक्वता पर निर्भर करता है, जैसे स्वरयंत्र, मस्तिष्क के वाणी केन्द्र, गला,

जीभ, होंठ, दाँत आदि का परिपक्व न होना। जब तक सभी अंग परिपक्व होकर अपना कार्य नहीं करते तब तक बच्चे की भाषा अच्छी तरह से प्रस्फुटित नहीं हो पाती है। अंगों की दृढ़ता के साथ वाणी व भाषा भी विकसित हो जाती है।

2. **सीखना व अनुकरण:** स्नायुविक परिपक्वता तथा अंगों की दृढ़ता प्राप्ति के उपरांत भाषा विकास वातावरण पर भी निर्भर करता है। वातावरण से तात्पर्य है सीखने के अवसर व अनुकरण की प्रवृत्ति। जिन घरों में बच्चों की संख्या अधिक होती है वहाँ छोटे बच्चे बड़े बच्चों का अनुकरण कर शीघ्र बोलने लगते हैं। 9-10 महीने के पश्चात् बच्चों में अनुकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, अतः माता-पिता व अन्य सदस्यों को ध्यान रखना चाहिए कि बच्चों के समक्ष भ्रष्ट भाषा का प्रयोग न कर अच्छे एवं उचित शब्दों का यथा संभव प्रयोग करें। साधारणतया शिक्षित व सुसंस्कृत परिवारों में बच्चे शिष्ट व सुंदर भाषा का अनुकरण करते हैं, इसलिए उनके शब्द भण्डार में अच्छे शब्दों की बाहुल्यता देखने को मिलती है।
3. **अभिप्रेरणा:** भाषा विकास में अभिप्रेरणा, प्रलोभन व प्रोत्साहन का महत्वपूर्ण स्थान है। माता-पिता द्वारा किए गए प्यार दुलार छोटे बच्चों को शब्दों के उच्चारण हेतु प्रोत्साहित करते हैं। माता-पिता का स्नेह पाकर बच्चा उनके द्वारा बोले गए शब्दों को दोहराता है। जैसे ही बच्चा थोड़ा-थोड़ा उच्चारण आरंभ करे, तब उसी शब्द से संबंधित शब्दों के बारे में उससे प्रश्न करना चाहिए। इससे बच्चे को शब्दों के सही उच्चारण हेतु प्रोत्साहन मिलता है तथा उसे शब्दों के अर्थों का भी सही ज्ञान होता है।
4. **शब्द-अर्थ साहचर्य:** शब्दार्थ का सही ज्ञान न होने के कारण शब्दों को याद रखना व बोलना बच्चे के लिए कठिन होता है। नए शब्दों को बोलने में बच्चा हिचकिचाता है। अनुबंधन प्रक्रिया के द्वारा ही बच्चा नए शब्दों को ग्रहण कर पाता है। जिन वस्तुओं व व्यक्तियों की प्रतिमा बालक के मानस पटल पर अंकित होती है, उन्हें याद रखना व उनसे संबंधित शब्दों को उच्चारित करना वह सरलता पूर्वक कर पाता है।
5. **बुद्धि:** बुद्धि व भाषा विकास का आपस में घनिष्ठ संबंध है। जिन बच्चों की बुद्धि प्रखर होती है, उनमें भाषा जल्दी विकसित होती है। मंद बुद्धि बच्चों में बोलने की क्षमता देर से विकसित होती है। बुद्धिमान बालक के भीतर वृहद शब्द भंडार, शुद्ध उच्चारण, उचित शब्द चयन व वाक्य रचना की क्षमता/कौशल पाई जाती है।
6. **पारिवारिक संबंध:** जिन बच्चों के पारिवारिक संबंध अच्छे होते हैं वे जल्दी बोलना सीख जाते हैं। बाल मनोवैज्ञानिक थॉमसन, मैकार्थी व स्पिंज ने अनाथालय के कुछ बच्चों पर अध्ययन किया जहाँ पारिवारिक संबंधों का अभाव था और यह पाया कि वे बच्चे अधिक रोते हैं एवं कम बबलाते हैं। मुख से ध्वनियों की संख्या भी कम होने से उनका भाषा विकास देर से होता है।

7. निर्देशन: प्रेरणा के साथ भाषा विकास के लिए उचित निर्देशन की भी आवश्यकता होती है। बच्चों के उचित भाषा विकास के लिए संरक्षकों का निर्देशन भी अत्यंत आवश्यक है। निर्देशन द्वारा बच्चे में शुद्ध उच्चारण व शब्द भण्डार विकसित किया जा सकता है। उचित निर्देशन के अभाव में बच्चे का भाषा विकास बाधित हो जाता है।

8. व्यक्तिगत भिन्नता: जो बालक बहिर्मुखी, उत्साही, सामाजिक व आर्थिक रूप से सुदृढ़ होते हैं, उनमें भाषा विकास अंतर्मुखी व शांत बच्चों की अपेक्षा शीघ्रता से होता है।

9. सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति: जिन बच्चों के परिवार की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति उत्तम होती है उनमें भाषा विकास भी उत्तम होता है। शिक्षित माता-पिता के संपर्क में बच्चे शुद्ध उच्चारण एवं सौम्य व सुन्दर शब्द भंडार विकसित करते हैं तथा भ्रष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करते हैं। इसके विपरीत अशिक्षित माता-पिता व निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में बच्चे का भाषा विकास प्रभावित होता है, बच्चे गन्दे भ्रष्ट शब्दों का प्रयोग भी सीख जाते हैं।

10. कई भाषा का प्रयोग: जिन परिवारों में एक से अधिक भाषाएं बोली जाती हैं, उन परिवारों में बच्चों का भाषा विकास ठीक ढंग से नहीं हो पाता है। कई भाषाओं के शब्दों को याद रखना बच्चे के लिए कठिन होता है। साथ ही व्याकरण के नियमों का पालन करना भी कठिन होता है। दो या अधिक भाषाओं के प्रयोग से बालक में घबराहट व अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है एवं बालक यह निश्चित नहीं कर पाता कि किसी भाव को व्यक्त करने के लिए उसे किन शब्दों का प्रयोग करना है।

11. लिंग भिन्नता: प्राय:यह देखा गया है कि लड़कियों का शब्द भण्डार, वाक्यों में शब्दों की संख्या, वाक्य प्रयोग तथा शब्दों का चयन लड़कों की अपेक्षा बेहतर तथा परिष्कृत होता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा जल्दी बोलना सीखती हैं एवं उनका भाषा विकास शीघ्रता से होता है।

इन तत्वों के बारे में जानने के बाद आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करें।

अभ्यास प्रश्न 8

सही अथवा गलत बताइए।

1. अस्पष्ट उच्चारण दोष प्राय: मांसपेशियों में विकृति, संवेगात्मक तनाव तथा बहुत जल्दी-जल्दी बोलने के कारण होता है।
2. बोलते समय ध्वनि का अवरुद्ध हो जाना तुतलाने का कारण है।
3. कई भाषाओं का प्रयोग करने वाले परिवारों के बच्चों का भाषा विकास शीघ्रता से होता है।

4. बहिर्मुखी तथा आर्थिक रूप से सुदृढ़ परिवारों के बच्चों की भाषा जल्दी विकसित होती है।

2.17 सारांश

नवजात अवस्था के दौरान होने वाला विकास नवजात के शारीरिक बनावट एवं संवेदी क्षमताओं तथा इसके साथ-साथ आकार एवं बनावट, मांसपेशियों, हड्डियों तथा मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों के बारे में सुझाव देता है। यह हमें उन सभी महत्वपूर्ण परिवर्तनों के सम्बन्ध में जानकारी देता है जो एक वर्ष की उम्र तक शिशु में होते हैं। हमने विकास के दोनों प्रकार के सिद्धांतों, शारीरिक परिपक्वता तथा कौशलों को सीखना, के अनुसार शारीरिक तथा क्रियात्मक विकास में सम्बन्ध एवं समन्वय के बारे में पढ़ा।

इस इकाई में आपने शैशवावस्था में संज्ञानात्मक विकास के सम्बन्ध में भी जाना जिसके अंतर्गत आपने बुद्धि तथा बुद्धिलब्धि के सम्बंध में पढ़ा। आपने यह भी देखा कि किस प्रकार किसी बच्चे की बुद्धि की गणना की जा सकती है। इसी के अन्तर्गत आपने जीन पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत भी पढ़ा और अंत में आपने शैशवावस्था में होने वाले सृजनात्मक विकास के बारे में पढ़ा।

शैशवावस्था में भाषा विकास के बारे में भी हमने इस इकाई में अध्ययन किया। इस इकाई में हमने मानव जीवन में भाषा विकास के महत्व के बारे में जाना। भाषा विकास के मुख्य सिद्धांतों जैसे स्वरयंत्रों की परिपक्वता, अनुकरण तथा अनुबंधन की प्रणाली आदि के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की। हमने भाषा विकास के विभिन्न चरणों, सिद्धातों तथा महत्व के बारे में जाना। बच्चों की भाषा में पाए जाने वाले विभिन्न वाणी दोषों जैसे भ्रष्ट तथा अस्पष्ट उच्चारण, हकलाना, तुतलाना आदि के बारे में जाना तथा उन्हें दूर करने के उपायों पर विस्तृत चर्चा की। अंत में भाषा विकास पर प्रभाव डालने वाले कारकों का अध्ययन किया जैसे परिपक्वता, अनुकरण करना, बुद्धि, पारिवारिक संबंध, व्यक्तिगत भिन्नता आदि। ये सभी तत्व बच्चों के भाषा विकास पर प्रभाव डालते हैं।

2.18 पारिभाषिक शब्दावली

- **हैबीचुएशन या आदी होना:** एक ही प्रकार का सीखना जिसमें किसी उद्दीपन से परिचितता प्रतिक्रिया को कम कर देती है या रोक देती है।
- **समन्वय या इंटीग्रेशन:** वह प्रक्रिया जिसमें न्यूरांस माँसपेशी समूह की क्रियाविधि के साथ समन्वय करते हैं।

- **मायलीनेशन:** वह प्रक्रिया जिसमें न्यूरान्स के बाहर एक वसीय परत जम जाती है जो कोशिकाओं के मध्य प्रसार को तीव्र करती है।
- **न्यूरान्स:** तंत्रिका कोशिका।
- **अनुभूति या परसेप्शन:** महसूस करने के आधार पर व्याख्या।
- **अनुक्रिया गतिविधि:** उद्दीपन के प्रति स्वचालित, अनैच्छिक एवं जन्मजात प्रतिक्रिया।
- **सृजनात्मकता:** किसी व्यक्ति की वह योग्यता जिसके द्वारा वह किसी नये विचार या नई वस्तु का निर्माण करता है या किसी नई वस्तु की खोज करता है।
- **बुद्धि:** बुद्धि विभिन्न मानसिक योग्यताओं का एक समूह है।
- **स्नायुतंत्र:** तंत्रिका तंत्र (Nerve fibers)
- **अनुबंधन:** मिला हुआ, संबंधित

2.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. शरीर निर्माण, पारिवारिक प्रभाव, पोषण, लिंग, जातीयता, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति।
2. a. 2.0, 3.0 b. दृष्टि c. 3 या 4 d. मायलीनेशन

अभ्यास प्रश्न 2

a. मस्त्काधोमुखी विकास क्रम सिद्धांत के अनुसार शारीरिक वृद्धि और क्रियात्मक विकास ऊपर से नीचे की ओर होता है अर्थात सिर से पैर को।

b. निकट दूर विकास क्रम सिद्धांत के अनुसार शारीरिक वृद्धि और क्रियात्मक विकास शरीर के केन्द्र से बाहर को होता है।

c. हाथ दृष्टि समन्वय को दृष्टि क्रिया समन्वय भी कहते हैं जिसमें कोई भी क्रिया करने के लिए दृष्टि एवं क्रिया कौशल दोनों सम्मिलित होते हैं।

d. स्थूल क्रिया कौशल में बड़ी मांसपेशियों की क्रियाएँ शामिल होती हैं जैसे हाथ हिलाना या चलना।

e. सूक्ष्म क्रिया कौशल में महीन कौशल आते हैं जैसे पकड़ना।

अभ्यास प्रश्न 3

1. स्थूल एवं सूक्ष्म क्रिया कौशलों का विकास, अनुक्रिया एवं अनुक्रिया गतिविधि का विकास, सिर नियंत्रण, जन्मजात गति।

2. चलित गतिविधियों में पलटना (5 माह), खिसकना (6 से 10 माह), बैठना (7 माह), सहारे से खड़े होना (8 से 9 माह), बिना सहारे खड़े होना (12 माह), कदम बढ़ाना (6 से 7 माह), सहारे से चलना (9 से 11 माह) तथा खुद अकेले चलना (12 माह) आते हैं।

अभ्यास प्रश्न 4

इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 5

इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 6

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दें।

1. भाषा द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति होने के कारण बच्चों को सामाजिक समायोजन में कठिनाई नहीं होती है। जो व्यक्ति कई भाषाओं का ज्ञाता होता है, उसे समाज में समायोजित होने में आसानी होती है।
2. कोमास्की ने बालक के भाषा विकास “Language Acquisition Device (LAD)” के आधार पर समझाया।
3. हमारे मस्तिष्क के cerebrum भाग के दो हिस्से होते हैं जिसे क्रमशः बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर तथा दायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर कहा जाता है। बायाँ सेरीब्रल हेमीस्फीयर व्यक्ति के भाषा विकास से संबंधित है।

अभ्यास प्रश्न 7

रिक्त स्थान भरिए।

1. क्रन्दन/रूदन
2. अनुकरण
3. सामान्य, विशिष्ट

अभ्यास प्रश्न 8

सही अथवा गलत बताइए।

1. सही
2. गलत
3. गलत
4. सही

2.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
2. डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान: बाल विकास। बारहवां संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. डॉ0 जे0एन0 लाल एवं अनीता श्रीवास्तव, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान। तृतीय संस्करण, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 वीना निगम, मातृ कला एवं बाल विकास। पंचम संस्करण।
5. S.P. Chaube, Child Psychology. Lakshmi Narain Agarwal Educational Publishers, Agra.
6. Hurlock, E.B. (2008), Child Development, Sixth edition, Tata Gram-Hill Publishing Company, Ltd., New Delhi.
7. Brisbane, H.E. (2010), The Devveloping Child, Mc Gram Hill, Glencoe.
8. Papalia, D.E., Olds, S.W. and Feldman, R.D., (2006), Human Development, Ninth edition, Tata Mc Graw Hill Publishing Company Limited, New Delhi.
9. Smart, M.S. and Smart, R.C. (1982), Children: Development and Relationships, Fourth edition, Macmillan Publishing Co., Inc., New York.
10. Santrock, J.W. and Yussen S.R. (1988), Child Development and An Introduction, Fourth edition, Wm.C. Brown Publishers, Iowa.

2.21 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक नवजात शिशु की शारीरिक बनावट एवं संवेदी क्षमताओं के बारे में बताइये।
2. नवजात अवस्था के दौरान आकृति एव आकार, मांसपेशी, हड्डियां तथा मस्तिष्क में होने वाले महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बारे में बताइये।
3. शारीरिक एवं क्रियात्मक विकास के मध्य सम्बन्ध एवं समन्वय होता है, इसे सिद्ध कीजिए।
4. नवजात अवस्था के अंत में प्राप्त होने वाले बड़े मील के पत्थरों की चर्चा कीजिए।
5. शैशवास्था में भाषा विकास की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
6. भाषा विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की व्याख्या करें।

7. भाषा दोष के प्रकारों की विस्तृत चर्चा करें।
8. भाषा संबंधी दोषों को दूर करने के उपायों का वर्णन करें।

इकाई 3: शैशवावस्था में सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 सामाजिक विकास की विशेषताएँ
3.4 सामाजिक विकास के मानदण्ड
3.5 शैशवावस्था में सामाजिक विकास
3.6 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
3.7 संवेग: परिभाषा एवं विशेषताएँ
3.8 संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ
3.9 संवेगों का महत्व
3.10 संवेगात्मक विकास में परिपक्वता की भूमिका
3.11 बालकों के संवेगों की विशेषताएँ
3.12 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास
3.13 संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक
3.14 संवेगात्मक स्थिरता
3.15 संवेगात्मक संतुलन
3.16 सारांश
3.17 पारिभाषिक शब्दावली
3.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जन्म के समय शिशु पूर्णतया निर्बल, असहाय एवं दूसरों पर आश्रित होता है। इस अवस्था में वह न तो सामाजिक होता है, न असामाजिक और न ही समाज विरोधी। उसे अपने प्रत्येक कार्य हेतु माता-पिता व आस-पास के लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। आयु वृद्धि के साथ

बच्चा समाज के व्यक्तियों के संपर्क में आता है जिससे उसका सामाजिक विकास होता जाता है। हरलॉक के अनुसार कोई भी बच्चा जन्म से ही सामाजिक या असामाजिक नहीं होता है, अपने आसपास लोगों की उपस्थिति होते हुए भी वह अकेला ही होता है। वह समाज में दूसरों के संपर्क में आकर समायोजन की प्रक्रिया सीखता है। इसलिए समाजीकरण की प्रक्रिया बालक के सामाजिक विकास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया बालक को समाज में रहने योग्य बनाती है। समाजीकरण द्वारा व्यक्ति सामाजिक रीति-रिवाज, नियम, संस्कृति तथा गुणों को सीखता है और उसे पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित करता है। एच0 एम0 जॉनसन के अनुसार “समाजीकरण सीखने की वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति सामाजिक नियमों को सीखता है जो उसे समाज में रहने योग्य बनाते हैं और उसमें सहयोग की भावना का विकास करते हैं

वे प्रतिक्रियाएं जिनके माध्यम से मानव अपने आंतरिक उद्दीपनों को व्यक्त करते हैं, तदोपरांत हल्केपन का अनुभव करते हैं, संवेग कहलाते हैं। संवेग मानव जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण व बलवान पक्ष होता है। हम प्रतिदिन अपने व्यवहार के माध्यम से संवेगों का प्रदर्शन करते हैं। ये संवेग समय एवं परिस्थिति के अनुरूप बदलते रहते हैं। प्रौढ़ अपने संवेगों पर नियंत्रण रखने में सक्षम होते हैं परन्तु बच्चे संवेगों पर नियंत्रण रखने में असक्षम होते हैं। वे हर समय किसी न किसी संवेग का अनुभव करते हैं। बालकों के भीतर अनेक प्रकार के व्यवहारों को उत्पन्न करने में उनके संवेग ही प्रेरक वृत्तियों का कार्य करते हैं। संवेग बालकों के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लिए नितांत आवश्यक होते हैं एवं बालक के सामाजिक समायोजन में सहायता प्रदान करते हैं। संवेगात्मक विकास संज्ञानात्मक, शारीरिक व संवेगों की सम्मिलित प्रक्रिया द्वारा ही संभव है। इसके द्वारा बालकों के भीतर अनुभव, अभिव्यक्ति व सोचने विचारने की क्षमता व गुण विकसित होते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम बच्चों के सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के बारे में जानेंगे तथा मूल रूप से शैशवावस्था में इन विकासों पर चर्चा करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप:

- बच्चों में संवेगात्मक विकास के महत्व के बारे में जानेंगे;
- संवेगों की विशेषताओं की जानकारी ले पाएंगे;
- शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा कर पाएंगे;
- संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानेंगे;

- बच्चों में सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझ पाएंगे;
- सामाजिक विकास की विशेषताओं के बारे में जानेंगे;
- शैशवावस्था में सामाजिक विकास के बारे में समझेंगे; तथा
- सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्वों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

सर्वप्रथम हम सामाजिक विकास की विशेषताओं के बारे में चर्चा करेंगे।

3.3 सामाजिक विकास की विशेषताएँ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के मनुष्य के जीवन का कोई अस्तित्व नहीं है। बच्चे में सामाजिक गुणों का विकास एकाएक नहीं होता है वरन् सामाजिकता एक क्रमिक विकास है जो आयु वृद्धि के साथ अनुभवों के आधार पर होता है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण उसकी सामाजिकता द्वारा ही होता है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में सामाजिक गुणों का विकास तीव्र गति से, तत्पश्चात् मंदगति से होता है। सामाजिक विकास का मूलभूत आधार समाजीकरण है। समाजीकरण के द्वारा बालक समाज द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवहारों के अनुरूप कार्य करना सीखता है।

बच्चों में सामाजिक विकास एकाएक न होकर जीवन पर्यन्त चलने वाली एक क्रमिक प्रक्रिया है। विभिन्न आयु स्तरों पर सामाजिक विकास की अपनी विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। उसमें से कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं:

1. **आरम्भिक सामाजिक प्रक्रिया:** जन्म के समय बच्चा न तो सामाजिक होता है और न ही असामाजिक। आरम्भिक अवस्था में शिशु की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ ही सामाजिक विकास का प्रारम्भिक चरण है। बालक अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिए अपने आसपास रहने वाले व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर उनके प्रति प्रतिक्रियाएँ प्रदर्शित करता है।
2. **बच्चों के साथ प्रतिक्रिया:** सामाजिक विकास में बच्चों की अनुक्रिया/प्रतिक्रिया का महत्वपूर्ण योगदान है। जैसे-जैसे बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है, वह अपने विचारों का आदान-प्रदान करना सीखता है एवं सहयोग व मित्रता की भावना को विकसित करने लगता है।
3. **सामूहिक प्रतिक्रिया:** 3 से 4 वर्ष की अवस्था में बालक में सामूहिकता की भावना विकसित होने लगती है। खेल के माध्यम से बालक में मित्रता, आज्ञा पालन, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा, त्याग व नेतृत्व आदि गुणों का विकास होता है।
4. **सामाजिक प्रतिक्रिया:** 4 से 5 वर्ष की अवस्था में बालक का समाज के दूसरे व्यक्तियों के साथ सम्पर्क होता है। वह समाज द्वारा मान्य व्यवहारों का अनुकरण कर अमान्य

व्यवहार का त्याग करता है। सामाजिक प्रतिक्रियाओं के दौरान ही बालक में कई अन्य सामाजिक विशेषताएँ दिखाई देती हैं जो उसके सामाजिक विकास को प्रभावित करती हैं, जैसे झगड़ा, क्रोध, मार-पीट, सहानुभूति एवं सहिष्णुता, निषेधात्मकता, प्रतिस्पर्धा, सहयोग आदि। इन विशेषताओं के बारे में आइए विस्तृत रूप से जानें।

- **झगड़ा, क्रोध एवं मारपीट:** बच्चों में ये गुण बाल्यावस्था से ही पाया जाता है परन्तु इसका विकास सामाजिक परिस्थितियों एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है। जैसे एक से डेढ़ वर्ष के बालक के हाथ से खिलौना छीनने पर वह क्रोधित होकर रोने-चिल्लाने व हाथ-पैर पटकने लगता है। पूर्व बाल्यावस्था में झगड़ने व मारपीट की प्रवृत्ति ज्यादा होती है। परन्तु यदि माता-पिता उचित प्रशिक्षण दें तो बच्चों में लड़ने-झगड़ने की भावना का विकास होने से रोका जा सकता है।
- **निषेधात्मकता:** सामाजिक प्रतिक्रिया के अन्तर्गत इच्छापूर्ति में बाधा होने पर बच्चा निषेधात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करता है। निषेधात्मक स्थिति में वह नकारात्मक संवेगों का प्रदर्शन, तर्क-वितर्क व बड़ों की अवज्ञा करने लगता है। ऐसा व्यवहार बालक अपने सम्मान की रक्षा के लिए करता है।
- **सहानुभूति एवं सहिष्णुता:** सहानुभूति एवं सहिष्णुता एक स्वस्थ एवं सकारात्मक गुण है। बालक अपने मित्रों के साथ रहकर केवल झगड़ा या मारपीट करना ही नहीं सीखता है बल्कि उसमें सहानुभूति व सहिष्णुता के गुण भी विकसित होने लगते हैं। प्रारम्भ में बालक अपने परिवार के सदस्यों के प्रति सहानुभूति व सहिष्णुता प्रदर्शित करता है परन्तु बाद में समाज के लोगों के प्रति भी वह इस गुण को विकसित करता है।
- **प्रतिस्पर्धा:** यह भी सामाजिक प्रतिक्रियाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यह बालक को प्रगति की ओर अग्रसर करता है। प्रत्येक बालक दूसरे बालक से आगे निकलना चाहता है। इस कारण वह पढ़ाई में मन लगाता है एवं खेल-कूद में भी बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेता है। बालक में जब सामाजिक गुण उत्पन्न होते हैं तभी प्रतिस्पर्धा के गुण भी विकसित होने लगते हैं।
- **सहयोग:** सहयोग भी सामाजिक समायोजन के लिए एक आवश्यक सामाजिक तत्व है। सहयोग की भावना से बड़े से बड़ा कार्य भी आसानी से किया जा सकता है तथा अपने लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता है। यह गुण आपसी द्वेषों को भी दूर करता है।

3.4 सामाजिक विकास के मानदण्ड

सामाजिक विकास की विशेषताओं को जानने के पश्चात् अब हम इसके मानदण्डों की चर्चा करेंगे। सामाजिक विकास के मानदण्डों या कसौटियों से तात्पर्य उन विशेषताओं एवं लक्षणों

से है जिनके आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक का सामाजिक विकास किस तरह व किस दिशा में हो रहा है। कसौटी “criteria” शब्द से बना है जिसका अर्थ है; “A standard of Judging”. दूसरे शब्दों में इसे मानदण्ड भी कहा जा सकता है। सामाजिक विकास को मापने के लिए कुछ मानदण्ड निर्धारित किए जा सकते हैं जो निम्न प्रकार हैं:

1. **सामाजिक परिपक्वता:** सामाजिक परिपक्वता से तात्पर्य बच्चे के उस व्यवहार से है जो बच्चे की उस आयु विशिष्ट के आधार पर निर्धारित किए गए मानकों के अनुसार होता है। समाज के मूल्यों, नियमों, आदर्शों, परम्पराओं तथा संस्कृति के साथ सामाजिक परिपक्वता सुदृढ़ होती जाती है। बहिर्मुखी व्यक्तित्व के बालकों में अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले बालकों की अपेक्षा सामाजिक परिपक्वता अधिक पाई जाती है।
2. **सामाजिक समायोजन:** सामाजिक समायोजन से तात्पर्य बालक की उस योग्यता से है जिसके द्वारा वह स्वयं को शीघ्रता तथा आसानी से अपने समूह या समाज के सदस्यों के साथ स्थापित कर अपनी पहचान बनाता है। बच्चे के सामाजिक समायोजन में संवेगों का प्रभाव भी पड़ता है। नकारात्मक संवेगों से ग्रसित बालक का सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता। वहीं धनात्मक संवेगों की अनुभूति वाले बालक का सामाजिक समायोजन अच्छा/उत्तम होता है।
3. **सामाजिक अनुरूपता:** सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार कार्य करना सामाजिक अनुरूपता कहलाता है। प्रतिमान से तात्पर्य समूह या समाज के आदर्श, रीति-रिवाज, परम्परा, मूल्य, दर्शन, संस्कृति आदि से है।
4. **सामाजिक अंतःक्रियाएँ:** सामाजिक अंतःक्रिया समाज में उपस्थित दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच पारस्परिक प्रक्रिया या विचारों का आदान प्रदान होता है। यह मुख्यतः दो प्रकार से होती है: संगठनात्मक तथा विघटनात्मक।

संगठनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया सामाजिक सम्बन्धों को मजबूती एवं बल प्रदान करता है। ये सामाजिक ढाँचे को मजबूत बनाता है। संगठनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया के अन्तर्गत दया, त्याग, मित्रता, क्षमा, सहानुभूति, सहयोग आदि निहित हैं।

विघटनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया दोषपूर्ण सामाजिक विकास की ओर संकेत करता है। इससे सामाजिक सम्बन्धों में खटास उत्पन्न होती है। ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता, लोभ आदि विघटनात्मक सामाजिक अंतःक्रिया के अन्तर्गत निहित हैं।

5. **सहभागिता:** बालक द्वारा किस सीमा तक सामाजिक कार्यक्रमों में भागीदारी की जा रही है, इससे उसकी सामाजिक सहभागिता का पता लगाया जा सकता है। उत्तम व स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए सामाजिक सहभागिता का महत्वपूर्ण योगदान होता है।

इकाई के अगले खण्ड में हम शैशवावस्था में सामाजिक विकास का अध्ययन करेंगे तथा साथ ही जीवन की अन्य अवस्थाओं में सामाजिक विकास की संक्षिप्त चर्चा करेंगे। परन्तु इसके पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों पर दृष्टि डालें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. सामाजिक विकास क्रमिक रूप से जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।
   b. जन्म से 1 वर्ष की आयु की अवस्था में बच्चे में सामूहिकता की भावना विकसित होने लगती है।
2. सामाजिक परिपक्वता से आप क्या समझते हैं?
3. सामाजिक अंत:क्रियाएँ मुख्यत: कितने प्रकार की होती हैं?

3.5 शैशवावस्था में सामाजिक विकास

शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक, भाषात्मक व संवेगात्मक विकास की तरह ही सामाजिक विकास के भी कुछ निश्चित प्रतिमान होते हैं। इन प्रतिमानों का विकास एकाएक न होकर क्रमबद्ध तरीके से जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न गति से होता है। बच्चों की सामाजिक क्रियाओं के प्रति अभिवृत्तियाँ, रुचियाँ व साथियों के चुनाव के भी प्रतिमान होते हैं जिनके आधार पर बालक के सामाजिक विकास के स्तर का पता लगाया जा सकता है। जन्म के उपरान्त ही शिशु में सामाजिकता विकसित होने के कारण वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने आसपास के लोगों पर निर्भर होने लगता है। सामाजिक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है। प्रस्तुत खण्ड में हम मुख्य रूप से शैशवावस्था में सामाजिक विकास पर प्रकाश डालेंगे तथा जीवन की अन्य विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले सामाजिक विकास पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

शैशवावस्था में सामाजिक विकास

यह सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था है। इस अवस्था में शिशु मात्र एक जैविकीय प्राणी होता है जिसे अपनी प्रत्येक आवश्यकता हेतु दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह “सचेतनता” की अवस्था (Consciousness stage) कहलाती है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में शिशु उन व्यक्तियों के प्रति सचेतन होता है जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। प्रारम्भ में दो से ढाई माह के शिशु का समाज उसकी माँ होता है। वह अपनी माँ की आहट, आवाज व परछाई पहचानने लगता है और माँ के निकट जाना चाहता है। यदि माँ उसे अपने निकट नहीं लेती है तो वह रोने लगता है। लगभग तीन माह तक की आयु में शिशु की श्रवण

प्रणाली विकसित हो जाती है तथा दृष्टि पर भी नियंत्रण हो जाता है। वह अपने आसपास की वस्तुओं तथा लोगों की गतिविधियों का निरीक्षण करने लगता है। इस अवधि में वह अपने आसपास के लोगों के हाव-भाव तथा आवाज का अनुकरण करता है। पाँच से छः माह में शिशु दूसरे व्यक्तियों के प्रति भी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करता है। इस अवस्था में शिशु का सामाजिक विकास अधिक स्पष्ट हो जाता है जिस कारण वह क्रोधपूर्ण व मधुर वाणी में अन्तर समझने लगता है। इस आयु में उसका सामाजिक विकास पूर्व की अपेक्षा अधिक हो जाता है। सात से आठ माह में लोगों का ध्यानाकर्षित करने के लिए शिशु विभिन्न प्रकार के हाव-भाव प्रदर्शित करता है। वह परिचित व्यक्तियों को देखकर मुस्कुराता है व अपरिचित व्यक्ति के समक्ष शांत व ड़रा-सहमा रहता है। आठ से नौ माह का बालक भाषा सम्बन्धी ध्वनियों का अनुकरण करना प्रारम्भ कर देता है। वह वयस्कों तथा बड़े बच्चों के द्वारा किए गए व्यवहार सम्बन्धी अभिव्यक्तियों का भी अनुकरण करने लगता है। एक वर्ष का बालक स्वकेन्द्रित होता है। इस आयु में शिशु अधिक सामाजिक नहीं होता। डेढ़ वर्ष का बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलने लगता है परन्तु द्वंद की स्थिति इस समय अधिक होती है। दो वर्ष की अवधि पूर्ण होने तक बालक में द्वंद की भावना कम होकर सहयोग की भावना विकसित होने लगती है। जन्म से लेकर 2 वर्ष की अवधि तक बच्चों में सामाजिक विकास तीन अवस्थाओं में होता है जिसका वर्णन निम्न प्रकार है:

- प्रथम अवस्था में शिशु विभिन्न व्यक्तियों में अन्तर करने में असमर्थ होता है। वह अपने आसपास रहने वाले लोगों को देखता है व मुस्कुराता है। यह अवस्था कुछ सप्ताह की होती है।
- द्वितीय अवस्था में शिशु मानव चेहरों को पहचानने लगता है। इस अवस्था में वह अपनी माँ व आसपास रहने वाले लोगों को देखकर तीव्र प्रतिक्रिया करता है एवं हाथ-पैर मारना व मुस्कुराना आदि क्रियाएं प्रतिक्रिया स्वरूप करता है।
- तृतीय अवस्था तब विकसित होती है जब बच्चा चलने में सक्षम हो जाता है। वह स्वयं लोगों के समीप जाकर सामाजिक संपर्क बनाता है।

शैशवावस्था की कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएँ

शैशवावस्था में शिशु में कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएं देखी जा सकती हैं। दो वर्ष तक के बालक में मुख्यतः निम्न सामाजिक प्रतिक्रियाएं देखी जा सकती हैं:

1. **ध्यानाकर्षण:** ध्यानाकर्षण की प्रवृत्ति शैशवावस्था से प्रारम्भ हो जाती है। दूसरों का ध्यानाकर्षित करने के लिए शिशु रोना, चिल्लाना, हाथ-पैर पटकना, जमीन पर लेटना आदि क्रियाएं करता है।

2. **अनुकरण:** अनुकरण ही बालक को सामाजिक बनाता है। एक से डेढ़ वर्ष में बालक मुखाकृतियाँ (Facial expressions), हाव-भाव (Gesture), भाषा एवं गति (Language and movement) और सम्पूर्ण व्यवहार प्रतिमान का अनुकरण करना सीखता है।
3. **आश्रितता:** जन्म से 2 वर्ष तक की अवधि के दौरान बच्चों में आश्रितता की प्रवृत्ति होती है। वह अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों पर आश्रित होता है।
4. **शर्मीलापन:** एक वर्ष का बालक अपरिचित व्यक्तियों को देखकर शर्माने की क्रियाएँ करता है।
5. **ईर्ष्या:** शिशु में ईर्ष्या की भावना 1 वर्ष में आरम्भ हो जाती है। ईर्ष्या की उत्पत्ति माँ के दूसरे बालक को गोद में उठाने, दुलारने की स्थिति में एवं बालक के खिलौने से दूसरे बालक के खेलने की स्थिति में होती है।
6. **निषेधात्मक व्यवहार:** लगभग एक वर्ष के बालक में निषेधात्मक व्यवहार देखने को मिलता है। इस अवस्था में बालक में आज्ञा के विपरीत कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। आज्ञा का उल्लंघन करते समय वह मुस्कुराकर खुशी या आनन्द की प्राप्ति करता है।
7. **सहयोग:** एक से डेढ़ वर्ष की अवस्था में बच्चों में ईर्ष्या एवं लड़ाई-झगड़े की प्रवृत्ति पाई जाती है। किन्तु 2 वर्ष की आयु तक पहुँचने पर उनमें सहयोग की भावना विकसित होने लगती है।
8. **स्वप्रेमी:** जैसा कि आप जानते हैं कि इस अवस्था में बालक स्वकेन्द्रित व स्वप्रेमी होता है। वह अपनी माता से लेकर घर के सभी चीजों पर अपना ही अधिकार समझता है एवं अपनी क्रियाओं द्वारा दूसरों का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास करता है।

जैसा कि आपने अनुभव किया होगा कि समाजीकरण की प्रवृत्ति बच्चों में प्रारम्भिक अवस्था से ही विकसित हो जाती है परन्तु यदि माता-पिता बच्चे को समाज से दूर रखें तो उसका समाजीकरण संभव नहीं हो पाता। अतः माता-पिता एवं परिवार के सदस्यों को बालक में सामाजिकता के विकास में सहयोग करना चाहिए।

अगले खण्ड में हम जीवन की अन्य विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले सामाजिक विकास पर संक्षिप्त में चर्चा करेंगे। इन पर विस्तृत चर्चा हम आने वाली इकाईयों में करेंगे।

• पूर्व बाल्यावस्था (2-6 वर्ष) में सामाजिक विकास

पूर्व बाल्यावस्था में सामाजिक विकास की गति काफी तीव्र होती है क्योंकि इस समय बालक पारिवारिक दायरे से बाहर निकलकर अपने आसपास, स्कूल में अपने मित्रों व शिक्षकों के

सम्पर्क में आकर उनसे समाज के नियमों व मान्यताओं को सीखता है एवं अपनी मनोवृत्तियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन लाता है। इस अवस्था में बालक में निम्न प्रमुख सामाजिक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं:

1. **अनुकरण:** अनुकरण ही बालक को सामाजिक प्राणी बनाता है। 3-4 वर्ष का बालक मुखाकृतियों, हाव-भाव, भाषा एवं गतिविधियों का अनुकरण करना सीख जाता है।
2. **खेल:** पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों के भीतर खेल की भावना तीव्रता से विकसित होती है। खेलों के द्वारा ही बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं सामूहिकता की भावना का विकास होता है।
3. **निषेधात्मकता:** आज्ञा के विपरीत कार्य करना निषेधात्मकता कहलाता है। बच्चों में इस प्रवृत्ति का विकास पूर्व बाल्यावस्था में चरम सीमा पर होता है। निषेधात्मक व्यवहार की अभिव्यक्ति क्रियाओं में हस्तक्षेप व इच्छापूर्ति न होने पर होती है।
4. **आक्रामकता:** पूर्व बाल्यावस्था में आक्रामकता का गुण कुछ मात्रा में अवश्य होता है। आयु वृद्धि के साथ 5 वर्ष की आयु में यह अपनी चरम सीमा पर होता है। इसके बाद इसकी तीव्रता एवं आवृत्ति दोनों ही कम हो जाती हैं। बालक के व्यवहार में आक्रामकता माता-पिता के असमान व्यवहार, ध्यानार्कषण, प्रभुत्व की भावना एवं क्रिया में व्यवधान के कारण होता है।
5. **झगड़ा तथा मारपीट:** इस आयु में बालक अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए सामूहिक खेलों में अन्य बालकों से झगड़ा व मारपीट करते हैं।
6. **सहयोग व सहानुभूति:** जहाँ एक ओर बालक झगड़ा व मारपीट करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनमें सहयोग व सहानुभूति की भावना भी विकसित होने लगती है। बालक में न केवल परिवार बल्कि समूह व साथियों के शारीरिक व मानसिक कष्टों में सहयोग व सहानुभूति की भावना देखने को मिलती है।
7. **चिढ़ाना व तंग करना:** यह एक असमाजिक व निषेधात्मक व्यवहार है। यह मौखिक आक्रामक व्यवहार है जिससे बालक मानसिक प्रहार कर दूसरे बालक को क्रोधित कर एवं रुलाकर आनन्दित होता है।
8. **ईर्ष्या:** यह भी निषेधात्मक व्यवहार है जो 3-6 वर्ष की अवस्था में विकसित होता है। ईर्ष्या मुख्यत: प्रतियोगिता व प्रतिस्पर्धा के कारण विकसित होती है।
9. **प्रतियोगिता:** यह एक स्वस्थ सामाजिक विकास है जो 3 वर्ष की अवस्था से देखा जा सकता है। 4 वर्ष का बालक उत्तमता एवं श्रेष्ठता के भाव को अच्छी तरह समझता है। इसी कारण वह दूसरों से श्रेष्ठ व अच्छा बनने का प्रयास करता है। प्रतियोगिता की भावना का विकास ईर्ष्या की भावना से होता है।

10. **मित्रता:** लगभग 5 वर्ष की आयु में मित्रता का भाव स्थाई हो जाता है। बालक अपने मित्रों का चुनाव अपने पारिवारिक स्तर, समान आयु, पास-पड़ोस, लिंग आदि के आधार पर करता है।

- **उत्तर बाल्यावस्था (6-12 वर्ष) में सामाजिक विकास**

उत्तर बाल्यावस्था तक बच्चों में क्रियात्मक, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक व भाषा सम्बन्धी विकास होने के कारण वह अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति बेहतर ढंग से करने लगते हैं। इस अवधि को टोली अवस्था भी कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में बालक अपनी आयु, विचार व एक जैसी क्रिया कलापों के बच्चों के समूह में रहना पसंद करते हैं। इस अवस्था में विकसित होने वाली प्रमुख सामाजिक विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

1. **सामुदायिकता:** इस अवस्था में समूह के बीच रहने व सामाजिक समायोजन स्थापित होने के कारण बालक में सामुदायिक भावना विकसित होने लगती है। बालक के स्कूल जाने की वजह से उसका सामाजिक दायरा बढ़ जाता है।
2. **समूह भक्ति:** सामाजिक दायरा व मित्रों के साथ समायोजन स्थापित होने के कारण बालक धीरे-धीरे समूह प्रेमी बन जाता है। वह अपनी योजनाओं में अपने मित्रों को सम्मिलित करता है क्योंकि परिवार के बजाय वह मित्रों के विचारों को अधिक महत्त्व देता है।
3. **मित्रता:** इस अवस्था में बालक में मित्रता एवं सहयोग की भावना अधिक होती है तथा द्वेष कम होता है।
4. **यौन विरोध:** इस अवस्था में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण कम होता है एवं बच्चे समान लिंग के साथियों के साथ खेलना पसंद करते हैं। उन्हें विपरीत लिंग के बच्चों का हस्तक्षेप पसंद नहीं होता है।
5. **नेतृत्व:** पूर्व बाल्यावस्था में बालक आक्रामक व स्वप्रेमी होने के कारण दूसरों पर अपना प्रभुत्व नहीं दिखा पाता परन्तु उत्तर बाल्यावस्था में बहिर्मुखी प्रतिभा के बालक अपनी बुद्धि व आत्म संयम के गुणों के कारण दूसरों पर अपना नेतृत्व स्थापित करने में सफल हो जाते हैं।
6. **सहयोग:** खेलों के माध्यम से बच्चों में सहयोग तथा सुरक्षा की भावना विकसित होती है।
7. **सहानुभूति:** सामूहिकता के कारण बालक में दया, प्रेम, त्याग व सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है जो न केवल परिवार अपितु मित्रों के प्रति भी अभिव्यक्त होता है।
8. **प्रतियोगिता एवं स्पर्धा:** इस अवस्था में बालक अपने लक्ष्यों के प्रति सजग होते हैं। इसी कारण वे प्रतियोगिता कर अपने साथियों से आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं।

9. **खेल की भावना:** सामूहिक खेलों में प्रवृत्ति बढ़ने के कारण लड़के घर के बाहर व लड़कियाँ घर के अन्दर के खेलों में रुचि लेने लगती हैं।

- **किशोरावस्था में सामाजिक विकास**

किशोरावस्था में सामाजिक विकास काफी तीव्र गति से होता है। इसी कारण इसे “सामाजिक सम्बन्धों की अवस्था” भी कहा जाता है। किशोर अपने परिवार, विद्यालय व मित्रों से सामाजिक व्यवहार सीखते हैं। किशोरावस्था के प्रारम्भ में सामाजिक विकास मंद गति से होकर बाद के वर्षों में तीव्र गति से पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था में बालक साधारणतया वयस्कों जैसा सामाजिक व्यवहार करने लगता है। किशोर परिवार की अपेक्षा अपने साथियों के साथ समय बिताने में अधिक आनन्द का अनुभव करते हैं। उनकी सोच, रुचियों, अभिवृत्तियों, मूल्यों तथा आदर्शों पर माता-पिता का कम तथा साथियों का प्रभाव अधिक होता है। किशोरों में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण होता है। किशोरावस्था की प्रमुख सामाजिक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

1. **समूह का सदस्य होना:** किशोरावस्था में बालक-बालिका विभिन्न समूह के सदस्य बनते हैं एवं परिस्थितियों के अनुकूल समूह के बीच व्यवहार करना सीखते हैं। व्यवहार परिवर्तन का मुख्य कारण यौन परिपक्वता है। वे संगठित समूह बनाकर पूरी निष्ठा व लगन से सामूहिक क्रियाओं में भाग लेते हैं।
2. **सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना:** इस आयु में किशोर सामाजिक व सामूहिक क्रियाओं में रुचि दिखाते हैं एवं स्वेच्छापूर्वक भाग लेते हैं। इन सामूहिक क्रियाओं से किशोरों में मैत्री सम्बन्धों का विकास होता है।
3. **सामाजिक रुचियों का विकास:** इस अवस्था में किशोर सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने लगते हैं। सामाजिक संगठनों के सदस्य बनकर वे संगठन के कार्यों को रुचिपूर्वक करते हैं।
4. **सामाजिक चेतना का विकास:** इस आयु में यह ज्ञात होने लगता है कि समाज में उनका अस्तित्व, वर्ग, समानता, भिन्नता, अपेक्षा, नियम व कानून क्या हैं जिससे किशोरों में सामाजिक चेतना जागृत होती है।
5. **पारिवारिक सम्बन्ध:** किशोरावस्था में गलत व सही में पहचान होने के कारण माता-पिता का नियंत्रण कम हो जाता है व उनसे सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं।
6. **स्पर्धा एवं प्रतियोगिता:** जीवन में उत्तम स्थान प्राप्ति की इच्छा किशोर बालक-बालिकाओं में स्पर्धा एवं प्रतियोगिता की भावना जागृत करती है।

7. **नेतृत्व की भावना:** परिपक्वता किशोरों में नेतृत्व की भावना को विकसित करती है। जो किशोर प्रतिभावान, बहिर्मुखी, सम्मानित और शारीरिक रूप से बलशाली होते हैं, वे समाज में आसानी से नेतृत्व प्राप्त कर लेते हैं।
8. **मित्रता:** समान रुचि तथा सोच-विचार वाले किशोरों की मित्रता प्रगाढ़ होती है। मित्रता समान लिंग तथा विपरीत लिंग दोनों ही में पाई जाती है।
9. **सामाजिक परिपक्वता:** किशोरावस्था में बालक-बालिकाओं में शारीरिक के साथ सामाजिक परिपक्वता भी पूर्ण रूप से हो जाती है। सामाजिक बोध विकसित होने के कारण किशोर समाज व परिवार की अपेक्षाएं, सही-गलत में भेद करना पूर्णता सीख लेता है। इसी कारण इस अवस्था को 'विकसित सामाजिकता की अवस्था' भी कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. शैशवावस्था सामाजिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था है जिसे .... की अवस्था भी कहा जाता है।
2. दो वर्ष की अवधि पूर्ण होने तक बालक में द्वंद की भावना कम होकर .... की भावना विकसित होने लगती है।
3. आक्रामकता का गुण पूर्व बाल्यावस्था में प्रारम्भ होता है तथा आयु वृद्धि के साथ .... की आयु में अपनी चरम सीमा पर होता है।
4. उत्तर बाल्यावस्था को .... अवस्था भी कहा जाता है।
5. किशोर सामाजिक व सामूहिक क्रियाओं में स्वेच्छापूर्वक भाग लेते हैं जिससे उनमें .... का विकास होता है।

आइए, अब सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की चर्चा करें।

3.6 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बालक के सामाजिक विकास को कई कारक प्रभावित करते हैं जो निम्न प्रकार हैं:

1. **पारिवारिक वातावरण:** यह बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक है। छोटे परिवार में बालक की देखरेख अच्छी होती है एवं माता-पिता का भरपूर प्यार मिलता है। जबकि बड़े परिवारों में बालक को अनुकरण के ज्यादा अवसर तो प्राप्त होते हैं परन्तु माता-पिता का नियंत्रण अधिक रहता है। कभी-कभी यह नियंत्रण न होने के कारण बच्चे दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं और माता-पिता व बच्चों

का आपसी सम्बन्ध बिगड़ जाता है जिससे बालक का सामाजिक विकास नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है। कठोर नियंत्रण, तिरस्कार बच्चे के आत्मविश्वास को कम कर उसे अंतर्मुखी या क्रान्तिकारी बना देते हैं। परिवार की आर्थिक व सामाजिक स्थिति भी बच्चे के सामाजिक विकास को प्रभावित करती है। आर्थिक तंगी व निम्न सामाजिक स्थिति बच्चों में आत्मविश्वास में कमी व हीन भावना उत्पन्न करती है और उनके सामाजिक समायोजन में बाधा उत्पन्न करती है। माता-पिता का आचरण, आपसी सम्बन्ध, आदतें भी बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करती हैं।

2. **स्वास्थ्य एवं शारीरिक बनावट:** जिन बच्चों का स्वास्थ्य उत्तम तथा शारीरिक गठन सुन्दर एवं अच्छा होता है, उनका सामाजिक विकास अस्वस्थ, कुरूप व कुण्ठित विकास वाले बच्चों की तुलना में अच्छा होता है। स्वस्थ बालक प्रतियोगिता, नेतृत्व, सामूहिकता, सहयोग जैसे सामाजिक गुणों से परिपूर्ण होता है। इसके विपरीत भद्दे, कुरूप तथा शारीरिक दोषों वाले बच्चों में हीनता की भावना उन्हें समाज से दूर कर अंतर्मुखी बना देती है।
3. **विद्यालय का वातावरण:** विद्यालय बालक के सामाजिक विकास में विविध रूपों से सहायक होता है। विद्यालय में बालक समान उम्र के साथियों के साथ उठना-बैठना, विचारों का आदान-प्रदान कर मैत्रीपूर्ण व्यवहार, सामूहिकता तथा दूसरों का सम्मान करना सीखता है जिससे उसका सामाजिक वातावरण विकसित होता है। विद्यालय में वह शिक्षकों के व्यवहार का अनुकरण करना भी सीखता है।
4. **मनोरंजन के अवसर:** जिन बच्चों को मनोरंजन जैसे खेलना, सैर-सपाटा, सर्कस, घूमना, नाटक व शिक्षाप्रद सिनेमा देखने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है, वे प्रसन्नचित्त व स्वस्थ रहते हैं एवं उनका सामाजिक समायोजन भी अच्छा होता है। इसके विपरीत मनोरंजन के अभाव में बालक झगड़ा, मारपीट, लड़ाई आदि में अपना अधिकांश समय बिताते हैं व कभी-कभी वे समाज विरोधी कार्य भी करने लगते हैं। स्वस्थ मनोरंजन के अभाव में बालक बाल अपराधी बन जाते हैं।
5. **साथी समूह (Peer group):** बालक के सामाजिक विकास को उसके समूह के साथी भी प्रभावित करते हैं। बड़े समूह में बालक विभिन्न सामाजिक मूल्यों व प्रतिमानों को तीव्रता से सीखता है। यदि साथी अच्छे, सुसंस्कृत व उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले होते हैं तो बालक में स्वस्थ सामाजिक गुणों का विकास होता है। समूह के साथी अच्छे न होने की स्थिति में बालक विभिन्न दुर्गुणों को सीखता है।
6. **बालक का व्यक्तित्व:** प्रत्येक बालक का अपना अलग व्यक्तित्व होता है। कुछ बच्चे अंतर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं जबकि कुछ बहिर्मुखी व्यक्तित्व के। अंतर्मुखी व्यक्तित्व वाले बच्चों का दायरा सीमित होता है जबकि बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले बच्चों में

आत्मविश्वास, नेतृत्व की भावना, विस्तृत सामाजिक दायरा, प्रसन्नचित व मिलनसार होना आदि गुण दिखाई देते हैं जिस कारण उनकी लोकप्रियता अधिक होती है।

7. **संवेगात्मक व्यवहार:** संवेगात्मक स्थिरता वाले बालक दूसरे लोगों के साथ आसानी से सामाजिक संपर्क बना लेते हैं। वहीं दूसरी तरफ नकारात्मक संवेग जैसे गुस्सैल, चिड़चिड़े, जिद्दी, हठी प्रवृत्ति वाले बालक को समाज में पसंद नहीं किया जाता जिस कारण उनका सामाजिक विकास ठीक से नहीं हो पाता है।
8. **बुद्धि:** तीव्र बुद्धि वाले बालक लोगों का ध्यान आकर्षित करने में सफल होते हैं। उनका सामाजिक समायोजन उत्तम होता है। इसके विपरीत मंद बुद्धि वाले बच्चों का सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता है।
9. **परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति:** जिस परिवार का सामाजिक-आर्थिक स्तर ऊँचा होता है वहाँ बच्चों का सामाजिक विकास उत्तम होता है। इसी कारण वे आसानी से दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करते हैं व आत्मविश्वास से परिपूर्ण होते हैं।
10. **लिंग भेद:** लिंग-भेद भी बालकों के सामाजिक व्यवहार में भिन्नता उत्पन्न करता है। बालिकाओं में सहनशक्ति, सहिष्णुता, सहानुभूति और त्याग की भावना अधिक मात्रा में पाई जाती है। इसके विपरीत लड़के कम सहनशील तथा कठोर प्रवक्ति के होते हैं।

इस भाग के साथ ही शैशवावस्था में सामाजिक विकास के विषय पर चर्चा को हम विराम देते हैं।

अभ्यास प्रश्न 3

1. बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को सूचीबद्ध कीजिए।

   ....

   ....

3.7 संवेग: परिभाषा एवं विशेषताएँ

संवेग अंग्रेजी शब्द "इमोशन" का पर्यायवाची है जिसकी उत्पत्ति मूल रूप से लैटिन शब्द "*Emover*" से हुई है जिसका शब्दिक अर्थ उत्तेजित करना, हिला देना, भड़कना या बेचैन करने से सम्बन्धित है। संवेग की स्थिति में व्यक्ति असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करता है। इस उद्वेलित/उत्तेजित अवस्था को ही संवेग कहते हैं। इस उत्तेजना का प्रदर्शन व्यक्ति अपने शारीरिक व मानसिक व्यवहार द्वारा दर्शाता है। इस अवस्था में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों दशाओं में व्यापक परिवर्तन हो जाता है जैसे बेचैनी का अनुभव, हृदय की धड़कन का बढ़ना, रक्तचाप में परिवर्तन, श्वसन क्रिया में तेजी होना आदि।

पी0 टी0 यंग के अनुसार “संवेग व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित तीव्र मनोवैज्ञानिक क्रियाएं हैं जिनकी उत्पत्ति कई मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है तथा इसमें व्यवहार, चेतना, अनुभूति, अनुभव और आंतरिक अवयवों की क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं”।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार “संवेग शरीर की वह जटिल अवस्था है जिसमें साँस लेने, नाड़ी, ग्रंथियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि की अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है, तद्नुकूल माँसपेशियाँ निर्धारित व्यवहार करने लगती हैं”।

इंगलिश एवं इंगलिश के अनुसार “संवेग जटिल भावना की अवस्था है। इसमें गत्यात्मक तथा ग्रंथीय क्रियाएं होती हैं। यह एक जटिल व्यवहार है जिसमें आन्तरिक अवयवों की क्रियाएँ महत्वपूर्ण हैं”।

संवेगों की परिभाषाओं को जानने के बाद इनकी विशेषताओं पर आइए दृष्टि डालें।

संवेगों की विशेषताएँ:

- संवेग प्रत्येक प्राणी में उपस्थित होते हैं जो मानव व्यवहारों के रूप में परिलक्षित होते हैं।
- संवेग व्यापक होते हैं।
- संवेग स्थायी तथा अस्थायी दोनों प्रकार के होते हैं।
- संवेग किसी व्यक्ति,वस्तु या स्थिति के कारण विद्यमान होते हैं।
- संवेग व्यक्तिगत होते हैं अर्थात दो व्यक्तियों के संवेगों में समानता नहीं होती है।
- संवेग की स्थिति में व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है।
- संवेगों की उत्पत्ति मन से होती है तथा प्रकटीकरण शारीरिक क्रियाओं द्वारा होता है, अर्थात संवेगों का सम्बन्ध मानसिक तथा शारीरिक दोनों स्थितियों से होता है।

3.8 संवेगात्मक विकास की विशेषताएँ

संवेगों का मानव जीवन में बहुत महत्व है। संवेगात्मक विकास बालक के संपूर्ण विकास को प्रभावित करता है। संवेगात्मक विकास की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं:

- संवेगात्मक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है जो विभिन्न अवस्थाओं में क्रमिक रूप से चलता रहता है। जैसे जन्म के समय शिशु में कोई विशिष्ट संवेग नहीं होते हैं परंतु धीरे-धीरे वातावरण से परिचित होते पर संवेग विकसित होने लगते हैं।
- संवेगात्मक विकास साधारण से जटिल ओर बढ़ता है। शैशवावस्था में बालक का संवेगात्मक विकास सरल होता है। आयु में वृद्धि के साथ बालक विभिन्न अनुभवों को सीखता है तथा उसके संवेगों की प्रकृति जटिल होने लगती है।

- संवेगात्मक विकास अनुभवों के साथ परिपक्व होता जाता है। यह परिपक्वता शारीरिक ही नहीं अपितु मानसिक भी होती है। बच्चों के संवेग क्षण-क्षण में परिवर्तित होते हैं जबकि व्यस्क परिस्थितियों के अनुसार उनका मूल्यांकन कर संवेगों को प्रदर्शित करते हैं।
- संवेगों की उत्पत्ति मानव व्यवहारों द्वारा होती है। मानव की क्रियाओं द्वारा विभिन्न भाव प्रदर्शित होते हैं जिनसे संवेगों की उत्पत्ति होती है।

3.9 संवेगों का महत्व

संवेग एक जटिल अवस्था है जिसमें व्यक्ति किसी भी परिस्थिति को अधिक बढ़ा हुआ महसूस करता है जिसके फलस्वरूप उसमें शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं जिससे व्यक्ति का व्यवहार पहुँचने या हटाने (Approach or withdrawal) की ओर संगठित होता है। बच्चों में संवेगात्मक विकास उनके सामाजिक विकास में स्वयं को आसपास के वातावरण में स्थापित करने के प्रयास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। संवेगात्मक विकास जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं से ही प्रारंभ हो जाता है जो मनुष्य के जीवन में परिपक्वता प्राप्ति के साथ नियंत्रित होता है। संवेग व्यक्ति को आकस्मिक परिस्थितियों से निपटने का साहस, धैर्य एवं बल प्रदान करते हैं जिससे वह विषम परिस्थिति में भी अपनी सुरक्षा कर पाता है। संवेग की स्थिति में थायरॉइड़ ग्रंथि से थायरॉक्सिन हारमोन का अत्यधिक मात्रा में स्राव होता है जिससे व्यक्ति की क्रियाशीलता बढ़ जाती है।

बच्चों के संपूर्ण विकास में संवेग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। संवेग व्यक्ति के विकास एवं सामाजिक समायोजन में सहयोग प्रदान करते हैं। निम्नलिखित बिंदुओं के द्वारा हम संवेगों का बालक के जीवन में महत्व को भली-भाँति जान सकते हैं:

- **हर्ष एवं आनंद की अनुभूति:** संवेगों द्वारा बालकों को हर्ष, खुशी, आनंद, उल्लास व उत्साह की अनुभूति होती है, फलतः उनमें सकारात्मक गुणों का विकास होता है एवं वह बहुमुखी प्रतिभा, सुंदर व्यक्तित्व, सजीले व आकर्षक व्यक्ति बनते हैं। सुख व आनंद की स्थिति में शरीर की मासपेशियाँ तनाव मुक्त हो जाती हैं तथा व्यक्ति आनंद की अनुभूति करता है।
- **सामाजिक समायोजन में सहायक:** संवेग बालकों को सामाजिक समायोजन स्थापित करने में भी अमूल्य भूमिका निभाते हैं। आनंद देने वाले संवेगों को अपनाकर तथा अच्छी आदतों का निर्माण कर बालक समाज के साथ अच्छी तरह समायोजित होता है। इसके विपरीत नकारात्मक संवेगों की अधिकता सामाजिक समायोजन में बाधक होती है।

- **आदतों के निर्माण में सहायक:** संवेग अच्छी आदतों के निर्माण में भी सहायक होते हैं। सकारात्मक संवेगों की अभिव्यक्ति से सुख की अनुभूति तो होती ही है, साथ ही माता-पिता, अभिभावकों व शिक्षकों से प्रशंसा या प्रोत्साहन पाकर संवेगात्मक अनुक्रियाओं की पुनरावृत्ति बालक की आदत के रूप में बदल जाती है।
- **स्वर अंगों की परिपक्वता:** संवेगों की प्रतिक्रिया के कारण गला, स्वरयंत्र, जीभ, होंठ व जबड़ों की मांसपेशियों में परिपक्वता आती है जो भाषा विकास में सहायक होती है। बालक अपने विचारों, भावों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करते हैं, साथ ही चेहरे के हावभाव तथा शरीर की भाव-भंगिमाओं के माध्यम से भी दर्शाते हैं।
- **आत्म मूल्यांकन तथा सामाजिक मूल्यांकन में सहायक:** बच्चे संवेगों द्वारा स्वयं का मूल्यांकन करते हैं। संवेगों द्वारा वे दूसरे व्यक्तियों का सामाजिक मूल्यांकन भी करते हैं। सुखदायक संवेगों का प्रदर्शन करने वाले बच्चे समाज द्वारा पसंद किए जाते हैं तथा लोकप्रिय होते हैं। ऐसे बच्चे नेतृत्व की क्षमता भी रखते हैं।
- **भाषा का विकास:** संवेग व्यक्ति की शारीरिक क्रियाशीलता को बढ़ाते हैं। सकारात्मक संवेगों के कारण हृदय की धड़कनें व नाड़ी गति बढ़ जाती है, मांसपेशियों की थकान कम हो जाती है तथा यकृत से ग्लाइकोजन अधिक मात्रा में निकलने लगता है। थायरॉइड़ एवं एड्रीनल ग्रंथियों से हारमोन्स का अधिक स्राव होने के कारण बालक क्रियाशील हो जाता है। क्रियाशीलता में वृद्धि के कारण स्वरयन्त्र में परिपक्वता आती है और भाषा विकास में सहायता मिलती है। परंतु यदि इस क्रियाशीलता का उपयोग सृजनात्मक कार्यों में न हो तो बालक में निराशा, चिड़चिड़ापन व व्यवहारिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं तथा उन बालकों में भाषा विकास भी बाधित होता है।
- **मानसिक क्रियाओं पर प्रभाव:** संवेग मानसिक क्रियाओं को बाधिक करते हैं। नकारात्मक संवेगों (भय, क्रोध, ईर्ष्या) से बालक उद्वेलित हो जाता है। फलतः उसके सीखने, समझने, स्मरण, तर्क शक्ति आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इस कारण बालक अपनी क्षमता तथा बुद्धिलब्धि को कम अभिव्यक्त कर पाता है एवं अपने साथियों से पीछे रह जाता है।

3.10 संवेगात्मक विकास में परिपक्वता की भूमिका

संवेगात्मक विकास में परिपक्वता की अहम् भूमिका है। आयु वृद्धि के साथ मस्तिष्क एवं अन्तःस्रावी ग्रंथियों का विकास होता है। इसमें एड्रीनल ग्रंथि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जन्म के समय एड्रीनल ग्रंथि का आकार काफी छोटा होता है परंतु आयु वृद्धि के साथ इसका विकास हो जाता है। संवेगात्मक विकास परिपक्वता पर ही नहीं अपितु वातावरण एवं शिक्षण

पर भी निर्भर करता है। मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि सीखने की विधियों, अनुबन्धन (conditioning) एवं अनुकरण (imitation) द्वारा उत्पन्न संवेगों के बिना परिपक्वता संभव नहीं है।

जॉन्स ने 1928 में संवेगात्मक विकास में परिपक्वता के महत्व पर एक अध्ययन किया। उन्होंने विभिन्न आयु वर्ग के बालकों को एक कमरे में रखा तथा वहाँ साँप छोड़कर उनमें भय उत्पन्न किया। उन्होंने पाया कि 2 वर्ष से कम उम्र के बालक साँप को देखकर बिल्कुल भयभीत नहीं हुए। 3 वर्ष के बालक थोड़ा सावधान हो गए एवं 4 वर्ष के बालक ने साँप से डर कर उससे बचने का प्रयास किया। इसका अर्थ यह है कि परिपक्वता से संवेग भी प्रभावित होता है। संवेगों के विकास में परिपक्वता की तुलना में अधिगम अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अधिगम को नियंत्रित कर विभिन्न संवेगों की अभिव्यक्ति को सिखाया जा सकता है।

अगले भाग में बढ़ने से पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करें।

अभ्यास प्रश्न 4

सही अथवा गलत बताइए।

1. संवेग व्यक्तिगत होते हैं तथा दो व्यक्तियों के संवेगों में समानता नहीं होती है।
2. संवेगात्मक विकास आयु वृद्धि के साथ जटिल से साधारण की ओर बढ़ता है।
3. संवेगों की प्रतिक्रिया के कारण स्वर सम्बन्धी अंगों में परिपक्वता आती है जो भाषा विकास में सहायक होती है।
4. संवेग मानसिक क्रियाओं को बाधिक करते हैं।

3.11 बालकों के संवेगों की विशेषताएँ

यद्यपि बालकों के अधिगम, परिपक्वता व अनुभव के कारण उनके संवेगों में प्रौढ़ों के संवेगों की तुलना में काफी अंतर होता है। बालक अपने संवेगों की अभिव्यक्ति बिना नियंत्रण के आसानी से कर देते हैं। बालकों के संवेगों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- **बालकों के संवेग तीव्र होते हैं:** बालकों के संवेगों में उग्रता एवं तीव्रता होती है। बालक मानसिक अपरिपक्वता व अनुभव की कमी के कारण संवेगों पर नियंत्रण नहीं रख पाते तथा उनका अनुचित प्रदर्शन करते हैं। धीरे-धीरे आयु वृद्धि के साथ मानसिक परिपक्वता आती है तथा अनुभव क्षमता के आधार पर बालक को संवेगों की उचित एवं स्वीकार्य अभिव्यक्ति का ज्ञान होता जाता है।

- **संवेग क्षणिक होते हैं:** बालकों के संवेग तीव्र परन्तु क्षणिक होते हैं। उनके संवेगों के क्षणिक होने का प्रमुख कारण कम अनुभव, कम विकसित बौद्धिक योग्यता, मानसिक अपरिपक्वता, ध्यान विस्तार एवं स्मृति विस्तार में कमी होता है जिस कारण बालकों के संवेग पल-पल में परिवर्तित होते रहते हैं।
- **संवेगों की पुनरावृत्ति:** बालक अपने संवेगों को थोड़ी-थोड़ी देर के अंतराल में बार-बार प्रदर्शित करते हैं। बच्चे लगभग सभी संवेगों जैसे क्रोध, भय, दुख, घृणा, प्रेम, प्रसन्नता आदि की पुनरावृत्ति दिन भर में कई बार करते हैं। ऐसा वह मानसिक अपरिपक्वता तथा वातावरण से समायोजन न कर पाने के कारण करते हैं।
- **वैयक्तिक भिन्नता:** बालकों के संवेगात्मक व्यवहार में वैयक्तिक भिन्नता झलकती है। जैसे आपने अनुभव किया होगा कि सभी नवजात शिशुओं के संवेगात्मक व्यवहार में समानता रहती है परन्तु आयु वृद्धि के साथ मानसिक परिपक्वता के कारण बालकों के संवेगात्मक व्यवहार में भिन्नता दिखाई देती है। जैसे नवजात शिशु तेज ध्वनि सुनकर रोने लगते हैं परंतु थोड़ा बड़ा होने पर तेज ध्वनि सुनकर बच्चा विभिन्न क्रियाओं के रूप में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, जैसे रोना, डरकर चुप हो जाना, सहम जाना आदि।
- **बालकों के संवेगों की शक्ति परिवर्तित होती रहती है:** प्रारंभिक अवस्था में संवेगों की शक्ति में तीव्रता देखने को मिलती है। परन्तु आयु के बढ़ने के साथ ही संवेगों के प्रदर्शन की शक्ति परिवर्तित हो जाती है। कुछ संवेग शांत रूप में प्रदर्शित होते हैं जबकि कुछ तीव्र रूप में। संवेगों की शक्ति में परिवर्तन का मुख्य कारण बालक का बौद्धिक विकास एवं मूल्यों का ज्ञान है।
- **बालकों के संवेगों को उनके व्यवहार के लक्षणों द्वारा आसानी से पहचाना जा सकता है:** बालक अपने संवेगों का प्रदर्शन शीघ्रता से कर लेते हैं। कोई भी संवेगात्मक अनुभूति उनके व्यवहार में आसानी से परिलक्षित हो जाती है। जबकि प्रौढ़ अपने संवेगों को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित नहीं करते तथा परिस्थिति अनुसार छुपा लेते हैं। अप्रिय संवेगों जैसे घृणा, ईर्ष्या, दुख, अप्रसन्नता को बालक अपने व्यवहार द्वारा प्रदर्शित कर देते हैं जबकि वयस्क ऐसा नहीं करते हैं।
- **बालकों के संवेग मूर्त वस्तुओं एवं परिस्थितियों से संबंधित होते हैं:** बालकों के संवेग मुख्यतः मूर्त वस्तुओं से संबंधित होते हैं। इसी कारण बालक ड़रावनी चीजें देखकर डर जाते हैं एवं परिचित व प्रिय लोगों को देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। जबकि वयस्क सुख अथवा दु:खकी कल्पना कर ही प्रसन्नता अथवा दु:खका अनुभव करते हैं।

3.12 शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

मनुष्य के विकास क्रम में संवेगात्मक विकास का महत्वपूर्ण योगदान है। यदि संवेगों का संतुलित रूप से विकास न हो तो व्यक्ति का व्यक्तित्व निर्माण सुचारु रूप से नहीं हो पाता है और कई विसंगतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मानव जीवन में संवेगात्मक विकास समान गति से न होकर विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न गति से होता है। इस भाग में हम शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा करेंगे।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास

जन्म के समय शिशुओं में कुछ संवेगात्मक अभिव्यक्तियाँ देखी जाती हैं जो अपेक्षाकृत अपरिपक्व होती हैं। शिशु में संवेग पाए जाते हैं पर वे अविकसित होते हैं तथा उनकी अभिव्यक्ति कुछ क्रियाओं तक ही सीमित होती है। शिशु बाह्य उद्दीपकों के प्रति अनुक्रियाएं करता है जो प्राय: सभी उद्दीपकों के लिए समान होती हैं, आयु वृद्धि के साथ संवेगात्मक अभिव्यक्तियों में आसानी से भेद किया जा सकता है। साधारणतया शैशवावस्था में शिशु अपने संवेगों को महसूस नहीं कर पाते, इस कारण उनके संवेगों को समझना चुनौतीपूर्ण होता है। उनके मुख के हाव-भाव देख कर ही संवेगों की पहचान की जाती है। संवेगात्मक विकास स्वयं को आस पास के वातावरण में स्थापित करने एवं सामाजिक समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वाट्सन के अनुसार शिशुओं में मुख्य रूप से निम्नलिखित तीन संवेग पाए जाते हैं:

1. **भय:** भय की अनुभूति 6 माह के बाद आरंभ होती है। अनजान व्यक्ति या परिस्थितियाँ, तीव्र ध्वनि, अकेलापन बालक में भय की स्थिति उत्पन्न करते हैं। इस स्थिति में बालक रोकर, हाथ-पैर पटककर आदि अभिव्यक्तियों द्वारा भय का प्रदर्शन करता है।
2. **खुशी/प्रेम:** खुशी या प्रेम का प्रदर्शन मुस्कुराहट के साथ आरम्भ होकर बालक की खिलखिलाहट तक होता है। इस संवेग की उत्पत्ति स्नेहपूर्ण वातावरण द्वारा होती है। शिशु के मुस्कुराने की शुरुआत 6-10 सप्ताह की आयु में होती है एवं 3-4 माह की आयु में खिलखिलाने वाले उद्दीपक प्रभावी हो जाते हैं।
3. **क्रोध:** क्रोध का प्रदर्शन शिशु की प्रिय वस्तु छिन जाने या शारीरिक गतिविधियों में अवरोध के कारण होता है। 4-6 माह से लेकर 2 वर्ष की अवस्था के बालकों में क्रोध की तीव्रता एवं आवृति लगातार बढ़ती जाती है। संवेग संज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक विकास के साथ ही क्रोध की प्रतिक्रिया में भी अहम भूमिका निभाते हैं।

शैशवास्था में संवेगों का प्रदर्शन दूसरों के संवेगों का विश्लेषण समझने के कौशल पर निर्भर करता है। 3-4 माह में शिशु की संवेदनशीलता चेहरे के भाव द्वारा अभिव्यक्त होती है। पाँचवे

माह से शिशु चेहरे की भंगिमा को संगठित कर बोलने वाले की आवाज से संवेगों को समझना सीख जाता है। 8-10 महीने में वह सामाजिक संदर्भ में व्यवहार करता है। इस अवस्था में शिशु अपने विश्वसनीय लोगों पर अपरिचित/अनजान परिस्थिति में विश्वास करना सीख जाता है। 1 साल की अवस्था में वह लोगों को पहचानना, नए खिलौनों से खेलना आदि में क्रोध, भय एवं प्रेम या खुशी आदि का प्रदर्शन सीख जाता है।

शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा के बाद आइए जीवन की अन्य अवस्थाओं में संवेगात्मक विकास पर संक्षिप्त चर्चा करें। आने वाली इकाईयों में हम इस पर विस्तृत चर्चा करेंगे।

बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

बाल्यावस्था में बालक के संवेगों में शैशवावस्था की अपेक्षा स्थिरता आ जाती है एवं संवेगों की तीव्रता भी कम होने लगती है। अपने संवेगों पर बालक का नियंत्रण होने लगता है। तीन वर्ष के बच्चे अपने अस्तित्व को पहचान कर अपने माता-पिता के अतिरिक्त अलग वातावरण खोजते हैं जिससे उनके भीतर घबराहट, क्रोध, भय, निराशा, असफलता, ईर्ष्या, जिज्ञासा, प्रेम, खुशी, स्नेह, आनंद जैसे स्वभाविक संवेग स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं। बाल्यावस्था में उत्पन्न होने वाले संवेगों का उल्लेख निम्न प्रकार है:

- **क्रोध:** यह एक आन्तरिक अनुभूति है जो आक्रामकता, हताशा व असन्तोष के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती है। बाल्यावस्था में क्रोध की उत्पत्ति शारीरिक क्रियाओं में बाधा, आन्तरिक दशा, निराशा, चिढ़ाने, आलोचना, असफलता, इच्छापूर्ति न होना, अरुचिकर कार्य, माता-पिता द्वारा तिरस्कार आदि के कारण होती है। क्रोध की अवस्था में बालक रोकर, चीजों को तोड़कर या बड़ों को मार कर अपना संवेग व्यक्त करते हैं। क्रोधात्मक व्यवहार सामाजिक दृष्टि से मान्य नहीं होता है इसलिए इसका निवारण किया जाना आवश्यक है। जिन बालकों में क्रोध की प्रवृत्ति अधिक होती है उनका सामाजिक समायोजन उत्तम कोटि का नहीं होता।
- **भय:** भय की उत्पत्ति मुख्यतः व्यक्तिगत अप्रिय अनुभूति, अनुकरण एवं अनुबंधन के कारण होती है। भय ऐसी आंतरिक दशा/अनुभूति है जिसमें बालक उस परिस्थिति, वस्तु या प्राणी से दूर भागने का प्रयास करता है। अतः भय पलायन की प्रवृत्ति को जागृत करता है। भय की स्थिति में बालकों में रोने, चीखने, रोंगटे खड़े होना, मंद श्वास गति, हृदय गति व रक्तचाप में वृद्धि आदि लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। आयु वृद्धि के साथ भय की प्रवृत्ति धीरे-धीरे कम होने लगती है। इसमें व्यक्तिगत भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। भय की स्थिति निरंतर बने रहने पर बालक दब्बू व कायर हो जाते हैं जिससे उनका सामाजिक समायोजन स्थापित नहीं हो पाता।

- **ईर्ष्या:** ईर्ष्या क्रोध से उत्पन्न संवेग है जिसमें अप्रसन्नता का भाव निहित होता है। बाल्यावस्था में माता-पिता का ध्यान प्राप्त करने हेतु बालक ईर्ष्या का संवेग प्रस्तुत करते हैं। ईर्ष्या की अभिव्यक्ति क्रोध से मिलती जुलती होती है, जैसे आक्रामकता, जिद करना, अवज्ञा करना आदि। आयु वृद्धि के साथ ईर्ष्या के स्वरूप में बदलाव आता है। बालक के बौद्धिक विकास के साथ इस संवेग में कमी आ जाती है। अत्यधिक ईर्ष्या के कारण बालक का व्यक्तित्व, सामाजिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध होने लगता है। अतः बालक में ईर्ष्या के निवारण के लिए माता-पिता, शिक्षक एवं अभिभावकों को सहयोग देना चाहिए तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा एवं स्वस्थ वातावरण प्रदान करना चाहिए।
- **चिंता**: इसकी उत्पत्ति भय और परेशानी से होती है। चिंता का पादुर्भाव बालक के स्कूल जाने पर होता है तथा आयु वृद्धि के साथ इसमें वृद्धि होती है। परिवार की खराब आर्थिक स्थिति, अभिभावकों द्वारा डाँटे जाने पर, स्वास्थ्य ठीक न होने पर, विद्यालय में पढ़ाई में पिछड़ने पर आदि कारणों से बालक चिन्ता की स्थिति में रहते हैं। इस स्थिति में लगातार रहने से बालक का स्वभाव चिड़चिड़ा व स्वास्थ्य दुर्बल हो जाता है। वह सामान्य बालक से अलग व्यवहार करने लगता है। इससे उसका व्यक्तित्व विकास बाधित होने लगता है। चिंता के निवारण के लिए बालक को सहानुभूति पूर्वक निर्देशित करना चाहिए एवं उन परिस्थितियों से दूर रखना चाहिए जिनसे चिंता की उत्पत्ति होती है।
- **जिज्ञासा:** जिज्ञासा एक सुखद संवेग है। यह संवेग मानसिक विकास में सहायक है एवं बालक की रुचि तथा अपने सम्बन्धित वातावरण में विकसित होता है जो सीखने एवं जानने की इच्छा को विकसित करता है। यदि बालक की जिज्ञासा को शान्त न किया जाए तो बालक में सीखने की इच्छा उदासीन हो जाती है। इसकी उत्पत्ति 3 वर्ष से प्रारम्भ होकर 6 वर्ष की आयु में अपनी चरम सीमा में होती है। तीव्र बुद्धि के बालकों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति अधिक होती है।
- **स्नेह:** यह सुखद एवं धनात्मक संवेग है जिसका विकास क्रमिक गति से शैशवास्था में ही प्रारंभ हो जाता है। स्नेह शारीरिक एवं मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करता है। डेढ़ वर्ष से 2 वर्ष की आयु में बालक दूसरे बच्चों के साथ खेलकर अपने स्नेह का प्रदर्शन करता है। 3-4 वर्ष में वह खिलौनों तथा जानवरों से स्नेह करने लगता है। बालक स्नेह की अभिव्यक्ति शारीरिक व मौखिक दोनों रूप से करता है। इस संवेग के कारण बालक का सामाजिक समायोजन सरलता पूर्वक हो जाता है।
- **आनन्द एवं सुख:** आनन्द का संवेग किसी वस्तु या बात से सुख प्राप्ति से संबंधित है। आनन्द के कारण चेहरे के भावों में परिवर्तन आता है। 3-4 वर्ष की आयु में यह भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। 4-5 वर्ष में जिज्ञासा शांत होने पर बालक को आनन्द व सुख की अनुभूति होती है।

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

मनुष्य जीवन में यह अवस्था अत्यंत भावनात्मक होती है। वह इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते लगभग सभी संवेगों का अनुभव प्राप्त कर चुका होता है। इस अवस्था को उथल-पुथल एवं तनाव (Storm and stress) की अवस्था भी कहा जाता है क्योंकि इस अवस्था में किशोर बालक-बालिकाओं को शारीरिक परिवर्तन, माता-पिता की अपेक्षाओं, प्रतिकूल पारिवारिक वातावरण एवं सामाजिक प्रतिबंधों के साथ समायोजन स्थापित करने में कई बार कठिनाई का सामना करना पड़ता है जिससे वे निराशा एवं कुंठाओं से ग्रसित होने लगते हैं। प्रारम्भिक किशोरावस्था में संवेगों की तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक तथा अस्थिर होती है जबकि उत्तर किशोरावस्था में संवेगों की तीव्रता कम एवं अपेक्षाकृत स्थिर होने लगती है। किशोरावस्था में प्रकट होने वाले संवेगों में क्रोध, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, स्नेह व प्रसन्नता प्रमुख होते हैं।

- **क्रोध:** क्रोध का प्रदर्शन प्रत्येक किशोर भिन्न प्रकार से करता है। ऐसा साधारणतया सामाजिक प्रतिबन्ध, आलोचना तथा पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण होता है।
- **भय:** भय की उत्पत्ति अपने प्रिय व्यक्ति या वस्तु के छिन जाने या प्रतिष्ठा में कमी होने के कारण होती है अर्थात् यह संवेग काल्पनिक सम्भावनाओं से उत्पन्न होता है।
- **ईर्ष्या:** ईर्ष्या की अभिव्यक्ति अप्रत्यक्ष रूप में होती है। किशोरों में ईर्ष्या की उत्पत्ति सृजनात्मक प्रतिस्पर्धा में उदासीनता, उनके मार्ग में बाधा उत्पन्न होने के कारण होती है। इस दशा में किशोर आलोचना कर या कटुशब्दों के द्वारा ईर्ष्या का प्रदर्शन करते हैं।
- **चिन्ता:** किशोरों में प्रतिष्ठा एवं भविष्य की चिन्ता, प्रियजन से बिछड़ने, साथियों के प्रतिरोध आदि के कारण इस संवेग की उत्पत्ति होती है। किशोरावस्था में विकसित मानसिक स्थिति एवं कल्पना के कारण इसमें वृद्धि होती है।
- **स्नेह:** किशोरावस्था में स्नेह/प्रेम साधारणतया विपरीत लिंग के प्रति अधिक होता है। इस अवस्था में यह संवेग तीव्रता से विकसित होता है परन्तु सबके सामने इसका प्रदर्शन करने में किशोरों को संकोच की अनुभूति होती है।
- **आनन्द एवं सुख:** किशोरावस्था में इसका विकास सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त करने, माता-पिता द्वारा विश्वसनीयता प्राप्त करने, अपने कार्यों में सफलता प्राप्त करने, अपने समूहों में मान्य होने आदि कारणों से होता है।

किशोरावस्था में संवेगशीलता द्वारा उनका शारीरिक एवं मानसिक विकास प्रभावित होता है जिससे उनका सामाजिक समायोजन बाधित होता है। यदि संवेगों को नियंत्रित न किया जाए तो उनके व्यक्तित्व में भी दोष उत्पन्न होने लगते हैं। संवेगों में स्थिरता या नियंत्रण के अभाव में किशोर अंतर्मुखी, उदासीन, नकारात्मक व चिड़चिड़े हो जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थान भरिए।

1. बालकों के संवेग तीव्र परन्तु .... होते हैं।
2. शैशवावस्था में सभी नवजात शिशुओं का संवेगात्मक व्यवहार लगभग.............................. होता है।
3. भय संवेग की अनुभूति .... माह के बाद आरंभ होती है।
4. तीव्र बुद्धि के बालकों में जिज्ञासा की प्रवृत्ति .... होती है।
5. शारीरिक परिवर्तनों, प्रतिकूल पारिवारिक वातावरण एवं सामाजिक प्रतिबंधों के कारण समायोजन स्थापित न कर पाने की वजह से किशोरावस्था को .... की अवस्था भी कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्नों के पश्चात् आइए संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में जानें।

3.13 संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक

संवेगात्मक विकास परिपक्वता एवं शिक्षण द्वारा प्रभावित होता है परंतु कई ऐसे कारण भी होते हैं जिनके फलस्वरूप बालकों का संवेगात्मक व्यवहार प्रभावित होता है। इनमें से कुछ तत्व स्वयं बालकों के भीतर विद्यमान होते हैं तथा कुछ परिवार एवं सामाजिक परिवेश से संबंधित होते हैं। आइए कुछ मुख्य कारकों पर चर्चा करें।

- **बुद्धि:** वैज्ञानिकों की दृष्टि में औसत बुद्धि वाले बालकों में संवेगात्मक स्थिरता कम व अनियंत्रित होती है। इसके विपरीत तीव्र बुद्धि वाले बालकों में संवेगात्मक स्थिरता पर्याप्त होती है।
- **शारीरिक स्वास्थ्य:** कमजोर, दुर्बल, अस्वस्थ व रोगों से ग्रसित बच्चे साधारणतया चिड़चिड़े, क्रोधी, भय, ईर्ष्या, घृणा आदि दु:खद संवेगों से घिरे होते हैं जिससे उनका सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता जबकि स्वस्थ बालक सुखद संवेगों अर्थात् प्रसन्नचित, जिज्ञासू व स्नेह से परिपूर्ण होते हैं।
- **थकान व भूख:** थकान की अवस्था में बालक में संवेगात्मक अस्थिरता एवं उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है जिस कारण वे संवेगात्मक रूप से अधिक क्रियाशील हो जाते हैं। थकान के साथ भूख भी लगने की अवस्था में यह स्थिति और ज्यादा अनियंत्रित हो जाती है।

- **आर्थिक स्थिति:** साधारण तौर पर यह पाया गया है कि मध्यम व उच्च आर्थिक स्थिति वाले बालकों का संवेगात्मक समायोजन अच्छा होता है और निम्न आर्थिक स्थिति वाले बालकों के भीतर संवेगात्मक स्थिरता कम होती है। अर्थात् परिवार की आर्थिक स्थिति द्वारा संवेगात्मक विकास प्रभावित होता है।
- **बच्चों का जन्मक्रम:** बच्चों के जन्मक्रम द्वारा भी उनका संवेगात्मक व्यवहार प्रभावित होता है। माता-पिता द्वारा अपनी प्रथम संतान को अधिक लाड़ प्यार व संरक्षण प्राप्त होता है। परिवार में दूसरे बच्चे के आगमन के उपरांत वह स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तथा ईर्ष्यालु, क्रोधी व झगड़ालू प्रवृत्ति का बन जाता है।
- **लिंग:** लिंग भेद के कारण संवेगात्मक अभिव्यक्ति भी बालक एवं बालिका में अंतर उत्पन्न करते हैं। जैसे बालिकाओं में ईर्ष्या, प्रेम व स्नेह जैसे संवेगों की प्रचुरता होती है जबकि बालकों में क्रोध, जिज्ञासा जैसे संवेग अधिक होते हैं।
- **परिवार का आकार:** संयुक्त परिवारों में रहने वाले बालकों को अनुकरण के ज्यादा अवसर प्राप्त होते हैं जिससे उनका संवेगात्मक विकास तीव्र गति से होता है। जबकि एकाकी परिवार में अनुकरण के अवसर कम प्राप्त होने के कारण बालकों का संवेगात्मक विकास धीमी गति से होता है।
- **बालक का व्यक्तित्व:** आनुवंशिक गुणों एवं वातावरण द्वारा प्रभावित होने के कारण कुछ बालक बहिर्मुखी व कुछ अंतर्मुखी व्यक्तित्व के होते हैं। बहिर्मुखी बालकों में संवेगात्मक स्थिरता व संतुलन अंतर्मुखी बालकों की अपेक्षा अधिक पाई जाती है।
- **सामाजिक वातावरण:** बालक जिस सामाजिक वातावरण में जीवन यापन करता है, उस समूह के सदस्यों द्वारा किए गए संवेगात्मक व्यवहारों का अनुकरण वह स्वतः ही सीख लेता है।
- **पारिवारिक वातावरण:** पारिवारिक वातावरण भी बालकों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। जिन परिवारों में आपसी प्रेम, समर्पण, त्याग, शांति, सुरक्षा आदि का वातावरण होता है, वहाँ बालक का संवेगात्मक विकास अच्छा होता है। इसके विपरीत जिन परिवारों में आपसी कलह, द्वेष, ईर्ष्या, घृणा आदि पाए जाते हैं वहाँ संवेगात्मक विकास उचित रूप से नहीं हो पाता।
- **अभिभावक-बालक संबंध:** माता-पिता द्वारा बालकों के पालन-पोषण की विधियों एवं उनकी मनोवृत्तियों द्वारा बालकों के संवेगों की मात्रा एवं स्वरूप का निर्धारण होता है। अति संरक्षित एवं अति सतर्क माता-पिता के बच्चों में आत्मविश्वास की कमी उत्पन्न हो जाती है। तिरस्कृत बच्चे आक्रामक, झगड़ालू एवं क्रोधी व्यवहार करने लगते हैं व समय के साथ वे समाज विरोधी व्यवहार प्रदर्शित करते हैं। कठोरता बालक को अंतर्मुखी एवं दब्बू बना

देती है जिससे उसमें भय की भावना विकसित होती है। जिन बालकों के माता-पिता पक्षपाती होते हैं उनमें ईर्ष्यालु प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

उपरोक्त सभी तत्वों द्वारा संवेगों का विकास प्रभावित होता है। बालकों के भीतर स्वस्थ संवेगात्मक विकास लाने में माता-पिता, अभिभावकों एवं शिक्षकों को पूरा ध्यान देना चाहिए।

3.14 संवेगात्मक स्थिरता

संवेगों के अंतर्गत बालक कई प्रकार की धनात्मक एवं ऋणात्मक अनुभूतियाँ प्राप्त करता है। अतः संवेगों पर सामाजिक नियंत्रण होना अति आवश्यक है। बालकों में संवेगात्मक स्थिरता से आशय है कि वे अपने संवेगों का प्रदर्शन एक निश्चित सीमा में करें क्योंकि संवेगों का अधिक प्रदर्शन व बहुलता सामाजिक समायोजन में कठिनाई उत्पन्न कर सकता है। माता-पिता को चाहिए कि वे संवेगों पर नियंत्रण करने हेतु बालकों को प्रशिक्षित करें क्योंकि बालकों के संवेगात्मक व्यवहार का प्रतिमान निर्धारित हो जाने के पश्चात् उसमें परिवर्तन करना कठिन हो जाता है। इसलिए माता-पिता, अभिभावकों व शिक्षकों का यह दायित्व है कि वे बच्चों में संवेगात्मक स्थिरता लाने का प्रयास करें एवं ऋणात्मक संवेगों पर आवश्यकतानुसार नियंत्रण रखें जिससे वे परिपक्व न हो पाएँ। संवेगों को नियंत्रित करने की प्रमुख विधियाँ निम्नानुसार हैं:

- **प्रतिगमन (Regression):** व्यक्ति जब अपने संवेगात्मक तनावों को दूर करने के लिए कम परिपक्व प्रत्युत्तरों का सहारा लेता है तो यही मनोरचना प्रतिगमन कहलाती है। इस व्यवहार द्वारा संवेगों में स्थिरता लाई जा सकती है।
- **उद्यमिता (Industriousness):** बालकों को संवेगात्मक अस्थिरता से बचाने की यह एक अत्यन्त लाभदायी विधि है। इसके अंतर्गत बालक को सदैव व्यस्त रखा जाता है क्योंकि क्रियाशील रहने से उसमें नकारात्मक भाव एवं विचार उत्पन्न नहीं होते हैं। परन्तु इस विधि के क्रियान्वयन के दौरान बालकों पर निगरानी रखनी चाहिए। बालकों को व्यस्त रखने के लिए उनके रुचिकर एवं पसंद के कार्य करवाने चाहिए।
- **दमन (Repression):** यह भी एक प्रकार की मानसिक मनोरचना है जिसके द्वारा अप्रिय प्रसंगों एवं घटनाओं को जानबूझकर अपने चैतन्य मन से निकाल दिया जाता है। वयस्क व्यक्ति इसी प्रक्रिया के द्वारा अप्रिय प्रसंगों को भूलते हैं परन्तु बालकों में संवेगों के दमन हेतु उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है जिससे वह शांत होकर दूसरे कार्यों में व्यस्त हो जाता है। संवेगों का दमन दो प्रकार से होता है:

आन्तरिक दमन (Internal Repression): इसमें व्यक्ति संवेगों का दमन स्वयं ही कर लेता है, जैसे दु:ख की स्थिति में शांतचित्त दिखाई देना।

बाह्यदमन (External Repression): इसमें माता-पिता, शिक्षकों एवं समाज के लोगों द्वारा संवेगों का दमन कराया जाता है। जैसे बालक के झगड़ा करने पर उसे रोकना एवं डाँटना।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दमन द्वारा संवेगों पर नियंत्रण करना उचित नहीं माना जाता है क्योंकि इसमें बालक बाहर से तो शांतचित्त एवं गम्भीर प्रतीत होते हैं परन्तु उनके आंतरिक मन में अंतर्द्वंद चलता रहता है जो उनके व्यक्तित्व विकास में बाधक होता है।

- **शोधन (Sublimation):** यह संवेग नियंत्रण की सबसे उत्तम व सर्वश्रेष्ठ विधि है। इसमें संवेगों की अभिव्यक्ति पद्धति तथा स्वरूप में परिवर्तन कर दिया जाता है। शोधन दो प्रकार से किया जाता है:

मार्ग बदल कर: मार्ग बदलने से तात्पर्य है कि इसमें संवेगात्मक अवस्था को सकारात्मक मोड़ दिया जाता है एवं संवेगों की अभिव्यक्ति सामाजिक मान्यता के अनुसार करना सिखाया जाता है।

सकारात्मक सोच उत्पन्न कर: सकारात्मक सोच के अन्तर्गत अपने भाव एवं विचारों को ही बदल दिया जाता है। इससे संवेगों का दमन भी नहीं होता एवं उनकी अभिव्यक्ति भी हो जाती है जिससे बालक में मानसिक दोष उत्पन्न नहीं होता है।

- **विस्थापन (Displacement):** विस्थापन वह मनोदशा है जिसमें व्यक्ति अपने संवेग को दूसरे व्यक्ति, वस्तु या विचार में स्थानान्तरित कर संतुष्ट होता है। जैसे बालक को माता-पिता द्वारा यदि डाँटा जाता है तो वह अपने छोटे भाई-बहनों पर अपना क्रोध प्रदशित कर अपने संवेगों को शान्त करता है।
- **संवेगात्मक रेचन (Emotional Catharsis):** जब दमित संवेगों की अभिव्यक्ति सृजनात्मक, रचनात्मक, मनोरंजक व सांस्कृतिक क्रियाओं द्वारा की जाती है तो उसे संवेगात्मक रेचन कहते हैं। रेचन से तात्पर्य "दमित संवेगों को मुक्त करना" है।

रेचन आमतौर पर दो तरीके से किया जाता है:

शारीरिक रेचन: शारीरिक रेचन के अन्तर्गत दमित संवेगों की अभिव्यक्ति शारीरिक क्रियाओं द्वारा की जाती है। जैसे खेल, योगा एवं कठिन व्यायाम कर संवेगों पर नियंत्रण किया जा सकता है।

मानसिक रेचन: मानसिक रेचन मूक होता है। इसमें संवेगात्मक सहनशीलता आवश्यक है। इसमें बालक उन परिस्थितियों, वस्तुओं या व्यक्तियों के प्रति स्वयं का दृष्टिकोण बदल देता है जिनके कारण संवेग उत्पन्न हुए हैं।

- **स्वतंत्र अभिव्यक्ति (Free Expression):** यह विधि प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो तथा माँन्टेसरी द्वारा प्रतिपादित की गई। इसके अन्तर्गत बालकों को अपने संवेगों की अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण अवसर दिया जाता है क्योंकि संवेगों के दमन से बालक हीन भावना एवं कुण्ठा से ग्रसित हो दब्बू हो जाता है। संवेगों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति के परिणामों से अवगत होकर वह उन पर नियंत्रण करना सीख जाता है।

3.15 संवेगात्मक संतुलन

संवेगात्मक संतुलन से तात्पर्य समय, स्थान व परिस्थिति के अनुसार समाज द्वारा मान्य तरीकों से संवेगों की अभिव्यक्ति है। इसके विपरीत जब बालक समाज के मान्य तरीकों से संवेगों को अभिव्यक्त नहीं करता है तो उसे संवेगात्मक रूप से असंतुलित कहा जाता है। इस संवेगात्मक असंतुलन के कारण बालकों का सामाजिक विकास एवं सामाजिक समायोजन प्रभावित होता है। शर्मीलेपन के कारण बालक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ जाते हैं।

संवेगात्मक असंतुलन में दो स्थितियाँ होती हैं:

उच्च संवेगात्मकता (Heightened Emotionality): उच्च संवेगात्मकता से तात्पर्य है संवेगों के प्रदर्शन की अतितीव्रता एवं सामान्य से अधिक आवृत्ति। उच्च संवेगात्मकता से स्वास्थ्य एवं सामान्य विकास प्रभावित होता है। इस स्थिति में पाचक रसों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है तथा हृदय की धड़कन तेज हो जाती है। यह सभी लक्षण स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाते हैं। आन्तरिक परिवर्तन के साथ ही बाह्य व्यवहारों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे ऊँचे स्वर में बोलना, हकलाना आदि।

निम्न संवेगात्मकता (Lowered Emotionality): निम्न संवेगात्मकता के अन्तर्गत संवेगों के अनुभव की तीव्रता एवं आवृत्ति सामान्य से कम होती है। बालक उपयुक्त समय में अपने संवेग प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। ऐसे बालक विकास के विभिन्न क्षेत्रों में पिछड़ जाते हैं। निम्न संवेगात्मकता से बालक का सामाजिक समायोजन विपरीत रूप से प्रभावित होता है। ऐसे बालकों को सहानुभूति पूर्वक प्रोत्साहित कर इस आदत के निराकरण में मदद करनी चाहिए। जैसे बालक को खेल के समय प्रश्न पूछकर उसकी जिज्ञासा को बढ़ाना चाहिए।

संवेगात्मक संतुलन प्राप्ति के तरीके

संवेगात्मक संतुलन प्राप्त करने के लिए निम्न तरीके अपनाए जा सकते हैं:

- **वातावरण पर नियत्रंण:** संवेगात्मक संतुलन हेतु बालकों को अपने भौतिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण पर नियंत्रण करना सीखना चाहिए। इसके लिए उन्हें नकारात्मक तथा ऋणात्मक संवेगों को त्याग कर सकारात्मक एवं धनात्मक संवेगों को अपनाना चाहिए।
- **संवेगात्मक सहनशीलता:** संवेगात्मक सहनशीलता से अभिप्राय है कि बालक दूसरों के उग्र संवेगों को सहन करे एवं अपने उग्र संवेगों को नियंत्रित रखे। सहनशीलता से स्वतः ही संवेगों में संतुलन आ जाता है।
- **उचित प्रशिक्षण द्वारा:** उचित प्रशिक्षण एवं निर्देशन द्वारा बालकों में संवेगात्मक संतुलन लाया जा सकता है। माता-पिता तथा शिक्षकों का यह दायित्व होता है कि बालकों को संवेग प्रदर्शन में उचित मार्गदर्शन दें।

अभ्यास प्रश्न 6

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दीजिए।

1. परिवार में बच्चों के जन्म क्रम द्वारा बालकों का संवेगात्मक व्यवहार किस प्रकार प्रभावित होता है?
2. उद्यमिता द्वारा संवेगात्मक स्थिरता किस प्रकार लाई जा सकती है?
3. शोधन विधि द्वारा संवेग नियंत्रण कितने प्रकार से किया जा सकता है?
4. उच्च संवेगात्मकता की स्थिति में व्यक्ति में किस प्रकार के आंतरिक परिवर्तन देखे जाते हैं?
5. संवेगात्मक संतुलन प्राप्त करने के तरीकों को सूचीबद्ध कीजिए।

3.16 सारांश

जैसा कि हमें ज्ञात है कि जन्म के समय शिशु पूर्णतया निर्बल, असहाय एवं दूसरों पर आश्रित होता है। उसे अपने प्रत्येक कार्य हेतु माता-पिता व आस-पास के लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है। आयु वृद्धि के साथ वह समाज के व्यक्तियों के संपर्क में आता है जिससे उसका सामाजिक विकास होता है। इस इकाई में हमने शिशु के सामाजिक विकास के विभिन्न आयामों के बारे में जाना। हमने सामाजिक विकास की विभिन्न विशेषताओं पर चर्चा की जैसे सामूहिक एवं सामाजिक प्रतिक्रिया, सहानुभूति एवं सहिष्णुता, सहयोग, प्रतिस्पर्धा, निषेधात्मक व्यवहार, ईर्ष्या आदि। हमने सामाजिक विकास के विभिन्न मानदण्डों पर भी चर्चा की। ये मानदण्ड वह विशेषताएं हैं जिनके आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालक का सामाजिक विकास किस तरह व किस दिशा में हो रहा है। सामाजिक परिपक्वता, सामाजिक समायोजन,

सामाजिक अनुरूपता, सामाजिक सहभागिता तथा सामाजिक अंत:क्रियाएं सामाजिक विकास के विभिन्न मानदण्ड हैं। हमने शिशु के सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों के बारे में जाना। शैशवावस्था में शिशु में कुछ विशिष्ट सामाजिक क्रियाएं देखी जा सकती हैं जिनके आधार पर शिशु के सामाजिक विकास के बारे में जाना जा सकता है। इसके साथ हमने जीवन की अन्य अवस्थाओं में सामाजिक विकास के बारे में भी संक्षिप्त जानकारी ली। सामाजिक विकास को कई कारक प्रभावित करते हैं, जैसे पारिवारिक तथा विद्यालय का वातावरण, स्वास्थ्य, साथी समूह, संवेग, बुद्धि, परिवार की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति एवं लिंग भेद।

बालक प्रतिदिन अपने व्यवहार के माध्यम से संवेगों का प्रदर्शन करते हैं। ये संवेग समय एवं परिस्थिति के अनुरूप बदलते रहते हैं। शैशवावस्था में शिशु के संवेग कम विकसित एवं लगभग समान होते हैं। ये संवेग आयु में वृद्धि के साथ विकसित होते हैं तथा इनमें वैयक्तिक भिन्नताएँ भी देखने को मिलती हैं। इस इकाई में हमने शैशवावस्था में संवेगात्मक विकास पर चर्चा की। हमने संवेगों तथा संवेगात्मक विकास की विशेषताओं के बारे में जाना। हमने जाना कि संवेगात्मक विकास एक क्रमिक प्रक्रिया है जो साधारण से जटिल की ओर बढ़ती है तथा समय के साथ परिपक्व होती जाती है। बालकों के जीवन में संवेगों के महत्व पर हमने चर्चा की। बालकों के संवेगों की विशेषताओं पर चर्चा के बाद हमने यह जाना कि बालकों के संवेग तीव्र परन्तु क्षणिक होते हैं तथा ये आयु एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। शैशवावस्था में मूल रूप से क्रोध, भय तथा प्रेम/खुशी के संवेग देखे जाते हैं। संवेगात्मक व्यवहार को कई कारक प्रभावित करते हैं, जैसे बुद्धि, स्वास्थ्य, परिवार की आर्थिक स्थिति, लिंग, बच्चों का जन्मक्रम आदि। बालकों के उचित सामाजिक समायोजन हेतु संवेगात्मक स्थिरता अति आवश्यक है जो कई विधियों जैसे उद्यमिता, दमन, शोधन, विस्थापन, स्वतंत्र अभिव्यक्ति आदि द्वारा लाई जा सकती है। बालकों में संवेगात्मक संतुलन का होना भी आवश्यक होता है। संवेगात्मक संतुलन से तात्पर्य समय, स्थान व परिस्थिति के अनुसार समाज द्वारा मान्य तरीकों से संवेगों की अभिव्यक्ति है। इस संतुलन की प्राप्ति हेतु कई तरीके अपनाए जा सकते हैं, जैसे नियंत्रण, सहनशीलता तथा प्रशिक्षण। संवेगात्मक असंतुलन के कारण बालकों का सामाजिक विकास एवं सामाजिक समायोजन प्रभावित होता है।

3.17 पारिभाषिक शब्दावली

- **सामाजिक परिपक्वता:** आयु विशिष्ट के आधार पर निर्धारित किए गए मानकों के अनुसार व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार।
- **सामाजिक अनुरूपता:** सामाजिक प्रतिमानों के अनुसार कार्य करना।

- **सामाजिक अंत:क्रिया:** समाज में उपस्थित दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच पारस्परिक प्रक्रिया या विचारों का आदान प्रदान। जैसे, दया, परोपकार, सहयोग, सहानुभूति, शत्रुता, ईर्ष्या, लोभ आदि।
- **अनुकरण:** नकल करना, दोहराना।
- **संवेग:** व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित वह क्रियाएं जिनकी उत्पत्ति कई मनोवैज्ञानिक कारणों से होती है तथा इसमें व्यवहार, चेतना, अनुभूति, अनुभव और आंतरिक अवयवों की क्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं।
- **दमन:** एक प्रकार की मानसिक मनोरचना जिसके द्वारा अप्रिय प्रसंगों एवं घटनाओं को जानबूझकर अपने चैतन्य मन से निकाल दिया जाता है।
- **संवेगात्मक रेचन:** दमित संवेगों को मुक्त करना।
- **प्रतिगमन:** संवेगात्मक तनावों को दूर करने के लिए व्यक्ति द्वारा कम परिपक्व प्रत्युत्तरों का सहारा लेना।

3.18 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. सही
   b. गलत
2. सामाजिक परिपक्वता से तात्पर्य बच्चे के उस व्यवहार से है जो बच्चे की उस आयु विशिष्ट के आधार पर निर्धारित किए गए मानकों के अनुसार होता है।
3. सामाजिक अंत:क्रियाएँ मुख्यत: दो प्रकार की होती हैं; संगठनात्मक तथा विघटनात्मक।

अभ्यास प्रश्न 2

रिक्त स्थान भरिए।

1. सचेतनता
2. सहयोग
3. पाँच वर्ष
4. टोली अवस्था
5. मैत्री सम्बन्धों

अभ्यास प्रश्न 3

1. बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक: पारिवारिक वातावरण, स्वास्थ्य एवं शारीरिक बनावट, विद्यालय का वातावरण, मनोरंजन के अवसर, साथी समूह, बालक का व्यक्तित्व, संवेगात्मक व्यवहार, बुद्धि, परिवार की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा लिंग भेद।

अभ्यास प्रश्न 4

सही अथवा गलत बताइए।

1. सही
2. गलत
3. सही
4. सही

अभ्यास प्रश्न 5

रिक्त स्थान भरिए।

1. क्षणिक
2. समान
3. 6 माह
4. अधिक
5. उथल-पुथल एवं तनाव (Storm and stress)

अभ्यास प्रश्न 6

निम्न का संक्षिप्त में उत्तर दीजिए।

1. माता-पिता द्वारा अपनी प्रथम संतान को अधिक लाड़ प्यार व संरक्षण प्राप्त होता है। परिवार में दूसरे बच्चे के आगमन के उपरांत पहला बच्चा स्वयं को उपेक्षित महसूस करता है तथा ईर्ष्यालू, क्रोधी व झगड़ालू प्रवृत्ति का बन जाता है।
2. उद्यमिता विधि के अंतर्गत बालक को सदैव व्यस्त रखा जाता है क्योंकि क्रियाशील रहने से उसमें नकारात्मक भाव एवं विचार उत्पन्न नहीं होते हैं। बालकों को व्यस्त रखने के लिए उनके पसंद के कार्य करवाये जाते हैं।
3. शोधन विधि द्वारा संवेग नियंत्रण दो प्रकार से किया जा सकता है; मार्ग बदल कर तथा सकारात्मक सोच उत्पन्न कर।
4. उच्च संवेगात्मकता की स्थिति में पाचक रसों की क्रियाशीलता बढ़ जाती है, रक्त प्रवाह तेज हो जाता है तथा हृदय की धड़कन तेज हो जाती है।
5. संवेगात्मक संतुलन प्राप्त करने के लिए निम्न तरीके अपनाए जा सकते हैं:

- वातावरण पर नियत्रंण
- संवेगात्मक सहनशीलता
- उचित प्रशिक्षण

3.19 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। पंचशील प्रकाशन ,जयपुर।
3. डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान: बाल विकास, बारहवां संस्करण। विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
4. डॉ0 जे0 एन0 लाल एवं अनिता श्रीवास्तव, आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान, तृतीय संस्करण। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
5. S.P. Chaube, Child Psychology. Lakshmi Narain Agarwal educational publishers, Agra.

3.20 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सामाजिक विकास की विशेषताओं की विस्तृत व्याख्या करें।
2. सामाजिक विकास के प्रमुख मानदण्डों/कसौटियों का वर्णन करें।
3. सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों की विस्तारपूर्वक विवेचना कीजिए।
4. बालक के जीवन में सामाजिक विकास के महत्व की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए।
5. शैशवावस्था में सामाजिक विकास के प्रमुख चरणों की व्याख्या कीजिए।
6. संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
7. संवेगों पर नियंत्रण या संवेगात्मक स्थिरता प्राप्ति के उपायों की व्याख्या कीजिए।
8. संवेगात्मक विकास के परिपक्वता की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

खण्ड 2: प्रारम्भिक एवं मध्य बाल्यावस्था

इकाई 4: प्रारम्भिक बाल्यावस्था

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था
    4.3.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य
    4.3.2 विकासात्मक मील के पत्थर
4.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था के विकास
    4.4.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास
    4.4.2 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास
    4.4.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
    4.4.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
    4.4.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास
    4.4.6 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास
4.5 सारांश
4.6 पारिभाषिक शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रारम्भिक बाल्यावस्था विकास की अवस्थाओं में अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी अवस्था है जिसका अध्ययन क्षेत्र विस्तृत एवं व्यापक है। इसमें बालक के प्रत्येक क्षेत्र के विकास जैसे शारीरिक विकास, क्रियात्मक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास व भाषा विकास आदि का अध्ययन किया जाता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के व्यवहार में सुधार लाने के लिए इसे समझना आवश्यक है। अभिभावकों को बालक के विकास के सम्बन्ध में जानकारी रखना आवश्यक है क्योंकि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बनी आदतें व गुण आदि बालक को जीवन पर्यन्त प्रभावित करते हैं। इस अवस्था में परिवार, पास पड़ोस व स्कूल आदि बालक के विकास में महत्वपूर्ण

योगदान देते हैं जो बालक को प्रत्येक कार्य के लिए अनुकूल बनाता है। बालक की गतिविधियाँ बालक के विकास को प्रदर्शित करती हैं। इसलिए बालक की प्रत्येक विकास की सम्पूर्ण जानकारी रखना आवश्यक है जिससे बालक का उचित दिशा में विकास हो सके। बालक के उचित ढंग से विकास द्वारा ही बालक की अनेक रूचियों एव कौशलों का पता चलता है जिससे हम प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक की इच्छा व आवश्यकतानुसार उनमें कौशलों का निर्माण कर सकते हैं।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:

- प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के प्रत्येक विकास तथा उसे प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में समझ पायेंगे; तथा
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक की प्रत्येक गतिविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

4.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था

प्रारम्भिक बाल्यावस्था 2 वर्ष से 6 वर्ष तक मानी जाती है। यह विकास की तीव्र अवस्था है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की गति तीव्र होने के कारण बालक की क्रियाओं में भी तीव्रता आती है जिसके परिणामस्वरूप वह शारीरिक क्रियाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक करता है।

4.3.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य

विकासात्मक कार्यों से तात्पर्य उन कार्यों से है जो व्यक्ति के जीवन के निश्चित काल में उत्पन्न होते हैं तथा इन कार्यों को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के फलस्वरूप व्यक्ति को प्रसन्नता अनुभव होती है एवं विकास की अगली अवस्था के कार्यों को सीखने में भी सफलता मिलती है। कुछ विकासात्मक कार्य ऐसे होते हैं जो कि शारीरिक परिपक्वता के आधार पर उत्पन्न होते हैं, जैसे चलना सीखना। जबकि कुछ विकासात्मक कार्य ऐसे होते हैं जो व्यक्ति की सामाजिक सांस्कृतिक आवश्यकताओं के आधार पर उत्पन्न होते हैं जैसे लिखना, पढ़ना, सीखना। इसके अतिरिक्त कुछ विकासात्मक कार्य व्यक्ति के मूल्य तथा आकांक्षाओं के आधार पर उत्पन्न होते हैं। जैसे किसी विशेष व्यवसाय/ उद्योग के लिये तैयारी करना।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था की विशेषताएं

- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'पूर्वशाला' अवस्था है: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में अनेक बच्चे प्ले स्कूल, नर्सरी, आंगनबाड़ी आदि में जाते हैं जहाँ उनका कोई निश्चित पाठयक्रम नहीं होता है। उन्हें स्वतन्त्र वातावरण में खेल पद्धति के द्वारा निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करना सिखाया जाता है तथा उन्हें स्कूल जाने के लिए तैयार किया जाता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'समूह पूर्व' की अवस्था है: मनोवैज्ञानिकों के अनुसार प्रारम्भिक बाल्यावस्था समूह पूर्व अवस्था है। इसी अवस्था से बालक में सामाजिक व्यवहारों का उदय होता है क्योंकि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक घर से बाहर निकलकर अपने उम्र के साथियों के साथ खेलना प्रारम्भ कर देता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'जिज्ञासावृत्ति' की अवस्था है: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक में जिज्ञासा की प्रवृत्ति उच्च सीमा पर पायी जाती है। जब बालक बाहरी वातावरण के सम्पर्क में आता है तो वह अपने वातावरण की पूर्व जानकारी प्राप्त करना चाहता है जिसके पश्चात ही बालक वातावरण में समायोजन प्रारम्भ करता है।
- प्रारम्भिक बाल्यावस्था 'समस्या अवस्था' है: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। वह अपने क्रियाकलापों में स्वतन्त्रता चाहता है तथा हस्तक्षेप पसन्द नहीं करता है जिस कारण उसे अनेक दुर्घटनाओं का शिकार होना पड़ता है। यदि उनके कार्य में कोई हस्तक्षेप करे तो वे आक्रामक हो जाते हैं और नकारात्मक व्यवहारों का प्रदर्शन करने लगते हैं जैसे जिद आदि।

4.3.2 विकासात्मक मील के पत्थर

बच्चों में विकास निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। आयु के अनुसार बच्चों को कार्य करने में सक्षम होना चाहिए। यदि कोई बालक अपनी आयु के अनुसार गतिविधियाँ नहीं करता है या फिर कभी कभी बालक कुछ क्षेत्रों में समान उम्र के अन्य बालकों की तुलना में धीमी गति से विकसित होता है, तो बाल रोग विशेषज्ञ से परामर्श लेना चाहिए।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासात्मक विलम्ब को निम्न विकास बिंदुओं के माध्यम से परखा जा सकता है:

2 वर्ष

- बालक हल्के फुल्के कपड़े उतार सकता है।
- बालक बिना गिरे दौड़ सकता है।
- बालक पुस्तक की तस्वीरों में रूचि लेता है।
- बालक जो कहना चाहता है वह कह सकता है।
- बालक अन्य व्यक्तियों द्वारा कहे गए शब्दों को दोहराना शुरू कर देता है।
- बालक शरीर के अंगों को इंगित करने में सक्षम होता है।

3 वर्ष

- बालक कन्धे के ऊपर गेंद फेंक सकता है, वह कंधे के समानान्तर या नीचे से गेंद नहीं फेंक सकता है।
- बालक अपने लिंग को आसानी से बता पाता है।
- बालक हल्की वस्तुओं को उठने में मदद करता है।
- बालक कम से कम एक रंग की पहचान करने लगता है।

4 वर्ष

- बच्चे को अपने परिवार के सदस्यों के नाम स्पष्ट हो जाते हैं जिन्हें बोलने में वह गलतियां कम करता है।
- बालक पुस्तकों या पत्रिकाओं में छपी तस्वीरों के नाम आसानी से पहचानकर बता सकता है।

5 वर्ष

- बालक एक के बाद दूसरे कदम के इस्तेमाल से सीढ़ियाँ चढ़ने व उतरने का कार्य आसानी से कर लेता है।
- बालक दूरी वाली जगहों को उछलकर पार करने की कोशिश करता है।

4.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था के विकास तथा उनको प्रभावित करने वाले कारक

4.4.1 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

मानवीय विकासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण शारीरिक विकास है। यह हमारे अन्य विकासों को आधार प्रदान करता है।

शारीरिक विकास की विशेषताएं

- भिन्न भिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास अलग अलग होता है।
- सर्वप्रथम शारीरिक विकास में सिर या धड़ के समीप अंगों को प्राथमिकता मिलती है।
- शारीरिक विकास लिंगानुसार भी प्रभावित होता है।
- इस अवस्था में शारीरिक विकास में स्थिरता होती है।

2-6 वर्षों में शारीरिक विकास

हड्डियाँ: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में हड्डियों के कठोर होने की प्रक्रिया चलती रहती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के प्रत्येक अगले वर्ष में हड्डियाँ कुछ और कड़ी हो जाती हैं।

लम्बाई एवं वजन: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा प्रत्येक क्षेत्र में आगे रहती हैं। 3 से 6 वर्ष की आयु तक लम्बाई में तीन इंच प्रतिवर्ष के आधार से वृद्धि होती है। छः वर्ष की अवस्था तक लड़के एवं लड़कियों की लम्बाई में वृद्धि लगभग समान गति से होती है। “इण्डियन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स (2002)” के द्वारा किए गए अध्ययनों के आधार पर औसत भारतीय बालकों के वजन तथा ऊँचाई के मान निम्न तालिका में दिए गए हैं:

2 से 6 वर्ष के बालक का अनुमानित वजन तथा लम्बाई

आयु	औसत लम्बाई (से0मी0 में)		औसत वजन (कि0ग्रा0 में)	
	लड़का	लड़की	लड़का	लड़की
30 माह	90.5	89.9	12.9	12.6
36 माह	94.4	93.3	13.8	13.5

38 माह	97.7	96.7	14.6	14.3
42 माह	97.7	96.7	14.6	14.3
48 माह	100.8	99.8	15.4	15.1
54 माह	103.7	102.9	16.2	15.9
60 माह	106.2	106.0	17.1	16.8
66 माह	110.0	109.3	18.1	17.8
72 माह	113.6	113.1	19.2	18.9

मांसपेशियाँ और वसा: बालक के भार की वृद्धि मांसपेशियों में प्रसार के कारण होती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में मांसपेशियों में जल का स्तर अधिक होता है। धीरे-धीरे जल का स्तर कम होने लगता है और ठोस तन्तुओं के विकास के साथ-साथ मांसपेशियों में दृढ़ता आने लगती है। वसा तन्तुओं की वृद्धि वंशक्रम पर ही आधारित न होकर बालक के खान पान सम्बन्धी आदतों पर भी निर्भर करती है। 6 वर्ष की अवधि तक मांसपेशियों का विकास शारीरिक अनुपात के अनुसार बढ़ता है। लगभग 5-6 वर्ष की अवस्था से मांसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। हर आयु में लड़कों की मांशपेशियाँ लड़कियों की मांसपेशियों से अधिक शक्तिशाली होती हैं।

शारीरिक अनुपात:

- **सिर का अनुपात:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सिर का विकास 13 प्रतिशत रह जाता है। अर्थात् नवजात शिशु का सिर, शरीर की लम्बाई का 22 प्रतिशत होता है। पाँच वर्ष की अवस्था में चेहरे व सिर की गोलाई का अनुपात 1:5 होता है।
- **चेहरे का अनुपात:** शरीर का विकास ऊपर से नीचे के क्रम में होता है, अतः सिर के विकास के बाद चेहरे के अनुपात में विकास होता है। बालक में अस्थायी दाँतों के बाद स्थायी दाँत आने से भी चेहरे के अनुपात में परिवर्तन आते हैं। लगभग पाँच वर्ष की आयु तक माथा कुछ चपटा हो जाता है।
- **धड़ का अनुपात:** प्रारम्भिक बाल्यवस्था में गर्दन पतली व लम्बी दिखने लगती है। बालक का धड़ 6 वर्ष की अवस्था में जन्म की अपेक्षा दो गुना हो जाता है।

- **भुजाओं तथा टाँगों का अनुपात:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 4 वर्ष की आयु में भुजाओं का विकास दो वर्ष की अवस्था के अनुपात में 50 प्रतिशत बढ़ता है। इसी प्रकार 4 वर्ष में पैर का विकास 50 प्रतिशत हो जाता है।

दाँत: बच्चों में अस्थायी तथा स्थायी दाँत पाये जाते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं।

नाड़ी संस्थान का विकास: प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 3-4 वर्ष में नाड़ी संस्थान का विकास मन्द गति से बढ़ता है। जन्म के बाद भिन्न भिन्न आयु स्तरों पर बालक के मस्तिष्क का भार भिन्न होता है। जैसे 4 वर्ष की आयु में वयस्क के मस्तिष्क के भार से 4/5 तथा 6 वर्ष की आयु में 9/10 होता है।

परिसंचरण तंत्र: प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक हृदय का भार जन्म की अपेक्षा 4-5 गुना हो जाता है। शैशवावस्था व बाल्यावस्था में दोनों लिंगों के रक्तचाप में कोई अन्तर नहीं पाया जाता है।

पाचन तन्त्र: बाल्यावस्था के तीन वर्ष में पेट की क्षमता का विकास तीव्र गति से होता है। चूँकि बच्चों का पेट जल्दी जल्दी खाली होता है। अतः बच्चों को भोजन कम अंतराल पर देना चाहिए। बच्चों का भोजन पौष्टिक होना चाहिए।

श्वसन तन्त्र: प्रारम्भिक बाल्यावस्था की शुरुआत में छाती व सिर की परिधि बराबर हो जाती है।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- **वंशानुक्रम:** किसी भी प्राणी की शारीरिक विशेषताएं जैसे रंग, रूप, कद तथा शारीरिक अनुपात आदि का निर्धारण वंशानुक्रम के द्वारा होता है।
- **भौतिक वातावरण:** भौतिक वातावरण भी बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करता है। यदि बालक को रहने का स्थान, हवा, पानी, प्रकाश आदि उपयुक्त मात्रा में नहीं मिलता है तो उसका समुचित शारीरिक विकास नहीं हो पाता है।
- **आहार:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शारीरिक विकास आहार से भी प्रभावित होता है क्योंकि बालक के पेट की क्षमता का विकास तीव्र गति से होता है। उसके भोजन में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा तथा अन्य खनिज लवण उचित मात्रा में विद्यमान होने चाहिए।

- **रोग:** अस्वस्थता या लम्बी अवधि की बीमारी से बालक का शारीरिक विकास अवरूद्ध हो जाता है लेकिन जो बालक स्वस्थ होते हैं उनका शारीरिक विकास सामान्य ढंग से होता है।
- **अन्तः स्थावी ग्रन्थियाँ:** अन्तःस्थावी ग्रन्थियों से निकलने हारमोन प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करते हैं।
- **बुद्धि:** बुद्धि केवल मानसिक विकास ही नहीं वरन शारीरिक विकास को भी प्रभावित करती है। प्रतिभाशाली और तीव्र बुद्धि बालकों में यौन परिपक्वता सामान्य बालकों की अपेक्षा 1-2 वर्ष पूर्व ही आ जाती है। इसके ठीक विपरीत दुर्बल बुद्धि बालकों में यौन परिपक्वता देरी से विकसित होती है।
- **लिंग:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों का शारीरिक विकास बालिकाओं से अधिक होता है। शारीरिक शक्ति व क्रियाशीलता बालिकाओं की अपेक्षा बालकों में अधिक रहती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालिकाओं के शरीर में वसा का अभाव बालकों की तुलना में अधिक होता है जिससे वे बालकों की तुलना में अधिक कोमल प्रतीत होती हैं।
- **संवेगात्मक व्यवधान:** संवेगात्मक व्यवधान शरीर के विकास कारमोन को प्रभावित कर शारीरिक विकास को प्रभावित करता है।
- **पारिवारिक प्रभाव:** जिन परिवारों में वातावरण खुशहाल व सौहार्दपूर्ण होता है वहाँ बच्चों का शारीरिक विकास अच्छा होता है। इसके विपरीत जिन परविारों का वातावरण कलहपूर्ण व बच्चों पर कठोर नियन्त्रण होता है, वहाँ बच्चों का शारीरिक विकास स्वस्थ नहीं हो पाता है।
- **सामाजिक आर्थिक स्तर:** निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बालकों का विकास उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बालकों की अपेक्षा कम होता है क्योंकि उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बच्चों की विभिन्न आवश्यकताएं पूरी हो जाती हैं जिनसे उनका शारीरिक विकास अच्छा होता है।

आगे बढ़ने से पूर्व आइए कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान चाहिए।

a. प्रारम्भिक बाल्यावस्था की अवधि .... होती है।

b. प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 4 वर्ष की आयु में भुजाओं का विकास दो वर्ष की अवस्था के अनुपात में .... बढ़ता है।

c. प्रारम्भिक बाल्यावस्था के 3-4 वर्ष में नाड़ी संस्थान का विकास .... गति से बढ़ता है।

बोध प्रश्नों के पश्चात बाइए हम क्रियात्मक विकास एवं संवेगात्मक विकास के बारे में जाने ।

4.4.2 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास

क्रियात्मक विकास को चालक विकास, गति विकास या गत्यात्मक विकास भी कहते हैं। क्रियात्मक विकास में विभिन्न क्रियात्मक योग्यताओं के विकास तथा कौशलों के विकास का अध्ययन किया जाता है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था के अन्त तक बालक अपनी अधिकांश मांसपेशियों की गतियों पर नियन्त्रण करना सीख जाता है। बालक में क्रियात्मक योग्यताओं और क्रियात्मक कौशलों का विकास हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप बालक अपने आस पास के वातावरण में समायोजन करने लगता है। बालक का क्रियात्मक विकास कई गतिविधियों के माध्यम से होता है जैसे गेंद के खेल; गेंद फेंकना, गेंद को ठोकर मारना, गेंद पकड़ना, चलने तथा दौड़ने की क्रियायें, चढ़ना, कूदना, रस्सी कूदना तथा ऊचकने की क्रियायें, हाथों के कौशल जैसे मोती पिरोना, काटना, सीढ़ियाँ चढ़ना तथा उतरना आदि।

क्रियात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

बालक और उसके वातावरण से सम्बन्धित कुछ प्रमुख कारक निम्न हैं, जो बालक के क्रियात्मक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं:-

- **दुर्बल शारीरिक अवस्था:** बालक का शारीरिक स्वास्थ्य उसके क्रियात्मक विकास पर निर्भर करता है। अध्ययनों में देखा गया है कि जिन बच्चों का स्वास्थ्य अन्य बच्चों की अपेक्षा अच्छा होता है, वे शीघ्र कौशलों को सीखते हैं।
- **शरीर रचना:** प्रायः अध्ययनों में यह देखा गया है कि जिन बच्चों की हड्डियाँ छोटी और पतली होती हैं तथा मांसपेशियां सुविकसित होती हैं, वे भारी शरीर वाले बच्चों की

अपेक्षा जल्दी सीखते हैं। बालकों के शारीरिक अंगों का अनुपात सामान्य होने पर ही क्रियात्मक विकास सामान्य ढंग से होता है।

- **रोग:** क्रियात्मक योग्यताओं का विकास बालक की बीमारी से भी प्रभावित होता है। जो बालक लम्बी अवधि तक रोगग्रस्त रहते हैं, उन्हें बीमारी की अवधि में कौशलों को सीखने का अवसर नहीं मिल पाता, वह अभ्यास भी नहीं कर सकते हैं। अतः वह पीछे रहे जाते हैं।
- **आहार:** क्रियात्मक योग्यताओं के विकास के लिए आवश्यक है कि बालक को उचित मात्रा में, समय पर और पौष्टिक भोजन प्राप्त होता रहे। उप्रयुक्त मात्रा में पौष्टिक भोजन ना प्राप्त होने पर मांसपेशियों का विकास रूक जाता है जिससे क्रियात्मक योग्यताओं का विकास देरी से होता है।
- **कसे वस्त्रों का प्रयोग:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है, क्रियात्मक विकास शारीरिक अंगों की गतियों पर आधारित है, अतः अंगों की गतियाँ कम होने से बालक का क्रियात्मक विकास देरी से होता है। अतएव बालक के क्रियात्मक विकास को ध्यान में रखकर वस्त्रों का चयन करना चाहिए।
- **व्यक्तित्व सम्बन्धी शीलगुण:** अध्ययनों में यह देखा गया है कि क्रियात्मक क्षमताओं का विकास एक बालक के शीलगुणों से भी प्रभावित होता है। उदाहरण के लिए जिन बालकों में लज्जा, कायरता और निर्भरता होती है, वे अंतर्मुखी होते हैं। ऐसे बच्चे दूसरों से घुलमिल नहीं पाते, अतः अभ्यास व भय के अभाव में शारीरिक कौशलों को सीखने से वंचित रह जाते हैं। दूसरी ओर कुछ बच्चे तेज, बहादुर, आत्मनिर्भर और आक्रमक होते हैं। ऐसे बच्चे बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। ऐसे बच्चे कौशलों को जल्दी सीखते हैं।
- **बुद्धि:** जिन बालकों का बौद्धिक विकास अवरूद्ध होता है, उनमें गत्यात्मक कौशल रूक जाता है।
- **भय:** भय के कारण बालक क्रियात्मक क्रिया को दोहराने से घबराता है। डर के कारण जब वह सम्बन्धित कौशलों का अभ्यास नहीं करते हैं, तब वह उस कौशल को सीखने से वंचित रह जाते हैं। उन्हें चोट लगने का डर होता है, या फिर इस बात से डरते हैं कि कौशल सीखना एक जोखिम भरा काम है।

- **मांसपेशीय नियन्त्रण के विकास के अवसर का अभाव:** अधिकतर आधुनिक घरों में देखा गया है कि कुछ माता पिता अपने बच्चों को हर समय गोद में रखते हैं, वह उन्हें जमीन पर नहीं उतारते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें जमीन पर सरकने, बैठने, खिसकने का अवसर प्राप्त नहीं होता है परिणाम स्वरूप उनमें बैठने, खिसकने, चलने जैसी क्रियात्मक योग्यताओं का विकास बहुत देरी से होता है। अतः माता पिता को चाहिए कि अपने बच्चों को जमीन पर खेलने, घूमने, उछलने कूदने आदि का पर्याप्त अक्सर दें, जिससे उनमें शारीरिक कौशलों का विकास समय से हो सके।
- **सीखने के अवसर की कमी:** शारीरिक कौशलों का विकास इस बात पर भी निर्भर करता है कि बालक को इन कौशलों को सीखने के कितने अवसर प्राप्त हैं। जिन बालकों के पास साधन और स्थान आदि का अभाव है वे अच्चे कौशलों को सीखने से वंचित रह जाते है।
- **खेल का महत्व:** बालक में खेल के माध्यम से क्रियात्मक कौशलों का विकास होता है। यह कौशल वह अन्य बालकों के साथ खेलकर सीखता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अपने खेल के साथियों को अधिक महत्व देने लगता है। अतएव क्रियात्मक विकास प्रक्रिया का निर्देशन खेल के द्वारा भी किया जाता है।

4.4.3 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में परिवार के बाद घर के बाहर पड़ोस, खेल समूह व विद्यालय आदि का बालक के सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था सामाजिक विकास की टोली पूर्व (Pre gang) अवस्था है। लगभग तीन चार वर्ष की अवस्था में बालकों में सामूहिक खेल प्रारम्भ हो जाते हैं। इस अवस्था के बाद बालक की आयु जैसे जैसे आगे बढ़ती जाती है, उनमें मित्रता के व्यवहार बढ़ते जाते है तथा छीना छपटी और मारपीट के सम्बन्ध कम होते चले जाते हैं। इस अवधि में बालकों में जो सामाजिक अभिवृत्तियाँ निर्मित होती हैं, वही आगे तक बनी रहती हैं। जो बालक इस अवधि में स्कूल जाना प्रारम्भ कर देते हैं, उनमें सामाजिक विकास अन्य बच्चों की अपेक्षा तीव्र गति से होता है। बालक की आयु अन्य बालकों से छोटी होने पर यदि उसे अन्य बालकों द्वारा तंग किया जाता है, इस कारण भी उसका सामाजिक विकास होता है, क्योंकि इस विकास में क्रियात्मक रूप से समायोजन होता है। समायोजन द्वारा ही बालक का आन्तरिक व बाह्य सामाजिक विकास सम्भव है।

पूर्वबाल्यावस्था में सामाजिक व्यवहार के कुछ प्रकार

- **आक्रामकता:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बच्चों का व्यवहार कुछ मात्रा में आक्रमक होता है। बच्चों में आक्रामक व्यवहार माता पिता के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार, अधिक ध्यान आकर्षित करने की इच्छा, ईर्ष्या व उसके आवश्यक लक्ष्य में व्यवधान उत्पन्न करने के कारण होता है।
- **झगड़ा:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था के लगभग 3-4 वर्ष की आयु तक झगड़ा करना अपनी चरम सीमा तक पहुँच जाता है। बच्चों में झगड़ा खिलौने छीनने, नोंचने, काटने, गन्दे शब्द बोलने, धक्का देने तथा चिल्लाने आदि के कारण प्रारम्भ होता है। लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक झगड़ा करते हैं।
- **चिढ़ाना:** चिढ़ाने के द्वारा बालक दूसरे बालक को क्रोधित करता है। अधिकांशतः यह देखा गया है कि बालक अपने से कमजोर या फिर छोटे बालक को चिढ़ाता है।
- **निषेधात्मक व्यवहार:** तीन वर्ष का बालक निषेधात्मक व्यवहार में बड़ों की आज्ञा की अवहेलना करता है। पाँच छः वर्ष की अवस्था में यह व्यवहार चरम सीमा तक पहुँच जाता है। इस अवस्था में बालक निषेधात्मक व्यवहार में मौखिक व्यवहार को अधिक अपनाता है।
- **सहयोग:** दो या अधिक बालकों का समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास सहयोग कहलाता है। तीन वर्ष के बालक में सहयोग भावना कम होती है। लगभग पाँच से छः वर्ष का बालक सहयोग का अर्थ समझने लग जाता है। अधिकांशतः बालक सहयोग करना सामूहिक खेलों से सीखते हैं।
- **ईर्ष्या:** तीन से चार वर्ष की आयु में ईर्ष्या के लक्षण उत्पन्न होते हैं। तीन से छः वर्ष की आयु के बच्चे ईर्ष्या के कारण अपने आप को दूसरों से बेहतर सिद्ध करने में लगे रहते हैं।
- **उदारता:** इस अवस्था के बालक उदारता किसी ना किसी मॉडल से सीखते हैं। इस मॉडल का अनुकरण करके वे उदारता तब सीखते हैं जब उन्हें उसका सफल अनुकरण करने पर अनुमोदन मिल जाए। कई बार बच्चे उदाहरता उस समय भी सीख जाते हैं जब उन्हें उदारता के लक्षणों को अपनाने का पुरस्कार मिलता प्रतीत होता है।
- **सामाजिक अनुमोदन की इच्छा:** बालक को सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के साथ प्रसन्नता और आनन्द की प्राप्ति हो जाती है। छोटा बालक अपरिचित लोगों से शर्माता है परन्तु बड़ा बालक अपरिचित लोगों से अनुमोदन प्रापत करना चाहता है।

- **आश्रितता:** लगभग 3 से 4 वर्ष का बालक अपने साथी समूह में आश्रित होने लगता है। बालक में आश्रित रहने की आदत का विकास अपने घर से होता है।
- **मित्रता:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अपने ही भाई बहनों को मित्र बनाना चाहता है। लगभग पाँच वर्ष की अवस्था में पड़ोस के बच्चे भी मित्र बनने लगते हैं। अध्ययनों में देखा गया है कि बालिकाएं बालकों की अपेक्षा अधिक मित्रवत होती हैं तथा उनकी मित्रता में स्नेह प्रदर्शित होता है।
- **सहानुभूति:** सहानुभूति में एक बालक का अन्य बालक के साथ समान संवेगों का प्रदर्शन होता है। चार वर्ष की अवस्था के अन्त तक बालकों में सहानुभूति के लक्षण देखे जा सकते हैं। बच्चों में भाषा के द्वारा भी सहानुभूति का प्रदर्शन होता है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- **शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य:** प्रायः जिन बालकों का शरीर सुन्दर व सुगठित होता है वे विभिन्न परिस्थितियों में समायोजन कर लेते हैं क्योंकि उन्हें सामाजिक विकास के अवसर प्राप्त होते हैं जिससे उनका सामाजिक विकास भी अच्छा होता है। इसके ठीक विपरीत जो बालक रंग रूप में भद्दे , बेडौल, गूंगे, बहरे अथवा अंधे आदि होते हैं, तो उनके साथ अन्य बच्चे खेलना पसन्द नहीं करते हैं, न ही मित्रता पसन्द करते हैं जिससे उन्हें सामाजिक विकास के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं। ऐसा बालक अन्य बालकों से सामाजिक विकास में पिछड़ जाता है।
- **परिवार:** परिवार भी बालक के सामाजिक विकास को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। छोटे परिवारों में बच्चों को अधिक लाड प्यार तो मिलता ही है साथ ही उनकी देखभाल भी अच्छी होती है। इस अवस्था में उनमें सद्गुणों के विकसित होने की तथा सामान्य सामाजिक विकास होने की सम्भावना अधिक होती है। बड़े परिवार में बच्चों का लाड प्यार और देखभाल उतनी नहीं हो पाती है परन्तु उन्हें अन्य बच्चों के व्यवहार के अनुकरण के अवसर अधिक प्राप्त हो जाते हैं। फलस्वरूप उनका सामाजिक विकास शीघ्र तो होता है परन्तु उन बच्चों के अनुरूप होता है जिनके व्यवहार का अनुकरण किया गया है।
- पड़ोस और विद्यालय: बालक के सामाजिक विकास में पड़ोस व विद्यालय की भी अहम भूमिका होती है । बालक के पड़ोस के व्यक्तियों व बच्चों के माध्यम से बालक में

सामाजिक विकास होता है। विद्यालय में शिक्षकों, व मित्रों के द्वारा बालक का सामाजिक विकास होता है।

- **मनोरंजन:** बालक को जितनी अधिक मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएं उपलबध होती हैं उतना ही बालक के खेलने, घूमने फिरने तथा मित्रों में व्यक्त होने की सम्भावनाएं बढ़ जाती हैं जो कि बालक को प्रसन्नचित रखने में सहायक होते हैं। प्रसन्नचित रहने के कारण बालक का सामाजिक विकास अच्छा होता है।
- **व्यक्तित्व:** प्रायः यह देखा गया है कि जिन बालकों में हीनता की भावनाएं व आत्मविश्वास की कमी होती है उनका सामाजिक विकास अवरूद्ध हो जाता है।
- **संवेगात्मक विकास:** जिन बालकों में विनोदप्रियता व हंसमुखता का गुण विद्यामान होता है उनके साथी समूहों की संख्या अधिक होती है जिससे उनका सामाजिक विकास अच्छा होता है।
- **हीनता की भावना:** अधिकांशतः जिन बालकों में हीनता की भावना पायी जाती है वे समाज से कटे रहते हैं तथा किसी से मिलना जुलना पसन्द नहीं करते हैं। इस कारण उनमें आत्मविश्वास की कमी आ जाती है जिससे सामाजिक विकास में अवरुद्धता आ जाती है।
- **साथी समूह:** बालकों की मित्र मण्डली जितनी अधिक होती है उनका सामाजिक विकास उतना ही विस्तृत होता है।

4.4.4 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

संवेगशीलता का समय प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बढ़ता है जिसमें मचलना, तीव्र भय, ईर्ष्या का रूप अधिक होता है। इस समय संवेगों का विविक्तिकरण अधिक होता है जिससे बालक के भाव को पहचानना आसान होता है। बालक में से तीव्र संवेगात्मकता निम्न कारणों से हो सकती है:-

- मेहनत के साथ बहुत समय तक खेलते रहने से या क्रियात्मक कार्य करने से थकान।
- मन के विरूद्ध कार्य होने पर थकान।
- भोजन कम ग्रहण करने पर थकान।

संवेगशीलता के अन्तर: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भिन्न-भिन्न बालकों या फिर एक ही बालक में भिन्न समयों में संवेगशीलता में भिन्नता का कारण बालक का स्वास्थ्य और

पर्यावरण में अन्तर होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में जिस बालक की सभी आवश्यकताएं पूरी कर दी गयी हों व शान्त वातावरण में रहा हो, वह बड़ा होने पर तीव्र संवेग उस बालक की अपेक्षा कम प्रदर्शित करेगा जिसकी प्रारम्भिक बाल्यावस्था में आवश्यकताएं ना पूरी की गयी हों। इसके अतिरिक्त लिंग व जन्मक्रम संख्या का बालक की संवेगशीलता पर प्रभाव पड़ता है।

सामान्य संवेग

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में जिन संवेगों का अनुभव होता है वे निम्न हैं:

- **क्रोध:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रोध सबसे अधिक आमान्य संवेग होता है।
- भय: प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक बड़े बालकों की अपेक्षा चीजों से अधिक डरता है। जैसे जैसे बालक का बुद्धि विकास होता है वो खतरों को पहचानने लगता है। छोटे बालकों के भय के अनेक आधार हो सकते हैं। जैसे डरावनी कहानियाँ, तस्वीरें, रेडियों से आने वाली ध्वनियाँ, टेलीविजन के प्रोग्राम आदि। सामान्यतः घर के सदस्य जिन चीजों से डरते हैं बालक भी उन चीजों से सामान्यतः डरता है। बालक के अप्रिय अनुभवों में से भी भय उत्पन्न होता है। जैसे दांतों के डॉक्टर से भय, इंजेक्शन से भय आदि।
- **ईर्ष्या:** ईर्ष्या संवेग की उत्पत्ति सामाजिक परिस्थितियों के कारण होती है। ईर्ष्या परिचित एवं अपरिचित दोनों प्रकार के व्यक्तियों से हो सकती है। ईर्ष्या के कारण बालक का अपने माता पिता में से किसी एक के प्रति अधिक झुकाव होने लगता है। बालक में अन्य चीजों के प्रति रूचि बढ़ने से ईर्ष्या प्रायः कम होती जाती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में ईर्ष्या क्रोध के समान होती है। ईर्ष्या के कारण बालक में अनेक व्यवहारों का जन्म होता है। जैसे अंगूठा चूसना, नाखून काटना, खाने से इनकार करना, जिद करना, बीमारी का बहाना करना।
- **जिज्ञासा:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक जो भी चीज देखता है उसके बारे में जानने की कोशिश करता है। बालक जब भी कोई चीज देखता है तो उससे सम्बन्धित प्रश्नों को पूछने लगता है जैसे “यह कैसे काम करता है”?, “यह कहाँ से आया है”? इत्यादि। बालक के दूसरे वर्ष से तीसरे वर्ष के बीच “सवाल पूछने की आयु” शुरू होती है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अन्त तक यह अधिक हो जाती है। जब बालक को अपने प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है तो वह शान्त हो जाता है। लेकिन जब बालक को संतोषप्रद उत्तर

नहीं मिलता या फिर उत्तर नहीं मिलता तो उसकी जिज्ञास कम हो जाती है। इस कारण अपनी आयु तथा बुद्धि स्तर वाले बालकों की अपेक्षा उसकी जानकारी सीमित रहती है।

- **हर्ष:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक को कई बातों से हर्ष होता है। बालक नई खोजों से हर्षपूर्ण रहता है। बालक को हर्ष की अनुभूति तब भी होती है जब बालक की सफलताएं दूसरे बालकों की अपेक्षा ज्यादा होती हैं। बालक हर्ष में हंसना, मुस्कुराना, ऊँचे स्वर में खिलखिलाना, ताली बजाना, उछलना कूदना आदि अनुक्रियाएं करता है।
- **स्नेह:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक अपने परिजनों द्वारा दिये गये सुख एवं संतोष के कारण उनसे स्नेह करना सीखता है। यह एक सुख संवेग से सम्बन्धित है। छोटा बालक जानवरों, परिजनों, अन्य व्यक्तियों व निर्जीव वस्तुओं से भी वही स्नेह प्रकट करता है जो उसके परिजनों द्वारा उसके लिए किया जाता है। बालक के माता पिता जिस प्रकार उससे स्नेह करते हैं वह उस स्नेह को अपने घर के पालतू जानवरों व खिलौनों के साथ करने का प्रयास करता है। बालक का स्नेह उसके व्यवहार को प्रदर्शित करता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक स्नेहशील एवं व्यवहारिक होती हैं। छोटे बालक अन्य संवेगों की भाँति स्नेह को भी मर्यादित ढंग से प्रकट करते हैं। बालक स्नेह के कारण जिस भी वस्तु, व्यक्ति या चीज को चाहता है वह उसके साथ रहने के लिए अन्य संवेगों का सहारा लेते हैं जैसे रोना, सिसकते रहना, प्रिय व्यक्ति के साथ रहना व वस्तुओं से चिपटना आदि।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

यद्यपि बालकों का संवेगात्मक विकास परिपक्वता तथा अधिगम पर आधारित है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कारक ऐसे भी हैं जिसके फलतः बालकों में संवेगात्मकता अधिक और कुछ में कम मात्रा में पायी जाती है। ये कारक निम्न हैं:

- **शारीरिक स्वास्थ्य:** बालकों के स्वास्थ्य का सम्बन्ध सीधा उनकी संवेगात्मकता से है। जो बालक कमजोर, अस्वस्थ व बीमारियों से ग्रसित होते हैं उसमें संवेगात्मक अस्थिरता पायी जाती है। स्वस्थ बालकों में संवेगात्मक नियन्त्रण व स्थिरता भी अच्छी होती है।
- **बुद्धि:** वैज्ञानिकों ने माना है कि जिन बालकों में बुद्धि सामान्य की तुलना में अधिक होती हैं उनमें संवेगात्मक स्थिरता अधिक पायी जाती है जबकि जिन बालकों की बुद्धि औसत से कम होती है उनमें संवेगात्मक स्थिरता व नियन्त्रण कम पाया जाता है।

- **लिंग:** बालक तथा बालिकाओं में संवेगात्मक भिन्नता पायी जाती है। बालकों में भय का संवेग बालिकाओं की अपेक्षा कम होता है। जबकि ईर्ष्या की भावना बालिकाओं में अधिक पायी जाती है। प्रेम व स्नेह बालकों के बजाय बालिकाओं में अधिक होता है।
- **बालक अभिभावक सम्बन्ध:** संवेगों को बालक अभिभावक सम्बन्ध भी प्रभावित करते हैं। जो माता पिता अपने बालक को अधिक प्रेम, स्नेह व देखभाल करते हैं उनके बच्चे माता पिता पर अधिक आश्रित होते हैं। जिस कारण बालक कम चिन्ता करने वाले परन्तु धिक क्रोधी हो जाते हैं। जो माता पिता अपने बच्चों के प्रति जितने अधिक सख्त होते हैं उनके बच्चे उतने ही दब्बू स्वभाव वाले और शीघ्र भयभीत होते हैं। जो माता पिता अपने बालक का तिरस्कार करते रहते हैं, उन बालकों में आक्रामकता व क्रोध जैसे लक्षण विकसित होते हैं।
- **सामाजिक वातावरण:** सामाजिक वातावरण भी बालकों के संवेगों को प्रभावित करता है। बालक पर उसके निकट रहने वाले व्यक्तियों से उसकी संवेगात्मक अभिव्यक्ति का प्रभाव पड़ता है। यदि बालक लड़ाई-झगड़ा व मारपीट वाले माहौल में रहता है तो बालक में क्रोध संवेग का विकास होता है, साथ ही वह झगड़ालू भी हो जाता है।
- **जन्म क्रम:** बालक का जन्मक्रम भी बालक के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। माता पिता की पहली सन्तान को अधिक स्नेह व अतिसंरक्षण मिलता है। ऐसे बालक दूसरे बच्चे के आने पर ईष्यालु हो जाते हैं जिससे उनका स्वभाव क्रोधी हो जाता है।
- **परिवार का आकार:** परिवार का आकार भी बालकों की संवेगात्मकता को प्रभावित करता है। जो बालक संयुक्त परिवार में रहते हैं उन बालकों में संवेगों का विकास तीव्र गति से होता है। जो बालक एकल परिवार में रहते हैं उनमें संवेगों का विकास धीमी गति से होता है क्योंकि एकाल परिवार वाले बालकों को संवेगों का अनुकरण करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त नहीं हो पाते हैं।
- **सामाजिक आर्थिक स्तर:** सामाजिक आर्थिक स्तर का भी बालकों के संवेगों पर प्रभाव पड़ता है। उच्च स्तर परिवार वाले बालकों में संवेगात्मक स्थिरता, मध्यम व निम्न स्तर वाले बालकों की अपेक्षा उच्च पाई जाती है।

- **व्यक्तित्व:** प्रत्येक बालक का व्यक्तित्व भिन्न-भिन्न होता है। कुछ बालक बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। कुछ अन्तर्मुखी व्यक्तित्व वाले होते हैं। बर्हिमुखी बालकों में अन्तर्मुखी बालकों की अपेक्षा संवेगात्मक स्थिरता अधिक पायी जाती है।
- **आत्म विश्वास:** कोई चीज जो बालक के आत्मविश्वास को कम करे या उसके आत्म सम्मान या उसके कार्य, जिसे वह करना चाहता है या उद्देश्य जिसे वह महत्वपूर्ण समझता है, से विचलित करे तो यह उसमें चिन्ता या भय की प्रवृति में वृद्धि कर सकती है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास .... से होता है।
   b. उपयुक्त मात्रा में पौष्टिक भोजन ना प्राप्त होने पर .... रूक जाता है।
   c. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक जो भी चीज देखता है उसके बारे में जानने की कोशिश करता है, यह उसकी .... प्रवृत्ति को दर्शाता है।

बोध प्रश्नों के पश्चात आइए हम संज्ञानात्मक विकास एवं भाषा विकास का अध्ययन करें।

4.4.5 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास

संज्ञानात्मक विकास वह आन्तरिक क्रियाएं हैं जिनका सीधा सम्बन्ध मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान से है जिनके विकास से ही बालक के संज्ञान में विकास होता है। अतः संज्ञानात्मक विकास मानसिक क्रियाएं हैं।

जीन प्याजे के संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाओं में से पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (2-7 वर्ष; Pre-Operational stage) में प्रारम्भिक बाल्यावस्था का वर्णन है जो कि निम्न है:

शिशु की 2-7 वर्ष की अवस्था पूर्व संक्रियात्मक अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में बालकों की मानसिक अभिव्यक्ति की योग्यता का काफी विकास होता है। इस अवस्था के बालक अपने पूर्व की सूचनाओं/विचारों/घटनाओं का प्रकाशन तो करते ही हैं, साथ ही नवीन विचारों/सूचनाओं का संग्रहण भी करते हैं। अब बालक स्वकेन्द्रित न रहकर समूह प्रेमी बनता है तथा दूसरों के सम्पर्क में आकार ज्ञान सीखता है। वह अपने विचारों का आदान प्रदान करना सीखता है।

यद्यपि प्याजे यह मानते हैं कि भाषा हमारी मानसिक अभिव्यक्ति का सबसे सशक्त एवं महत्वपूर्ण माध्यम है। इसके द्वारा हम अपनी सोच, चिन्तन, तर्क, विश्लेषण आदि को अभिव्यक्त कर सकते हैं और वातावरण में घटित होने वाली घटनाओं पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकते हैं परन्तु वे यह नहीं मानते कि बालकों के संज्ञानात्मक विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। वे मानते हैं कि संवेदीप्रेरक अवस्था (sensorimotor stage) में ही बालकों के मन मस्तिष्क पर जिन वस्तुओं / घटनाओं का चित्र अंकित हो जाता है उन्हीं से वे शब्दों को जोड़ लेते हैं।

प्याजे का मानना है कि इस अवस्था के बालकों में संज्ञानात्मक परिपक्वता का अभाव पाया जाता है, इसी कारण वे समस्या के केवल एक ही पक्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित कर पाते हैं। वह वातावरण में घटित होने वाली कई घटनाओं को देखता है, समझता है और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। जैसे बालक आकाश में इन्द्रधनुष को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है परन्तु वह यह नहीं समझ पाता है कि आकाश में इतना सुन्दर सतरंगी इन्द्रधनुष का निर्माण किस प्रकार व कैसे हुआ है।

यद्यपि इस अवस्था का बालक सोच विचार कर कार्य करता है मगर वह एक तरफा सोचता है। यदि उसे खेलना अच्छा लगता है तभी वह खेलता है अथवा नहीं खेलता है। वह केवल अपने बारे में ही सोचता है और बातचीत में मैं, मेरा खिलौना, मेरा स्कल, मेरे मम्मी पापा, मेरा चॉकलेट, मेरा ड्रेस आदि की ही बात करता है। अतः बालक आत्मकेन्द्रित (Egocentric) होता है। वह दूसरों के भावों/ विचारों के बारे में सोचने में असमर्थ होता है।

संज्ञानात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- **आनुवंशिकता:** बालक की बुद्धि का विकास तीव्र या मन्द होना, इस आधार पर संज्ञानात्मक विकास निर्भर करता है। तीव्र वृद्धि बालकों का संज्ञानात्मक विकास मन्द बुद्धि बालकों की अपेक्षा तीव्र एवं अधिक मात्रा में होता है।
- **ज्ञानेन्द्रियाँ:** जिन बालकों की ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा) जितनी अधिक विकसित होती हैं वे उतनी ही शीघ्रता से वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करते हैं। ठीक इसके विपरीत जिन बालकों की ज्ञानेन्दियाँ जितनी कम विकसित होती हैं, वे वस्तुओं एवं उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण उतना ही देर से कर पाते हैं।
- **परिपक्वता:** बालकों के मस्तिष्क एव नाड़ी संस्थान के तन्त्रिकाओं एवं कोशिकाओं में जब तक परिपक्वता नहीं आ जाती है तब तक उसमें तर्क, चिन्तन, स्मरण, अनुभव ,

वर्गीकरण, कल्पना, सृजन, विश्लेषण आदि क्षमताओं का विकास नहीं हो सकता है। वह वातावरण में उपस्थित विभिन्न वस्तुओं के बारे में प्रत्यक्षीकरण नहीं कर सकता है और न ही वह उन्हें पहचान सकता है। इसी प्रकार वह अमूर्त वस्तुओं के सम्बन्ध में प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता है।

- **मानसिक योग्यता:** बालक की तर्क शक्ति, चिन्तन शक्ति, स्मरण शक्ति, सृजन शक्ति, विश्लेषण शक्ति, मानसिक योग्यता पर निर्भर करती है। वे अपनी मानसिक योग्यता से नवीन वस्तु का सृजन कर, मौलिक विचार प्रस्तुत कर लोगों को अचम्भित कर देते हैं व उनके चहेते बन जाते हैं।
- **सीखने के अवसर:** उच्च आर्थिक एवं सामाजिक परिवार वाले बालकों का संज्ञानात्मक विकास निम्न आर्थिक एवं सामाजिक परिवार वाले बालकों की तुलना में अधिक होता है क्योंकि जिन बालकों को जितने अधिक सीखने के अवसर प्रदान किये जाते हैं उनमें उतना ही अधिक ज्ञान का विकास होता है।
- **मस्तिष्क विकार:** बालक के मस्तिष्क में कोई दोष हो जाने, विकार उत्पन्न होने अथवा चोट लग जाने पर वह वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण ठीक से नहीं कर पाता है। उसके मस्तिष्क में उस वस्तु का सही प्रतिबिम्ब नहीं बन पाता है। इस कारण वह वस्तुओं के सम्बन्ध में सही जानकारी प्राप्त नहीं कर पाता है।
- **शारीरिक स्वास्थ्य:** जब बालक शारीरिक रूप से स्वस्थ रहेगा तभी वह मानसिक रूप से भी स्वस्थ रह सकेगा और विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाओं को सम्पन्न करेगा। उसमें सोचने, समझने, चिन्तन करने, याद करने व विश्लेषण करने आदि शक्ति का विकास होग। अस्वस्थ बालक दुखी, उदास एवं खिन्न रहता है। उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। ऐसी स्थिति में स्मरण, चिन्तन, तर्क आदि मानसिक क्षमताओं का विकास नहीं हो पाता है।
- **बुद्धि:** तीव्र बुद्धि के बालकों की स्मरण, ध्यान एवं तर्क शक्ति अधिक होने के कारण संज्ञानात्मक विकास जल्दी होता है। वहीं मन्द बुद्धि बालकों में संज्ञानात्मक विकास देरी से होता है।
- **समायोजन क्षमता:** संज्ञानात्मक विकास का समायोजन क्षमता से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिन बालकों का स्कूल, घर, परिवार व समाज के लोगों के साथ अच्छा समायोजन होता है,

उनका संज्ञानात्मक विकास भी अच्छा होता है। इसके विपरीत जिन बालकों का समायोजन अपने घर परिवार, समाज व स्कूल के साथियों के साथ अच्छा नहीं होता उनमें ज्ञान का विकास कम होता है।

- **आयु विभेद:** प्रारम्भ में नवजात शिशु अपने आस पास के वातावरण से अनभिज्ञ होता है परन्तु वह जैसे जैसे बड़ा होता है वैसे वैसे उसके ज्ञान का विकास होता जाता है। उम्र बढ़ने के साथ साथ बालक में चिन्तन, तर्क , स्मरण, विश्लेषण, ध्यान आदि मानसिक क्षमताओं का विकास होने लगता है। अतः आयु बढ़ने के साथ साथ बालकों में संज्ञानात्मक विकास भी बढ़ता है।

4.4.6 प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास

भाषा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य अपने भाव, विचार, अनुभव व तथ्य को दूसरे मनुष्य तक पहुँचाने के लिए प्रयोग करता है। परिवार से बालक का भाषा विकास प्रारम्भ होता है।

भाषा के कौशल सीखने के कार्य

- **अर्थ भण्डार (Comprehension):** बालकों में अर्थ भण्डार का विकास भली प्रकार से होना चाहिए ताकि जब उसका स्कूल में प्रवेश हो तब उसके पास उतना अर्थ भण्डार हो कि वह अपरिचित लोगों की हिदायतें, शिक्षक की वाणी या जो कहानी उसे पढ़कर सुनायी जाती है, उसका सही अर्थ समझ सके। इसके लिए आजकल अनेक साधन उपलब्ध हैं जैसे टेलीविजन, रेडियो, कम्प्यूटर एवं वह खिलौने जो पढ़ना सिखाते हैं।
- **शब्द भण्डार (Vocabulary Building):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में शब्द भण्डार भी बढ़ता जाता है। सीशोर के एक अध्ययन के अनुसार, 4 वर्ष की आयु में 5600 शब्दों का एवं 5 वर्ष में 9600 शब्दों का विकास होता है। इस आयु में बालक संज्ञा के साथ साथ सर्वनाम तथा क्रियाओं का प्रयोग भी करता है। बालक विशिष्ट शब्दों को सीखने में रूचि लेता है। जैसे 'धन्यवाद' (Thank You), 'कृपया' (Please), 'मुझे खेद है' (I Am Sorry) आदि। इसके साथ बालक रंगों की पहचान भी करने लगता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक पर वातावरण का प्रभाव भी पड़ता है। यदि उसके आस पास गाली गलौच व अभद्र शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो बालक बिना अर्थ जाने उन शब्दों का प्रयोग करने लगता है।

- **वाक्य उच्चारण (Pronunciation):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में वाक्य उच्चारण सम्बन्धी काफी गलतियाँ होती हैं। बालक एकवचन व बहुवचन प्रयोग करने सम्बन्धी ज्यादा अन्तर नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त संज्ञा, क्रिया शब्दों में अन्तर नहीं समझ पाता है। बालक का घर पर, स्कूल जाकर, रेडियो व टेलीविजन आदि के द्वारा वाक्य उच्चारण विकसित होता है।
- **वाक्य रचना (Sentence Formation):** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में वाक्य रचना दो से तीन वर्ष की आयु से विकसित होने लगती है। पहले वाक्य अपूर्ण होते हैं जिन्हें बालक को बोलने में कठिनाई होती है तथा जब वह वाक्यों का प्रयोग करता है वह उन्हें विराम लेकर बोलता है। तीन वर्ष की आयु के बाद बालक की बोली में पूर्णवाक्य दिखने लगते हैं। छः वर्ष से वह लगभग सभी प्रकार की वाक्य रचना कर लेता है। यह वाक्य रचना बालक की बुद्धि पर निर्भर करती है।

भाषा के दोष

प्रायः भाषा सीखना या बोलना कठिन कार्य है। कुछ बालक, साफ साफ उच्चारण कर लेते हैं तथा कुछ बालक नहीं कर पाते हैं। बालक को सबसे ज्यादा कठिनाई एकवचन, बहुवचन, संज्ञा, सर्वनाम, परसर्ग, काल व अन्य व्याकरण सम्बन्धी होती है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में मुख्य तीन प्रकार के भाषा विकार दृष्टिगत होते हैं:

तुतलाना (Lisping): प्रारम्भिक बाल्यावस्था में तुतलाना एक सामान्य दोष है। अस्थायी दाँतों के टूटने के बाद स्थायी दाँत निकलने के बीच के काल में दाँतो में रिक्तता होती है। ऐसी स्थिति में बालक तुतला कर बोलता है।

अस्पष्ट उच्चारण (Slurring): प्रारम्भिक बाल्यावास्था में बालक में अस्पष्ट उच्चारण के निम्न कारण हो सकते हैं:

- बालक में होंठ, जीभ और जबड़े की असन्तुलित क्रिया के कारण।
- बोलने में उत्तेजना के कारण ।

हकलाना (Stuttering): हकलाना शब्दों, ध्वनियों का रूक रूककर दोहराया जाना है। जैस यदि हकलाने वाला बालक यह कहना चाहें 'आप क्या कर रहे हो', वह 'आप क्या कर' ही बोल पाता है। हकलाहट संवेगात्मक तनाव व घबराहट के कारण होता है। इसमें बालक का हिचकिचाना, शर्माना या कोई शब्द का ज्ञान पूर्ण रूप से ना होना आदि कारण होते हैं। दो से

चार वर्ष की आयु में हिचकिचाना या दोहराते हुए बोलना लगभग सभी बालकों में होता है। पाँचवे व छठे वर्ष में हकलाहट का होना तेज हो जाता है। धीरे-धीरे हकलाहट का दोष कम होता जाता है। किसी किसी बालक में यह दोष आजीवन भी रह जाता है। लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में यह दोष अधिक पाया जाता है।

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

प्रत्येक बालक के भाषा विकास में भिन्नता पायी जाती है। किसी बालक में भाषा विकास ज्यादा होता है तो किसी में कम होता है। भाषा विकास को प्रभावित करने वाले निम्न कारक हैं:

- **परिपक्वता:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के भाषा विकास के लिए होंठ, जीभ, दाँत, फेफड़े, स्वरयन्त्र आदि में परिपक्वता होनी चाहिए। इनके साथ ही मस्तिष्क का विकास होना भी आवश्यक है।
- **स्वास्थ्य:** जो बालक अस्वस्थ रहते हैं उनका भाषा विकास शीघ्रता से नहीं होता है। जबकि जो बालक स्वस्थ एवं निरोगी होते हैं उनका भाषा विकास तीव्र गति से होता है।
- **बुद्धि:** बालकों में बुद्धि एवं भाषा में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। कुछ अध्ययनों से निष्कर्ष निकाल है कि जिनमें बुद्धि कम होती है उनमें भाषा विकास भी कम होता है। उच्च बुद्धि वालों का भाषा विकास उच्च होता है।
- **सामाजिक अधिगम के अवसर:** बैंडूरा और उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला कि बालक को भाषा सीखने के लिए जितने अधिक सामाजिक अवसर प्राप्त होते हैं, वह उतनी ही शीघ्रता से भाषा सीखता है।
- **प्रेरणा:** यद्यपि बालकों को भाषा सीखने के अनेक अवसर मिलते हैं, फिर भी माता पिता उन्हें प्रेरित नहीं कर पाते हैं। जब बालक रोकर कोई वस्तु मांगे तो उसे नहीं देनी चाहिए। इससे वह शब्दों का उच्चारण सीखेगा। बालक को लगेगा कि बिना शब्दों के उच्चारण के कोई भी वस्तु नहीं मिलती है। इस प्रकार प्रेरणा भी बालक के भाषा विकास के लिए महत्वपूर्ण है।
- **निर्देशन:** भाषा विकास के समय बालकों में निर्देशन की अति आवश्यकता होती है। भाषा विकास के लिए यह आवश्यक है कि बालक के समक्ष जो शब्द बोले जाएं उनके समक्ष उनके मॉडल भी प्रस्तुत किये जाएं। उदाहरण के लिए यदि बालक के समक्ष गुड़िया

शब्द का उच्चारण किया जाता है तो उसके मस्तिष्क में गुड़िया की आकृति व गुड़िया शब्द बैठने लगता है जिससे वह जब भी वह गुड़िया देखता है तो गुड़िया शब्द के उच्चारण करने की कोशिश करता है।

- **सामाजिक आर्थिक स्तर:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के भाषा विकास पर सामाजिक व आर्थिक स्तर का प्रभाव पड़ता है। जो बालक, उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवारों से सम्बन्ध रखते हैं उनमें भाषा विकास अच्छा होता है, उनका उच्चारण शुद्ध होता है। इसके विपरीत जो बालक निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवार से सम्बन्ध रखते हैं उनका भाषा विकास अच्छा नहीं होता है। यदि वे भाषा का अनुकरण भी करते हैं तो गाली गलौच वाले शब्दों का अनुकरण अधिक करते हैं। लगभग पाँच वर्ष तक बालक में भाषा विकास पर सामाजिक आर्थिक स्तर का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है।
- **लिंग:** मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा विकास लिंग भेद से प्रभावित होता है। समान आयु के बालक बालिकाओं में बालिकाओं का भाषा विकास जल्दी होता है। बालिकाओं में शब्द भण्डार तथा शुद्ध उच्चारण बालकों की तुलना में अधिक होता है।
- **पारिवारिक सम्बन्ध:** प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालक के भाषा विकास में पारिवारिक सम्बन्धों का भी प्रभाव पड़ता है। जिन बालकों के अपने परिवार के साथ सम्बन्ध अच्छे होते हैं, उनका भाषा विकास जल्दी होता है। संयुक्त परिवार में रहने वाले बालकों का भाषा विकास शीघ्र होता हे। उनको सीखने के पर्याप्त अवसर प्राप्त होते हैं। इसके ठीक विपरीत जिन बालकों के अपने परिवार के साथ सम्बन्ध अच्छे नहीं होते हैं उनका भाषा विकास निम्न होता है तथा प्रायः उन्हें सीखने के अवसर प्राप्त नहीं होते हैं।
- **व्यक्तिगत विभिन्नताएं:** वैज्ञानिकों के मतानुसार भाषा विकास पर व्यक्तिगत विभिन्नताओं का प्रभाव पड़ता है। बर्हिमुखी व उत्साही बालकों में भाषा विकास अन्तर्मुखी व शांत बालकों की अपेक्षा शीघ्रता से होता है।
- **कई भाषाओं का प्रयोग:** जिन परिवारों में माता पिता कई भाषाओं का प्रयोग करते हैं वहाँ बालकों का भाषा विकास शीघ्रता से नहीं होता है क्योंकि माता पिता द्वारा बालकों के सामने एक ही वस्तु के लिए दो भाषाओं का प्रयोग किया जाता है। दो अलग अलग शब्द याद रखना बालक के लिए मुश्किल कार्य हो जाता है जिससे बालक में उच्चारण

सम्बन्धी दोष आ जाते हैं। इसलिए यदि परिवार में अधिक भाषाओं का प्रयोग हो रहा है तो बालक का भाषा विकास मन्द गति से होगा।

इकाई के अंत में अब हम कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. जिन बालकों की ज्ञानेन्द्रियाँ जितना अधिक विकसित होती हैं वे वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं।
   b. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं।
   c. जिन परिवारों में माता पिता कई भाषाओं का प्रयोग करते हैं वहाँ बालकों का भाषा विकास शीघ्रता से होता है।

4.5 सारांश

प्रारम्भिक बाल्यावस्था बालक के जीवन में आने वाली विभिन्न अवस्थाओं में से एक है। इस अवस्था की जानकारी प्रत्येक व्यक्ति एवं परिवार के लिए अत्यन्त आवश्यक है। माता पिता को बालक की इस अवस्था के बारे में उचित जानकारी होने पर बालक का शारीरिक विकास, क्रियात्मक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास एवं भाषा विकास सामान्य तरीके से होता है। यदि उपरोक्त विकास की जानकारी नहीं हो तो बालक से सम्बन्धित ये विकास अवरूद्ध हो जाते हैं। बालक की इन विकास प्रक्रियाओं का ज्ञान अनेक माध्यमों से प्राप्त किया जा सकता है जैसे पुस्तक, टेलीविजन व पत्र पत्रिकायें इत्यादि। बालक का प्रत्येक विकास हर दूसरे विकास को प्रभावित करता है। अतः बालक का प्रत्येक विकास उचित रूप से विकसित होना अनिवार्य है। बालक का विकास बालक के भविष्य के व्यवहार को निर्धारित करते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था के अध्ययन से बालक के भाव, विचार व मनोवृत्ति का आसानी से पता लगाया जा सकता है जिससे उन समस्याओं का समाधान करने में आसानी होती है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

- **भाषा विकार:** वाणी में विकार होना।

- **संज्ञानात्मक विकास:** ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से उद्दीपकों को देखकर, सुनकर, सूँघकर, चखकर, छूकर अथवा अनुभूति द्वारा समझने का प्रयास।
- **क्रियात्मक विकास:** क्रियात्मक विकास के अन्तर्गत हाथ पैर एवं शरीर के अन्य भागों की मांसपेशियों का समन्वय, गति एवं उनकी शक्ति निहित है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. 2 से 6 वर्ष
   b. 50 प्रतिशत
   c. मन्द गति

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. तीव्र गति
   b. मांसपेशियों का विकास
   c. जिज्ञासा

अभ्यास प्रश्न 3

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. असत्य
   b. सत्य
   c. असत्य

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल, डा0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास, अग्रवाल, पब्लिकेशन, आगरा -7।

2. प्रो0 कमलेश शर्मा, डॉ0 ललिता शर्मा, डॉ0 (श्रीमती) पुष्पा उपाध्याय, मानव विकास, स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. डॉ0 (श्रीमती) वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ0 प्रीति वर्मा, डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, बाल मनोविज्ञान बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
5. सुरेश भटनागर, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध।

4.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास की विशेषताएं बताइए तथा उन्हें प्रभावित करने वाले कारकों की व्याख्या कीजिए।
2. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में क्रियात्मक विकास की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
3. प्रारम्भिक बाल्यावस्था में भाषा विकास पर टिप्पणी कीजिए। विभिन्न भाषा विकारों का भी उल्लेख कीजिए।

इकाई 5: मध्य बाल्यावस्था- I

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मध्य बाल्यावस्था
    5.3.1 मध्य बाल्यावस्था की विशेषताएं
    5.3.2 मध्य बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य
5.4 मध्य बाल्यावस्था में भाषा विकास
    5.4.1 भाषा विकास के क्षेत्र
    5.4.2 वाणी के प्रकार
    5.4.3 भाषा का विषय
5.5 बौद्धिक विकास
    5.5.1 मध्य बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास
    5.5.2 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार
    5.5.3 मानसिक आयु और बुद्धि लब्धि (Mental Age and Intelligence Quotient -I.Q.)
    5.5.4 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग
    5.5.5 बुद्धि के निर्धाकर तत्व
    5.5.6 बौद्धिक विकास और विद्यालय
5.6 मध्यबाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास
    5.6.1 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
    5.6.2 सकारात्मक एवं नकारात्मक संवेगों का विकास
5.7 सारांश
5.8 पारिभाषिक शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

जीवन की सभी महत्वपूर्ण अवस्थाओं में से एक महत्वपूर्ण अवस्था मध्य बाल्यावस्था है। यह अवस्था पूर्व बाल्यावस्था के बाद आने वाली अवस्था है। इसलिए पूर्व बाल्यावस्था में बालक द्वारा सीखे गए ज्ञान एवं प्रत्येक क्षेत्र के अनुभव परिभाषित होते रहते हैं। अर्थात् उनमें और अधिक अच्छे परिवर्तन आते रहते हैं। बालक की इस अवस्था के विकास में परिवार का महत्वपूर्ण योगदान होता है क्योंकि बालक की गलतियों पर व बालक की निरर्थक बातों को सार्थकता परिवार ही प्रदान करता है, जो बालक को बाहर के वातावरण के अनुकूलन में सहायक होता है। इस आयु के अन्तर्गत बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक व संवेगात्मक बदलाव होते हैं, जो उसके भविष्य के विकास के लिए निर्धारक का कार्य करते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत मध्य बाल्यावस्था के भाषा विकास, बौद्धिक विकास एवं संवेगात्मक विकास के बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है। मध्य बाल्यावस्था में आने वाली समस्याओं का समाधान बालक अपने माता पिता एवं अन्य सम्बन्धियों के सम्मुख रखता है जिनका वे समाधान करते हैं, चाहे वह समस्या विद्यालय से ही सम्बन्धित हो। बालक की अवस्थाओं में जिस तरीके से परिवर्तन के साथ साथ विकास होता रहता है वह बालक की परिपक्वता के आधार के रूप में कार्य करती है। बालक के रूचि में भी स्थायी रूप आने लगता है।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- मध्य बाल्यावस्था में वर्णित क्षेत्रों के बारे में गहन अध्ययन कर पाएंगे;
- मध्य बाल्यावस्था में प्रत्येक विकास के साथ साथ उनके सिद्धान्त, प्रभावित करने वाले कारक, विशेषताओं का भी अध्ययन कर पाएंगे; तथा
- मध्य बाल्यवस्था में बालक की मनोदशा, मस्तिष्क, संवेग व भाषा अभिव्यक्ति को अधिक सरलता से समझ पाएंगे।

5.3 मध्य बाल्यावस्था

मध्य बाल्यावस्था 6-12 वर्ष की अवस्था मानी जाती है। यह अवस्था प्रारम्भिक बाल्यावस्था के तुरन्त बाद की अवस्था है तथा इसे प्राथमिक विद्यालय अवस्था भी कहा जाता है। मनावैज्ञानिकों ने इस अवस्था को खेल अवस्था भी कहा है। मध्य बाल्यावस्था तुलनात्मक रूप से धीमी अवस्था है क्योंकि इसमें अन्य अवस्थाओं की तुलना में भार एवं लम्बाई में वृद्धि

मन्द गति से होती है। परन्तु यह अवस्था अनेक क्षेत्रो में बालक की विकास पद्धति को सुधार की ओर ले जाती है। जैसे भाषा तथा क्रियात्मक कौशलों में पहले से बेहतर सुधार होना। मध्य बाल्यावस्था में बालक सामाजिक समायोजन भी शीघ्रता से कर लेता है क्योंकि बालक का अधिकतर समय विद्यालय तथा मित्रमण्डली में व्यतीत होता है।

इस अवस्था में बालक में अनेक शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होते हैं तथा उसका पर्यावरण विस्तृत होता है जिससे उसका शारीरिक और मानसिक ही नहीं, सामाजिक और संवेगात्मक विकास भी होता है।

5.3.1 मध्य बाल्यावस्था की विशेषताएं

बाल मनोवैज्ञानिकों ने मध्य बाल्यावस्था की कुछ प्रमुख विशेषताएं बतायी हैं जो निम्नलिखित हैं:

- **प्राथमिक विद्यालय आयु:** शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार 6 से 12 वर्ष की आयु विद्यालय जाने की आयु है क्योंकि इस आयु में बालक नियमित रूप से विद्यालय जाने लगता है। इस आयु से अनौपचारिक शिक्षण प्रारम्भ हो जाता है।
- **चपलता की आयु:** इस आयु में बालकों की क्रियाशीलता बढ़ने के साथ साथ आत्मनिर्भरता भी बढ़ जाती है। इस अवस्था में बालक कोई भी कार्य स्वयं करना चाहता है। बालकों की क्रियाशीलता के कारण ही इस आयु को 'चुस्ती-फूर्ती की अवस्था' भी कहा जाता है।
- **मलिन आयु:** बालक का अधिकांश समय समूह में रहने के कारण वह स्वयं के प्रति लापरवाह हो जाता है और उसका शारीरिक सौन्दर्य कम हो जाता है। इसका कारण यह है कि बालक में समूह भावना प्रबल होती है।
- **समूह आयु:** इस आयु में बालक समूह के बीच में रहना चाहता है। इसी वजह से बालक अधिकतर समय घर से बाहर व्यतीत करता है। समूह के बीच में ही बालक अपने कर्तव्यों व अधिकारों का ज्ञान प्राप्त करता है।
- **सारस अवस्था:** इस आयु में शरीर की तुलना में हाथ पैरों का विकास तीव्र गति से होता है जिससे टाँगें लम्बी दिखाई देती हैं, अतः इस आयु को 'सारस अवस्था' कहा जाता है।

- **क्षीण बुद्धि आयु:** इस आयु में बालक में विवेकशीलता और दूरदर्शिता का अभाव होता है इसलिये वह शीघ्रता से भाववेश में आ जाता है। वह परिणाम की परवाह न करके क्षणिक आवेश में काम करता है।
- **विकास में स्थिरता की आयु:** मनोवैज्ञानिकों ने इस आयु को मिथ्या परिपक्वता की अवस्था (Stage of Pseudomaturity) कहा है क्योंकि बालक के शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों को देखते हुये उसके प्रौढ़ होने का संदेह होता है।
- **आत्मनिर्भरता की आयु:** इस आयु में बालक की शारीरिक क्षमताओं का विकास अधिक हो जाता है जिस कारण वह विभिन्न क्रियायें जैसे भोजन करना, वस्त्र पहनना, अपने सामान को यथास्थान रखना, स्नान करना आदि कार्य स्वयं करने लगता है। अभिभावकों को इनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि इन्हीं कार्यों की वजह से बालकों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है।
- **जिज्ञासा की आयु:** इस अवस्था में मानसिक क्षमताओं के विकास होने व मानसिक परिपक्वता आ जाने से बालक जिज्ञासु प्रवृति का हो जाता है जिस कारण वह अपने सम्पर्क में आने वाली विभिन्न वस्तुओं के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है। जिज्ञासा की शांति के लिए माता पिता व शिक्षकों से तरह तरह के प्रश्न पूछता है। यदि बालक संतोषजनक उत्तर प्राप्त नहीं करता है तो समूह के बीच अपनी जिज्ञासा को शान्त करता है। जिज्ञासा की संतुष्टि के कारण ही बालक के ज्ञान भण्डार में वृद्धि होती है।
- **प्रसुप्त काम आवेग की आयु:** इस आयु में बालक की ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है। लेकिन काम प्रवृत्ति सुप्तावस्था में रहती है।
- **संचय प्रवृत्ति की आयु:** इस आयु में बालक को वस्तुएं रूचिकर लगती हैं। उन्हें वह अपने पास संग्रहित करता है और आनन्द का अनुभव करता है। माता पिता को चाहिये कि वो बालक की इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दें ताकि बालक का बौद्धिक विकास हो सके।
- **नैतिक विकास की आयु:** इस आयु में बालक में नैतिकता का विकास होता है जिसके फलस्वरूप बालक परिवार, विद्यालय, समूह और समाज के नियमों के अनुसार ही आचरण करने का प्रयास करता है।

5.3.2 मध्य बाल्यावस्था में विकासात्मक कार्य

मध्य बाल्यावस्था में निम्न विकासात्मक कार्य दृष्टिगत होते हैं:

- खेलों के लिये आवश्यक शारीरिक कौशलों को सीखना।
- विकसित प्राणी के रूप में उसके प्रति सम्पूर्ण अभिवृत्ति का निर्माण करना।
- अपनी आयु के लोगों के साथ किस प्रकार का व्यवहार हो, यह सीखना।
- वांछित यौन व्यवहार सीखना।
- लिखना, पढ़ना तथा गिनती सीखना।
- प्रतिदिन के व्यवहार की आवश्यकताओं को विकसित करना।
- विवेक, नैतिकता तथा मूल्यों का मानदण्ड निर्धारण करना सीखना।
- सामाजिक समूह तथा संस्थाओं के प्रति अभिवृत्ति विकसित करना।

5.4 मध्य बाल्यावस्था में भाषा विकास

बालक का सामाजिक क्षेत्र जितना बढ़ता जाता है, उतना ही वह समझता जाता है कि समूह में रहने के लिए भाषा एक अति महत्वपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त विद्यालय में भी शब्द भण्डार बढ़ाने और वाक्य रचना पर भी जोर दिया जाता है। जैसे जैसे बालक पढ़ना सीखना जाता है वैसे वैसे वह अपना शब्द ज्ञान बढ़ाता जाता है। विद्यालय में सभी बालकों को भाषा सुधार के लिए समान अवसर दिये जाते हैं। एक ही कक्षा में बालकों में भाषा भिन्नता होती है। उच्च बौद्धिक योग्यता वाले बालकों की भाषा सम्बन्धी योग्यता भी उच्च होती है जो शब्द भण्डार विशालता, लम्बी और सही वाक्य रचना तथा विचारों की परिपक्वता में प्रकट होती है। उच्च वर्ग के माता पिता न केवल भाषा का महत्व समझते हैं और अपने बच्चों को सही भाषा सिखाने में सहायक होते हैं, साथ ही बच्चों के समक्ष अनुकरण के अच्छे आदर्श भी प्रस्तुत करते हैं।

बालक और बालिकाओं की भाषा में अन्तर होता है। शब्द भण्डार की विशालता, वाक्य रचना के सही होने और अभिप्राय को समुचित रूप से प्रकट करने की योग्यता की दृष्टि से बालिकाएं प्रत्येक आयु में बालकों से बेहतर होती हैं। बालकों में भाषा सम्बन्धी दोष बालिकाओं से अधिक पाये जाते हैं।

5.4.1 भाषा विकास के क्षेत्र

- **समझने की शक्ति:** प्रत्येक आयु में बालक जिन शब्दों का प्रयोग करता है उन शब्दों की संख्या भी अधिक होती है और वह उन शब्दों को समझता भी है। कुछ शब्द ऐसे होते हैं

जिनका अर्थ वह अस्पष्ट समझता है। बालक के सामने जिन शब्दों को मुख, मुद्रा या संकेतों सहित प्रयोग किया जाता है, वह उन्हें समझ लेता है। परन्तु भली प्रकार से न जानने के कारण वह उनका प्रयोग करने का साहस नहीं कर पाता है।

- **शब्द भण्डार:** मध्य बाल्यावस्था में बालक का शब्द भण्डार तीव्र गति से विकसित होता है। बालकों का शब्द भण्डार विद्यालय के अध्ययन से, पढ़ने से, दूसरों की बातें सुनने से व टेलीविजन से विकसित होता है। अनुमानतः पहली कक्षा का बालक औसत 20000 से 24000 शब्द जानता है जो किसी मानक शब्दकोष के समान हैं। छठवीं कक्षा तक वह लगभग 50000 शब्द जानता है। बड़ी आयु के बालक शब्द भण्डार में अपभाषा और गालियों को भी सीख जाते हैं। बालिकाएं सामान्य रूप से अपभाषा और अपशब्दों का प्रयोग बालकों की अपेक्षा कम करती हैं। मध्य बल्यावस्था उपभाषा की आयु है। मध्य बाल्यावस्था में एक नये प्रकार की भाषा भी देखने को मिलती है। यह एक गुप्त भाषा होती है जिसका प्रयोग बालक अपने घनिष्ठ मित्रों में करता है। गुप्त भाषा बालक की बोली का विकृत रूप या फिर अपने से बड़ी आयु के बालकों की नकल हो सकती है। लिखित गुप्त भाषा में शब्दों या विचारों के लिए प्रतीकों या टेड़ी मेढ़ी रेखाकृतियों का प्रयोग होता है। गत्यात्मक भाषा में संकेतों और उँगलियों के द्वारा बनाये गये शब्दों का प्रयोग होता है जैसे गूँगों व बहरों की भाषा में होता है। गुप्तभाषा का प्रयोग बालिकाएं बालकों से ज्यादा करती हैं। इस आयु से पूर्व किशोरावस्था तक का समय गुप्त भाषा की आयु के चरम उत्कर्ष का समय है। प्रायः अधिकतर बालक गुप्त भाषा का प्रयोग तीसरी कक्षा में प्रवेश के बाद ही शुरू करते हैं।
- **उच्चारण:** मध्य बाल्यावस्था में उच्चारण सम्बन्धी गलतियाँ बहुत कम होती हैं। प्रायः बालक नये शब्द का उच्चारण गलत करने पर एक या दो बार सही उच्चारण सुनकर सही उच्चारण करने लगता है। बड़ी आयु में बालक की ऊँची आवाज में बात करने या चिल्लाने की प्रवृत्ति होती है जिससे ऐसा प्रतीत होता है जैसे वो अन्य लोगों को बहरा समझता हो। ऐसे में बालक की कर्कश आवाज सुनने में अप्रिय लगती है।
- **वाक्य रचना:** छः वर्ष तक बालक वाक्य रचनाओं में कुशल हो जाता है। नौ से दस वर्ष की आयु तक उसके वाक्यों की लम्बाई बढ़ जाती है। इस आयु में बालकों के लम्बे वाक्य विशेष रूप से अव्यवस्थित होते हैं। नौ वर्ष की आयु के पश्चात बालक सुव्यवस्थित

वाक्यों का प्रयोग करने लगता है। इस आयु में बालक से व्याकरण सम्बन्धी गलतियाँ अधिक होती हैं। बालक एवं उसके माता पिता की व्याकरण की गलतियों के बीच उच्च सहसम्बन्ध होता है।

5.4.2 वाणी के प्रकार

मध्य बाल्यावस्था में वाणी के विकारों के शुरू होने की सम्भावना पूर्व बाल्यावस्था की अपेक्षा बहुत कम होती है लेकिन फिर भी यदि भाषा विकार, तुतलाना और अस्पष्ट उच्चारण पहले ही शुरू हो चुके हों और उन्हें ठीक करने के लिए उपचारी उपाय ना किये गए हों तो समय के साथ इनमें वृद्धि होती जाती है। इन सारे विकारों का मुख्य कारण तन्त्रिका तनाव होता है। इसलिये बालक के विद्यालय प्रवेश के बाद इनके अच्छे होने के बजाय और खराब होने की आशंका रहती है क्योंकि बालक जब बोलता है और अन्य बालक उसकी बोली सुनकर हँसते हैं तो वह घबरा जाता है। भाषा विकार वाले बालकों में कुसमायोजन के लक्षण दिखाई देते हैं। भाषा विकार वाले बालक निम्न वर्ग के परिवारों की अपेक्षा मध्यम परिवारों में अधिक होते हैं। यदि कोई शारीरिक कारण जैसे ऊपर के दो दाँतों में बीच जगह खाली होना या जबड़ों का पूरी तरीके से ना विकसित होना आदि हों तो बालक विद्यालय प्रवेश की आयु में भी तुतलाते हैं।

5.4.3 भाषा का विषय

मध्य बाल्यावस्था में बालक की भाषा पूर्व बाल्यावस्था से कम आत्मकेन्द्रित होती है। बालक का आत्मकेन्द्रित भाषा को त्यागकर सामाजिक भाषा का प्रयोग बात निम्न तथ्यों पर निर्भर करता है:

- बालक का व्यक्तित्व आत्मकेन्द्रित है या सामाजिक?
- बालक के सामाजिक सम्पर्कों की संख्या कितनी है?
- जिस समूह से बालक वार्तालाप एवं प्रसार करता है, वह समूह बड़ा है या छोटा क्योंकि समूह जितना बड़ा होगा उसकी भाषा/वाणी उतना ही अधिक सामाजिक होगी।

बालक जब समवयस्कों के साथ होता है, तो वह उनसे अपने मन की इच्छा व बात व्यक्त करता है जैसे खेलने से सम्बन्धित बात, विद्यालय से सम्बन्धित बात या समस्या, टेलीविजन के प्रोग्राम को लेकर बातचीत आदि। इसके विपरीत बालक किसी प्रौढ़ व्यक्ति के समक्ष यह नहीं व्यक्त कर पाता है।

बालक में भिन्न भिन्न वातावरण का भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ता है, जो उसके भाषा विषय से सम्बन्धित है। जैसे बालक यदि दूसरों पर दोष निकालने या दूसरों की बुराई करने वाले वातावरण में रहेगा तो वह भी वही अनुसरण करेगा या बालक जब गाली गलौज वाले वातावरण में रहेगा तो उसका भाषा का विकास भी उसी प्रकार का होगा।

अतः बालक के भाषा विषय में सही उत्तम परिवर्तन उसके सामान्य सम्बन्ध व वातावरण पर निर्भर करता है। बालक को जितना प्रोत्साहित किया जायेगा वह उतना ही अपनी भाषा को उन्नत बनाने का प्रयत्न करता रहेगा। भाषा के विकास से बालक को प्रत्येक शब्द का अर्थ समझ आता है तथा वह सही शब्द का सही स्थान पर प्रयोग करना भी धीरे-धीरे सीख जाता है।

आगे बढ़ने से पूर्व आइए कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. मध्य बालयावस्था .... की अवस्था मानी जाती है।
   b. मध्य बाल्यावस्था में शब्द भण्डार का विकास .... गति से होता है।
   c. मध्य बाल्यावस्था में बालक की भाषा पूर्व बाल्यावस्था से कम .... होती है। ।

बोध प्रश्नों के पश्चात आइए हम मध्य बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास के बारे में जानें।

5.5 बौद्धिक विकास

बुद्धि के कारण ही मुनष्य को श्रेष्ठतम प्राणी माना जाता है। यह व्यक्ति के व्यवहार, कार्य करने की विधि, समस्या को सुलझाने की क्षमता के रूप में दिखाई देने वाली योग्यता है। जब व्यक्ति किसी कार्य को करने में सफल हो जाता है, तो अन्य व्यक्तियों के समक्ष वह उसका बुद्धि का परिचय है। यह व्यक्ति के बौद्धिक विकास को दर्शाता है। परन्तु जब व्यक्ति किसी समस्या का समाधान सफलतापूर्वक नहीं कर पाता है तो सामने वाला व्यक्ति उसे उस कार्य के लिए असमर्थ समझने लगता है।

'बुद्धि' शब्द का अर्थ एवं परिभाषाएं:

बुद्धि के सम्बन्ध में विभिन्न वैज्ञानिकों के मत निम्न प्रकार हैं:

एन0एल0मन के अनुसार, “बुद्धि मस्तिष्क की उस परिवर्तनशील क्रिया का नाम है जिसके द्वारा हम अपने आपको नवीन वातावरण के अनुकूल बनाते हैं”।

बिने के अनुसार, “बुद्धि एक निश्चित दिशा की ओर ले जाने वाली प्रवृति है। यह सुव्यवस्थित होकर निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचने की योग्यता है”।

अर्मन के अनुसार, “अमूर्त वस्तुओं के विषय में चिन्तन की योग्यता का नाम बुद्धि है”।

थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि तीन परिवर्तयों पर आधारित है:

- **कठिनाई:** अन्य तत्वों के समान रहने पर जो व्यक्ति जितना कठिन कार्य सम्पन्न कर सकता है, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान होता है।
- **विस्तार:** अन्य तत्वों के समान रहने पर जो व्यक्ति समान कठिनाई के कार्यों को जितनी अधिक संख्या में करता है उसकी बुद्धि उतनी ही उत्कृष्ट होती है।
- **गति:** अन्य तत्वों के समान रहने पर जो व्यक्ति जितनी शीघ्रतापूर्वक कार्य करता है उसकी बुद्धि उतनी ही अधिक अच्छी जाती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि बुद्धि एक प्रकार की वह मानसिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति में सक्षम व नयी चीजों को विकसित करने का गुण आता है, जो उसे कठिन समय में कार्य को समझ व विवेकपूर्ण करने के योग्य बनाती है।

5.5.1 मध्य बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास

मध्य बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास अनेक क्षेत्रों में होता है।

- **रुचि का विकास:** 6-12 वर्ष के बालक में विभिन्न रूचियों का विकास तेज गति से होने लगता है। बालकों में अनेक रूचियाँ होती हैं, जैसे खेल कूद, घूमना फिरना, चित्रकारी, नाच गाना व क्रिकेट खेलना आदि।
- **धारण क्षमता का विकास:** धारण क्षमता का विकास 6-12 वर्ष की आयु में तीव्र गति से होता है। इसी वजह से यदि बालक कोई चीज देखता या सुनता है तो अपने मस्तिष्क में लम्बे समय तक उसे धारण किये रखता है।
- **जिज्ञासु प्रवृति:** मध्य बाल्यावस्था में बालकों में जिज्ञासा की प्रवृति पायी जाती है। वे अपने आस पास की चीजों, पशु पक्षियों, पहाड़, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, तारे, नदी, झील आदि के बारे में जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

- **अवलोकन क्षमता में वृद्धि:** मध्य बाल्यावस्था में बालकों में अवलोकन क्षमता का विकास तीव्र गति से होता है। इस अवस्था में बालक की ज्ञानेन्द्रियाँ तीव्र गति से विकसित होती हैं। इस अवस्था में बालक सूक्ष्मता से अध्ययन कर सकते हैं। वे विभिन्न वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण अपने ज्ञान के आधार पर कर सकते हैं।
- **तर्क शक्ति का विकास:** इस अवस्था में आते आते बालक में तर्क शक्ति का भी विकास होने लगता है। वह अपने माता पिता की प्रत्येक बात को आँख बंद कर नहीं मानते हैं बल्कि वे अपनी तर्क क्षमता एवं निर्णय क्षमता के आधार पर उचित निर्णय लेकर ही बात मानते हैं व वास्तविकता को जानना चाहते हैं।
- **निर्णय शक्ति का विकास:** मध्य बाल्यावस्था के अन्त तक लगभग 10-12 वर्ष की अवस्था में निर्णय शक्ति का विकास होता है। इस अवस्था में बालक अच्छा बुरा, सुख दुःख, प्रेम घृणा व अमीर गरीब में अन्तर करने में सक्षम हो जाता है। वह उन्हीं कार्यों को करना पसन्द करता है जो उसे अच्छे लगते हैं।
- **चिन्तन, स्मरण एवं कल्पनाशक्ति में वृद्धि:** मध्य बाल्यावस्था के बालकों में चिन्तन, स्मृति एवं कल्पना शक्ति का विकास तीव्र गति से होता है। चिन्तन के आधार पर वह कठिन प्रश्नों के उत्तर स्वयं खोज लेता है। कल्पना शक्ति के आधार पर बालक कई रचनात्मक कार्य जैसे चित्रकारी, कविताओं की रचना, लेख व कहानियाँ लिखना आदि करते हैं। कुछ प्रतिभाशाली बालकों में वैज्ञानिक खोज की प्रवृति भी विकसित होती है।
- **रचनात्मकता में विकास:** रचनात्मक विकास के कारण बालक प्रत्येक चीज को व्यवस्थित ढंग से व क्रमबद्ध तरीके से सजा संवारकर रखते हैं। कुछ बालक व्यर्थ व अनुपयोगी वस्तुओं को उपयोगी बना देते हैं। जैसे माचिस की तीलियों से सजावटी सामग्री बनाना, गेहूँ के तिनकों से सुन्दर झोपड़ी तैयार करना।
- **संचय की प्रवृति:** मध्य बाल्यावस्था में वस्तु संचय प्रवृत्ति भी तीव्र विकसित होती है। इस आयु में बालक को विभिन्न वस्तुओं के संग्रह का शौक होता है। जैसे डाक टिकट व सिक्के इत्यादि।
- **भाषा विकास:** भाषा विकास 6 से 12 वर्ष के बालकों में तीव्र गति से होता है। इस आयु में विवेक शक्ति, चिन्तन शक्ति व कल्पना शक्ति से भाषा शक्ति का विकास होता है। बालक के शब्दकोषों में वृद्धि के साथ वाक्य रचना में भी वृद्धि होती है। बालक निबन्ध,

आलोचना, कहानियाँ, कविताएं, पैराग्राफ, प्रश्नों के विस्तृत उत्तर, सुन्दर अक्षरों में तथा सुन्दर ढंग से लिख लेता है। इस अवस्था में भी व्याकरण सम्बन्धी दोष पाये जाते हैं। 9-12 वर्ष की अवस्था में बालक संख्यात्मक शब्द, व्यवहार सम्बन्धी शब्द, व्यंग्यात्मक शब्द, गुप्त भाषा के शब्द तथा संकेत शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में करने लगते हैं। बालक गणित के जटिल प्रश्नों को भी हल कर लेता है।

- **समस्या समाधान की क्षमता का विकास:** मध्य बाल्यावस्था में बालक पहेलियों, गणितीय तार्किक प्रश्नों को हल करने में रूचि लेता है। वह सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता में भाग लेता है। बालक विभिन्न समस्याओं को हल करने सम्बन्धी खेलों में भाग लेते हैं जैसे शतरंज, कैरम व लूडो आदि।
- **बहिर्मुखी:** मध्य बाल्यावस्था में बालक साथियों, शिक्षकों, पड़ोसियों व अभिभावकों आदि के सम्बन्ध में रूचि लेता है। बालक कक्षा में शिक्षकों की नकल उतारता है। वह काल्पनिक वस्तुओं से ज्यादा यथार्थ की वस्तुओं में रूचि लेता है और बालक में कुछ बनकर दिखाने की भावना का विकास होता है।

5.5.2 बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

प्रक्रिया के आधार पर बुद्धि परीक्षणों को दो भागों में बाँटा जा सकता है:

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Verbal Intelligence Tests)
2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण (Non Verbal Intelligence Tests)

1. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण: शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों को पुनः दो वर्गों में विभाजित किया गया है:

शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण: शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण में एक समय में एक व्यक्ति का परीक्षण किया जाता है। बिने साइमन बुद्धि परीक्षण तथा इसके संशोधन इसी कोटि में आते हैं यह भाषा सम्बन्धी योग्यता पर आधारित है।

शाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण: इस परीक्षण में एक समय में अधिक व्यक्तियों पर परीक्षण किया जाता है। विश्व युद्ध के समय अमेरिका में शाब्दिक समूह परीक्षण तैयार किए गए जो भाषा जानने वाले सैनिकों के लिए थे। इनमें आर्मी अल्फा परीक्षण 1917 में बनाया गया। भारत में भी ऐसे परीक्षण बनाये गये जिसमें जलोटा एवं जोशी के समूह बुद्धि परीक्षण, आहूजा का सामूहिक बुद्धि परीक्षण (9-13) एवं (13-17) प्रसिद्ध हैं।

2. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण: अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण को दो वर्गों में विभक्त किया है:

अशाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण: शाब्दिक बुद्धि परीक्षण में केवल साक्षर बालक ही आते थे। भाषा तथा पुस्तकीय ज्ञान का कम से कम प्रभाव होने के कारण अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया जिन्हें क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण (Performance Intelligence Test) भी कहा जाता है। ऐसे क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण जब एक समय में एक ही व्यक्ति को दिए जाते हैं तो उन्हें क्रियात्मक तथा निष्पादन वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण कहा जाता है। इस बुद्धि परीक्षण से मन्द तथा विदेशी भाषा जानने वाले बालकों का मापन सम्भव है। इस परीक्षण में चित्रों तथा आकृतियों आदि के माध्यम से बुद्धि परीक्षण किया जाता है। कुछ महत्वपूर्ण निष्पादन बुद्धि परीक्षण निम्न प्रकार हैं:

- ❖ पिन्टनर पैटर्सन बुद्धि परीक्षण (Pintner Paterson Intelligence Test): इन परीक्षणों में प्रश्नों की संख्या पन्द्रह है जिनमें समय तथा अशुद्धि के आधार पर अंकीकरण करके बुद्धिलब्धि निकालते हैं। इसका प्रकाशन 1917 में हुआ।
- ❖ कोह का काष्ठ आकृति परीक्षण (Kohs block design test): इस परीक्षण में एक वर्ग इंच आकार के लकड़ी के 16 घनाकार टुकड़े होते हैं जो लाल, पीले तथा सफेद रंगों के होते हैं। प्रयोज्य दी हुई आकृति के समान आकृति बनाता है। इसमें कुल 10 आकृति बनानी होती है। समय तथा अशुद्धि के आधार पर अंकीकरण करके बुद्धि मापन किया जाता है।
- ❖ पास ऐलौंग परीक्षण (Passalong Test): इस परीक्षण में छोटे बक्सों में आयताकार लाल तथा हरे रंग के टुकड़े होते हैं जिनके आधार पर प्रयोज्य टुकड़ों को खिसका कर दी गई आकृति के समान आकृति बनाता है। इस परीक्षण को ऐलेक्जैंडर ने तैयार किया था।
- ❖ सगुइन आकार फलक परीक्षण (Seguin Form Board Test): इस परीक्षण में विभिन्न आकारों के परीक्षण लकड़ी के नमूने होते हैं और नमूनों की आकृति के समान लकड़ी समकोण बोर्ड पर बने हुए रिक्त स्थानों में प्रयोज्य को फिट करनी पड़ती है।
- ❖ चित्र पूर्ति परीक्षण (Picture Completion Test): इस परीक्षण के अन्तर्गत आकृति के कई टुकड़ों के आधार पर आकृति को पूरा करके दिखाना होता है।
- ❖ घन निर्माण परीक्षण (Cube construction test): इसमें लकड़ी के 1 इंच, 2 इंच, 3 इंच वर्गाकार आकार के गुटके होते हैं जो स्लेटी तथा सफेद रंग में होते हैं।

- Bayley Scales of Infant Development (Bayley-III): 1993 में नैन्सी बायेले ने इसे प्रतिपादित किया। इसमें 1 से लेकर 42 माह के बच्चों का परीक्षण किया जाता है। इसमें संज्ञानात्मक, प्रत्यक्षीकरण तथा गतिवाही क्रियाओं का मापन किया जाता है। इस परीक्षण में 45 से 60 मिनट लगते हैं।
- पाण्डेय संज्ञानात्मक विकास परीक्षण (Pandey’s Cognitive Development Test for Preschoolers): यह शालापूर्व बच्चों पर किया जाता है। इसकी आयु सीमा 3-5 वर्ष है तथा इसमें 6 उप परीक्षण हैं।
- रेवेन्स प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस (Raven's Progressive Matrices): सन् 1938 में प्रमापीकृत इस परीक्षण के तीन भाग हैं: प्रथम, बालकों के लिए परीक्षण जिसे रंगीन प्रगतिशील मेट्रिसेस (Colored Progressive Matrices) तथा द्वितीय वयस्कों के लिए जिसे मानक प्रगतिशील मेट्रिसेस (Standard Progressive Matrices) कहते हैं। वयस्कों के परीक्षण में पुनः 3 उप परीक्षण हैं जिन्हें कठिनाई स्तर से बनाया गया है। वयस्कों के लिए जो परीक्षण हैं उसके पाँच उपभाग हैं जो अमूर्त चिन्तन, विभेदकारी चिन्तन, बोध चिन्तन तथा दूरी सम्बन्ध पर निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त तृतीय भाग उन्नत प्रगतिशील मेट्रिसेस (Advanced Progressive Matrices) है।

अशाब्दिक समूह बुद्धि परीक्षण: प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब सैनिक भर्ती तथा पदोन्नति की आवश्यकता हुई तब शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों ही प्रकार के समूह परीक्षण तैयार किये गये। इस समय जो अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण तैयार किया गया उसे आर्मी बीटा परीक्षण (Army Beta Test) के नाम से जाना जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय इसी प्रकार का एक और बुद्धि परीक्षण तैयार किया गया। उसे आर्मी जनरल क्लासीफिकेशन परीक्षण के नाम से जाना जाता है। इस परीक्षण में मशीन से अंकीकरण किया जाता है। एक अन्य बुद्धि परीक्षण है जिसे आर्मड फोर्सेज क्वालीफिकेशन परीक्षण (Armed forces Qualification Test –AFQT) कहते हैं।

अन्य बुद्धि परीक्षण

कुछ अन्य प्रकार के बुद्धि परीक्षण निम्न हैं:

- **द्विमापीय बुद्धि परीक्षण (Two Scaled Intelligence Test):** कई ऐसे भी परीक्षण तैयार किये गये हैं जो शाब्दिक तथा अशाब्दिक दोनों हैं। The Wechsler

Adult Intelligence Scale, WAIS तथा The Wechsler Intelligence Scale for Children (WISC) ऐसे परीक्षण हैं जिनमें शाब्दिक तथा क्रियात्मक दोनों ही प्रकार के प्रश्न हैं। इस परीक्षण का नैदानिक प्रयोग होने के कारण इसे नैदानात्मक बुद्धि परीक्षण (Diagnostic Intelligence Test) भी कहते हैं।

- **कारक विश्लेषण पर आधारित बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test based on factor Analysis):** कुछ बुद्धि परीक्षणों में सांख्यिकीय विधियाँ अपनायी गयी हैं जो बुद्धि से सम्बन्धित स्पष्ट सूचना प्रदान करती हैं। इस विधि का विकास प्रशिक्षण के क्षेत्र में नहीं हो पाया है। इस क्षेत्र में प्रथम प्रयास चार्ल्स स्पीयरमैन (Charles Spearman, 1904) का है। इसके पश्चात थर्स्टोन (Thurstone, 1947) ने बहुतत्व विश्लेषण का प्रतिपादन किया तथा इसी आधार पर एक बुद्धि परीक्षण भी तैयार किया गया, जिसे प्रारम्भिक मानसिक योग्यता के नाम से जाना जाता है।

शाब्दिक तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षणों में अन्तर

शाब्दिक बुद्धि परीक्षण	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण में भाषा सम्बन्धी योग्यता वाले बालक प्रयोग में लाये जाते हैं।	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण के लिए भाषा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता नहीं है।
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण में प्रयोज्य को लिखना एवं पढ़ना होता है।	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में लिखने तथा पढ़ने की आवश्यकता न होकर कुछ कार्य करने की आवश्यकता होती है।
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण विदेशी तथा परीक्षण की भाषा से अनभिज्ञ बालकों पर नहीं किया जाता है।	इसमें भाषा सम्बन्धी योग्यता न रखने वाले अथवा विदेशी बालक प्रयोग में लाये जा सकते हैं।
शाब्दिक बुद्धि परीक्षण भाषा प्रयोग के कारण रूचि विहीन होते हैं।	अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में बालकों को क्रिया करने में रूचि रहती है।

वैयक्तिक तथा समूह बुद्धि परीक्षणों में अन्तर

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण	समूह बुद्धि परीक्षण
वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण में एक समय में एक ही बालक का बुद्धि परीक्षण किया जाता है।	सामूहिक बुद्धि परीक्षण में एक समय में कई बालकों का परीक्षण किया जा सकता है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग कठिन होता है।	सामूहिक बुद्धि परीक्षणों का प्रयोग सरल होता है।
वैयक्तिक बुद्धि परीक्षणों के लिए समय की आवश्यकता होती है।	सामूहिक बुद्धि परीक्षणों में कम समय लगता है।
वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण के प्रभावीकरण की प्रक्रिया कम जनसंख्या पर सम्भव हो सकती है।	समूह बुद्धि परीक्षण के प्रभावीकरण के लिए बड़ी जनसंख्या का होना अति आवश्यक है।
वैयक्तिक परीक्षणों में पूर्ण नियन्त्रण तथा प्रयोज्य के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क सम्भव है।	समूह परीक्षणों में इन बातों का अभाव रहता है।

5.5.3 मानसिक आयु और बुद्धि लब्धि (Mental Age and Intelligence Quotient -I.Q.)

स्टैनफोर्ड बिने के परीक्षणों में बुद्धि की गणना करने की **बुद्धि लब्धि विधि** (I.Q. method) थी। यदि बालक अपने आयु से कम आयु के बालकों की परीक्षा पास कर पाता था तो उसकी बुद्धि कम समझी जाती थी और यदि वह अपनी आयु अनुसार निर्धारित परीक्षा कर लेता था तो उसकी बुद्धि सामान्य समझी जाती थी लेकिन जब बालक अपनी आयु से अधिक आयु के बालकों की निर्धारित परीक्षा उत्तीर्ण कर लेता था तो उसकी बुद्धि श्रेष्ठ समझी जाती थी। एक व्यक्ति की मानसिक आयु जितनी अधिक होती है उसके परिणामस्वरूप यह समझा जाता है कि व्यक्ति की मानसिक योग्यताओं का विकास भी उतना ही अधिक हुआ है। स्टर्न ने सर्वप्रथम Mental Quotient शब्द को प्रयुक्त किया। स्टर्न का इस शब्द से अभिप्राय शारीरिक आयु के अनुसार किए गए परीक्षणों से मानसिक योग्यता का परिचय प्राप्त करना था। टरमन,1916 ने सर्वप्रथम बुद्धि के फलांकन की विधि बताई कि बुद्धि का फलांकन I.Q. की गणना द्वारा करना चाहिए । इसकी गणना के लिए मानसिक आयु में शारीरिक आयु से भाग देने तथा प्राप्त संख्या में 100 से गुणा करके जो मान प्राप्त होता है, वह I.Q. कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि एक बालक की मानसिक आयु 12 वर्ष और वास्तविक आयु 10 वर्ष है तो उनकी I.Q. की गणना निम्न प्रकार करेंगे:

$$\mathrm{I.Q.} = \frac{\mathrm{MA}}{\mathrm{CA}} \times 100 = \frac{12}{10} \times 100 = 120$$

I.Q. = Intelligence Quotient (बुद्धि लब्धि)

M.A. = Mental Age (मानसिक आयु)

C.A. = Chronological Age (वास्तविक आयु)

टरमन ने बुद्धि के स्कोरिंग की विधि को विकसित करने के साथ I.Q. के वितरण को भी ज्ञात किया। निम्न तालिका में स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण पर मैरिल (1938) तथा वैश्लर (1955) एडल्ट इण्टेलीजेन्स टेस्ट के I.Q. का वितरण दिया गया है:

I.Q. वितरण वैश्लर के अनुसार		**I.Q. वितरण मैरिल के अनुसार**	
I.Q	**Description**	**I.Q.**	**Description**
130 or Above	Very Superior	140 and Above	Very Superior
120-129	Superior	120-139	Superior
110-119	Bright Average	110-119	Bright Average
90-109	Average	90-109	Average
80-89	Dull Normal	80-89	Below Average
70-79	Border Line	70-79	Border Line
Below 70	Mentally Retarded	Below 70	Mentally Defective

स्टेनफोर्ड बिने परीक्षण पर मैरिल ने बुद्धि लब्धि का वर्गीकरण तथा बुद्धि लब्धि समूह से सम्बन्धित प्रतिशत का जो विवेचन किया है उसे निम्न तालिका में प्रदर्शित किया गया है:

बुद्धि लब्धि (I.Q.)	**विवरण (Verbal Description)**	**प्रतिशत % (Percentage)**
140 से ऊपर	प्रखर बुद्धि (Very Superior)	1%
120-139	तीव्र बुद्धि (Superior)	11%

110-119	उच्च स्तर (High Average)	18%
90-109	सामान्य स्तर (Average)	46%
80-89	निम्न स्तर (Below Average)	15%
70-79	सीमा स्तर (Border Line)	6%
70 से नीचे	हीन बुद्धि (Mentally Defective)	3%
		100%

5.5.4 बुद्धि परीक्षणों का उपयोग

बुद्धि परीक्षणों का भिन्न भिन्न क्षेत्रों में उपयोग किया जाता है जो निम्नलिखित हैं:

- **वैयक्तिक भिन्नताओं के अध्ययन में:** सभी क्षेत्रों में व्यवहार से सम्बन्धित वैयक्तिक भिन्नतायें पायी जाती हैं। बुद्धि परीक्षणों की वैयक्तिक भिन्नताओं के अध्ययन में काफी उपयोगिता है। इन परीक्षणों की सहायता से वर्गीकरण के द्वारा वैयक्तिक भिन्नताओं का अध्ययन सरलता से किया जाता है।
- **मन्द बुद्धि बालकों का पता लगाने में:** मन्द बुद्धि बालकों का बुद्धि परीक्षणों की सहायता से आसानी से पता लगाया जा सकता है। बुद्धि परीक्षण के उपयोग से मन्द बुद्धि, प्रखर बुद्धि एवं प्रतिभाशाली बालकों की बुद्धि को सुगमता से अलग अलग विभक्त किया जा सकता है।
- **शिक्षा के क्षेत्र में उपयोग:** बुद्धि परीक्षण मापन का उपयोग विद्यालयों में हो सकता है, जहाँ पर उच्च सामान्य एवं निम्न श्रेणी के बालकों का पाठ्यक्रम अलग अलग निर्धारण किया जा सकता है। भिन्न भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम के निर्धारण द्वारा शिक्षा की सफलता तथा सम्बन्धित बालकों का विकास सम्भव हो सकता है।
- **अनुशासन से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन में:** अनुशासन सम्बन्धी समस्या विद्यार्थियों की हर स्तर पर समस्या बनी रहती है। यदि विद्यार्थियों को शिक्षा प्रशिक्षण उनकी बुद्धि और मानसिक योग्यता के आधार पर नहीं मिलता तो अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

- **व्यवसाय में उपयोग:** व्यवसाय के क्षेत्र में भी बुद्धि परीक्षणों का उपयोग किया जाता है। कर्मचारियों और अधिकारियों के चुनाव में, उनकी पदोन्नति में, उनके वर्गीकरण में और उनकी समायोजन सम्बन्धी समस्याओं में बुद्धि परीक्षणों का अध्ययन कर उपयोग किया जाता है।
- **सेना के क्षेत्र में:** बुद्धि परीक्षणों का उपयोग प्रथम विश्व युद्ध के समय से ही किया जा रहा है। इन बुद्धि परीक्षणों की सहायता से सैनिकों का चुनाव, सैनिकों का वर्गीकरण, सैनिकों एवं अधिकारियों की पदोन्नति की जाती है।
- **अन्य क्षेत्रों में बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता:** उपरोक्त क्षेत्र के अतिरिक्त बुद्धि परीक्षणों की उपयोगिता अन्य क्षेत्रों में भी है जैसे व्यवहारिक क्षेत्र में, अपराधी बालकों की समस्याओं के समाधान के क्षेत्र में, निदान, उपचार और चिकित्सा के क्षेत्र में।

5.5.5 बुद्धि के निर्धाकर तत्व

- **वंशानुक्रम:** बालक के वंशानुक्रम का आधार उसके माता पिता होते हैं। बालक को वंशानुक्रम माता पिता के जिन जीन (gene) से मिलता है, उनमें आधे माता से व आधे पिता से प्राप्त होते हैं। बालक की बौद्धिक क्षमता के निर्धारण में इन जीन की अहम भूमिका होती है।
- **वातावरण:** वातावरण की भी बौद्धिक विकास में अति महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि बालक को उत्तम वातावरण नहीं प्राप्त होगा तो उसका बौद्धिक विकास अवरूद्ध हो जायेगा।
- **प्रजाति:** बौद्धिक क्षमता में भिन्नता प्रजाति के आधार पर भी देखी जा सकती है।
- **लिंग:** बालक तथा बालिकाओं में लिंग के आधार पर बौद्धिक क्षमता में भिन्नता देखी जा सकती है।
- **समायोजन:** व्यक्ति का उसकी बुद्धि के साथ समायोजन सह सम्बन्धित होता है। प्रायः यह देखा गया है कि सामान्य की तुलना में उच्च बुद्धि वाले बालकों का समायोजन अच्छा होता है।
- **जन्मक्रम:** जन्मक्रम के अध्ययनों से यह पता लगता है कि माता पिता की प्रथम संतान का बौद्धिक स्तर अन्य संतानों की अपेक्षा उच्च होता है। अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अधिक आयु वाले माता पिता की संतानों का बौद्धिक स्तर सामान्यतया कम होता है।

- **परिवार का आकार:** बालक का बौद्धिक विकास परिवार के आकार पर भी निर्भर करता है। परिवार का बड़ा आकार होने के कारण बौद्धिक विकास से सम्बन्धित सुविधाओं का अभाव रहता है।
- **स्वास्थ्य:** एक स्वस्थ शरीर में एक स्वस्थ्य मस्तिष्क का निवास होता है। अर्थात् स्वास्थ्य जितना अच्छा होगा बुद्धि का विकास भी उतना ही अच्छा होगा। रोगी बालकों का मानसिक स्तर निम्न विकसित होता है।

5.5.6 बौद्धिक विकास और विद्यालय

अनेक मनोवैज्ञानिक यह प्रश्न करते हैं कि बालक के I.Q. की वृद्धि और विकास पर विद्यालय जाने का क्या प्रभाव पडता है। एक अध्ययन (Olson and Heigher, 1940) में यह देखा गया कि अच्छे परिवारों और पर्यावरण से आये बालकों की I.Q. की वृद्धि पर नर्सरी विद्यालय का प्रभाव नगण्य है जबकि उन बच्चों के I.Q. पर अधिक है जो सामान्य से कम स्तर के परिवारों और वातावरण से सम्बन्धित होते हैं। इस दिशा में हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ कि I.Q. में वृद्धि बालक के विद्यालय जाने की मात्रा और अनुपात में नहीं होती है। अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि समान स्कूलों में समान अनुभव प्राप्त करने वाले बच्चों के I.Q. का विकास सभी में एक समान ढंग से नहीं होता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य अथवा असत्य बताइये।
    a. बिने साइमन बुद्धि परीक्षण शाब्दिक वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण का एक प्रकार है।
    b. पास ऐलौंग परीक्षण में एक वर्ग इंच आकार के लकड़ी के 16 घनाकार टुकड़े होते हैं जो लाल, पीले तथा सफेद रंगों के होते हैं।
    c. अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण के लिए भाषा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है।
    d. स्टर्न ने सर्वप्रथम बुद्धि के फलांकन की विधि बताई।

बोध प्रश्नों के पश्चात आइए हम संवेगात्मक विकास के बारे में जानें।

5.6 मध्यबाल्यावस्था में संवेगात्मक विकास

मध्य बाल्यावस्था में बालक प्रवेश करने पर यह जान लेता है कि उसके साथी अप्रिय संवेगों का उग्र प्रदर्शन पसन्द नहीं करते हैं। वे इस तरह के व्यवहार को शिशुओं में होने वाले व्यवहार की तरह मानते हैं। मध्य बाल्यावस्था में संवेगों की अभिव्यक्ति की कभी सुखद अनुभूति होती है जिसमें बालक प्रसन्न रहता है और कभी ऐसी अनुभूति होती है जो सुखमय नहीं होती, जिसमें बालक बार बार क्रोध करता है तथा कुण्ठा का अनुभव करता है। कुछ बालक ऐसे होते हैं जो यह महसूस करते हैं कि वे अपने सहपाठियों की तुलना में बहुत तेज या बहुत मन्द हैं या अन्य बालकों के साथ समायोजन नहीं कर पा रहे हैं। इसका कारण ये भी हो सकता है कि बालक के घर में बहुत रोक टोक हो। माता पिता बालक से अधिक की आशा करते हों। इस स्थिति में बालक के अन्दर सुखद संवेगों से अधिक दुखद संवेग आने लगते हैं।

5.6.1 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- **शारीरिक स्वास्थ्य:** इस अवस्था में सीमित और दुर्बल पाचन शक्ति तथा बीमारियों के कारण, बालक का शारीरिक स्वास्थ्य दुर्बल हो सकता है। सभी अवस्थाओं में बालक में संवेगात्मकता दुर्बल स्वास्थ्य के कारण बढ़ जाती है।
- **बुद्धि:** बुद्धि से बालक की संवेगात्मकता का घनिष्ट सम्बन्ध है। अधिक बुद्धि वाले बालक कम बुद्धि वाले बालकों की तुलना में अपने संवेगों की अभिवृत्ति समाज द्वारा मान्य तरीकों से करना शीघ्र सीख लेते हैं।
- **लिंग:** बालक तथा बालिकाओं में संवेगात्मक भिन्नता पायी जाती है। बालकों में भय का संवेग बालिकाओं की अपेक्षा कम होता है। जबकि ईर्ष्या का भाव बालिकाओं में अधिक होता है। प्रेम व स्नेह की भावना भी बालिकाओं में अधिक होती है।
- **बालक अभिभावक समबन्ध:** माता पिता के व्यवहारों को बालक अभिभावक सम्बन्ध के आधार पर निम्न चार भागों में बाँटा जा सकता है:
    - अतिसर्तक माता पिता (Over Protecting parents)
    - तिरस्कार करने वाले माता पिता (Rejecting Parents)
    - कठोर माता पिता (Strict Parents)
    - पक्षपाती माता पिता (Parents Showing Favoritism)

अतिसर्तकता के कारण माता पिता बच्चों की साधारण परेशानियों को भी अधिक महत्व देते हैं। ऐसे में बालक आत्मनिर्भर नहीं बन पाता। जो माता पिता अपने बच्चों के प्रति तिस्कारपूर्ण व्यवहार करते हैं, उनके बच्चों का व्यवहार झगड़ालू, क्रोधी और आक्रामक हो जाता है।

इसी प्रकार जिन माता पिता का अपने बच्चों पर कठोर नियन्त्रण रहता है वे बालक अन्तर्मुखी व दब्बू के हो जाते हैं। जो माता पिता अपने बच्चों में पक्षपातपूर्ण व्यवहार करते हैं उनके बच्चे ईर्ष्यालु स्वभाव के हो जाते हैं जिस कारण उन बच्चों के मध्य प्रेमपूर्ण लगाव का सर्वदा अभाव रहता है।

- **सामाजिक वातावरण:** बालक जिस सामाजिक वातावरण में रहता है वही वातावरण बालक में उत्पन्न होने वाले संवेगों का निर्धारण करता है। उदाहरण के लिए यदि बालक ऐसे व्यक्तियों के बीच में रहता है जो अक्सर मारपीट व लड़ाई झगड़ा करते रहते हैं तो अवश्य ही बालक में क्रोध संवेग का विकास शीघ्र और अधिक मात्रा में होगा।
- **जन्म क्रम:** जो माता पिता की पहली सन्तान होती है उसे अधिक स्नेह व अतिसंरक्षणता के कारण बच्चे में दब्बूपन उत्पन्न होने लगता है। बाद के जन्मे बच्चों पर माता पिता उतना ध्यान नहीं दे पाते हैं जिसके परिणामस्वरूप बच्चे क्रोधी व झगड़ालू स्वभाव के हो जाते हैं।
- **परिवार का आकार:** अध्ययनों में यह देखा गया है कि बड़े परिवारों के बच्चों का विकास अपेक्षाकृत जल्दी होता है क्योंकि ये बच्चे अन्य बच्चों और बड़े व्यक्तियों के सम्पर्क में अधिक आने के कारण अनुकरण द्वारा विभिन्न संवेगों की अभिव्यक्ति जल्दी सीख लेते हैं। छोटे परिवार के बच्चों को इस प्रकार के अवसर कम प्राप्त होते हैं।
- **सामाजिक आर्थिक स्तर:** उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के परिवार के बालकों में संवेगात्मक स्थिरता अधिक होती है। मध्य व निम्न स्तर के बालकों में संवेगात्मक स्थिरता निम्न होती है। निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बालकों में हिंसा सम्बन्धी भय अधिक मात्रा में होता है परन्तु उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले परिवार के बच्चों में भय अपेक्षाकृत कम मात्रा में होता है।
- **व्यक्तित्व:** अध्ययनों में देखा गया है कि जिन बच्चों में असुरक्षा की भावना अधिक पायी जाती है, उनमें भय का संवेग अधिक मात्रा में होता है। सुरक्षा की भावना अधिक मात्रा में होने पर भय कम मात्रा में होता है।
- **आत्म विश्वास:** जर्सील्ड (1978) ने इस सम्बन्ध में अपनी पुस्तक में लिखा है कि कोई वस्तु जो बालक के आत्म विश्वास को कम करे या उसके आत्म सम्मान या उसके कार्य,

जिसे वह करना चाहता है या उद्देश्य जिसे वह महत्वपूर्ण समझता है, से विचलित करे तो यह उसमें चिन्ता या भय की प्रवृत्ति में वृद्धि कर सकती है।

5.6.2 सकारात्मक एवं नकारात्मक संवेगों का विकास

मध्य बाल्यावस्था में अधिकांशतः वही संवेग पाये जाते हैं जो पूर्व बाल्यावस्था में होते हैं। फिर भी पूर्व बाल्यावस्था के संवेगों से उनका निम्न दो बातों में अन्तर है:

- बालक को उत्तेजित करने का कारण
- प्रदर्शन का स्वरूप

संवेग में जो परिवर्तन हमें अवस्थाओं में परिवर्तित दिखते हैं वह अनुभव एवं सीखने के परिणाम के द्वारा निर्धारित होते हैं। जब बालक छोटा होता है, तब परिस्थितियों का सही से अनुमान नहीं लगा पाता है। यह उसके बौद्धिक स्तर के बढ़ने के साथ विस्तृत होता जाता है जिससे बालक को परिस्थितियों का अर्थ समझने व अन्तःस्मरण करने में अधिक कठिनाई नहीं होती है। बालक के इस विकास में समाज, घर का वातावरण एवं अन्य मिलने वाले व्यक्तियों के स्वभाव, व्यवहार उसे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं जिससे वह समाज द्वारा मान्य एवं अमान्य बातों में भेद कर पाता है जिससे अप्रत्यक्ष रूप में उसके भीतर अनेक संवेगों का जन्म होता है। ये आगे चलकर सकारात्मक एवं नकारात्मक संवेगों के रूप में विकसित होते जाते हैं। जिन संवेगों की जानकारी बालक को सर्वप्रथम उसका परिवार देता है, उनका विवरण निम्नवर्णित है:

- **सकारात्माक संवेग:** सकारात्मक संवेग शान्ति व अनुकूलता के प्रतीक की भाँति होते हैं। सकारात्मक संवेग के अन्तर्गत जिज्ञासा, स्नेह एवं हर्ष का वर्णन किया गया है। सकारात्मक संवेग हानिरहित एवं प्रफुल्लित करने वाले होते हैं। इन संवेगों को प्रधानता देने से जीवन आनन्दमय होता है। ये निम्न प्रकार के होते है:

1. जिज्ञासा: जिज्ञासा जीवन के प्रत्येक स्तर में पायी जाती है परन्तु यह जिज्ञासा छोटी आयु में अधिक होती है। इसका प्रमुख कारण है: विभिन्न वस्तुओं की अज्ञानता तथा अनुभव में कमी।

बड़े बालकों में जिज्ञासा का स्तर छोटे बालकों की अपेक्षा कम होता है क्योंकि बड़े बालकों को अनेक चीजों का अनुभव हो जाता है। लेकिन वातावरण में ऐसी कई नई वस्तुएं विद्यमान होती हैं जो बालक को नयी लगती हैं जिससे बालक में उनको जानने के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न होती है क्योंकि छोटी आयु में ये वस्तुएं उन्हें नहीं छूने दी जातीं। उदाहरण के लिए माचिस,

पुराने ट्रंक या गैस स्टोव आदि। बड़ा बालक अपनी जिज्ञासा को ठीक उसी तरह सन्तुवष्टि करता है जैसा कि वह छोटी आयु में किया करता था। बड़ा बालक अपनी जिज्ञासा को शान्ति करने के लिए अनेक प्रश्न किया करता है। उसका प्रश्न करना माता पिता तक ही सीमित नहीं होता, वह शिक्षकों से, सम्बन्धियों से, प्रौढ़ों से व अपने से बड़ी आयु के बालकों से भी प्रश्न पूछकर जिज्ञासा शान्त करने की कोशिश करता है।

2. स्नेह: बड़े बालक स्नेह का प्रदर्शन बहुत कम ही करते हैं। जब बालक से परिवार के सदस्य लोगों के सामने स्नेह प्रदर्शित करते हैं तो प्यार का नाम पुकारा जाना उन्हें पसन्द नहीं होता है। बालिकाओं को भी स्नेह प्रदर्शन पसन्द नहीं होता है। बालक अपने प्रिय व्यक्ति के साथ जो प्रतिक्रिया करता है, ठीक उसी प्रकार बालक अपने दोस्तों के साथ भी व्यवहार करता है। वह अपने दोस्त के साथ रहना चाहता है। जब दोस्त दूर हो जाता है तो उसे टेलीफोन या अन्य किसी माध्यम से सम्पर्क बनाने की कोशिश करता है।

3. हर्ष: बालक के बड़े होने पर भी वे उन्हीं बातों पर हर्ष महसूस करते हैं जिन बातों पर वे छोटी आयु में किया करते थे। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती हैं जिसमें बालक मुस्कुरा या हँस पड़ता है। बड़े बालक शब्दों को समझने के पश्चात और भी अधिक आनन्दित महसूस करते हैं। इस आयु में बालक दूसरों के समक्ष अपने आप को श्रेष्ठ दिखाने की कोशिश करता है। भले ही श्रेष्ठ दिखाते समय वह चीज उसके लिए घातक ही हो, फिर भी उसे करने के लिए आतुर रहता है जैसे व्यवहारिक मजाक, निषिद्ध वस्तुएं खाना, सिगरेट पीना व शराब चखना आदि।

हर्ष का प्रदर्शन छोटे बालकों की अपेक्षा बड़े बालकों में अधिक होता है। बड़ा बालक हर्ष होने की स्थिति में जोर से हँसता है। विशेष रूप से बालक साथियों की पीठ थपथपाकर व बालिकाएं अपने दोस्तों के इर्द गिर्द बाहें डालकर हर्ष का प्रदर्शन करती हैं।

- **नकारात्मक संवेग:** बालक में पाये जाने वाले नकारात्मक संवेगों के अन्तर्गत भय, शर्म, आकुलता, चिन्ता, क्रोध व ईर्ष्या आते हैं। ये संवेग बालक के वातावरण पर निर्भर करते हैं। ये संवेग निम्न प्रकार से वर्णित हैं:

1. भय: बड़े बालकों में भय का स्तर छोटे बालकों की तुलना में अपेक्षाकृत कम देखा जाता है। जैसे जानवरों को देखकर, लोगों को देखकर आदि। मध्य बाल्यावस्था में आग, अंधकार, बीमारी, डॉक्टर, दाँत का डॉक्टर, कार से टकराने तथा कुत्ते के काटने का डर सबसे आम होता है। बालकों की अपेक्षा बालिकाएं अधिक डरती हैं परंतु समय के साथ उसका स्तर भी कम

होता जाता है। काल्पनिक अँधेरे और अँधेरे में रहने वाली काल्पनिक चीजों तथा शव एवं मृत्यु सम्बन्धित चीजों के डर बढ़ जाते हैं।

2. शर्म: सामाजिक परिस्थितियों मे होने वाले भय का एक रूप शर्म भी है। शर्म एक तरह का व्यवहार है जो निम्न प्रकार देखा जा सकता है:

- सिर को एक तरफ झुकाना।
- नाक, कान या कपड़े को खींचते रहना।
- कभी एक पैर पर तो कभी दूसरे पैर पर टिके रहना।

3. आकुलता: बड़े बालकों में आकुलता परिवार, व्यक्तिगत स्कूल समस्याओं, सामाजिक समायोजन सम्बंधी समस्याओं से होती है। प्राय: स्कूल से सम्बन्धित आकुलताएं जैसे परीक्षा में असफल होना, स्कूल पहुँचने में देर होना आदि देखने को मिलती हैं। स्कूल तथा सुरक्षा के बारे में बालिकाओं में भी आकुलता पायी जाती है।

4. चिन्ता: व्यापक अनुकूलता जो एक प्रत्याशित विपत्ति के सम्बन्ध में मन की एक कपटदायक और बेचैनी की अवस्था होती है, चिंता कहलाती है। बालक अपनी आकुलता का कारण ना ही जान पाता है और ना समझ पाता है कि उसमें यह भावना किसी बाहरी परिस्थिति के बजाय असुरक्षा से पैदा होती है। जो बालक लोकप्रिय नहीं होते हैं उनमें अधिक आकुलता होती है। आयु वृद्धि के साथ बालिकाओं में बालकों की अपेक्षा आकुलता का स्तर बढ़ता जाता है। आकुलता के कारण बालक सीखने में अयोग्य हो जाता है, विशेष रूप से जब सीखने का कार्य मुश्किल हो जैसे पढ़ना और अंकगणित।

5. क्रोध: मध्य बाल्यावस्था में क्रोध का संवेग अधिक होता है। प्राय: बड़ा बालक तब अधिक क्रोधित हो जाता है जब उसके कार्य में बाधा पड़ती है, लगातार बालक की आलोचना की जाती है, अन्य बालकों से तुलना की जाती है, लम्बा उपदेश दिया जाता है, जो काम उसने नहीं किया उसके लिए उसको दोष या सजा दी जाती है, दसरों को धोखा देने और झूठ बोलने का आरोप लगाया जाता है।

बड़ा बालक अपना क्रोध प्रदर्शन रूठकर, बोलना छोड़कर, झगड़ा करके घण्टों बात ना करके, स्वयं की वस्तु को हानि पहुँचाकर, बात बात पर हर आदमी से उलझकर प्रकट करता है। भाई बहनों के साथ लड़ने की प्रवृत्ति दसवें व बारहवें वर्ष के बीच उच्च स्तर पर पहुँच जाती है, तत्पश्चात कम हो जाती है।

6. ईर्ष्या: बालक अपने भाई बहनों से ईर्ष्या करता है। उसके मन में यह विचार चलता रहता है कि जब वह घर से बाहर जाता है तो उसकी माँ या अन्य सदस्य सारा प्यार उसके भाई बहनों को करते हैं। यदि बालक घर में ईर्ष्यालु हो रहा है तो स्कूल में सहपाठियों से भी ईर्ष्या रख सकता है। बालक प्राय: उन सहपाठियों से ईर्ष्या करता है जो लोकप्रिय होते हैं तथा पढ़ाई और खेल मे आगे होते हैं। बालक प्रत्यक्ष तरीके से ईर्ष्या का प्रदर्शन झगड़े के द्वारा, चुगलखोरी करके, हँसी उड़ाकर, चिढ़ाकर, सताकर, अपमानजनक टीका टिप्पणी करके और झगड़ा करवाकर करता है। इसके अतिरिक्त बालक अप्रत्यक्ष तरीके से भी ईर्ष्या का प्रदर्शन करता है, जैसे पात्र की उपेक्षा करके, व्यंग्यपूर्ण टीका टिप्पणी करके, झूठ बोलकर और धोखे के द्वारा। मध्य बाल्यावस्था जैसे जैसे बढ़ती जाती है, वैसे वैसे ईर्ष्या प्रदर्शन का प्रत्यक्ष तरीका बढ़ता जाता है व प्रत्यक्ष तरीका घटता जाता है।

इकाई के अंत में अब हम कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. माता पिता के व्यवहारों को बालक अभिभावक सम्बन्ध के आधार पर .... भागों में बाँटा जा सकता है।
   b. बालक का सामाजिक वातावरण ही बालक में उत्पन्न होने वाले संवेगों का .... करता है।
   c. सकारात्मक संवेगों के अन्तर्गत .... व .... आते हैं।
   d. क्रोध एक .... संवेग है।

5.7 सारांश

मध्य बाल्यावस्था बालक के जीवन में आने वाली विभिन्न अवस्थाओं में से एक है। मध्य बाल्यावस्था में माता पिता एवं परिवारजनों को बालक में अनेक परिवर्तन दिखाई देते हैं एवं उनसे सम्बंधित अनेक समस्याओं का समाधान वे उसी प्रकार करते हैं। इस इकाई में भाषा विकास, बौद्धिक विकास व संवेगात्मक विकास का विस्तृत विवरण दिया गया है जिनका उचित ढंग से विकास होना आवश्यक है। जैसे भाषा विकास में शब्द रचना व वाक्य रचना में वृद्धि हो जाती है व शब्दों का अर्थ समझने व अनुमान लगाने में कम गलतियाँ होती हैं। मध्य बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास में बालक की रूचि का विकास, धारण क्षमता का विकास,

जिज्ञासु प्रवृत्ति, तर्क शक्ति में विकास, अवलोकन क्षमता में विकास, निर्णय शक्ति में विकास, चिन्तन स्मरण व कल्पना शक्ति में वृद्धि व रचनात्मक शक्ति में विकास आदि होता जाता है। इसी प्रकार संवेगात्मक विकास भी इस अवस्था के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें बालक में सकारात्मक व नकारात्मक संवेगों का विकास होता है जिससे बालक की यह अवस्था काफी प्रभावित होती है। इस इकाई के अन्तर्गत मध्य बाल्यावस्था में जिन विकासों का वर्णन दिया गया है उनसे सम्बन्धित समस्याओं का तथा बालक के समक्ष जटिल परिस्थितियों का निवारण किया जाना सम्भव हो जाता है।

5.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **वाचिक योग्यता:** यह वह योग्यता है जिसकी सहायता से व्यक्ति शाब्दिक विचारों को समझता और उनका उपयोग करता है।
- **संख्यात्मक योग्यता:** यह वह योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति साधारण गणितीय प्रकार्यों जैसे जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग आदि करता है।
- **वस्तुप्रेक्षण योग्यता:** इस योग्यता से वस्तुप्रेक्षण सम्बन्धी समस्याओं को बालक जल्दी समझ लेता है जैसे ज्यामिती समस्याओं में।
- **प्रत्यक्षकर योग्यता:** इस योग्यता के द्वारा व्यक्ति वस्तुओं को शीघ्र पहचानता है, जैसे पढ़ने आदि में शब्दों को पहचानना।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. 6-12 वर्ष
   b. तीव्र
   c. आत्म केन्द्रित

अभ्यास प्रश्न 2

1. सत्य अथवा असत्य बताइये।
   a. सही
   b. गलत

c. सही

d. गलत

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।

a. चार

b. निर्धारण

c. जिज्ञासा, स्नेह, हर्ष

d. नकारात्मक

5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल, डॉ0 बीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा -7।
2. प्रो0 कमलेश शर्मा, डॉ0 ललिता शर्मा, डॉ0 श्रीमती पुष्पा उपाध्याय, मानव विकास, स्टार पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. डॉ0 श्रीमती वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
4. डॉ0 प्रीति वर्मा, डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव, बाल मनोविज्ञान एवं बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. सुरेश भटनागर, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध।
6. डॉ0 एस0एन0 शर्मा0, डॉ0 श्रीमती अंजना शर्मा, आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान के आधार।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्य बाल्यावस्था क्या है? मध्य बाल्यावस्था की विशेषताओं एवं विकासात्मक कार्यो के बारे में बताइये।
2. मध्य बाल्यावस्था के भाषा विकास के बारे मे विस्तृत विवरण दीजिए।

3. बुद्धि का अर्थ एवं परिभाषा लिखिए। मध्य बाल्यावस्था में बौद्धिक विकास एवं सिद्धान्तों को संक्षेप में बताइए।
4. सकारात्मक संवेगों एवं नकारात्मक संवेगों के बारे में विस्तृत चर्चा कीजिए।

इकाई 6: मध्य बाल्यावस्था- II

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मध्य बाल्यावस्था में सामाजिक विकास
    6.3.1 सामाजिक विकास अर्थ एवं परिभाषा
    6.3.2 सामाजिक विकास के मानदण्ड
    6.3.3 मध्य बाल्यावस्था में प्रमुख सामाजिक विशेषताएँ
6.4 मध्य बाल्यावस्था में नैतिक विकास
    6.4.1 नैतिक विकास अर्थ एवं परिभाषा
    6.4.2 नैतिक विकास का प्रतिमान
    6.4.3 नैतिक विकास के सम्बन्ध में प्याजे के सिद्धान्त
    6.4.4 मध्य बाल्यावस्था में प्रमुख नैतिक विशेषताएँ
    6.4.5 बालकों के जीवन में नैतिक विकास का महत्त्व
    6.4.6 नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
6.5 अभिवृद्धि अथवा विकास के रूझान एवं माप
6.6 वातावरण का प्रभाव
6.7 संस्कृति एवं वर्ग
6.8 सारांश
6.9 पारिभाषिक शब्दावली
6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.11 संदर्भ ग्रंथ सूची
6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

मानव अपने सम्पूर्ण जीवन काल में विभिन्न विकास अवस्थाओं से होकर गुजरता है। सामान्य रूप से इनका वर्गीकरण चार भागों में किया जाता है; शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था एवं प्रौढ़ावस्था। प्रत्येक अवस्था के विकासात्मक कार्य समान नहीं होते हैं,

इनमें थोड़ी-थोड़ी भिन्नता अवश्य रहती है किन्तु ये मिलकर एक समान गुण का प्रादुर्भाव करते हैं जैसे डेढ़ से दो वर्ष की आयु में बालक अस्पष्ट उच्चारण करता है, फिर तीन से चार वर्ष में स्पष्ट उच्चारण करने लगता है। जिससे धीरे-धीरे उसके भाषा विकास का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। प्रत्येक आगे आने वाली अवस्था अपनी पिछली अवस्था से अधिक परिष्कृत होकर विकास के एक निश्चित स्वरूप को स्पष्ट करती है।

आप पिछली इकाई में जान चुके हैं कि बाल्यावस्था जन्मोपरान्त मानव विकास की दूसरी अवस्था है जो शैशवावस्था की समाप्ति के उपरान्त प्रारम्भ होती है, जिसका समय 3 से 12 वर्ष तक है। इसमें 3 से 6 वर्ष तक की अवस्था पूर्व बाल्यावस्था तथा 6 से 12 वर्ष तक की अवस्था मध्य बाल्यावस्था कहलाती है। प्रस्तुत इकाई में हम अपने अध्ययन को इसी क्रम में आगे बढ़ाते हुए मध्य बाल्यावस्था के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। यहाँ पर हमारे अध्ययन का प्रधान विषय है- मध्य बाल्यावस्था में सामाजिक एवं नैतिक विकास। सामान्यत: मध्य बाल्यावस्था यौन परिपक्वता तथा किशोरावस्था के प्रारम्भ होने का समय है। इस अवस्था में मुख्य विकास सामाजिक तौर पर होता है।

शैशवावस्था को बालक के विकास की अवस्था माना जाता है, लेकिन इसे पूर्ण रूप से गति बाल्यावस्था में ही प्राप्ति होती है। बाल्यावस्था में प्रवेश करते समय बालक अपने वातावरण से काफी सीमा तक परिचित हो जाता है तथा कुछ सीमा तक आत्मनिर्भर हो जाता है। अब वह अपनी प्रत्येक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वयस्कों पर निर्भर नहीं रहता है। शैक्षिक दृष्टि से बाल्यावस्था जीवन की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था है। इस अवस्था में बालक अपनी आदतों, व्यवहार, रूचियों, इच्छाओं आदि प्रतिरूपों का निर्माण कर लेता है जिन्हें बाद में रूपान्तरित करना अत्यन्त कठिन होता है। इस अवधि में बालक के प्राथमिक विद्यालय की शिक्षा प्रारम्भ करने के कारण इसे प्राथमिक विद्यालय आयु (Elementary School age) एवं टोली आयु (gang age) भी कहा जाता है। इस अवधि में बालक में स्फूर्ति अधिक होने के कारण कुछ लोग इसे स्फूर्ति अवस्था भी कहते हैं। कुछ लोग इसे गन्दगी की अवस्था (Dirty age) भी कहते हैं क्योंकि इस अवस्था में बालक खेल कूद, भाग-दौड़, उछल-कूद में लगे होने के कारण प्रायः गन्दा और लापरवाह रहता है। मध्य बाल्यावस्था में बालक का पर्यावरण विस्तृत होता जाता है जिससे उसका शारीरिक और मानसिक ही नहीं, अपितु सामाजिक, संवेगात्मक तथा नैतिक विकास भी होता है। अतः मध्य बाल्यावस्था में बालक के सर्वांगीण विकास हेतु उसके सामाजिक तथा नैतिक विकास का व्यवहारिक ज्ञान होना परम आवश्यक है।

6.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आपः

- मध्य बाल्यावस्था में बालक में होने वाले सामाजिक विकास को समझ पाएंगे;
- मध्य बाल्यावस्था में बालक के सामाजिक विकास के अतिरिक्त बालक के नैतिक विकास की विस्तृत जानकारी ले सकेंगे;
- मध्य बाल्यावस्था में अभिवृद्धि के रूझान एवं माप के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- मध्य बाल्यावस्था में बालक के विकास के विभिन्न क्षेत्रों पर वातावरण का प्रभाव समझ कर वास्तविक जीवन में इसका प्रयोग कर सकेंगे; तथा
- संस्कृति एवं वर्ग बालक के विकास को किस प्रकार प्रभावित करता है, यह भी आप समझ पाएंगे।

आप अपनी पिछली पांचवी इकाई में मध्य बाल्यावस्था के अर्थ, परिभाषा तथा उसके परिचय से परिचित हो चुके हैं एवं मध्य बाल्यावस्था में होने वाले विभिन्न विकास के सोपानों के बारे में पढ़ चुके हैं। आइए इस इकाई की शुरूआत मध्य बाल्यावस्था के होने वाले सामाजिक विकास के साथ करें।

6.3 मध्य बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

यह छः-सात वर्ष से ग्यारह-बारह वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में बालक के सामाजीकरण की गति तीव्र हो जाती है। इस अवस्था में सामाजिक विकास के अन्तर्गत उन्हीं गुणों और विशेषताओं का विकास होता है जिनका प्रारम्भ पूर्व बाल्यावस्था में हुआ था। इस अवस्था में शारीरिक, मानसिक, गत्यात्मक और भाषा आदि का विकास हो जाने के कारण बालक दूसरे बालकों के सम्पर्क में आना सीखता है जिससे उसका सामाजिक क्षेत्र बढ़ जाता है। बालक घर से निकलकर स्कूल में जाने लगता है जहाँ वह अन्य छात्रों तथा अध्यापकों से सामाजिक अन्तःक्रिया करता है जिससे उसका मन घर से बाहर के बच्चों में अधिक लगने लगता है। इस अवस्था में बालक के किसी न किसी साथी समूह (Peer Group) का सदस्य बन जाने के कारण छः से दस वर्ष तक की अवस्था Gang Age कही जाती है। बालक के सामाजिक विकास पर जितना प्रभाव परिवार का होता है उतना ही महत्वपूर्ण साथी समूह का भी होता है जो बालकों की सामाजिक अभिवृत्तियों के विकास को भी महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते हैं। इस अवस्था में बालक घर या पड़ोस के अन्य बालकों तथा विद्यालय के छात्रों के साथ काफी समय व्यतीत करता है एवं अपनी खेल क्रियाओं तथा कौशलों के

आधार पर भिन्न-भिन्न समूहों में सम्मिलित होता है। लगभग आठ वर्ष की अवस्था तक बालक सामूहिक खेलों में बहुत अधिक भाग लेता है। उसका व्यवहार दूसरों की प्रशंसा तथा निंदा पर आधारित रहता है।

6.3.1 सामाजिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा

जन्म के समय शिशु न तो सामाजिक होता है और न असामाजिक, बल्कि वह समाज के प्रति उदासीन होता है। वास्तव में उसे समाज के सम्बंध में कोई बोध ही नहीं होता है। किन्तु आयु बढ़ने के साथ-साथ उसमें सामाजिक गुण प्रवेश करने लगते हैं और कुछ ही वर्षों में वह सामाजिक प्राणी बन जाता है। बालक विभिन्न सामाजिक गुणों को सामाजिक विकास की अवस्थाओं के अनुसार ग्रहण करता है।

सामाजिक विकास का अर्थ केवल सामाजिक सम्बन्धों में परिपक्वता प्राप्त करना नहीं है अपितु अन्य व्यक्तियों के साथ अच्छा व्यवहार कर आत्म-निर्भर बनना है। व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं और इस परिवर्तन के साथ उसको भी बराबर बदल कर सामाजिक परिस्थिति में अनुकूलन करना होता है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सामाजिक विकास को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। आइए इस पर चर्चा करें।

आई0 एल0 चाइल्ड (1954) के अनुसार, “सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति में उसके समूह मानकों के अनुसार वास्तविक व्यवहार का विकास होता है”।

ई0 बी0 हरलॉक (1978) के अनुसार, “सामाजिक विकास का अर्थ उस योग्यता को अर्जित करना है जिसके द्वारा सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार किया जा सके”।

सोरेन्सन के शब्दो में “सामाजिक वृद्धि और विकास से हमारा तात्पर्य अपने तथा दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता है”।

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी समूह-मानकों और सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करना सीखता है। सामाजिक प्रत्याशयों से आशय है कि प्रत्येक समूह अपने समूह के बालकों के लिए उनकी आयु के अनुसार कुछ आशा करता है. जैसे बालक अपने माता-पिता से स्नेह तथा उनका आदर करेगा एवं उनकी आज्ञा का पालन करेगा, अपने भाई-बहनों के साथ प्रेमपूर्वक रहेगा, अपनी आयु के अनुसार घर के कार्यों में हाथ बँटायेगा तथा एक निश्चित आयु हो जाने पर स्कूल में पढ़ना प्रारम्भ करेगा आदि। सामाजिक विकास एक साथ नहीं होता, शारीरिक विकास के साथ-साथ इसमें वृद्धि होती रहती है।

सामाजिक विकास का मूलभूत आधार सामाजीकरण है। सामाजीकरण एक लम्बी प्रक्रिया है जो जीवनपर्यन्त चलती रहती है, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज द्वारा मान्यता प्राप्त व्यवहारों के अनुरूप कार्य करना सीखता है। समाज के विभिन्न समूहों का समुदाय बनता है जिसमें सामाजिक सम्बन्धों का निर्माण कर व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सामाजिक सम्बन्धों की यही परिधि मनुष्य को सामाजिक बनाती है। बाल्यावस्था के प्रारम्भ काल में बच्चे में पराश्रितता होती है। वह हाव-भाव से अपनी आवश्यकताओं के बारे में सूचना देता है। प्रारम्भिक काल में वह केवल अपनी माँ के सम्पर्क से आनन्द का अनुभव करता है। परन्तु मध्य बाल्यावस्था तक बालक में शौच सम्बन्धी आदतों का विकास हो जाने तथा बालक के कुछ सामाजिक हो जाने के कारण बालक आत्मनिर्भर होने लगता है। बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक व्यक्तित्व आदि के विकास के लिये अच्छे पर्यावरण व निर्देशन की आवश्यकता है। बच्चे के अच्छे सामाजिक विकास के लिये इस समय परिवार का वातावरण बहुत बड़ी भूमिका निभाता है। परिवार के सदस्यों द्वारा प्रेम, सेवा, सहयोग, क्रोध, विरोध आदि प्रकट किया जाता है। इन भावों से बच्चे में भी इनका विकास होता है। चार वर्ष की आयु के बाद बच्चे का सम्बन्ध पूरे परिवार व पड़ोस से हो जाता है। इस काल में बालक से यह आशा की जाती है कि वह अपने लिंग के अनुसार व्यवहार करेगा और ऐसा करने पर स्नेह व पुरूस्कार प्राप्त करेगा। इससे सामाजीकरण की प्रक्रिया में तेजी आती है।

6.3.2 सामाजिक विकास के मानदण्ड

सामाजिक विकास के मानदण्डों से तात्पर्य उन विशेषताओं और लक्षणों से है जिनके आधार पर यह ज्ञात किया जा सकता है कि किसी व्यक्ति का सामाजिक विकास किस रूप में हो रहा है। निम्न मानदण्डों के आधार पर सामाजिक विकास का मापन किया जा सकता है-

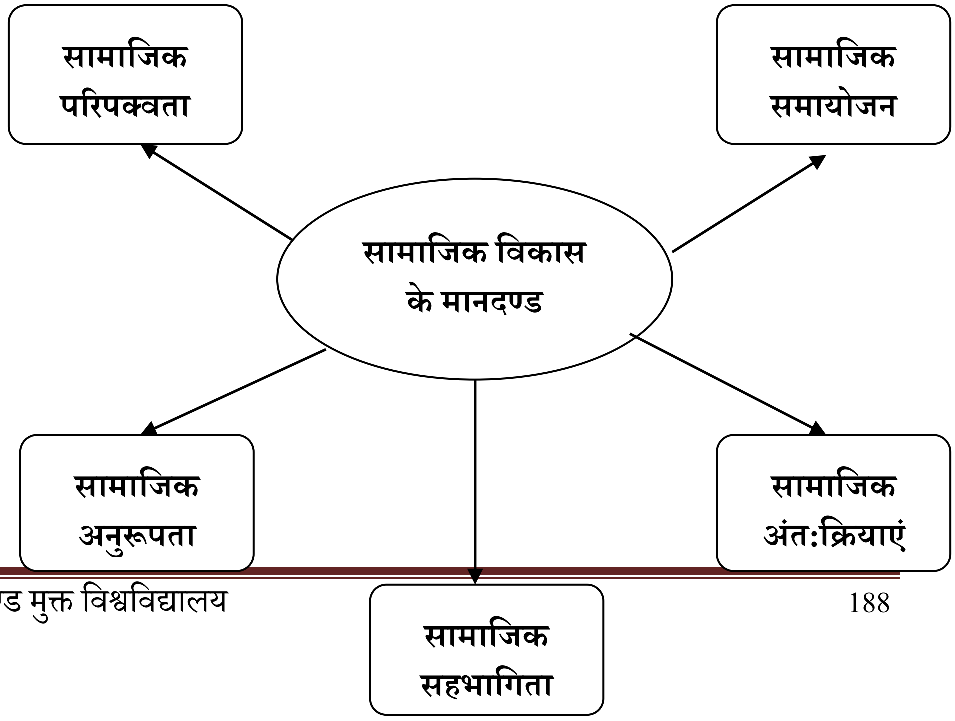

1. सामाजिक परिपक्वता (Social Maturity): सामाजिक परिपक्वता से तात्पर्य है कि व्यक्ति समाज के मूल्यों, नियमों, आदर्शों तथा अभिवृत्तियों के अनुसार अपने सामाजिक व्यवहारों का प्रदर्शन करे। किसी भी बालक में सामाजिक परिपक्वता एकाएक नहीं आती है। आयु के विभिन्न स्तरों पर इसमें परिवर्तन होता रहता है। जैसे-जैसे बालक शारीरिक रूप से परिपक्व होता जाता है वैसे ही उसमें सामाजिक परिपक्वता आती जाती है जिसके आधार पर सामाजिक विकास कितना हुआ है, यह जाना जा सकता है। जो व्यक्ति बहिर्मुखी होते हैं, उनमें सामाजिक परिपक्वता अन्तर्मुखी व्यक्तियों की तुलना में अधिक पायी जाती है।

2. सामाजिक अनुरूपता (Social Conformity): सामाजिक प्रतिमानों अर्थात समाज के मानकों, आदर्शों और मूल्यों के अनुसार व्यवहार करना सामाजिक अनुरूपता कहलाती है। प्रत्येक समाज व समूहों के कुछ नियम, मूल्य, रीति -रिवाज, परम्पराएं, लोकाचार तथा धार्मिक रीति-रिवाज होते हैं जिनमें वह समाज व समूहों के सदस्यों से इन मूल्यों और नियमों के अनुरूप व्यवहार करने की आशा करता है। जब कोई व्यक्ति सामाजिक प्रतिमानों के अनुरूप कार्य करता है तो वह सामाजिक अनुरूपता कहलाती है। किसी व्यक्ति की सामाजिक अनुरूपता जितनी धनात्मक होती है उसका सामाजिक विकास उतना ही अच्छा होता है।

3. सामाजिक समायोजन (Social Adjustment): समाज के सदस्यों के बीच शीघ्रता से तादात्म्य स्थापित कर लेना ही सामाजिक सामायोजन कहलाता है। कुछ व्यक्ति विपरीत परिस्थितियाँ होते हुए भी सामाजिक समायोजन आसानी से कर लेते हैं जबकि कुछ व्यक्ति अनुकूल परिस्थितियों में भी अच्छा सामाजिक समायोजन नहीं कर पाते हैं। सामाजिक समायोजन में बालकों के संवेगों का प्रभाव पड़ता है। जो बालक क्रोध, भय, घृणा, ईर्ष्या और अप्रसन्नता जैसे ऋणात्मक संवेगों का अनुभव निरन्तर करते रहते हैं उनका सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता है। इसके विपरीत धनात्मक संवेगों की अनुभूति करने वाले व्यक्तियों का सामाजिक समायोजन अच्छा होता है। व्यक्ति के सामाजिक समायोजन का आकलन इस बात से किया जाता है कि अच्छे सामाजिक समायोजन वाले व्यक्ति समाज के बीच अधिक लोकप्रिय होते हैं। ऐसे व्यक्ति दूसरों पर नेतृत्व आसानी से कर लेते हैं। अन्तर्मुखी व्यक्तियों की तुलना में बहिर्मुखी व्यक्तियों का सामाजिक समायोजन अच्छा होता है।

4. सामाजिक अन्त:क्रियायें (Social Interactions): सामाजिक अन्तःक्रियाओं से तात्पर्य दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच परस्पर सामाजिक क्रियाओं के आदान-प्रदान से है। सामाजिक अन्तःक्रियायें दो प्रकार की होती हैं; संगठनात्मक तथा विघटनात्मक।

(अ) संगठनात्मक सामाजिक अन्तःक्रियायें सामाजिक सम्बन्धों को मजबूत करती हैं। सहयोग, सहानुभूति, सामुदायिकता की भावना, सहिष्णुता आदि संगठनात्मक अन्तःक्रियायें हैं। ये सामाजिक ढाँचे को मजबूत करती हैं।

(ब) विघटनात्मक सामाजिक अन्तःक्रियाओं के अन्तर्गत तनाव, संघर्ष, झूठ बोलना, चोरी करना, दूसरों को तंग करना आदि क्रियाएं आती हैं। ये क्रियायें सामाजिक ढाँचे को विघटित करती हैं।

किसी भी व्यक्ति के सामाजिक विकास का मूल्यांकन इस बात से किया जा सकता है कि उसकी सामाजिक अन्तःक्रियायें संगठनात्मक हैं या विघटनात्मक। संगठनात्मक क्रियायें स्वस्थ सामाजिक विकास का मानदण्ड हैं जबकि विघटनात्मक क्रियायें दोषपूर्ण सामाजिक विकास का परिचायक हैं।

5. सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेना अथवा सामाजिक सहभागिता (Social Participation): कोई भी व्यक्ति सामाजिक काय्रक्रमों में किस सीमा तक भाग लेता है इससे उसकी सामाजिक सहभागिता का ज्ञान प्राप्त होता है। जिन व्यक्तियों का सामाजिक समायोजन अच्छा होता है उनकी सामाजिक सहभागिता उच्चकोटि की होती है। इसके विपरीत जिनका सामाजिक समायोजन अच्छा नहीं होता है वे सामाजिक कार्यक्रमों में भाग लेने से कतराते हैं। स्वस्थ सामाजिक विकास के लिए सामाजिक सहभागिता आवश्यक है। बालक का सामाजिक विकास उसके सामाजिक कार्यक्रमों साथ धनात्मक सम्बन्धों में होता है।

6.3.3 मध्य बाल्यावस्था में सामाजिक विकास की प्रमुख विशेषताएँ

बाल्यावस्था का आरम्भ बालक का विधिवत् सामाजिक जीवन में प्रवेश है। इस अवस्था में बालक घर से निकलकर विद्यालय के वातावरण में पहुँचता है। जहाँ पर वह अपने जैसे अनेक बालक देखता है। यहीं से उसमें समूह बनाने एवं समूह में रहने तथा मित्र भाव की प्रवृत्ति विकसित होती है एवं बालकों में प्रतिस्पर्धा उत्पन्न होने लगती है। पूर्व बाल्यावस्था में बालक के भीतर जिन सामाजिक गुणों का आविर्भाव होता है उन्हीं का विकास मध्य बाल्यावस्था में होता है। इस अवस्था में होने वाली प्रमुख सामाजिक विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

1. सामुदायिकता (Sociability): इस अवस्था में बालक के स्कूल जाने कारण उसका उसका सामाजिक दायरा बढ़ जाता है। विद्यालय में बालक किसी-न-किसी टोली का सदस्य हो जाता है। समूह के बीच रहने और सामाजिक समायोजन स्थापित करने के कारण उसमें

सामुदायिकता की भावना का विकास होता है। इसी कारण इस अवस्था को सामुदायिकता की अवस्था, समूह की आयु भी कहा जाता है।

2. समूह निष्ठा (Group Loyalty): समूह में मित्रों के साथ समायोजन स्थापित करने के कारण बालक में अनेक सामाजिक गुणों जैसे उत्तरदायित्व, सहनशीलता, आत्मनियंत्रण, सद्भावना, न्यायप्रियता आदि का विकास होने लगता है और धीरे-धीरे वह समूह प्रेमी बन जाता है। अब वह अपनी सभी बातें अपने मित्रों के साथ बाँटता है। अपनी योजनाओं में मित्रों को शामिल करता है और कभी-कभी कुछ बातों में परिवार के सदस्यों को शामिल ही नहीं करता है क्योंकि समूह के विचार उसे अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देते हैं।

3. मित्रता (Friendship): इस समय बालक में मित्रता की भावना अधिक होती है। आपस में द्वेष कम तथा सहयोग अधिक होता है। वह अपनी मित्र मण्डली पर इतना अधिक निर्भर हो जाता है कि कभी-कभी मित्रों के कारण अनुचित कार्य भी करता है।

4. यौन विरोध (Sex Antagonism): इस अवस्था में विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण कम होता है। बालक-बालकों के साथ तथा बालिका बालिकाओं के साथ ही खेलना पसन्द करती है। इस अवस्था में यौन विरोध पाया जाता है। बालक अपने क्रियाकलापों में बालिकाओं का तथा बालिकायें बालकों का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करती हैं। इस अवस्था में बालकों तथा बालिकाओं के मध्य परस्पर एक दूसरे के प्रति यौन विरोधी भाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

5. नेतृत्व (Leadership): पूर्व बाल्यावस्था में बालक के स्वप्रेमी और आक्रामक प्रवृत्ति के कारण वह अपना प्रभुत्व दूसरों पर नहीं दिखा पाता है किन्तु मध्य बाल्यावस्था में जो बालक बहिर्मुखी होता है वह अपनी बुद्धि, आत्म-संयम, त्याग आदि के कारण समूह में नेतृत्व प्राप्त कर लेता है।

6. सहयोग (Cooperation): सामूहिक खेलों के कारण इस आयु में सहयोग की भावना का विकास होता है। सहयोग की भावना से लक्ष्यों की प्राप्ति में आसानी होती है तथा बालकों के भीतर सुरक्षा का भाव आ जाता है।

7. सहानुभूति (Sympathy): सामूहिकता के कारण बालकों में प्रेम, दया, त्याग और सहानुभूति की भावना विकसित होती है। जो केवल समूह के लिए ही नहीं अपितु परिवार के लिए भी होती है। प्यार व स्नेह से वंचित बालक इस आयु में प्रायः उद्दण्ड हो जाते हैं।

8. खेल (Play): मध्य बाल्यावस्था में सामूहिक खेलों की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। बालक स्वतंत्र खेल (Parallel Play) से सहयोगात्मक खेलों (**Coo**perative Play) की ओर अग्रसर होता है। बालक तथा बालिकाओं की रूचियों में स्पष्ट अंतर दृष्टिगोचर होता है। बालक घर के बाहर खेले जाने वाले खेलों में रूचि लेते हैं जबकि बालिकायें घर के भीतर ही खेलों में भाग लेती हैं।

9. सहिष्णुता (Tolerance): समूह में रहने के कारण इस आयु में बालकों के भीतर सहिष्णुता की भावना का विकास होता है। उनके स्वभाव में स्थिरता आ जाती है। इस समय न तो वे शिशुओं के समान चंचल होते हैं, न ही किशोरों के समान उग्र। स्थिरता और शान्ति के कारण ही यह अवस्था अन्य अवस्थाओं से भिन्न होती है।

10. प्रतियोगिता एवं स्पर्धा (Competition and Rivalry): इस अवस्था में बालक अपने व्यक्तिगत लक्ष्यों के प्रति सजग होते हैं। बालकों में सामाजिक स्वीकृति तथा प्रशंसा पाने की तीव्र इच्छा होती है। अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए वह अपने साथियों से स्पर्धा रखते हैं और अन्य बालकों से आगे बढ़ने का प्रयास करते हैं।

बाल्यावस्था में बालक बालिकाओं द्वारा किये जाने वाले उपरोक्त वर्णित सामाजिक व्यवहारों से स्पष्ट है कि इस अवस्था में उनके सामाजिक जीवन का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है जिसके फलस्वरूप बालक-बालिकाओं के सामाजीकरण के अवसर तथा सम्भावनायें बढ़ जाती हैं। बाल्यावस्था की पूर्व अवस्था तीन से छः वर्ष के बीच यह भी देखा गया है कि बालकों में ईदिपस मनोग्रंथि (Oedipus complex) तथा एलेक्ट्रा मनोग्रंथि (Electra complex) विकसित होने लगती है। ईदिपस ग्रन्थि से अभिप्राय है लड़के अपनी माता से अधिक प्रेम करने लगते हैं। इसी प्रकार लड़कियों में एलेक्ट्रा ग्रन्थि के विकसित होने के कारण पिता के प्रति आसक्ति का भाव पाया जाता है। इस प्रकार लड़के तथा लड़कियां आपस में एक दूसरे के प्रति अथवा विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होने लगते हैं। यह प्रवृत्ति वयःसन्धि अवस्था तक अधिक प्रत्यक्ष हो जाती है। परन्तु मध्य बाल्यावस्था में पहुँचने तक लड़के तथा लड़कियों में विरोधी भाव उत्पन्न हो जाते हैं। वे अपने कार्यों में परस्पर एक दूसरे का अथवा विपरीत लिंग का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते हैं। यह प्रवृत्ति बाल्यावस्था में बालक के सामाजिक विकास को गति देती है।

बालक के चहुँमुखी विकास एवं सम्पूर्ण सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है कि इस अवस्था में बालक को परिवार, समाज, विद्यालय आदि से एक स्वस्थ एवं सम्पूर्ण सलाहकारी वातावरण उपलब्ध कराया जाना चाहिए। यदि बालक को दूषित वातावरण प्राप्त हुआ तो

उसका सामाजिक विकास अवरूद्ध हो जायेगा। यह आवश्यक है कि बालक के सामाजिक विकास के लिये अध्यापक, माता-पिता आदि सभी को निश्चित योजनानुसार निर्देशन देना चाहिए। अतः विद्यालय में ऐसी क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिये, जो बालक के सामाजिक विकास की गति को तेज कर सकें। कक्षा, विद्यालय तथा खेल के मैदान में इस प्रकार का वातावरण होना चाहिये कि छात्रों में अनुशासन, आत्मसंयम, उत्तरदायित्व, आज्ञापालन, सहयोग, सहानुभूति आदि जैसे सामाजिक एवं नैतिक गुणों का अधिकतम विकास हो सके।

आगे पढ़ने से पूर्व आइए कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. इस अवस्था में बालकों तथा बालिकाओं में एक दूसरे के प्रति.................................दृष्टिगोचर होता है।
   b. मध्य बाल्यावस्था में बालक ....प्रकार के खेल खेलना प्रारम्भ करता है।
   c. मध्य बाल्यावस्था को ....अवस्था भी कहा जाता है।

बोध प्रश्नों के पश्चात् आइए हम मध्य बाल्यावस्था में होने वाले नैतिक विकास के बारे में जानें।

6.4 मध्य बाल्यावस्था में नैतिक विकास

बालक के सर्वांगीण विकास में नैतिकता का अति महत्वपूर्ण स्थान है। नैतिक विकास के कारण ही बालक के विश्वास में दृढ़ता और समझ में प्रखरता आती है। नैतिकता ही वह गुण है जो बालक को सामाजिक प्राणी बनने में मददगार होता है और उसके उत्थान में सहयोग करता है। नैतिक विकास बालक के चरित्र निर्माण का एक महत्वपूर्ण हिस्सा तथा अभिन्न अंग है क्योंकि नैतिक गुणों का समूह ही 'चरित्र' कहलाता है। नैतिकता मानव जीवन के समस्त गुणों, ऐश्वर्य, समृद्धियों व वैभवों की आधारशिला है।

बालक के नैतिक विकास से तात्पर्य उसके सामाजिक नैतिक मूल्यों के ज्ञान से है। सामाजिक नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत निम्न मूल्य आते हैं:

- उचित-अनुचित की भावना
- आज्ञा-पालन
- सही-गलत का ज्ञान
- सत्य-असत्य का ज्ञान
- सहिष्णुता
- ईमानदारी
- दया
- सत्यवादिता
- निष्ठा
- निष्पक्षता
- आत्म-नियन्त्रण
- विश्वसनीयता
- उत्तरदायित्व की भावना

उपरोक्त सभी गुण मिलकर ही बालक के चरित्र का निर्माण करते हैं। नैतिक विकास एवं चरित्र विकास, दोनों एक-दूसरे के पर्याय हैं क्योंकि नैतिक गुणों का समूह ही 'चरित्र' कहलाता है। यह गुण बालक के आदर्शों, बाह्य व्यवहार और अभिवृत्तियों आदि से सम्बन्धित होते हैं। बालक में किस प्रकार का सामाजिक तथा नैतिक विकास होगा, यह बहुत-कुछ बालक के लालन-पालन की विधि एवं वातावरण पर निर्भर करता है। बालकों में "नैतिकता का विकास" रातोंरात नहीं होता। शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक आदि विकास की भाँति ही इसका विकास भी धीरे-धीरे एवं क्रमिक गति से होता है। जब बालक पैदा होता है तो उस समय वह न तो नैतिक होता है और न ही अनैतिक। माता-पिता, लालन-पालन एवं परिवार के सदस्य नैतिकता के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। अध्ययनों में यह देखा गया है कि जो बालक अनुमोदक (Permissive) वातावरण में पले होते हैं, वह असामाजिक, आक्रामक, मतलबी तथा दूसरों के अधिकारों का अनादर करते हैं; परन्तु जिनका लालन-पालन कठोर अनुशासन में हुआ होता है, वे बाहर से और दूसरों के सामने आज्ञाकारी होते हैं परन्तु जब अपने साथी समूह में होते हैं तब वे सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाएं जैसे आक्रामकता आदि सम्बन्धित व्यवहार प्रदर्शित करने लगते हैं। जो बच्चे प्रजातान्त्रिक (Democratic) वातावरण में पले होते हैं, वे अधिक सामाजिक तथा अपने व दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखते हैं। इस

अवस्था में भी यह भी देखा गया है कि बाल्यावस्था में बालक को यदि अधिक दण्ड दिया जाता है तो उसका व्यवहार ऋणात्मक, हठपूर्ण तथा चिड़चिड़ेपन से भरा हो सकता है। ऐसे बच्चे कुसमायोजित और अपराधी भी हो सकते हैं। अतः वर्तमान समय में इस अवस्था में बालक के नैतिक विकास की जानकारी होना परम आवश्यक हो गया है। आइए इस की शुरूआत नैतिक विकास के अर्थ एवं उसकी परिभाषा के साथ करें।

6.4.1 नैतिक विकास का अर्थ एवं परिभाषा

व्यक्ति जिस समाज तथा समुदाय में रहता है वह समाज व समुदाय उसके ऊपर तरह-तरह के सामाजिक बंधन, निर्देश अथवा दायित्व आरोपित करता है जिन्हें समाज के आदर्श (Ideals) या मानक (Norms) कहते हैं। समाज के द्वारा आरोपित इन बंधनों, दायित्वों व निर्देशों का व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छाओं से संघर्ष होना स्वाभाविक ही होता है। अधिकांश व्यक्ति सामाजिक बंधनों को कोई ऐसे बाह्य बंधन नहीं मानते हैं जिन्हें उन पर जबरन आरोपित किया गया हो। प्रायः समाज के बंधन व्यक्ति की जीवन-शैली के अंग बनकर उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं। वास्तव में सामाजिक बंधन प्रारम्भ में व्यक्ति को बाह्य प्रतीत होते हैं तथा प्रायः वे व्यक्ति की इच्छापूर्ति में बाधक होते हैं। प्रारम्भ में बालक सामाजिक नियमों, मानकों अथवा कानूनों को समझने अथवा स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं होते हैं, परन्तु बालकों को ऐसा करने के लिए समाजीकृत किया जाता है। सामाजीकरण की वह प्रक्रिया, जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में प्रचलित आचरण के नैतिक मानदण्डों को अपने में समाहित करता है तथा सीखता है कि व्यक्तिगत इच्छाओं तथा सामाजिक दायित्व के संघर्ष को किस प्रकार से नियंत्रित किया जाए, "नैतिक विकास" कहलाती है।

सामान्य बोलचाल की भाषा में नैतिकता से अभिप्राय "चारित्रिक विकास" से है। दूसरे शब्दों में परिवार, समाज, वर्ग/समूह के नैतिक मूल्यों को स्वीकारना तथा सामाजिक रीति-रिवाजों, परम्पराओं व धर्मों की पालना करना ही नैतिकता है। नैतिक शब्द अंग्रेजी भाषा के Moral शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। Moral शब्द लैटिन भाषा के "Mores" शब्द से बना है जिसका अर्थ आदतें, रीति-रिवाज, शिष्टाचार एवं जनरीतियाँ अथवा लोकरीतियाँ है। अतः नैतिकता से अभिप्राय समाज व समूह की रीतियों या कार्य करने के तरीकों की अनुपालना करने से है। नैतिकता के अन्तर्गत समाज द्वारा निर्धारित व्यवहार, मूल्य, रीति-रिवाज, परम्पराएँ, आदर्श आदि आते हैं। नैतिक विकास की उचित परिभाषा ज़ाँ प्याज़े (Jean Piaget) द्वारा दी गयी है। उनके अनुसार बौद्धिक विकास का नैतिक विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बौद्धिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक भिन्न-भिन्न ढंग से सोचते तथा समझते हैं इसीलिए बौद्धिक विकास की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में सामाजिक नियमों,

कानूनों तथा प्रचलनों की समझ भिन्न-भिन्न होती है। बालक अपने सतत् क्रियाशील प्रयासों के द्वारा बाह्य जगत को समझने तथा अपने सामाजिक अनुभवों को नैतिक मूल्यों तथा निर्णय के रूप में संगठित करने का प्रयास करता रहता है। बौद्धिक विकास के विभिन्न स्तरों पर बालकों के नैतिक मूल्यों तथा निर्णयों का संगठन भिन्न-भिन्न होता है। जैसे-जैसे बालकों का बौद्धिक विकास होता जाता है वैसे-वैसे उनके नैतिक मूल्यों तथा नैतिक निर्णयों में परिवर्तन आता जाता है।

6.4.2 नैतिक विकास का प्रतिमान

नैतिक विकास के दो भिन्न पहलू हैः नैतिक व्यवहार का विकास तथा नैतिक प्रत्ययों का विकास। अध्ययनों में यह देखा गया है कि नैतिक ज्ञान और व्यवहार में अधिक सम्बन्ध नहीं है। इसका मुख्य कारण है कि बालक का व्यवहार ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कारकों से भी प्रभावित होता है। यहाँ हम नैतिक विकास के दोनों पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

1. नैतिक व्यवहार का विकास (Development of Moral Behaviour): बालक को समाज की प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार सिखाने में प्रत्यक्ष शिक्षण, प्रयत्न एवं भूल तथा अभिज्ञान सहायक होता है। इनमें प्रत्यय तथा भूल को छोड़कर अन्य दो विधियाँ बहुत अधिक लोकप्रिय हैं। प्रत्यक्ष शिक्षक के द्वारा बालकों को समझाया जा सकता है कि क्या उचित है और क्या अनुचित तथा समाज की क्या प्रत्याशाएँ हैं। प्रत्यक्ष शिक्षण के साथ पुरस्कार, सामाजिक अनुमोदन प्रशंसा आदि यदि जुड़ा हुआ है तो बालक पर प्रत्यक्ष शिक्षण का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। प्रयत्न एवं भूल द्वारा बच्चे स्वतः ही प्रयास करते हैं कि वे किस तरह व कैसे नैतिक आचरणों व व्यवहारों को करना सीखें। जैसे बालक के झूठ बोलने माता-पिता यह समझाते हैं कि झूठ बोलना गलत है। इस प्रकार बालक को बार-बार समझाने पर स्वतः ही वह झूठ बोलना बंदकर देता है। परन्तु इस विधि से बालकों को नैतिक शिक्षा देने में अधिक ऊर्जा एवं समय बर्बाद होता है तथा इसका परिणाम भी अधिक संतोषजनक नहीं है। अभिज्ञान से बालक उन लोगों की पहचान कर लेते हैं, जिन्हें समाज में मान-सम्मान, इज्जत, प्रतिष्ठा एवं प्रशंसा मिलती है, तो वे उन्हीं की तरह व्यवहार करने की सोचते हैं। वे उन्हें ही अपना Role Model मानते हैं, तथा अनुकरण करके अपने नैतिक मूल्यों का विकास करते हैं। यदि परिवार, विद्यालय और खेल के समूह और साथी समूहों में नैतिक मूल्य समान होते हैं तो बालक में इन नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित अमूर्त प्रत्यय शीघ्र निर्मित होते हैं तथा उसमें उचित-अनुचित की भावना का शीघ्र विकास भी हो जाता है परन्तु जब नैतिक मूल्यों में अन्तर होता है तब बच्चा भ्रम में पड़ जाता है कि उसका एक व्यवहार परिवार में तो मान्य है परन्तु विद्यालय में उसी के लिए दण्ड दिया जाता है। अध्ययनों में यह देखा गया है कि बच्चा उस

व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों के साथ अधिक अभिज्ञान स्थापित करता है जो उस बच्चे के व्यवहार की प्रशंसा की जाती है।

2. नैतिक प्रत्ययों का विकास (Development of Moral Concepts): यह नैतिक विकास का द्वितीय पक्ष है। इस पक्ष के अन्तर्गत बालक उचित और अनुचित के नियमों और मूल्यों को सीखता है। वह जो भी नैतिक मूल्य सीखता है, ते सभी मौखिक होते हैं या अमूर्त रूप में होते हैं। बालक में नैतिक मूल्यों का विकास तभी होता है जब उसमें पर्याप्त मात्रा में मानसिक क्षमताओं का इतना विकास हो जाता है कि वह सीखे गये नैतिक मूल्यों का सामान्यीकरण कर लेता है। अध्ययनों से यह पता चला है कि बालक में नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित पहले कुछ विशिष्ट प्रत्ययों का विकास होता है। बालक की मानसिक क्षमताओं का जैसे-जैसे विकास होता जाता है, उसके नैतिक मूल्य से सम्बन्धित प्रत्यय विशिष्ट से सामान्य हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, प्रारम्भ में अच्छे व्यवहार का बालक के लिए इतना ही अर्थ होता है कि उस बच्चे का व्यवहार अच्छा होता है तो वह माता-पिता के आदेशों का पालन करता है। जब बच्चा कुछ और बड़ा हो जाता है तो वह माता-पिता की सहायता भी अच्छे व्यवहार के अन्तर्गत सम्मिलित कर लेता है। लगभग नौ वर्ष की अवस्था तक बालक के नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित प्रत्यय अधिक सामान्यीकृत हो जाते हैं। किशोरावस्था के प्रारम्भ होने तक बालक में नैतिक मूल्यों का विकास पर्याप्त मात्रा में हो जाता है।

6.4.3 नैतिक विकास के सम्बन्ध में प्याजे के सिद्धान्त

बालकों में होने वाले नैतिक विकास के संबंध में प्याजे ने अपने सिद्धान्त प्रस्तुत किए हैं। ज़्याँ प्याज़े ने नियमों, अधिकारों, दोषों, पापों व अत्याचारों के मूल्यांकन, समानता तथा परनिर्भरता से संबधित प्रश्नों तथा कहानियों के माध्यम से बच्चों के गहन साक्षात्कार लिए तथा इससे प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करके बालकों के नैतिक विकास का अध्ययन किया। उसके अनुसार नैतिक विकास के तीन मुख्य स्तर होते हैं:

- नैतिक यथार्थता (Moral Realism)
- नैतिक समानता (Moral Equality)
- नैतिक सापेक्षता (Moral Relativism)

मध्य बाल्यावस्था में नैतिक विकास प्याजे के नैतिक विकास सिद्धान्त के दूसरे स्तर, नैतिक समानता से मेल खाता है जो लगभग 7-8 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होकर लगभग 12 वर्ष की आयु तक चलता है। जिस प्रकार पूर्व बाल्यवास्था के नैतिक यथार्थता स्तर में बालक मानता है कि जो कुछ भी बड़े- बुजुर्ग अथवा नियम कहते हैं वही उचित है, जो भी दण्ड अथवा

पुरूस्कार बड़े व्यक्ति देते है वही स्वीकार्य होता है। पूर्व बाल्यवास्था में बालक नैतिक यर्थाथता में अपने स्वहित के भाव से नियमों का पालन करते हैं। उसी प्रकार मध्य बाल्यावस्था में प्याजे का नैतिक समानता का स्तर हम उम्र बच्चो के साथ बढ़ती अन्तर्क्रिया का परिणाम होता है। हम उम्र साथियों के साथ बालक की अन्तर्क्रिया वस्तुतः समानता तथा लेने-देने के सम्बन्धों पर आधारित होती है। इस स्तर पर बालक की दृष्टि में न्याय मुख्यतः व्युतक्रम दंड (Reciprocal Punishment) तथा समानता पर केंन्द्रित हो जाता है। बालक पारस्परिक सहमति के आधार पर अपने खेल के नियमों का निर्धारण करने लगते हैं। स्वकेन्द्रित खेलों से हटकर बालक सहयोगात्मक खेलों में अधिक रूचि लेने लगते हैं। चार पाँच वर्ष के बालक खेलों के नियमों की भिन्न-भिन्न समझ रखते हैं, अन्य बालक सही खेल रहे हैं अथवा गलत, इस पर उनका ध्यान कम होता है, वे नियमों की अपनी समझ के अनुरूप खेलते हैं। परन्तु आठ-नौ वर्ष के बालकों के खेल का ढंग इससे बिल्कुल भिन्न होता है। सभी बालकों के खेल के एक समान नियम (Common Set of Rules) ज्ञात रहते हैं। अन्य बालकों के खेल का पारस्परिक निरीक्षण (Mutual Surveillance) करना सामान्य बात होती है। खेल में ईमानदारी बनाये रखने के लिए सभी भरसक प्रयास करते हैं। इस आयु के खेलों का अधिकांश समय नियमों तथा बेईमानी के ऊपर तर्क-वितर्क करते हुए गुजर जाता है। जैसे तुमने बेईमानी की है; नहीं, मैने गेंद को नहीं छुआ है; नही-नहीं! तुमने गेंद को छुआ था; यह ठीक नहीं है, तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, जैसे तर्क-वितर्क खेलते समय साथी बच्चों के साथ करते देखे जा सकते हैं।

प्याजे के अनुसार हम उम्र बच्चों में इस प्रकार के तर्कविर्तकों के कारण ही वे स्वकेन्द्रित खेल (Egocentric Play) से सहयोगात्मक खेल (Co-operative Play) की ओर अग्रसर होते हैं। तर्क-वितर्क के फलस्वरूप बालकों में परस्पर सम्मान तथा सहयोग की भावना विकसित होती है। इस प्रकार का नैतिक विकास तब ही होता है जब बालकों में अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण को ग्रहण करने तथा जटिल मान्यताओं को समझने की योग्यता विकसित हो रही होती है।

जिस प्रकार पूर्व बाल्यावस्था में नैतिक यर्थाथता स्तर पर बालकों में नियमों का अंध-अनुसरण (Blind-Obedience) करने की प्रवृत्ति होती है, मध्य बाल्यावस्था बालकों में नैतिक समानता स्तर पर नियमों की व्याख्या करने की प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार किशोरावस्था में नैतिक सापेक्षता स्तर पर कार्यो की व्याख्या करने की प्रवृत्ति होती है जो लगभग 12 वर्ष से प्रारम्भ होती है तथा नैतिक विकास के सर्वाधिक विकसित स्तर होती है।

6.4.4 मध्य बाल्यावस्था में प्रमुख नैतिक विशेषताएँ

यह छः से बारह वर्ष तक की अवस्था है। इस अवस्था में बालक का नैतिक विकास मुख्यतः उसके समूह से सर्वाधिक प्रमाणित होता है। इस अवस्था में वह सीखे गये मूल्यों का सामान्यीकरण करने लगता है। बालक पूर्व बाल्यावस्था में इतना ही जान पाता है कि क्या सही है और क्या गलत? क्या उचित है क्या अनुचित? परन्तु मध्य बाल्यावस्था में बालक सीखे गये नैतिक मूल्यों का सामान्यीकरण कर लेता है। वह समझ जाता है कि कोई कार्य क्यों अनुकरणीय है और क्यों नहीं? जैसे पूर्व बाल्यावस्था का बालक यह तो समझ जाता है कि चोरी करना बुरी बात है परन्तु वह यह नहीं समझ पाता कि क्यों चोरी करना बुरी बात है। यही बात वह मध्य बाल्यावस्था में समझने लग जाता है कि पैसा या वस्तु या खिलौना आदि किसी भी चीज की चोरी करना अच्छी बात नहीं है। अतः उसका नैतिकता का आधार समूह होता है। यदि उसके समूह के साथी चरित्रवान, सच बोलने वाले, कर्तव्यनिष्ठ एवं आज्ञाकारी हैं तो बालक में भी इन्हीं गुणों का विकास होगा। परन्तु यदि समूह के साथी अनैतिक आचरण वाले, झूठे, कर्तव्यहीन, अवज्ञाकारी, अनुशासनहीन हैं तो बालक में भी इन्हीं गुणों का विकास होगा। इसलिए यह जरूरी है कि बालकों के समूह एवं उसके मित्रगण किस तरह के आचरण वाले हैं, उन पर भी निगरनी रखी जाए। इस अवस्था के अंत तक बालकों में नैतिकता का विकास चरम सीमा पर होता है। साथ ही इस अवस्था के अन्त तक बालक का नैतिक व्यवहार लगभग वयस्क व्यक्तियों की भाँति हो जाता है। कुछ अध्ययनों में यह देखा गया है कि वह बालक जिनकी बुद्धिलब्धि (I.Q.) उच्च होती है, उनका नैतिक व्यवहार अन्य की तुलना में अधिक परिपक्व होता है।

इस अवस्था में बालकों को जान-बूझकर शैतानी करने पर दण्ड तथा समाज की दृष्टि से उचित व्यवहार करने पर पुरूस्कृत करना चाहिए। इसी प्रकार उन्हें समय-समय पर नैतिक प्रत्ययों की शिक्षा भी देते रहना चाहिए तथा शिक्षा देते समय उन्हें यह भी समझाना चाहिए कि एक व्यवहार जो समाज द्वारा मान्य है तो वह क्यों मान्य है और एक व्यवहार जो समाज द्वारा मान्य नहीं है तो वह क्यों मान्य नहीं है।

इस प्रकार आपने देखा कि मध्य बाल्यावस्था में बालकों में अनुशासन, आत्मसंयम, उत्तरदायित्व, आज्ञापालन, सहयोग, सहानुभूति जैसे आदि विभिन्न नैतिक मूल्यों का विकास भी आरम्भ होने लगता है। वह समाज की नैतिक मान्यताओं तथा नियमों में विश्वास करने लगता है। अतः बालकों में नैतिक मूल्यों के उचित निर्माण तथा सामाजिक मान्यताओं व नियमों मे विश्वास बढ़ाने के लिये उन्हें विद्यालय तथा परिवार में नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिये। साथ ही उन्हें अच्छे व नैतिक कार्य करने पर पुरस्कृत भी करते रहना चाहिए। बालकों

को आनन्द देने वाली सरल धार्मिक तथा नैतिक कहानियों के द्वारा उन्हें नैतिक शिक्षा दी जा सकती है।

6.4.5 बालकों के जीवन में नैतिक विकास का महत्त्व

बालकों के जीवन में नैतिक विकास के महत्व को निम्न रूप से समझा जा सकता है-

1. चरित्र निर्माण में सहायक: नैतिक मूल्यों से बालकों के सुन्दर चरित्र का निर्माण होता है। ईमानदारी, आज्ञापालन, राष्ट्रभक्ति, सत्यवादिता, सहिष्णुता, दया, करूणा, क्षमाशीलता, त्याग आदि गुणों से सुसज्जित बालक परोपकारी एवं दयालु बनता है। नैतिकता चरित्र निर्माण में अमूल्य भूमिका निभाता है।

2. सामाजीकरण में सहायक: जब बालक अपने जीवन में नैतिक आचरणों को अपनाता है, तो समाज के लोग उसे पसंद करने लगते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। उसे सामाजिक मान-सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलती है। इससे बालक का सामाजिक दायरा बढ़ता है। अतः स्पष्ट है कि नैतिकता बालक के सामाजीकरण में सहयोग देता है।

3. जागरूकता के विकास में सहायक: नैतिकता बालकों में जागरूकता लाती है। नैतिकता का विकास हो जाने पर बालक समाज विरोधी कार्यों को करने से डरता है। बालक जीवन में उच्च आदर्शों एवं मूल्यों को अपनाता है। जागरूकता उत्पन्न हो जाने पर बालक किसी भी प्रकार के प्रलोभन का शिकार नहीं बनता है और जीवन पर्यन्त वह नैतिक आचरण ही करता है।

4. व्यक्तित्व के विकास में सहायक: व्यक्तित्व के विकास में नैतिकता का असीम योगदान है। नैतिक गुण व्यक्तितव के विभिन्न शीलगुणों का निर्धारण करते हैं, जैसे सत्यता, ईमानदारी, सहनशीलता, क्षमाशीलता, दया, करूणा, कर्तव्यनिष्ठा, आज्ञापालन आदि विभिन्न नैतिक मूल्य चरित्र के ही अभिन्न भाग और व्यक्तित्व का प्रमुख अंग हैं। इन सदगुणों के पालन से अच्छे चरित्र के साथ ही बहुमुखी व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

5. आचरणों के निर्धारण में सहायक: बालक उन्हीं कार्यों को करने के लिए प्रेरित होता है जो सामाजिक अपेक्षाओं एवं प्रत्याशाओं के अनुरूप होते हैं।

6. सुरक्षा की भावना के विकास में सहायक: जो बालक अपने जीवन में नैतिक मूल्यों को अपनाते हैं, उनमें सुरक्षा की भावना कूट-कूटकर भरी रहती है। वह न तो घबराता है और न ही किसी व्यक्ति से डरता है क्योंकि वह अच्छी तरह से जानता है कि उसका कार्य नैतिक

नियमों/आचरणों के विरूद्ध नहीं है। अतः वह विषम से विषम परिस्थिति में भी सही निर्णय दे सकता है।

7. सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास: नैतिकता से बालकों में सही समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है। नैतिक मूल्यों एवं उच्च आदर्शों के कारण बालक का आत्मविश्वास एवं आत्मचेतना मजबूत रहती है। वह श्रेष्ठ भावनाओं से सराबोर रहता है। उसके अंतःकरण में सच्चाई का बोलबाला रहता है। जिन बालकों में नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का अभाव रहता है वे इसी मानसिक उलझन एवं अन्तर्द्वंद में फँसे रहते हैं, फलतः वे सही निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं।

8. अभिवृत्तियों के विकास में सहायक: बालक की अभिवृत्तियाँ किस प्रकार की होंगी, इसमें नैतिक मूल्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उच्च नैतिक मूल्यों से बालक में धनात्मक अभिवृत्तियों का निर्माण होता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों का परम दायित्व है कि वे बालक को नैतिक मूल्यों की शिक्षा दें तथा उनमें धनात्मक अभिवृत्तियों का बीजारोपण करें।

6.4.6 नैतिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

जैसा कि हम पढ़ चुके हैं कि नैतिक विकास रातोंरात नहीं होता है वरन् उसे सीखना पड़ता है जिस पर कई वातावरणीय कारकों का भी अति महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न है:

- **बुद्धि:** बौद्धिक क्षमता के आधार पर बालक विभिन्न नैतिक मूल्यों के महत्व को समझता है तथा सम्बन्धित प्रत्ययों का सामान्यीकरण करता है। अध्ययनों में यह देखा गया है कि अधिक बुद्धि वाला बालक अपने आदर्श मार्ग से कम विचलित होता है अर्थात उसमें कोई चारित्रिक दोष उत्पन्न हो जाने पर थोड़ा समझाने-बुझाने पर ही वह दोष समाप्त हो जाता है।

- **आयु:** आयु बढ़ने के साथ-साथ बालक में नैतिक मूल्यों और व्यवहार का विकास होता है, अतः यह एक लम्बी और मन्द प्रक्रिया है। आयु बढने के साथ बालक समस्त नैतिक मूल्यों में अन्तर समझने लगता है। आयु बढ़ने के साथ बालकों में स्वार्थ की भावना घटने के बजाय बढ़ती जाती है तथा बारह -चैदह वर्ष की आयु में बालक अपनी काम इच्छाओं के कारण सेक्स सम्बन्धी दुराचरण की ओर उन्मुख होने लगते हैं।

- **लिंग:** लड़के और लड़कियों की शारीरिक संरचना तथा ग्रन्थि प्रणाली में अन्तर होने के कारण भिन्न-भिन्न नैतिक विकास होता है। लड़कियाँ लड़कों की अपेक्षा अधिक लज्जालु और कामुक होती हैं। किशोरावस्था में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों में चाि़रित्रिक और नैतिक विकास अपेक्षाकृत तीव्र गति से होता है।
- **परिवार:** माता-पिता तथा अन्य परिवार के सदस्यों के विचार तथा आचरण बालक के नैतिक विकास को सर्वाधिक प्रभावित करते है। जिन बालकों का पारिवारिक समायोजन अच्छा होता है जैसा कि इसी इकाई के मध्य बाल्यावस्था में नैतिक विकास शीर्षक के अन्रतगत बताया गया है, वे बालक परिवार के सदस्यों के व्यवहार के अनुकरण के आधार पर नैतिक मूल्यों को अपेक्षाकृत जल्दी सीख लेते हंै। परिवार का वातावरण दूषित होने पर बालक में स्वतः ही अनैतिकता का व्यवहार आने लगता है।
- **विद्यालय:** परिवार के बाद विद्यालय का ही बालक के नैतिक विकास पर महत्वपूर्ण ढंग से प्रभाव पड़ता है। विद्यालय में अनुशासन एवं उचित व्यवस्था होने पर बालक को नैतिक तथा चारित्रिक विकास के लिए सुन्दर वातावरण मिलता है। बालकों के नैतिक विकास में उनके साथी समूह, शिक्षक, विद्यालय का अनुशासन एवं पाठ्यक्रम का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।
- **धर्म:** स्वस्थ एवं धार्मिक वातावरण बालक को नैतिक एवं सदाचारी बनाता है। धर्म का प्रभाव इस बात पर भी निर्भर करता है कि बालक के माता-पिता धर्म में कितना विश्वास करते हैं।
- **मनोरंजन:** बालकों और किशोरों की मानसिक योग्यता सीमित होने के कारण वह सिनेमा के उद्देश्यों और कहानी को कम समझ पाते हैं। उन्हें सिनेमा में दुराचार, अपराध, नारी सौन्दर्य, प्रेम आदि अधिक आकर्षित करते हैं जिससे उनके नैतिक विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- **साथी समूह:** बालक की आयु बढ़ने के साथ उनके साथी समूहों की संख्या बढ़ती जाती है। बालक इन मित्रों या साथी समूहों से बहुत अधिक प्रभावित होता है। जिस प्रकार के चरित्र वाले बालकों या साथी समूह के बीच बालक रहता है उसी प्रकार के नैतिक मूल्य वह भी अनुकरण के आधार पर सीखता है।

- **जन माध्यम:** आधुनिक समाज में बालक सिनेमा, टेलीविजन, मैगजीन, कॉमिक्स एवं इंटरनेट आदि से बहुत अधिक प्रभावित होता है। जिस प्रकार का साहित्य अथवा फिल्में सिनेमा, टेलीविजन, इंटरनेट आदि में दिखाई जाती हैं उसी का अनुसरण बालक करने लगता है।

अगले भाग में हम मध्य बाल्यावस्था में होने वाले अभिवृद्धि अथवा विकास के रूझान एवं माप के बारे में जानेंगे परन्तु उससे पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही/गलत बताइए।
   a. मध्य बाल्यावस्था में नैतिक विकास मुख्यत: लेने-देने के सम्बन्धों पर आधारित होता है।
   b. मध्य बाल्यावस्था में बालक खेल में किसी प्रकार का तर्क वितर्क करने से अनभिज्ञ होता है।
   c. बालक की दृष्टि में न्याय मुख्यत: व्युत्क्रम दंड तथा समानता पर केन्द्रित होता है।

6.5 अभिवृद्धि अथवा विकास के रूझान एवं माप

आप जानते हैं कि छः वर्ष की आयु से लेकर बारह वर्ष की आयु तक की अवधि मध्य बाल्यावस्था कहलाती है। मध्य बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षों के दौरान अर्थात् 6 से 9 वर्ष की आयु तक शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। बाद के तीन वर्षों में शारीरिक विकास की गति कुछ धीमी हो जाती है परन्तु इस अवधि में शारीरिक विकास दृढ़ता की ओर उन्मुख होता है। यही कारण है कि 9 से 12 वर्ष की अवधि को परिपक्व काल (Maturity period) भी कहते हैं। मध्य बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्न हैं:

1. लम्बाई

छः वर्ष से बारह वर्ष की आयु तक चलने वाली मध्य बाल्यावस्था में शरीर की लम्बाई लगभग 5 से 7 से०मी० प्रतिवर्ष की गति से बढ़ती है। मध्य बाल्यावस्था के प्रारम्भ में जहां बालकों की लम्बाई बालिकाओं की लम्बाई से लगभग एक से०मी० अधिक होती है वहीं इस अवधि की समाप्ति पर बालिकाओं की औसत लम्बाई बालकों की औसत लम्बाई से लगभग

एक से॰मी॰ अधिक हो जाती है। मध्य बाल्यावस्था के विभिन्न वर्षों में बालक तथा बालिकाओं की औसत आयु निम्नांकित तालिका में दर्शायी गयी है।

तालिका 6.1: मध्य बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (से॰मी॰ में)

आयु	**6 वर्ष**	**7 वर्ष**	**8 वर्ष**	**9 वर्ष**	**10 वर्ष**	**11 वर्ष**	**12 वर्ष**
बालक	108.5	113.9	119.3	123.7	128.4	133.4	138.3
बालिका	107.4	112.8	118.2	122.9	128.4	133.6	139.2

2. भार

मध्य बाल्यावस्था के दौरान बालकों के भार में काफी वृद्धि होती है। नौ-दस वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं के भार से अधिक होता है परंतु इसके उपरान्त बालिकाओं का भार बालकों के भार से अधिक होना प्रारम्भ हो जाता है। मध्य बाल्यावस्था के विभिन्न वर्षों में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार निम्न तालिका में दर्शाया गया है:

तालिका 6.2: मध्य बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत भार (कि॰ग्रा॰ में)

आयु	**6 वर्ष**	**7 वर्ष**	**8 वर्ष**	**9 वर्ष**	**10 वर्ष**	**11 वर्ष**	**12 वर्ष**
बालक	16.3	18.0	19.7	21.5	23.5	25.9	28.5
बालिका	107.4	17.6	19.4	21.3	23.6	26.4	29.8

3. सिर तथा मस्तिष्क

इस अवस्था में बालक के सिर के आकार में धीरे-धीरे परिवर्तन होता रहता है परन्तु शरीर के अन्य अंगों की तुलना में यह अभी भी अपेक्षाकृत बड़ा होता है। शरीर के विभिन्न अंगों की अनुपातहीनता धीरे-धीरे कम होती जाती है। मध्य बाल्यावस्था के अंत तक सिर का आकार प्रौढ़ावस्था के सिर के आकार का लगभग 95 प्रतिशत हो जाता है। मध्य बाल्यावस्था में मस्तिष्क, आकार तथा भार दोनों ही दृष्टि से लगभग पूर्णरूपेण विकसित हो जाता है। मध्य

बाल्यावस्था के अंत तक मस्तिष्क का भार प्रौढ़ मस्तिष्क के भार का लगभग 95 प्रतिशत रहता है।

4. हड्डियाँ

मध्य बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या तथा उनकी दृढ़ता दोनों में ही वृद्धि होती है। इस अवस्था के दौरान हड्डियों का दृढ़ीकरण अथवा अस्थिकरण (Ossification) तेजी से होता है जिसके परिणामस्वरूप बालकों की हड्डियों का लचीलापन समाप्त होने लगता है तथा उनमें कड़ापन आने लगता है।

5. दाँत

लगभग पाँच-छः वर्ष की आयु में स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते हैं। सोलह वर्ष की आयु तक लगभग सभी स्थायी दाँत निकल आते हैं। स्थायी दाँतों की संख्या लगभग 27-28 होती है। बालिकाओं में स्थायी दाँत बालकों की अपेक्षा जल्दी निकलते हैं। दाँतों के निकल आने से बालकों की मुखाकृति में परिवर्तन आने लगता है तथा उनका भोलापन समाप्त होने लगता है।

6. मांसपेशियाँ

इस अवस्था में माँसपेशियों का धीरे-धीरे विकास होता जाता है। बारह वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते बालक की माँसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का लगभग 33 प्रतिशत हो जाता है। इस अवस्था में बालक माँसपेशियों पर पूर्ण नियंत्रण करने लगता है।

7. अन्य अंग

इस अवस्था तक बालक के लगभग सभी अंगों का विकास हो जाता है जिसके कारण वह अपने विभिन्न शारीरिक अंगों, शक्तियों तथा गति पर नियंत्रण करने में समर्थ हो जाता है। अपनी इच्छानुसार वह अपने विभिन्न अंगों का संचालन करता है तथा बहुत अधिक सक्रिय रहता है। बालक के कंधे चौड़े, कूल्हे पतले, पैर लम्बे व सीधे होते हैं। जबकि बालिकाओं के कंधे पतले, कूल्हे चौड़े तथा पैर कुछ अंदर को झुके हुए होते हैं। लगभग 11-12 वर्ष की आयु में बालक बालिकाओं के यौन अंगों का विकास तीव्र गति से होने लगता है। इस अवस्था में हृदय की धड़कन की गति में निरन्तर कमी होती रहती है। बारह वर्ष की आयु में धड़कन की गति लगभग 85 प्रति मिनट हो जाती है।

आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 3

1. सही/गलत बताइए।

   a. 6 से 12 वर्ष की आयु में बालक एवं बालिकाओं में कोई विशेष शारीरिक परिवर्तन नहीं देखे जाते हैं।

   b. 6 से 9 वर्ष की अवस्था को परिपक्व काल कहते हैं।

   c. मध्य बाल्यावस्था में बालकों की हड्डियों का दृढ़ीकरण अथवा अस्थीकरण धीमी गति से होता है।

6.6 वातावरण का प्रभाव

अब तक आपने मध्य बाल्यावस्था मे होने वाले सामाजिक तथा नैतिक विकास के विषय में जाना। अब हम बालक के विकास के विभिन्न क्षेत्रों में वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करेंगे।

व्यक्ति के विकास में वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने सिद्ध कर दिया है कि बालक के प्रत्येक पक्ष पर उसके भौतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है। बालक का वातावरण गर्भावस्था के दौरान से ही उसके विकास को प्रभावित करने लगता है। गर्भाधान के उपरान्त लगभग नौ माह तक भ्रूण का विकास माता के गर्भाशय में होता है। यदि गर्भाशय का वातावरण विकारयुक्त होता है तो बालक के विकास में व्यवधान उत्पन्न होने की सम्भावनाएँ रहती हैं। उदाहरणार्थ, यदि गर्भस्थ शिशु को माता के रक्त से पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम आदि पौष्टिक पदार्थ नहीं मिलते हैं तो उसमें शारीरिक विकृतियाँ आ जाती हैं। शिशु के जन्म के उपरान्त उसे मिलने वाला वातावरण उसके शारीरिक विकास, मानसिक विकास तथा सामाजिक विकास आदि को प्रभावित करता है। उचित वातावरण के अभाव में बालक का शारीरिक गठन, उसकी हृष्ट पुष्टता, लम्बाई-चौड़ाई में परिवर्तन आ जाता है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक विकास पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उत्तम वातावरण में पलने वाले बच्चों की बौद्धिक क्षमता अधिक होती है।

वातावरण को दो भागों में बाँटा जा सकता है- आन्तरिक वातावरण तथा बाह्य वातावरण। आन्तरिक वातावरण से तात्पर्य व्यक्ति के शरीर में विद्यमान परिस्थितियों से है जो पृथ्वी में जन्म लेने से पूर्व अर्थात गर्भाशय में जीव के चारों तरफ का परिवेश होता है । जबकि बाह्य वातावरण से तात्पर्य घर, परिवार, समाज में उपलब्ध परिस्थितियों से होता है। बाह्य वातावरण

भौतिक वातावरण, सामाजिक वातावरण, आर्थिक वातावरण, सांस्कृतिक वातावरण आदि में बाँटा जा सकता है।

बालक के विकास में पर्यावरण के महत्व को हम निम्न रूप से स्पष्ट कर सकते हैं-

1. शारीरिक विकास पर प्रभाव

गर्भावस्था में शिशु के लिंग, रंग-रूप उसके माता-पिता के जीन (Gene) करते हैं जबकि उसके स्वास्थ्य का निर्धारण माँ से प्राप्त तत्वों पर निर्भर करता है। जन्म के पश्चात् शिशु को जिस प्राकृतिक या सामाजिक वातावरण में रखा जाता है उसका विकास उसी के अनुरूप होता है। यह तथ्य सर्वविदित है कि शुद्ध वायु, जल, सूर्य का प्रकाश, पौष्टिक व संतुलित आहार, उचित व्यायाम व दिनचर्या मनुष्य के शारीरिक विकास के लिए आवश्यक होता है। जिन शिशुओं को अपने पर्यावरण से ये तत्व जितने अधिक सही रूप से प्राप्त होते हैं, उनका विकास तदनुकूल उसी रूप में होता है। अतः बालक के विकास में अन्तः कोशीय पर्यावरण, प्राकृतिक पर्यावरण एवं सामाजिक पर्यावरण का विशेष योगदान होता है।

2. बुद्धि पर प्रभाव

मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययनों एवं प्रयोग से यह सिद्ध किया है कि बुद्धि के विकास में वातावरण का प्रभाव पड़ता है। जिन बालकों को निम्न वातावरण से हटाकर उत्तम वातावरण में रखा जाता है, उनकी बुद्धि-लब्धि में वृद्धि हो जाती है। वातावरण परिवर्तन के समय बालक की आयु जितनी कम होती है, उसमें प्रायः उतना ही अधिक विशेष परिवर्तन होता है।

3. सामाजिक वातावरण एवं चरित्र निर्माण पर प्रभाव

यह सर्वविदित है कि बालक जिस प्रकार के समाज में रहता है, वह उस समाज की बातों को सीखता है, उसी के आदर्श, विश्वास और मूल्यों को सीखता है और उसी के अनुसार आचरण भी करता है। इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि बालक के चरित्र निर्माण पर वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

4. संवेगात्मक विकास पर प्रभाव

प्रायः समाज में यह देखने को मिलता है कि जिन बच्चों के माता-पिता, भाई-बहन एवं परिवार के अन्य सदस्य संवेदनशील होते हैं, तो बच्चे भी संवेदनशील होते हैं। संवेगात्मक विकास (प्रेम, द्वेष, क्रोध आदि) में परिवार की सबसे बड़ी भूमिका होती है। परिवार के साथ-साथ समुदाय, विद्यालय, समाज एवं राष्ट्र का भी प्रभाव पड़ता है।

5. सामाजिक विकास पर प्रभाव

मानव एक सामाजिक प्राणी है तथा इसमें सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति पाई जाती है। बालक जिस समाज में रहता है वह उस समाज का व्यवहार प्रतिमान, मूल्य एवं आदर्श सीखता है तथा उस समाज की भाषा को सीखता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि मनुष्य वैसा ही बनता है जैसा उसे पर्यावरण मिलता है। अतः उपरोक्त तथ्य यह स्पष्ट करते हैं कि मनुष्य के सामाजिक विकास पर पर्यावरण का विशेष प्रभाव होता है।

6. व्यक्तित्व पर प्रभाव

मनोवैज्ञालिक कूले का मानना है कि बालक के व्यक्तित्व के निर्माण में वंशानुक्रम की अपेक्षा वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है। कूले ने अपने अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया कि कोई भी व्यक्ति महान तभी बन सकता है जब उसे समुचित वातावरण उपलब्ध हो। उपयुक्त वातावरण में रहकर निर्धन व्यक्ति भी अपने व्यक्तित्व का निर्माण करके महान नेता, उच्चकोटि का साहित्यकार इत्यादि बन सकता है।

7. विभिन्न योग्यताओं का विकास पर प्रभाव

मानव में अन्तर्निहित शक्तियाँ विद्यमान होती हैं। शिक्षा का कार्य मानव की अन्तर्निहित शक्तियों का बाह्य जगत में प्रकाशन करना है। बालक में मानसिक योग्यताओं, सामाजिक योग्यताओं, कला कौशलों से सम्बन्धित योग्यताओं या व्यवसाय सम्बन्धी योग्यताओं को, उचित विकास के लिए उचित शिक्षा तथा उचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न योग्यताओं के विकास के लिए समुचित पर्यावरण की आवश्यकता होती है।

इकाई के अन्त में हम संस्कृति एवं वर्ग का बालक के विकास के साथ सम्बन्ध पर ध्यान क्रेन्द्रित करेंगे।

6.7 संस्कृति एवं वर्ग

मानव की सबसे बड़ी सम्पत्ति उसकी संस्कृति है। संस्कृति मनुष्य का पर्यावरण है। संस्कृति में रहकर मनुष्य उन सभी क्षमताओं को प्राप्त कर सकता है जो उसे एक सामाजिक प्राणी बनाने की ओर प्रेरित करते हैं। विकास के अनेक स्तरों से गुजरते हुए आज का मानव यदि इतना सभ्य और प्रगतिशील बन सका है तो इसका एकमात्र कारण उसकी संस्कृति है। संस्कृति के रूप में ही मानव ने तरह-तरह के विचारों, व्यवहार के तरीकों तथा आविष्कारों के द्वारा एक अपूर्व कुशलता प्राप्त की है। यद्यपि बालक के सर्वांगीण विकास में संस्कृति के साथ-साथ

समाज का वर्ग समूह भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सामान्य शब्दों में कहा जा सकता है कि वर्ग का तात्पर्य व्यक्तियों के किसी भी ऐसे समूह से है जिसकी सामाजिक, आर्थिक, तथा व्यावसायिक स्थिति लगभग समान प्रकार की होती है। इस दृष्टिकोण से हम अक्सर पूँजीपति वर्ग, शासक वर्ग, व्यापारी वर्ग, कृषक वर्ग तथा श्रमिक वर्ग जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं। बालक का सांस्कृतिक विकास भी विभिन्न अवस्थाओं में अलग-अलग होता है। बालक के व्यक्तित्व का उतना ही अधिक विकास होता है जितना वह प्रथा, परम्परा, कला, साहित्य, भाषा आदि में अनुकूलन करता है। विभिन्न सांस्कृतिक संस्थाएँ ऐसे वातावरण का निर्माण कर सकती हैं जिसमें बालक आसानी से अनुकूलन कर पाता है। बालक विद्यालय, परिवार, समूह में अपना सांस्कृतिक विकास कर पाता है। उसी प्रकार वर्ग समूह भी बालक के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जो बालक प्रतिष्ठित वर्ग जैसे पूँजीपति वर्ग, शासक वर्ग, व्यापारी वर्ग से आते हैं वे बालक उच्च श़िक्षा जैसे तकनीकि शिक्षा, प्रौद्योगिक ज्ञान, प्रबन्धकीय शिक्षा तथा विज्ञान अथवा कला में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। वर्ग निर्धारण में शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में है।

यद्यपि एक विशेष वर्ग में बालक की सदस्यता इस दृष्टिकोण से अर्जित होती है, कि बालक इसे अपनी कुशलता और योग्यता के द्वारा भी प्राप्त करता है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति को सदैव एक विशेष वर्ग का सदस्य बने रहने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता है। यह सम्भव है कि अकुशल व अयोग्य व्यक्ति भी उच्च वर्ग के माता-पिता के घर जन्म लेने के कारण कुछ समय के लिये उच्च वर्ग का सदस्य बन जाए लेकिन स्थायी रूप से वह उसी वर्ग का सदस्य रह पाता है जैसी उसकी योग्यता एवं कुशलता होती है। आजकल सामाजिक स्थिति का निर्धारण भी बहुत-कुछ आर्थिक आधार पर ही होता है। बालक का सांस्कृतिक विकास उसके सामाजिक विकास पर भी निर्भर करता है जिसके कारण बालक अपनी रीति, परम्पराओं, मान्यताओं, कला के साथ समाज से बँधा रहता है। इस प्रकार बालक के विकास में संस्कृति एवं वर्ग भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं जिसके आधार पर बालक समाज में प्रतिष्ठा एवं सम्मान पाता है।

6.8 सारांश

मध्य बाल्यावस्था में बालक का सामाजिक एवं नैतिक विकास बालक के सर्वांगीण विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। बालक का यह सामाजिक एवं नैतिक विकास उसके परिवार, साथी समूहों तथा समाज द्वारा प्रभावित एवं अभिप्रेरित होता है। मध्य बाल्यावस्था में बालक का शारीरिक विकास एक निश्चित क्रम एवं माप के आधार पर होता है यह भी आप इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त समझ गये होंगे। मध्य बाल्यावस्था में एक स्वस्थ शारीरिक विकास

किशोरावस्था के लिए नींव की भांति कार्य करता है। यदि इस विकास की गति धीमी पड़ जाए अथवा अविकसित रह जाए तो किशोरावस्था में बालक पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पायेगा। इस इकाई के अध्ययनोपरांत आपने जाना कि वातवरण का प्रभाव किस प्रकार बालक के सर्वांगीण विकास पर अथवा विकास के विभिन्न पक्षों पर पड़ता है। अतः माता-पिता एवं शिक्षकों के लिए यह आवश्यक है कि वह इसका व्यवहारिक रूप से प्रयोग कर बालक के सर्वांगीण विकास में मुख्य भूमिका निभाएं। जिस प्रकार बालक के लिये शिक्षा महत्वपूर्ण है उसी प्रकार उसके सामाजिक विकास के लिए संस्कृति एवं वर्ग भी उतना ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है। यह संस्कृति एवं वर्ग ही बालक को उसके कौशलों एवं बुद्धिमत्ता के आधार पर समाज में उच्च प्रतिष्ठित स्थान पर स्थापित करते हैं।

6.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **परिपक्वताः** आयु बढ़ने के साथ-साथ सही एवं गलत की समझ आ जाना।
- **समायोजनः** समाज की विभिन्न वस्तुओं एवं रीति-रीवाजों के साथ तालमेल बिठाना।
- **नैतिक यर्थाथताः** समाज एवं बड़े बुर्जुगों के द्वारा बनाए गए नियमों का अनुसरण करना।
- **नैतिक सापेक्षताः** बालक तथा किशोर द्वारा नैतिक निर्णयों के सबंध में अपने स्वयं के नियम बनाना शुरू करना।

6.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
    a. यौन विरोधी भाव
    b. सहयोगात्मक
    c. समुदायिकता अथवा समूह की अवस्था

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही/गलत बताइए।
    a. सत्य
    b. असत्य
    c. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3

1. सही/गलत बताइए।
   a. असत्य
   b. सत्य
   c. असत्य

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 एस0 पी0 गुप्ता एवं डॉ0 अलका गुप्ता, शिक्षा मनोविज्ञान। शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद।
2. डॉ0 प्रीति वर्मा एवं डॉ0 डी0 एन0 श्रीवास्तव, बाल मनोविज्ञानः बाल विकास। ग्यारहवां संस्करण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. प्रो0 मथुरेश्वर पारीक, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। रिसर्च पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. सुरेश भटनागर, डॉ0 महिमा गुप्ता, डॉ0 के0 पी0 सिंह, शिक्षा मनोविज्ञान । आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
5. नीता अग्रवाल, बाल विकास। अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
6. डॉ0 गोपाल कृष्ण अग्रवाल, मानव समाज एवं समाजशास्त्रीय अवधारणाएँ। साहित्य भवन, आगरा।
7. Elizabeth B.Hurlock, Child Development. Sixth edition, Tata McGraw Hill Education Private Limited.
8. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। पचंशील प्रकाशन, जयपुर।

6.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मध्य बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास एवं नैतिक विकास एवं उसके महत्व को विस्तार से समझाइए।
2. मध्य बाल्यावस्था में अभिवृद्धि के रूझान एवं माप पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. बालकों के विकास के प्रत्येक पक्ष पर वातावरण के प्रभाव की विस्तृत चर्चा कीजिए।
4. संस्कृति एवं वर्ग का बालक के विकास के साथ सम्बन्ध को समझाइए।

इकाई 7: प्रारम्भिक एवं मध्य बाल्यावस्था में परिवार एवं समाज की भूमिका

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 परिवारः स्वरूप एवं कार्य
    7.3.1 परिवार का अर्थ एवं परिभाषा
    7.3.2 परिवार की भूमिका
7.4 समाजः स्वरूप एवं कार्य
    7.4.1 समाज का अर्थ एवं परिभाषा
    7.4.2 समाज की विशेषताएं
    7.4.3 समाज के कार्य
7.5 पूर्व तथा मध्य बाल्यावस्था में बालक की अभिवृद्धि एवं विकास में परिवार, विद्यालय तथा समुदाय की भूमिका
    7.5.1 बालक के विकास में परिवार की भूमिका
    7.5.2 बालक के विकास में विद्यालय की भूमिका
    7.5.3 बालक के विकास में समुदाय की भूमिका
7.6 सारांश
7.7 परिभाषिक शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

शिक्षार्थियो आपने पिछली इकाई में मध्य बाल्यावस्था में सामाजिक तथा नैतिक विकास के बारे में विस्तार से अध्ययन किया। इस इकाई में आप बाल्यावस्था में बालक के विकास में परिवार, विद्यालय तथा समुदाय की भूमिका का अध्ययन करेंगे। इस इकाई में आप परिवार एवं समाज के अर्थ एवं परिभाषा तथा उसके कार्यों को भी जान पाएंगे। जैसा कि आप सभी

जानते हैं कि परिवार ही बालक के लिये प्रथम पाठशाला एवं उसके सर्वांगीण विकास के लिए प्रथम शिक्षक है। परिवार एक सार्वभौमिक समूह है, इसकी आवश्यकता बालक को किसी एक कार्य के लिए नहीं होती वरन् अनेक कार्यों के लिए होती है। मनुष्य की सभी प्रारम्भिक भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार में ही हो सकती है। परिवार में रह कर ही बालक में अनेक नैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं चारित्रिक गुणों का विकास होता है, उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति परिवार के द्वारा ही होती है। उसी प्रकार जब बालक सर्वप्रथम अपने समुदाय के सम्पर्क में आता है तो उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक विकास में तेजी आने लगती है एवं उसके सामाजीकरण की गति तीव्र हो जाती है। बाल्यावस्था ही मानव जीवन की वह पहली अवस्था है जब बालक सर्वप्रथम विद्यालय एवं समाज के सम्पर्क में आता है। इसलिए बाल्यावस्था में बालक के विकास पर परिवार, समुदाय तथा विद्यालय के प्रभाव एवं उनकी भूमिकाओं की जानकारी लेना अति आवश्यक है। बालक के विकास के लिए उसका पर्यावरण, परिवार, विद्यालय, समुदाय, मित्र मंडली आदि सभी एक विशेष भूमिका निभाते हैं तथा बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष को समन्वित रूप से प्रभावित करते हैं। अतः बालक के विकास में परिवार एवं समाज जितना महत्वपूर्ण है उतना ही विद्यालय एवं उसका समुदाय भी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप;

- परिवार एवं समाज के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे;
- परिवार के अर्थ एवं उसके कार्यों की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे;
- समाज का अर्थ एवं उसके कार्यों को समझ पाएंगे; तथा
- बाल्यावस्था में बालक के विकास में परिवार, विद्यालय तथा समुदाय की भूमिका को समझ कर वास्तविक जीवन में उसका अनुप्रयोग कर सकेंगे।

7.3 परिवारः स्वरूप एवं कार्य

जैविक सम्बन्धों के आधार पर बने हुए समूहों में परिवार सबसे छोटी इकाई है। प्रत्येक मनुष्य किसी-न-किसी परिवार का सदस्य रहा है, या है। मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है। परिवार ही नवजात शिशुओं एवं गर्भवती माताओं की देखभाल करता है, यौन सम्बन्धों एवं सन्तानोत्पत्ति का नियमन कर उन्हें

सामाजिक मान्यता प्रदान करता है। यह भावात्मक घनिष्ठता का वातावरण प्रदान कर बच्चे के समुचित लालन-पालन, समाजीकरण और शिक्षण में योगदान देता है। परिवार अपने सदस्यों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में भी योगदान देता है। परिवार मानव जाति के आत्म-संरक्षण, वंशवर्धन और जातीय जीवन की निरन्तरता बनाये रखने का प्रमुख साधन है। विवाह द्वारा परिवार का निर्माण कर सन्तानों के माध्यम से व्यक्ति का विस्तार होता है और इस प्रकार वह मर कर भी अमर बना रहता है। मनुष्य को एक तरफ अपनी मृत्यु का दुःख होता है तो दूसरी तरफ उसे यह भी सन्तोष होता है कि वह परिवार द्वारा अपने वंशजों के रूप में अनन्त काल तक जीवित रहेगा। स्त्री और पुरूष दोनों ही परिवार के मूल हैं, नदी के दो तटों के समान हैं, जिनके बीच जीवन रूपी धारा का लगातार प्रवाह होता है। परिवार नये प्राणियों को जन्म देकर मृत्यु से रिक्त होने वाले स्थानों को भरता है तथा समाज की निरन्तरता बनाये रखता है। यही कारण है कि परिवार मानव के साथ प्रारम्भ से ही है। मैलिनोवस्की कहते हैं कि “परिवार ही एक ऐसा समूह है जिसे मनुष्य पशु अवस्था से अपने साथ लाया है”। परिवार की अवधारणा को स्पष्ट समझने के लिए हम उसके अर्थ एवं परिभाषा पर यहां विचार करेंगे।

7.3.1 परिवार का अर्थ एवं परिभाषा

Family शब्द का उद्गम लैटिन शब्द ‘famulus’ से हुआ, जो एक ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसमें माता-पिता, बच्चे और नौकर-चाकर हों। साधारण अर्थों में विवाहित जोड़े को परिवार की संज्ञा दी जाती है, किन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवार शब्द का सही उपयोग नहीं है। परिवार में पति-पत्नी एवं बच्चों का होना आवश्यक है। इनमें से किसी भी एक के अभाव में हम उसे परिवार न कहकर गृहस्थी (Household) कहेंगे। यह सम्भव है कि परिवार एवं गृहस्थी के सदस्य एक ही हों। प्रत्येक परिवार एक गृहस्थी भी है, किन्तु सभी गृहस्थी परिवार नहीं है। परिवार की परिभाषाओं में यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। विभिन्न विद्वानों ने परिवार को निम्न प्रकार परिभाषित किया हैः

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार, “परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों के जनन एवं लालन-पालन की व्यवस्था करता है”।

डब्ल्यू0एच0आर0रिवर्स के अनुसार, “परिवार शब्द से आशय एक छोटे से सामाजिक समूह से होता है, जिसमें माता-पिता तथा बच्चे सम्मिलित हों”।

डॉ0 दुबे के अनुसार, “परिवार में स्त्री और पुरूष दोनों को सदस्यता प्राप्त रहती है, उनमें से कम-से-कम दो विपरीत यौन व्यक्तियों को यौन सम्बन्धों की सामाजिक स्वीकृति रहती है और

उनके संसर्ग से उत्पन्न सन्तान परिवार का निर्माण करते हैं। इस प्रकार प्राथमिक या मूल परिवार के लिये माता-पिता और उनकी सन्तति का होना आवश्यक है”।

मरडॉक के अनुसार, “परिवार एक ऐसा सामाजिक समूह है जिसके लक्षण सामान्य निवास, आर्थिक सहयोग और जनन हैं। इसमें दो लिंगों के बालिग शामिल हैं जिनमें कम-से-कम दो व्यक्तियों द्वारा स्वीकृत यौन सम्बन्ध होता है और जिन बालिग व्यक्तियों में यौन सम्बन्ध है, उनके अपने या गोद लिये हुए एक या अधिक बच्चे होते हैं”।

लुसी मेयर के अनुसार, “परिवार एक गृहस्थ समूह है जिसमें माता-पिता और सन्तान साथ-साथ रहते हैं। इसके मूल रूप में दम्पति और उसकी सन्तान रहती है”।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विद्वानों ने परिवार को विभिन्न दृष्टिकोणों से परिभाषित किया है। परिवार एक समूह, एक संघ और एक संस्था के रूप में समाज में विद्यमान है। प्रत्येक समाज में परिवार के दो पक्ष स्पष्ट होते हैं; एक संरचनात्मक (Structural) एवं दूसरा कार्यात्मक (Functional)। संरचनात्मक दृष्टि से अपने मूल रूप में परिवार की संरचना पति-पत्नी और बच्चों से मिलकर बनी होती है। इस दृष्टि से प्रत्येक परिवार में कम-से-कम तीन प्रकार के सम्बन्ध विद्यमान होते हैं:

- पति-पत्नी के सम्बन्ध
- माता-पिता एवं बच्चों के सम्बन्ध
- भाई-बहनों के सम्बन्ध

कार्यात्मक दृष्टि से परिवार का निर्माण कुछ मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। परिवार का उद्देश्य यौन सम्बन्धों का नियमन करना, सन्तानोत्पत्ति करना, उनका लालन-पालन, शिक्षण व समाजीकरण करना एवं उन्हें आर्थिक, सामाजिक और मानसिक संरक्षण प्रदान करना है। इन कार्यों की पूर्ति के लिए परिवार के सदस्य परस्पर अधिकारों एवं कर्तव्यों से बंधे होते हैं। परिवार की सांस्कृतिक विशेषता यह है कि परिवार समाज की संस्कृति की रचना, सुरक्षा, हस्तान्तरण एवं संवर्धन में सहयोग देता है।

7.3.2 परिवार की भूमिका

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। मानव ने अनेक अविष्कार किये हैं, किन्तु कोई भी ऐसी व्यवस्था नहीं कर पाया जो परिवार का स्थान ले सके। इसका मूल कारण यह है कि परिवार द्वारा किये जाने वाले कार्य अन्य संघ एवं संस्थाएं करने में असमर्थ होती हैं। हम यहां परिवार के कार्यों का संक्षेप में उल्लेख करेंगेः

1. जैविक कार्य (Biological Functions)

परिवार के जैविक कार्य निम्नांकित हैं:

(अ) यौन इच्छाओं की पूर्ति: मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में यौन सन्तुष्टि भी महत्वपूर्ण है। परिवार ही वह समूह है जहां मानव समाज द्वारा स्वीकृत विधि से व्यक्ति अपनी यौन इच्छा की पूर्ति करता है। पदाधिकार एवं उत्तराधिकार, वंशनाम, आदि की व्यवस्थाएं भी इससे जुड़ी रहती हैं।

(ब) सन्तानोत्पत्ति: यौन सन्तुष्टि एक दैहिक क्रिया के रूप में ही समाप्त नहीं होती वरन् इसका परिणाम सन्तानोत्पत्ति के रूप में भी होता है। मानव समाज की निरन्तरता बनाये रखने के लिए यह आवश्यक है कि मृत्यु को प्राप्त होने वाले सदस्यों का स्थान नवीन सदस्यों द्वारा भरा जाये। परिवार ही समाज के इस महत्वपूर्ण कार्य को निभाता है।

(स) प्रजाति की निरन्तरता: परिवार ने ही मानव जाति को अमर बनाया है। नयी पीढ़ी को जन्म देकर परिवार ने मानव की स्थिरता एवं निरन्तरता को बनाये रखा है। गुडे लिखते हैं, "यदि परिवार मानव की जैविक आवश्यकताओं के लिए पर्याप्त व्यवस्था न करे तो समाज समाप्त हो जाएगा'।

2. शारीरिक कार्य (Physical Functions)

(अ) शारीरिक रक्षा: परिवार अपने सदस्यों को शारीरिक संरक्षण प्रदान करता है। वृद्धावस्था, बीमारी, दुर्घटना, असहाय अवस्था, अपाहिज होने आदि की अवस्था में परिवार ही अपने सदस्यों की देख-रेख एवं सेवा करता है। गर्भवती माता एवं नवजात शिशु की शारीरिक रक्षा का भार भी परिवार पर ही होता है।

(ब) बच्चों का पालन-पोषण: मानव एक ऐसा प्राणी है जिसका शैशव काल कई अन्य प्राणियों की तुलना में लम्बा होता है। इस अवधि में उसका लालन-पालन परिवार द्वारा ही किया जाता है। वर्तमान समय में शिशुओं के लालन-पालन के लिए अनेक संगठनों का निर्माण किया गया है, किन्तु जो भावानात्मक पर्यावरण बच्चों के विकास के लिए आवश्यक है, वह केवल परिवार ही प्रदान कर सकता है।

(स) भोजन का प्रबन्ध: परिवार अपने सदस्यों के शारीरिक अस्तित्व के लिए भोजन व्यवस्था करता है। आदिकाल से ही अपने सदस्यों के लिए भोजन जुटाना परिवार का प्रमुख कार्य रहा है। मानव के जीवित रहने के लिए भोजन आवश्यक है और जीवित रहकर ही मानव सभ्यता एवं संस्कृति का निर्माण करने में समर्थ हो पाता है।

(द) निवास एवं वस्त्र की व्यवस्था: परिवार अपने सदस्यों के लिए निवास की भी व्यवस्था करता है। घर ही वह स्थान है जहां पहुंचकर मानव को पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है। सर्दी-गर्मी एवं वर्षा से रक्षा के लिए परिवार ही अपने सदस्यों को वस्त्र एवं शरण स्थान प्रदान करता है।

3. आर्थिक कार्य (Economic Functions)

(अ) उत्तराधिकार का निर्धारण: प्रत्येक समाज में सम्पत्ति एवं पदों को पुरानी पीढ़ी से नयी पीढ़ी में हस्तान्तरण की व्यवस्था पायी जाती है और यह कार्य परिवार को ही करना होता है। वंशगत सम्पत्ति के हस्तान्तरण के प्रत्येक समाज के अपने नियम हैं। पितृ-सत्तात्मक परिवार में उत्तराधिकार पिता से पुत्र को प्राप्त होता है जबकि मातृ-सत्तात्मक परिवार में माता से पुत्री या मामा से भानजे को।

(ब) उत्पादक इकाई: परिवार उपभोग एवं उत्पादन करने वाली इकाई है। मानव समाज की आदिम अवस्थाओं में शिकार, पशुपालन एवं कृषि अवस्थाओं में परिवार द्वारा ही सम्पूर्ण उत्पादन का कार्य किया जाता था। प्राचीन उद्योगों में भी निर्माण का कार्य परिवार के द्वारा ही होता था। वर्तमान में भी अविकसित और अपूर्ण औद्योगिक अवस्था वाले समाजों में निर्माण का कार्य परिवार के स्त्री-पुरूषों एवं बच्चों द्वारा ही किया जाता है। इस प्रकार परिवार उत्पादन की एक सहकारी उत्पादक इकाई (Co-operative productive unit) है।

(स) श्रम विभाजन: परिवार में श्रम-विभाजन का सबसे सरल रूप देखा जा सकता है। जहां पुरूष, स्त्री एवं बच्चों के बीच कार्य का विभाजन होता है। परिवार में कार्य-विभाजन का आधार लिंग एवं आयु दोनों हैं। सामान्यत: स्त्रियां गृह कार्य करती हैं तो पुरूष बाह्य कार्य तथा छोटा-मोटा कार्य। शक्ति के कार्य पुरूषों द्वारा किये जाते हैं। परिवार के सदस्यों में श्रम विभाजन आर्थिक सहयोग का प्रमुख कारक है।

(द) आय तथा सम्पत्ति का प्रबन्ध: परिवार की विशेषताओं के दौरान हम कह चुके हैं कि प्रत्येक परिवार के पास सदस्यों के भरण-पोषण के लिए कोई-न-कोई अर्थव्यवस्था अवश्य होती है। इस अर्थव्यवस्था के द्वारा ही वह आय प्राप्त करता है। परिवार की गरीबी एवं समृद्धि का पता आय से ही ज्ञात होता है। अपनी आय को परिवार कैसे खर्च करेगा, यह भी परिवार का मुखिया ही तय करता है। प्रत्येक परिवार के पास जमीन, जेवर, औजार, नकद, सोना, पशु, दुकान, आदि के रूप में चल और अचल सम्पत्ति होती है जिसकी देख-रेख और सुरक्षा भी वही करता है।

4. धार्मिक कार्य (Religious Functions)

प्रत्येक परिवार किसी-न-किसी धर्म का अनुयायी भी होता है। सदस्य को धार्मिक शिक्षा, धार्मिक प्रथाएं, नैतिकता, व्रत, त्यौहार, आदि का ज्ञान भी परिवार ही कराता है। ईश्वर पूजा एवं आराधना, पूर्वज पूजा, आदि कार्यों को एक व्यक्ति परिवार के अन्य सदस्यों से ही सीखता है। पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्क, हिंसा-अहिंसा की धारणा भी एक व्यक्ति परिवार से ही ग्रहण करता है।

5. राजनीतिक कार्य (Political Functions)

परिवार राजनीतिक कार्य भी करता है। आदिम और सरल समाजों में जहां प्रशासक या जनजाति का मुखिया परिवारों के मुखियाओं से सलाह लेकर कार्य करता है, वहां परिवार द्वारा महत्वपूर्ण राजनीतिक भूमिका निभाई जाती है। भारत में संयुक्त परिवार में कर्ता ही परिवार का प्रशासक होता है, वहीं परिवार के झगड़ों को निपटाने एवं न्याय करने वाला न्यायकर्ता होता है।

6. समाजीकरण का कार्य (Function of Socialization)

परिवार में ही बच्चे का समाजीकरण प्रारम्भ होता है। समाजीकरण की प्रक्रिया से जैविक प्राणी सामाजिक प्राणी बनता है। वहीं उसे परिवार और समाज के रीति-रिवाजों, प्रथाओं, रूढ़ियों और संस्कृति का ज्ञान प्राप्त होता है। धीरे-धीरे बच्चा समाज की कार्यकारी इकाई बन जाता है। परिवार ही समाज की संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित करता है। परिवार में ही ज्ञान का संचय, संरक्षण एवं वृद्धि होती है।

7. शिक्षात्मक कार्य (Educational Functions)

परिवार ही बच्चे की प्रथम पाठशाला है जहां उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। परिवार के द्वारा दी गयी शिक्षाएं जीवन-पर्यन्त आत्मसात होती रहती हैं। आदिम समय में जब आज की तरह शिक्षण संस्थाएं नहीं थीं तो परिवार ही शिक्षा की मुख्य संस्था थी। परिवार में ही बालक दया, स्नेह, प्रेम, सहानुभूति, त्याग, बलिदान, आज्ञापालन, कर्तव्यपरायणता का पाठ पढ़ता है।

8. मनोवैज्ञानिक कार्य (Psychological Functions)

परिवार अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा और सन्तोष प्रदान करता है। परिवार के सदस्यों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति और सद्भाव पाया जाता है। वही बालक में आत्म-विश्वास पैदा करता है। जिन बच्चों को माता-पिता का प्यार एवं स्नेह नहीं मिल पाता, वे अपराधी एवं विघटित व्यक्तित्व वाले बन जाते हैं। माता-पिता में से किसी की मृत्यु, तलाक, सम्बंध विच्छेद, घर से अनुपस्थिति आदि के करण बच्चों को स्नेह एवं मानसिक सुरक्षा नहीं मिल पाने पर उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

9. सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)

परिवार ही समाज की संस्कृति की रक्षा करता है तथा पीढ़ी को संस्कृति का ज्ञान प्रदान करता है। परिवार ही हस्तान्तरण द्वारा संस्कृति की निरन्तरता एवं स्थायित्व बनाये रखता है।

10. मानव अनुभवों का हस्तान्तरण (Transmission of Human Experiences)

पुरानी पीढ़ी द्वारा संकलित ज्ञान एवं अनुभव का संरक्षण एवं हस्तान्तरण कर परिवार समाज को अपना अमूल्य योगदान देता है। इसके अभाव में समाज की प्रत्येक पीढ़ी को ज्ञान की नये सिरे से खोज करनी पड़ेगी।

11. मनोरंजन का कार्य (Function of Recreation)

परिवार अपने सदस्यों के लिए मनोरंजन का कार्य भी करता है। छोटे-छोटे बच्चों की प्यारी बोली एवं उनके पारस्परिक झगड़े तथा दाम्पत्य प्रेम, परिवार के मनोरंजन के केन्द्र हैं। परिवार में मनाये जाने वाले त्यौहार, उत्सव, धार्मिक कर्मकाण्ड, विवाह उत्सव, श्राद्ध भोज, भजन-कीर्तन, आदि भी परिवार में मनोरंजन प्रदान करते हैं।

12. समाज में पद निर्धारण (Placement in the Society)

परिवार अपने सदस्यों का समाज में स्थान-निर्धारण का कार्य भी करता है। एक व्यक्ति का समाज में क्या स्थान होगा, यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसका जन्म किस परिवार में हुआ है।

13. सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

परिवार का मुखिया अपने सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है तथा उन्हें गोत्र, जाति एवं समाज की प्रथाओं, परम्पराओं, रूढ़ियों एवं कानूनों के अनुरूप आचरण करने को प्रेरित करता है। ऐसा न करने पर वह उन्हें ताड़ना देता है, डांट-डपट करता है या परिवार से बहिष्कार की धमकी भी देता है। परिवार में प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य एवं दायित्वों का निर्वाह करता है। वहां शक्ति द्वारा नियन्त्रण के अवसर कम ही आते हैं।

परिवार के विभिन्न कार्यों के उल्लेख से स्पष्ट है कि परिवार समाज की महत्वपूर्ण इकाई है तथा मानव के विकास में जीवन पर्यन्त सतत् रूप से कार्यरत रहती है। आज अनेक संघ एवं संस्थाएं परिवार के कार्यों को ग्रहण कर रहे हैं, किन्तु फिर भी किसी-न-किसी रूप में समाज में परिवार का अस्तित्व बना हुआ है।

अगले भाग में हम समाज के स्वरूप एवं कार्यों के बारे में जानेंगे परन्तु उससे पूर्व आइए कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. मानव की समस्त सामाजिक संस्थाओं में.................................एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है।
   b. प्रत्येक समाज में परिवार के दो पक्ष एक .... एवं दूसरा..............................स्पष्ट होते हैं।
   c. परिवार में ही बच्चे का .... प्रारम्भ होता है।

7.4 समाजः स्वरूप एवं कार्य

हम सभी अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन के वार्तालाप में कई बार अनेक शब्दों जैसे- समाज, समुदाय, समिति, संस्था, समूह, प्रस्थिति, भूमिका, जनरीतियाँ, लोकाचार तथा मूल्य आदि का प्रयोग करते हैं। परन्तु हम उनके वास्तविक रूप, उनकी विशेषताएं एवं उनके अर्थ को नहीं जानते हैं। साधारणतया हम इन शब्दों का अर्थ विषय के सन्दर्भ से ही लगा लेते हैं, चाहे कहने वाले का उस शब्द से कोई भी अभिप्राय हो। वास्तविकता यह है कि किसी भी विषय को वैज्ञानिक रूप से समझने के लिए आवश्यक होता है कि उस विषय से सम्बन्धित प्राथमिक अवधारणाओं को उसी अर्थ में समझा जाए जिस अर्थ में ज्ञान की एक विशेष शाखा में उसका उपयोग किया जाता है। चूंकि समाज समाजशास्त्र की केन्द्रीय अथवा प्राथमिक अवधारणा हैं, अतः उपर्युक्त सभी शब्द भी समाजशास्त्र की प्राथमिक अथवा मौलिक अवधारणाएँ हैं, इसलिए इनके विषय में जानना अनिवार्य है। इन्हें प्राथमिक अवधारणा इसलिए कहा जाता है क्योंकि किसी भी समाजशास्त्रीय विवेचन में इनका महत्व आधारभूत होता है। समाजशास्त्र समाज का वैज्ञानिक अध्ययन है। इसके बाद भी सभी समाजिक विज्ञानों में ‘समाज’ शब्द का उपयोग एक-दूसरे से बहुत भिन्न अर्थ में किया जाता है। बोलचाल की सामान्य भाषा में हम ‘समाज’ शब्द का उपयोग जिस अर्थ में करते हैं, समाज का समाजशास्त्रीय अर्थ उससे बहुत भिन्न है। इसलिए यह आवश्यक है कि सबसे पहले समाज के सामान्य तथा समाजशास्त्रीय अर्थ को समझा जाए। प्रस्तुत विवेचन में हम सर्वप्रथम समाजशास्त्र की सबसे महत्वपूर्ण अवधारणा ‘समाज’ की प्रकृति एवं उसके अर्थ को स्पष्ट करेंगे।

7.4.1 समाज का अर्थ एवं परिभाषा

हम सभी किसी न किसी सन्दर्भ में ‘समाज’ शब्द का प्रयोग प्रचुरता के साथ करते रहते हैं।

समाज शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द Society का हिन्दी रूपान्तरण है। इसका उद्भव लेटिन शब्द ‘Societas’ से हुआ है जिसका उपयोग किसी संस्था, मित्र एवं संगठन के बीच के सम्बन्ध की व्याख्या करने के लिए किया जाता है। साधारणतया हम यह समझते हैं कि समाज का तात्पर्य व्यक्तियों के किसी भी समूह अथवा संगठन से है। जब हम हिन्दू, ईसाई अथवा मुस्लिम समाज जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, तब यहाँ पर समाज से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों के एक संगठन से ही होता है। इसी तरह क्षेत्र, भाषा और प्रजाति से सम्बन्धित लोगों को भी एक-एक समाज के रूप में स्पष्ट किया जाता है। कभी-कभी समान विशेषताओं अथवा समान व्यवसाय से सम्बन्धित लोगों को भी समाज के रूप से स्पष्ट कर दिया जाता है। इसी कारण हम अक्सर शिक्षक समाज, विद्यार्थी समाज, मजदूर समाज तथा दलित समाज जैसे शब्दों का प्रयोग कर लेते हैं। विभिन्न सामाजिक विज्ञानों में भी समाज का अर्थ एक-दूसरे से भिन्न देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए, राजनीतिशास्त्र में समाज एक राजनीतिक समूह के रूप में स्पष्ट किया जाता है। अर्थ शास्त्र में समाज का तात्पर्य कुछ ‘विशेष तरह की आर्थिक क्रियाएँ करने वाले लोगों के समूह’ से समझा जाता है, जबकि मनोविज्ञान में मानसिक अन्तर्क्रियाएं करने वाले लोगों के समूह को समाज कहा जाता है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में समाज का तात्पर्य व्यक्तियों के किसी समूह अथवा संगठन से नहीं होता बल्कि व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की व्यवस्था को ही हम समाज कहते हैं। इस दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि विभिन्न समाजशास्त्रियों द्वारा दी गयी समाज की कुछ मुख्य परिभाषाओं को समझा जाए। इसी से यह स्पष्ट हो सकता है कि समाज किस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों की एक व्यवस्था है। समाजशास्त्रियों में इसकी परिभाषा को लेकर व्यापक मतभेद है। आइए कुछ समाजशास्त्रियों द्वारा दी गयी समाज की परिभाषाओं का अध्ययन करें-

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार, “समाज रीतियों, कार्यविधियों, अधिकार और पारस्परिक सहायता, अनेक समूहों और उप-विभागों, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों तथा स्वतन्त्रता की व्यवस्था है। यह सामाजिक सम्बन्धों का जाल है तथा सदैव परिवर्तित होता रहता है।”

गिडिंग्य के अनुसार, “समाज स्वयं में एक संघ अथवा औपचारिक सम्बन्धों का ऐसा योग है जिसमें सहयोग देने वाले लोग पारस्परिक सम्बन्धों द्वारा जुड़े रहते हैं।”

र्यूटर के अनुसार, “समाज एक अमूर्त धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक सम्बन्धों की सम्पूर्णता का बोध करती है।”

गिन्सबर्ग के अनुसार, " समाज ऐसे व्यक्तियों का संग्रह है जो अनेक सम्बन्धों और व्यवहार की विधियों द्वारा संगठित हैं तथा उन व्यक्तियों से भिन्न हैं जो इस प्रकार के सम्बन्धों द्वारा बँधे हुए नहीं हैं अथवा जिनके व्यवहार उनसे भिन्न हैं।"

बाह्य रूप से उपरोक्त सभी परिभाषाएँ एक-दूसरे से भिन्न प्रतीत होती हैं लेकिन भाषा में कुछ भिन्नता होने के बाद भी सभी परिभाषाएँ तीन प्रमुख तथ्यों को ही स्पष्ट करती हैं-

1. समाज का निर्माण समाजिक सम्बन्धों से होता है। सामाजिक सम्बन्ध क्योंकि अमूर्त, जटिल और परिवर्तनशील होते हैं, इसीलिए समाज को भी एक अमूर्त, जटिल और परिवर्तनशील व्यवस्था कहा जाता है।

2. समाज का निर्माण करने वाले सामाजिक सम्बन्ध मनमाने न होकर बहुत से सांस्कृतिक नियमों से बँधे रहते हैं। यही कारण है कि समाजशास्त्र के कार्यात्मक अर्थ के अनुसार समाज को अन्तर-सम्बन्धित इकाइयों की भूमिकाओं से बनने वाली संरचना अथवा व्यवस्था के रूप में स्पष्ट किया गया है।

3. समाज में व्यक्ति का महत्व केवल इसी अर्थ में है कि व्यक्तियों द्वारा ही सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना की जाती है। स्वयं व्यक्तियों के एकत्रीकरण को ही समाज नहीं कहा जा सकता।

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर हम स्पष्ट रूप में कह सकते हैं कि समाज के लिये सामाजिक सम्बन्धों का होना अति आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। सामाजिक सम्बन्ध ही समाज का आधार है।

7.4.2 समाज की विशेषताएं

केवल कुछ परिभाषाओं के आधार पर ही समाज की अवधारणा को समुचित रूप से समझ पाना बहुत कठिन है। सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में भी समाज को तभी समझा जा सकता है जब इसकी प्रमुख विशेषताओं को ध्यान में रखा जाए जो निम्नवत हैं:

1. समाज अमूर्त है: समाज का निर्माण जिन पारस्परिक सम्बन्धों और अन्तर्क्रियाओं से होता है, उन्हें न तो देखा जा सकता है और न ही भौतिक वस्तुओं की तरह उनका स्पर्श किया जा सकता है। इन सम्बन्धों से हम केवल प्रभावित होते हैं तथा अपनी प्रत्येक क्रिया में उनका अनुभव करते हैं। इसी आधार पर राइट ने लिखा है कि "समाज व्यक्तियों का समूह नहीं है बल्कि समूह के सदस्यों के बीच स्थापित होने वाले सम्बन्धों की एक व्यवस्था है और इसी दृष्टिकोण से यह अमूर्त है।"

2. समाज में सहयोग एवं संघर्ष का समावेश: समाज का निर्माण सदस्यों के सहयोग मात्र से नहीं बल्कि संघर्ष से भी होता है। सामाजिक जीवन के लिए सहयोग महत्वपूर्ण है। बिना सहयोग के समाज की कल्पना संभव नहीं है। यह सहयोग प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों हो सकते हैं जिससे समाज निर्मित होता है। परन्तु समाज में संघर्ष भी विद्यमान होता है। हितों, विचारों, उद्देश्यों आदि में विरोधाभास के कारण सदस्य आपस में संघर्ष भी करते हैं। एक ओर सहयोग के द्वारा समाज में भाईचारे और सामूहिकता को प्रोत्साहन मिलता है तो दूसरी ओर, संघर्ष की सहायता से सामाजिक शोषण, अन्याय और कुरीतियों को दूर कर पाना सम्भव हो पाता है। इस प्रकार समाज में सहयोग एवं संघर्ष दोनों पाए जाते हैं।

3. पारस्परिक जागरूकता: किसी भी समाजिक संबंध के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि सदस्यों को एक-दूसरे के अस्तित्व का आभास हो। बिना इसके दो व्यक्तियों द्वारा अंतः क्रिया के लिए प्रेरित होना संभव नहीं है। इसे ही पारस्परिक जागरूकता कहते हैं। मात्र भौतिक एवं शारीरिक रूप से एक दूसरे के समीप होने मात्र से सामाजिक सम्बन्ध नहीं बनते। सिनेमा हॉल में बैठे लोग शारीरिक रूप से एक दूसरे के समीप होते हैं, परन्तु पारस्परिक जागरूकता के अभाव के कारण सामाजिक सम्बन्ध का निर्माण नहीं कर पाते।

4. समाज में समानता तथा विभिन्नता का समावेश: समाज में जहां सदस्यों के विचार लक्ष्य आदि में समानताएं पाई जाती हैं, वहीं इन्हीं आधारों पर विभिन्नताएं भी। समानता से तात्पर्य सदस्यों में समान दृष्टिकोण से है। समानता संगठित होकर कार्य करने की प्रेरणा देती है। परन्तु किसी भी समाज के विकास के लिए सदस्यों के गुणों में विभिन्नता भी आवश्यक है। विभिन्नता न सिर्फ एक दूसरे पर निर्भर बनाती है बल्कि नये विचारों, आविष्कारों के लिए प्रेरित भी करती है। स्त्री पुरूष में लिंग भेद ही सृष्टि के निर्माण के लिए उत्तरदायी है।

5. पारस्परिक निर्भरता: सदस्यों में संबंध तब तक स्थाई नहीं बन सकते जब तक कि उनमें पारस्परिक आश्रिता न हो। पारस्परिक निर्भरता ही समाज को स्थायित्व प्रदान करती है। स्त्री-पुरूष, पिता-पुत्र, शिक्षक-छात्र, नेता-जनता, राजा-प्रजा, मालिक-नौकर आदि सभी एक दूसरे पर निर्भर हैं। चूंकि हम अपनी सारी आवश्यकताएँ स्वयं पूरी नहीं कर सकते, इसलिए हमें एक-दूसरे पर निर्भर होना पड़ता है। पारस्परिक निर्भरता ही मनुष्य को समाजिक प्राणी बनने के लिए बाध्य करती है। पारस्परिक निर्भरता की विशेषता के कारण ही समाज में सहयोग और ‘समानता की चेतना’ को प्रोत्साहन मिलता है।

6. समाज परिवर्तनशील है: समाज कभी भी स्थिर नहीं होता बल्कि इसमें सदैव परिवर्तन होता रहता है। इसका कारण यह है कि जैसे-जैसे व्यक्तियें की आवश्यकताओं, सामाजिक

मूल्यों तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन होता जाता है, सामाजिक सम्बन्धों की प्रकृति भी बदलने लगती है। सम्बन्धों की प्रकृति में होने वाले परिवर्तन के अनुसार ही समाज भी एक नया रूप लेने लगता है। इस प्रकार समाज का स्वरूप बिल्कुल बदल जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि परिवर्तनशीलता समाज की एक प्रमुख विशेषता है।

7. समाज केवल मनुष्यों तक ही सीमित नहीं है: मनुष्य के अतिरिक्त दूसरे प्राणियों में भी एक समाज पाया जाता है परन्तु उनमें पारस्परिक जागरूकता तथा सहयोग की दशा बहुत निम्न स्तर की होती है। उनकी पारस्परिक जागरूकता और काम करने का ढंग उन्हें एक जन्मजात विशेषता के रूप में प्राप्त होता है, इसे सीखकर विकसित नहीं किया जा सकता।

7.4.3 समाज के कार्य

समाज का निर्माण समाज में रह रहे मनुष्यों के द्वारा निर्मित सामाजिक सम्बन्धों से होता है और यह सामाजिक सम्बन्ध परिवार, रिश्ते तथा मित्रता जैसे सम्बन्धों का निर्माण करते हैं। प्रत्येक समाज के कुछ कर्तव्य एवं कार्य होते हैं जिनका निर्वाह उसमें रह रहे लोगों को करना होता है तथा उन्हें अनवरत बनाए रखने के लिए सदैव प्रयत्नशील होना होता है। आइए समाज के कुछ महत्वपूर्ण कार्यो की चर्चा करें:

1. रीति-रिवाजों को बनाए रखना: समाज एक ऐसी व्यवस्था है जो बहुत सी रीति-रिवाजों पर आधारित होती है। रीतियों से तात्पर्य समाज के स्वीकृत तरीकों से है। रीतियां व्यक्ति के व्यवहार की 'गाइड' की तरह हैं जो उसे बताती हैं कि कहां, किस प्रकार व्यवहार करना है। रीतियों से ही व्यवहार तथा सम्बन्धों में निश्चितता आती है। प्रत्येक समाज में मनुष्य के खान-पान, वेशभूषा, सामान्य व्यवहारों और सांस्कृतिक क्रियाकलापों से सम्बन्धित बहुत सी रीतियाँ होती है। इन्हीं रीतियों के अनुसार समाज ने स्त्रियों, पुरूषों अथवा बच्चों को कुछ विशेष अधिकार और कर्तव्य सौंपे हैं। बच्चों का पालन-पोषण, विवाह और सामाजिक आयोजनों के द्वारा इन रीति-रिवाजों को समाज की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तथा इसी तरह अनवरत पीढ़ीयों तक बनाये रखना समाज का महत्वपूर्ण कार्य है।

2. कार्य-प्रणालियों का निर्धारण करना: सभी समाजों में कार्य को करने के कुछ तौर-तरीके होते हैं, तथा उन्हीं तौर-तरीकों के माध्यम से समाज का कार्य है कि वह व्यक्ति को अपनी इच्छाओं या लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रोत्साहित करे। एक व्यक्ति को अपनी आयु, लिंग, सामाजिक स्थिति तथा विशेष स्थिति में दूसरे व्यक्तियों से किस तरह सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, इसका निर्धारण समाज कुछ विशेष कार्य-प्रणालियों के द्वारा करता है। कार्य-प्रणालियों को ही हम व्यवहार के नियम अथवा संस्था कहते हैं। समाज अपने सदस्यों से यह

अपेक्षा करता है कि वे मान्यता प्राप्त कार्य प्रणालियों के द्वारा ही अपने इच्छाओं की पूर्ति करें। जैसे आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नौकरी या रोजगार करे, न कि चोरी आदि। समाज ने प्रत्येक कार्य को करने के लिए परिवार, पड़ोस, विद्यालय, कार्यालय तथा विभिन्न संगठनों के माध्यम से कुछ निश्चित कार्य-प्रणाली बनायी है जिनके आधार पर व्यक्ति विभिन्न अवसरों पर विभिन्न व्यक्तियों से कुछ विशेष प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करता है।

3. अधिकारों की व्यवस्था करना: समाज ने सभी क्षेत्रों में सामाजिक सम्बन्धों को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए अधिकारों की एक निश्चित व्यवस्था की है। समाज में सभी व्यक्तियों के अधिकार समान नहीं होते हैं। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक जैसे सभी क्षेत्रों में कुछ व्यक्तियों को दूसरो की तुलना में अधिक अधिकार मिले होते हैं। जैसे घर में पिता, ग्राम में मुखिया, राज्य में सरकार आदि। समाज का कार्य है कि वह व्यक्ति के व्यवहार को अनुशासित तथा सामाजिक मर्यादाओं के अनुरूप रखे तथा ऐसा न करने वालों को दंडित करे। समाज की यह अधिकार-व्यवस्था ही व्यक्तियों को नियमबद्ध रूप से अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की शिक्षा देती है।

4. समाज के सदस्यों के बीच पारस्परिक सहयोग को बनाये रखना: समाज की निरन्तरता तथा स्थायित्व को बनाये रखने के लिए समाज के सदस्यों के बीच पारस्परिक सहयोग को बनाये रखना समाज का महत्वपूर्ण कार्य है क्योंकि कोई भी व्यक्ति बिना सहयोग के अपनी सभी आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर सकता। यह पारस्परिक सहयोग जितना सुदृढ़ होगा, समाज उतना ही स्वस्थ होगा।

5. मानव व्यवहार का नियंत्रण करना: किसी भी समाज के अस्तित्व के लिए यह अनिवार्य है कि उसके सदस्यों का व्यवहार नियंत्रित तथा मर्यादित हो। विचलन, अपराध, अव्यवस्था फैल जाने पर समाज का स्वरूप नष्ट नहीं होता है। समाज इसके लिए प्रशस्तियों (पुरस्कार और दंड) की विस्तृत व्यवस्था रखता है। अनियंत्रित व्यवहार करने पर मिलने वाले दण्ड के भय से सदस्य कानूनों, अनुशासन के नियमों, धार्मिक कर्तव्यों, नैतिक नियमों, प्रथाओं, परम्पराओं अथवा लोकाचारों के अन्तर्गत नियंत्रित व्यवहार करते हैं। समाज में नियंत्रण औपचारिक (कानून, प्रशासन, पुलिस, पंचायत आदि) तथा अनौपचारिक (परम्पराएं, प्रथाएं, रीति-रिवाज, धर्म आदि) रूप से होता है। समय की आवश्यकता के अनुसार व्यवहारों पर नियन्त्रण रखने वाले इन अभिकरणों की प्रकृति जैसे-जैसे बदलती जाती है, समाज के रूप में भी परिवर्तन देखने को मिलता है।

6. समूह एवं समाजिक विभागों को एक-दूसरे से जोड़े रखना: समाज का निर्माण अखण्ड रूप से न होकर कई विभागों तथा उप-विभागों से होता है। परिवार, पड़ोस, ग्राम, नगर, प्रांत, राष्ट्र सभी समाज के समूह तथा विभाग हैं जो आपस में जुड़े होते हैं और इनकी सम्बद्धता से ही समाज बनता है। समाज इन्हें एक-दूसरे से जोड़कर अपने स्वरूप को सुदृढ़ तथा संगठित रखता है।

7. सदस्यों को स्वतन्त्रता प्रदान करना: समाज मात्र मानव व्यवहार को नियंत्रित ही नहीं करता है बल्कि वह अपने सदस्यों को आवश्यकतानुसार नए रीति-रिवाज विकसित करने की पर्याप्त स्वतंत्रता भी देता है जिससे समय के साथ परिवर्तनीयता से समाज और अधिक सुदृढ़ होता है। विचारों की स्वत्रन्त्रता के बिना हमारे सामाजिक सम्बन्ध कभी भी व्यवस्थित नहीं रह सकते। इसका अर्थ है कि सामाजिक नियन्त्रण और सामाजिक स्वतन्त्रता एक-दूसरे के पूरक हैं।

समाज के ये विभिन्न कार्य समय की माँग के अनुसार बदलते रहते हैं। यही कारण है कि समाज एक जटिल और परिवर्तशील व्यवस्था है जो अपने सदस्यों के मध्य सदैव सामाजिक संबध स्थापित करने के लिए प्रयासरत रहती है।

आगे बढ़ने से पूर्व आइए कुछ प्रश्नों को हल करने का प्रयत्न करें।

अभ्यास प्रश्न 2

---

1. सही/गलत बताइए।
   a. समाज से तात्पर्य सम्बन्धों की व्यवस्था से है।
   b. समाज द्वारा मानव व्यवहार को नियत्रित नहीं किया जा सकता है।
   c. समाज में सम्बन्ध बनाए रखने के लिए पारस्परिक जागरूकता का होना आवश्यक है।

बोध प्रश्नों के पश्चात् आइए हम पूर्व बाल्यावस्था तथा मध्य बाल्यावस्था में बालक की अभिवृद्धि एवं विकास में परिवार की भूमिका के बारे में जानें।

7.5 पूर्व तथा मध्य बाल्यावस्था में बालक की अभिवृद्धि एवं विकास में परिवार, विद्यालय तथा समुदाय की भूमिका

स्किनर के अनुसार, “विकास प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति में कोई परिवर्तन आकस्मिक नहीं होता”। सोरेन्सन के अनुसार, “वृद्धि से आशय

शरीर तथा शारीरिक अंगों में भार तथा आकार की दृष्टि से वृद्धि होना है, ऐसी वृद्धि जिसका मापन सम्भव हो”। विकास की प्रक्रिया पर कोई एक घटक प्रभाव नहीं डालता, कोई एक अभिकरण उत्तरदायी नहीं होता, अपितु अनेक कारक तथा अनेक अभिकरण बालक के विकास में योग देते हैं। घर, परिवार, विद्यालय तथा समुदाय भी ऐसे ही अभिकरण हैं जिनका उपयोग बालक के विकास में मनोवैज्ञानिक रूप से होना चाहिये। यदि ये तीनों ही अभिकरण साथ मिल कर बालक के विकास में स्वस्थ रूप से सहयोग करें तो निश्चय ही बालक का सर्वांगीण विकास हो पाएगा और यह कार्य शैशवावस्था से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिए। यद्यपि बालक का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, संज्ञानात्मक विकास शैशवावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है परन्तु उसमें परिपक्वता बाल्यावस्था से आती है एवं बालक को एक सामाजिक प्राणी बनाने के लिए उत्तरदायी उसका सामाजिक विकास भी इसी अवस्था से होना प्रारम्भ होता है। बाल्यावस्था में होने वाला सामाजिक विकास ही किशोरावस्था, युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के लिए नींव का कार्य करता है। इसलिए बाल्यावस्था में परिवार, विद्यालय तथा समुदाय की भूमिका और अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि बाल्यावस्था ही वह पहली अवस्था है जिसमें बालक सर्वप्रथम अपने परिवार से बाहर के सदस्यों से मिलता है एवं विद्यालय तथा समुदाय के सम्पर्क में आकर अपने सामाजिक दायरे में वद्धि करता है। बाल्यावस्था में विद्यालय, परिवार, तथा समुदाय का प्रभाव बालक के विकास के प्रत्येक पक्षों पर पड़ता है। जरशील्ड ने विद्यालय की महत्ता को परिभाषित किया है कि “परिवार के बाद विद्यालय ही सम्भवतः वह दूसरा स्थान है, जो व्यक्ति की उन भावनाओं पर आधारभूत प्रभाव डालता है, जिनका निर्माण वह अपने और दूसरों के प्रति करता है”।

7.5.1 बालक के विकास में परिवार की भूमिका

परिवार बालक के विकास की प्रथम पाठशाला है। यह बालक का केवल पालन-पोषण एवं उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति ही नहीं करता अपितु उसमें निहित योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास भी करता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य, बालक के विकास में योगदान देता है। यंग एवं मैक के अनुसार, “परिवार सबसे पुराना और मौलिक मानव समूह है। पारिवारिक ढाँचे का विशिष्ट रूप एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न हो सकता है पर सभी जगह परिवार के मुख्य कार्य समान होते हैं जैसे बच्चे का पालन करना, उसे समाज की संस्कृति से परिचित कराना, उसका सामाजीकरण करना”।

परिवार या घर समाज की न्यूनतम समूह इकाई है। इसमें पति-पत्नी, बच्चे तथा अन्य आश्रित व्यक्ति सम्मिलित हैं। इसका मुख्य आधार रक्त सम्बन्ध हैं। शारीरिक व सामाजिक आवश्यकताओं के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी परिवार की आवश्यकता होती है।

बालक को परिवार से अतुलनीय और स्वाभाविक प्यार, वात्सल्य, सुरक्षा की भावना, स्नेह आदि प्राप्त होता है। ये सभी बातें बालक के व्यक्तित्व विकास हेतु आवश्यक हैं। प्रत्येक समय पर परिवार में बालक को मानसिक, शारीरिक और आर्थिक सुरक्षा मिलती है जिससे वह अपने आपको सुरक्षित महसूस करता है। मानव प्रकृति के अनुसार बच्चे का पालन पोषण परिवार द्वारा ही होता है। इसका कारण है कि माता-पिता के अन्दर जो स्वाभाविक प्रेम एवं स्नेह की भावना है वह अन्य किसी में नहीं होती है। कोई उसे किसी प्रकार की कोई हानि न पहुँचाए इस बात की पूरी देख-रेख परिवार में होती है। परिवार के द्वारा मिलने वाले इस स्नेह एवं प्रेम के द्वारा ही बालक अपनी सारी चिन्ताओं और थकानों से मुक्ति पा लेता है।

मांटेसरी ने बालकों के विकास के लिये परिवार के वातावरण तथा परिस्थिति को महत्वपूर्ण माना है। रेमन्ट के अनुसार, "घर ही वह स्थान है जहाँ वे महान गुण उत्पन्न होते हैं जिनकी सामान्य विशेषता सहानुभूति है। घर में घनिष्ठ प्रेम की भावनाओं का विकास होता है। यहीं बालक, उदारता-अनुदारता, निस्वार्थ और स्वार्थ, न्याय और अन्याय, सत्य और असत्य, परिश्रम और आलस्य में अन्तर सीखता है"। पूर्व तथा मध्य बाल्यावस्था में परिवार ही एक महत्वपूर्ण अभिकरण है जिसका बालक के जीवन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। परिवार की बालक के विकास में निम्नलिखित भूमिका होती है:

- परिवार बालक की प्रथम पाठशाला है। परिवार से ही बालक को वह सब गुण सीखता है जिनकी पाठशाला में आवश्यकता होती है।
- बालकों को घर/परिवार से ही नैतिकता एवं सामाजिकता का प्रशिक्षण मिलता है।
- बालक में घर से ही समायोजन तथा अनुकूलन के गुण विकसित होते हैं।
- सामाजिक व्यवहार का अनुकरण करना भी बालक परिवार से ही सीखता है।
- बालक में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित करने में परिवार अथवा घर का योगदान प्रमुख है।
- परिवार बालक में उत्तम आदतों एवं चरित्र के विकास में योग देता है और यह चरित्र का विकास बालकों मे माता-पिता तथा अन्य सदस्यों के आपसी व्यवहार के कारण होता है। यह व्यवहार बालकों के मन पर बाल्यावस्था से ही अमिट छाप छोड़ता है।
- परिवार में रहकर ही बालक में रूचि-अभिरूचि तथा प्रवृत्तियों का विकास होता है तथा उसमें आत्म-सम्मान की भावना विकसित होती है।

- परिवार में बालक की वैयक्तिकता विकसित होती है जिससे उसकी इच्छा शक्ति प्रबल होती है।
- परिवार से ही बालक को दूसरों के प्रति प्रेम एवं सहानुभूति की शिक्षा मिलती है तथा बालक में स्थायी भावों एवं अच्छी आदतों का निर्माण होता है।
- परिवार से ही बालक में सहयोग, परोपकार, सहिष्णुता, कर्तव्य पालन के गुण विकसित होते हैं।
- परिवार से ही बालक को समाज में व्यवहार करने की शिक्षा मिलती है।

7.5.2 बालक के विकास में विद्यालय की भूमिका

बालक सर्वप्रथम बाल्यावस्था में ही विद्यालय जाना प्रारम्भ करता है। इसीलिए बाल्यावस्था प्राथमिक स्कूल की आयु भी कहलाती है जहाँ न केवल उसका मानसिक विकास होता है वरन् सामाजिक एवं नैतिक विकास भी होता है। अतः पूर्व एवं मध्य बाल्यावस्था में बालक के विकास में विद्यालय की भूमिका जानना हमारे लिए अति आवश्यक है कि किस प्रकार विद्यालय बालक के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान देता है। जब बालक घर से निकलकर विद्यालय में प्रवेश करता है तो वह एक पृथक प्रकार के वातावरण से मिलता है। यहाँ न तो माता-पिता का प्यार-दुलार होता है, न ही प्रत्येक प्रकार की स्वतंत्रता। विद्यालय में वह स्कूल के साथी, शिक्षक, शिक्षण के घण्टे, विद्यालय का अनुशासन, विद्यालय का वातावरण सभी के साथ अनुकूलन करने का प्रयास करता है। इसके अतिरिक्त विद्यालय में वह विभिन्न प्रकार की शिक्षायें प्राप्त करता है जिससे उसका मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास होता है। विद्यालय के अच्छे शिक्षक व विद्यार्थी उसके लिए रोल मॉडल बन जाते हैं जो उसकी समाजीकरण की प्रक्रिया में सहायक होते हैं। बच्चे को विद्यालय में अपने से भिन्न आयु तथा लिंग के बच्चों व सदस्यों के साथ समायोजन करना पड़ता है। फलस्वरूप उसकी समायोजनशीलता बढ़ती है। बालक के शिक्षक व विद्यालय की आशाओं के अनुरूप व्यवहार में परिवर्तन करने तथा आशाओं के अनुरूप व्यवहार करने से सकारात्मक परिवर्तन बालक के समाजीकरण का आधार बनते हैं। शिक्षण संस्थायें न केवल बच्चों की समायोजनशीलता को बढ़ाती हैं वरन् परिस्थिति के अनुसार व्यवहार करने का प्रशिक्षण भी देती हैं। बालकों की रचनात्मकता का विकास भी शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से होता है। इस दृष्टि से विद्यालय, बालक के विकास में अनेक प्रकार से अपना योगदान देता है:

- विद्यालय बालकों को जीवन की जटिल परिस्थितियों का सामना करने के योग्य बनाता है।

- विद्यालय सामाजिक-सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करता है तथा शिक्षा एवं बालकों के माध्यम से उसे एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में हस्तान्तरित करता है।
- विद्यालय, बालकों को घर तथा संसार से जोड़ने का कार्य करते हैं। जहाँ घर में वह केवल अपने परिवार जन से सम्पर्क साधता है वहीं विद्यालय में वह अपने जैसे अनेक बालकों के सम्पर्क में आकर अपने सामाजिक दायरे की सीमा में वृद्धि करता है।
- बालक के व्यक्तित्व का सामंजस्यपूर्ण विकास करने में विद्यालय का महत्त्वपूर्ण योगदान है।
- विद्यालय में समाज के आदर्शों, विचारधाराओं का प्रसार होता है एवं विद्यालय शिक्षित नागरिकों के निर्माण में सहयोग देता है।
- मनोविज्ञान ने बालक के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव लाने में सहायता दी है, इसलिये विद्यालय सूचना के बजाए, बालक को अनुभव प्रदान करते हैं। विद्यालय ही बालक को उच्च आदर्शों तथा लक्ष्यों की प्रेरणा देकर महान व्यक्तियों एवं पुरूषों के विचारों एवं उनके जीवन परिचय, कार्य एवं सिद्धान्तों से परिचित कराकर बालक के नैतिक गुणों के विकास में योगदान देता है।
- आधुनिक विद्यालयों ने बालकों का दृष्टिकोण विश्व के सन्दर्भ में विकसित किया है।
- आज के विद्यालय बालक के विकास के लिये विशेष वातावरण प्रवास का प्रयास करते हैं। अच्छे वातावरण में बालकों में अच्छे भावों का सृजन होता है। उनके व्यक्तित्व में सन्तुलन उत्पन्न होता है।
- आज विद्यालय सामुदायिक केन्द्र के रूप में विकसित हो रहे हैं। यह एक लघु समाज का रूप धारण कर चुके हैं जो बालक के विकास के प्रत्येक पक्ष पर व्यापक प्रभाव डाल रहे हैं।
- टॉमसन के अनुसार विद्यालय, बालकों का मानसिक, चारित्रिक, सामुदायिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय विकास करता है तथा स्वस्थ रहने का प्रशिक्षण देता है।

7.5.3 बालक के विकास में समुदाय की भूमिका

बाल्यावस्था में बालक के चतुर्मुखी विकास के लिए समुदाय की भूमिका अपना एक विशेष स्थान रखती है। समुदाय बालक के समाजीकरण में ही योगदान नहीं देता है वरन् उसके

मानसिक विकास में भी अपना योगदान देता है। बाल्यावस्था में ही बालक सर्वप्रथम अपने समाज एवं समुदाय से परिचित होता है। मैकाइवर एवं पेज के शब्दों में, ‘‘जब कभी छोटे या बड़े समूह के सदस्य इस प्रकार रहते हैं कि वे किसी विशिष्ट उद्देश्य में भाग नहीं लेते वरन् जीवन की समस्त भौतिक दशाओं में भाग लेते हैं, तब हम ऐसे समूह को समुदाय कहते हैं’’। समुदाय अपने आदर्शों तथा मान्यताओं के अनुसार बालक के व्यवहार का निर्माण करता है तथा बालक को सामाजिक प्राणी बनाता है। विलियम ईगर के अनुसार, ‘‘मनुष्य स्वभाव से सामाजिक प्राणी है, इसलिये उसने वर्षों के अनुभव से यह सीख लिया है कि व्यक्तित्व तथा सामूहिक क्रियाओं का विकास समुदाय द्वारा ही सर्वोत्तम रूप से किया जा सकता है’’। समुदाय का प्रभाव बालक के विकास में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। बालक को इस अवस्था में जिस तरह के आचार-व्यवहार समुदाय से प्राप्त होते हैं वह उसी का अनुकरण करने लगता है और उसी के अनुसार उनके सामाजिक व्यवहार निधारित होते हैं। यह देखा गया है कि अधिकांशतः बच्चों की अपराधी प्रवृत्ति पर उनके आस-पड़ोस के वातावरण का प्रभाव पड़ता है। मलिन व गन्दी बस्तियों में रहने वाले बच्चे अधिकांशतः चोर, जुआरी, शराबी तथा आपराधिक प्रवृत्ति के होते हैं। शिक्षित व सुसंस्कृत आस-पड़ोस से बालक अनेक अच्छी बातें सीखता है। समुदाय बालक के विकास पर निम्नलिखित रूप से अपना योगदान देता है-

- समुदाय का प्रत्यक्ष प्रभाव बालक के सामाजिक विकास पर पड़ता है। यहाँ उसका समाजीकरण होता है। अधिकार तथा कर्तव्यों के ज्ञान के साथ-साथ स्वतन्त्रता के अनुशासन की जानकारी भी बालक को समुदाय से ही प्राप्त होती है जिसकी शुरूआत ही बाल्यावस्था से होती है।
- समुदाय बालक पर राजनीतिक प्रभाव भी डालता है। विद्यालयों में छात्र संघों के माध्यम से बालक को राजनीतिक संरचना का अनुभव मिलता है तथा समाज के राजनीतिक वातावरण के लिये वे तैयार हो जाते हैं।
- समुदाय की आर्थिक स्थिति भी बालक के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है, इसका प्रत्यक्ष प्रभाव विद्यालयों तथा बालकों पर प्रकट होता है। सम्पन्न समुदायों में विद्यालय आकर्षक होते हैं और उनमें पढ़ने वाले छात्रों को सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है। अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का स्तर, जिला परिषदों के विद्यालयों से इसी कारण भिन्न होता है जिसका प्रत्यक्ष अन्तर कभी-कभी बालक के व्यक्तित्व पर भी दिखने लगता है।

- प्रत्येक समुदाय की अपनी संस्कृति होती है और उसका प्रभाव वहाँ के विद्यालयों तथा छात्रों पर पड़ना स्वभाविक है। इसी कारण बालक के बोलचाल, उसके व्यवहार, शब्दावली तथा शैली में समुदाय का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पड़ता है।
- समुदाय से ही बालक को धार्मिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा मिलती है एवं बालक का व्यवहार अनेक स्वरूप धारण करता है जिसकी नींव बाल्यावस्था में ही रखी जाती है।
- समुदायों में यदि एक से अधिक सम्प्रदायों के लोग रहते हैं और उनमें समरसता नहीं है तो ऐसे समाज के विद्यालयों का वातावरण दूषित हो जाता है और यह दूषित वातावरण बालक के विकास को मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि रूप से प्रभावित करता है। क्योंकि बाल्यावस्था में ही बालक सर्वप्रथम समुदाय के सम्पर्क में आता है इसलिए सभी बातों एवं विचारों से अनभिज्ञ बालक उसी विचारधारा का अनुसरण करने लगता है जो उसको उसके समुदाय से प्राप्त होती हैं।
- समुदाय बालक में विद्यालय तथा शिक्षा की सार्वभौमिक माँग की पूर्ति करते हैं। बालकों में शिक्षा के प्रथम प्रसार के लिये विद्यालयों की माँग बढ़ रही है और समुदाय उसे पूरा कर रहे हैं।
- समुदाय का प्रभाव माध्यमिक शिक्षा पर भी देखा जाता है। देश में माध्यमिक शिक्षा के विकास में समुदायों का योगदान प्रमुख है क्योंकि बालक बाल्यावस्था की प्राथमिक शिक्षा की नींव से ही किशोरावस्था की माध्यमिक शिक्षा में कदम रखता है और उसे परिपक्व रूप देता है।
- भारतीय समुदायों ने उच्च शिक्षा के विकास पर भी बल दिया है। आज उच्च शिक्षा स्थानीय आवश्यकताओं तथा साधनों के अनुसार दी जाती है जो बालक के जीवन को विशेष रूप से प्रभावित करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार, विद्यालय तथा समुदाय बालक के विकास को पृथक-पृथक नहीं बल्कि समन्वित रूप से प्रभावित करते हैं एवं बालक के विकास में समग्र रूप से अपना योगदान देते हैं। तीनों अभिकरणों की यह समन्यवित योगदान की सबसे पहली कड़ी बाल्यावस्था से ही प्रारम्भ होती है। इसलिए इनका प्रभाव बालक के जीवन में बाल्यावस्था से ही दृष्टिगोचर हो जाता है, जो जीवन पर्यन्त बालक के साथ रहता है तथा उसके जीवन को एक नई दिशा देता है।

इकाई के अंत में अब हम कुछ अभ्यास प्रश्नों को हल करेंगे।

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. वर्तमान में विद्यालय .... का रूप धारण कर चुके हैं।
   b. बालक के विकास पर .... का प्रभाव पड़ता है।
   c. बालक के विकास में परिवार .... के रूप में जाना जाता है।

7.6 सारांश

परिवार तथा समाज न सिर्फ बाल्यावस्था में ही बालक के विकास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं अपितु यह जीवन पर्यन्त बालक के विकास को प्रभावित करते हैं। जीवन की सभी अवस्थाओं शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था में यह व्यक्ति के साथ-साथ चलते रहते हैं। इनके बिना व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहाँ बाल्यावस्था में परिवार बालक के लिये प्राथमिक पाठशाला के रूप में कार्य करता है, वहीं समाज उसके समाजीकरण की प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बाल्यावस्था ही वह अवस्था है जहाँ बालक सर्वप्रथम परिवार से बाहर के सदस्यों से मिलता है। बालक सर्वप्रथम विद्यालय में प्रवेश लेकर अपने साथ के अन्य बालकों के साथ मिलकर अपनी टोली बनाता है, जिस कारण बाल्यावस्था को टोली आयु भी कहा जाता है और यह टोली बालक को सामाजिक, मानसिक, सांस्कृतिक रूप से प्रभावित करती है। बालक इस टोली के प्रभाव में आकर ही अच्छी एवं बुरी आदतें सीखता है। इसलिए पूर्व तथा मध्य बाल्यावस्था में बालक को मर्यादित व्यवहार सिखाने, उसका चरित्र निर्माण करने तथा उसमें विभिन्न कौशलों एवं योग्यताओं का विकास करने के लिए परिवार, विद्यालय तथा समुदाय मिलकर समन्वित रूप से बालक को एक स्वस्थ एवं सहयोगिक वातावरण उपलब्ध कराकर अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

7.7 परिभाषिक शब्दावली

- **समाज:** वह क्षेत्र है जहाँ प्राणी विभिन्न अंतर्क्रियाएं करता है।
- **पर्यावरण:** बालक के चारों ओर का वातावरण।
- **अभिवृत्ति:** बालक में परिमाणात्मक परिवर्तन की अभिव्यक्ति।

- **विकास:** बालक में गुणात्मक तथा परिमाणात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. परिवार
   b. संरचनात्मक एवं कार्यात्मक
   c. समाजीकरण

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही/गलत बताइए।
   a. सत्य
   b. असत्य
   c. सत्य

अभ्यास प्रश्न 3

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. लघु समाज
   b. परिवार, विद्यालय तथा समुदाय
   c. प्रथम पाठशाला

7.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. धर्मेन्द्र, समाजशास्त्र। Tata McGraw Hill Education Private Limited
2. पी0 डी0 पाठक, शिक्षा मनोविज्ञान। विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. नीता अग्रवाल, बाल विकास। अग्रवाल पब्लिकेशन्स।
4. एम0 एल0 गुप्ता, डी0 डी0 शर्मा, भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएं। साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा।

5. जी0 के0 अग्रवाल, समाजशास्त्र। साहित्य भवन पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्राइवेट लिमिटेड, आगरा।
6. प्रो0 मथुरेश्वर पारीक, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परिवार को परिभाषित कीजिये तथा इसके कार्यों की विवेचना कीजिए।
2. बालक के विकास में परिवार एवं समुदाय की भूमिका का वर्णन कीजिए।
3. विद्यालय की परिभाषा दीजिये। विद्यालय बालक के सर्वांगीण विकास में किस प्रकार योगदान देता है, समझाइए।

खण्ड 3: किशोरावस्था

इकाई 8: किशोरावस्था में शारीरिक विकास

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 किशोरावस्था
    8.3.1 किशोरावस्था का अर्थ एवं परिभाषा
    8.3.2 किशोरावस्था की उप अवस्थाएं
    8.3.3 किशोरावस्था की विशेषताएं
8.4 किशोरावस्था में शारीरिक विकास
    8.4.1 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
8.5 किशोरावस्था में स्वास्थ एवं पोषण
    8.5.1 किशोरावस्था में आहार को प्रभावित करने वाले कारक
8.6 किशोरावस्था में व्यवहारिक परिवर्तन
8.7 सारांश
8.8 परिभाषिक शब्दावली
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

जन्म से लेकर एक वयस्क व्यक्ति बनने तक मानव जीवन की अनेक अवस्थाओं से गुजरता है। इन्हीं अवस्थाओं में से सबसे महत्वपूर्ण अवस्था “किशोरावस्था” है जो उत्तर बाल्यावस्था की समाप्ति से प्रारम्भ होती है। किशोरावस्था अंग्रेजी भाषा के एडोलेसेन्स (Adolescence) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। ये शब्द लैटिन भाषा के शब्द “adolescere” से बना है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है “परिपक्वता की ओर बढ़ना”। अत: यह कहा जा सकता है कि किशोरावस्था यौवनारम्भ से परिपक्वता, विकास एवं शारीरिक वृद्धि का काल है।

किशोरावस्था को “वृद्धि की आयु” भी कहा जा सकता है। यह अवधि लगभग 8-10 वर्ष की होती है। इसमें बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास सम्पूर्ण होते हैं। जन्म के बाद वृद्धि में तीव्रता की दृष्टि से किशोरावस्था में शारीरिक वृद्धि सबसे तीव्र गति से

होती है। यह तीव्रता बालकों के लिये 13-16 वर्ष तथा बालिकाओं के लिये 11-14 वर्ष के बीच मानी जाती है। सामान्यतया बालिकाओं की किशोरावस्था बालकों में किशोरावस्था से एक वर्ष पूर्व प्रारम्भ हो जाती है।

जीवन चक्र की प्रत्येक अवस्था में कोई न कोई समस्या होती है। बाल्यावस्था में समस्याओं को सुलझाने में बालक के माता पिता, शिक्षक सभी उसकी सहायता के लिये होते हैं परन्तु किशोरावस्था में किशोर न तो बालक की श्रेणी में आता है और न ही वयस्क की श्रेणी में। अत: बालक के अभिभावक यह उम्मीद करते हैं कि विभिन्न परिस्थितियों में बालक अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करे। इस प्रकार किशोरावस्था किशोर के लिये समस्यात्मक होती है। किशोरावस्था, विकास की सभी अवस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है। जीवन की सभी स्थितियाँ इस अवस्था में बनाये गये सन्तुलन पर निर्भर होती हैं। अत: इस अवस्था का ज्ञान होना परम आवश्यक है।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- किशोरावस्था की उप अवस्थाओं तथा इन उपअवस्थाओं में होने महत्वपूर्ण परिवर्तनों को समझ पाएंगे;
- किशोरावस्था की विशेषताओं व समस्याओं को समझ कर वास्तविक जीवन में इसका प्रयोग कर पाएंगे; तथा
- किशोरावस्था को समझ कर किशोरों से अपेक्षित व्यवहार की उम्मीद करेंगे।

8.3 किशोरावस्था

13-18 वर्ष की आयु की अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं। किशोरावस्था का महत्व मानव जीवन चक्र की सभी अवस्थाओं में सबसे अलग है क्योंकि इस अवस्था के प्रारम्भ होने से ही बालक में अनेक प्रकार के परिवर्तन होने लगते हैं तथा बालक परिपक्वता प्राप्त कर लेता है। स्टेनले हॉल ने इस समय को “बल, तनाव एवं विरोध की अवस्था” माना है। किशोरावस्था में किशोर लगभग पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेता है तथा यौन परिपक्वता प्राप्त कर लेता है। लड़कों में मुख्यत: दाढ़ी तथा मूँछें निकलने लगती हैं, आवाज भारी तथा कर्कश हो जाती है। लड़कियों में मासिक धर्म प्रारम्भ हो जाते हैं तथा कूल्हे एवं वक्षस्थल उभरने लगते हैं। किशोरावस्था में किशोर यदि बालक की भाँति व्यवहार करता है तो उसे अभिभावक द्वारा

कहा जाता है कि "अभी तक बच्चों की भाँति व्यवहार कर रहे हो, अब तुम बड़े हो गये हो"। इसी प्रकार किशोर यदि वयस्कों के मध्य बैठकर किसी बात को सुने या अपने विचार रखे तो उसे पुन: अभिवावक द्वारा यह कहा जाता है कि "अभी तुम इतने बड़े नहीं हुए कि तुम बड़ों के बीच ऐसी बातें करो"। फलस्वरूप बालक स्वयं अपनी पहचान के प्रति असमंजस की स्थिति में रहता है। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसे क्रांति की अवस्था तो कुछ ने वय: संधि की अवस्था कहा है। इस अवस्था को "Teen Age" भी कहा जाता है।

किशोरावस्था को जीवन की सबसे सुन्दर, स्वर्णिम एवं सबसे जटिल अवस्था कहा जाता है क्योंकि इसी अवस्था में प्रमुख शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं जिस कारण किशोरियाँ स्वयं को स्त्री तथा किशोर स्वयं को पुरूष के रूप में देखते हैं। किशोर अब पहले कि अपेक्षा स्वयं पर अधिक ध्यान देते हैं। वे इस समय विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण महसूस करते हैं तथा यह आकर्षण उन्हें प्रेम सम्बन्धों तक ले जाता है। अत: अभिवावक एवं शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वे किशोर का सही मार्ग दर्शन कर उन्हें सही जानकारी प्रदान करें।

8.3.1 किशोरावस्था का अर्थ एवं परिभाषा

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को विभिन्न शैलियों में अपने-अपने तरीके से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नानुसार हैं:

डार्थी रेजर्स के अनुसार, "किशोरावस्था एक काल (अवधि) की अपेक्षा ऐसी प्रक्रिया है जिसमें समाज में प्रभावशाली ढंग से सहभागिता निभाने के लिये अभिवृत्तियों एवं विश्वासों को अर्जित किया जाता है"।

कुल्हज के अनुसार, "किशोरावस्था बाल्यकाल और प्रौढ़ावस्था के मध्य परिवर्तन का काल है"।

आइजनेक के अनुसार, "किशोरावस्था वय: संधि के बाद की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति में आत्म उत्तरदायित्व का स्थापन होता है"।

जर्सिल्ड के अनुसार, "किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें एक विकासशील व्यक्ति बाल्यावस्था से एक परिपक्व अवस्था की ओर बढ़ता है"।

काइमाइकेल के अनुसार, "किशोरावस्था जीवन का वह समय है जहाँ से एक अपरिपक्व व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक विकास एक चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। दैहिक

दृष्टि से एक व्यक्ति तब किशोर बनता है जब उसमें वय: संधि अवस्था प्रारम्भ होती है तथा उसमें संतान उत्पन्न करने की योग्यता प्रारम्भ हो जाती है”।

यद्यपि किशोरावस्था को विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने मतानुसार परिभाषित किया है परन्तु सभी परिभाषाओं में किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन तथा पूर्ण परिपक्वता प्राप्त करने की बात कही गयी है।

8.3.2 किशोरावस्था की उप अवस्थाएं

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन की दृष्टि से किशोरावस्था को तीन उप अवस्थाओं में बाँटा है।

- पूर्व किशोरावस्था (Early Adolescence; 13-14 वर्ष)
- मध्य किशोरावस्था (Middle Adolescence; 14-18 वर्ष)
- उत्तर किशोरावस्था (Late Adolescence; 19-21 वर्ष)

1. पूर्व किशोरावस्था: पूर्व किशोरावस्था में निम्न विकास दृष्टिगत होते हैं:

शारीरिक विकास: यौवनारम्भ; शरीर के बाल बढ़ते हैं, अधिक मात्रा में पसीना आना तथा बालों और त्वचा में तेल का उत्पादन बढ़ना।

संज्ञानात्मक विकास: अमूर्त विचार के लिए बढ़ती क्षमता, इस अवस्था में किशोर ज्यादातर भविष्य की अपेक्षा वर्तमान में अधिक रुचि रखते हैं।

सामाजिक-भावनात्मक विकास: पहचान की भावना के लिए संघर्ष, अपने शरीर के लिए अधिक चिंतित रहना, सामान्य होने के बारे में चिंता करना, माता-पिता के साथ विरोधाभास, सहकर्मी समूह का बढ़ता प्रभाव, स्वतंत्रता के लिए इच्छा तथा एकांत में अधिक रुचि।

2. मध्य किशोरावस्था: मध्य किशोरावस्था में निम्न विकास दृष्टिगत होते हैं:

शारीरिक विकास: यौवन का पूर्ण होना, लड़कियों में शारीरिक विकास धीमा हो जाता है जबकि लड़कों में जारी रहता है।

संज्ञानात्मक विकास: अमूर्त विचार हेतु क्षमता में निरंतर वृद्धि, लक्ष्य निर्धारित करने की अधिक क्षमता, नैतिक तर्क में रुचि।

सामाजिक-भावनात्मक विकास: तीव्र आत्म-भागीदारी, उच्च उम्मीदों और खराब आत्म-अवधारणा के बीच बदलाव, बदलते शरीर के लिए निरंतर समायोजन, सामान्य होने के बारे में चिंता करना, प्रेम और उत्साह की भावनाओं का विकास।

3. उत्तर किशोरावस्था: उत्तर किशोरावस्था में निम्न विकास दृष्टिगत होते हैं:

शारीरिक विकास: युवा महिला के रूप में किशोरियों का विकास पूर्ण होना परंतु किशोरों का युवा पुरुष के रूप में ऊंचाई, वजन, मांसपेशियों और शरीर के बालों का विकास जारी रहता है।

संज्ञानात्मक विकास: विचारों के माध्यम से सोचने की क्षमता, आंतरिक अनुभवों का परीक्षण करना, भविष्य के लिए बढ़ती चिंता।

सामाजिक-भावनात्मक विकास: पहचान बनाने की मजबूत भावना, भावनात्मक स्थिरता में वृद्धि, दूसरों के लिए चिंता करना, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता में वृद्धि, सहकर्मियों के साथ सम्बंधों का महत्वपूर्ण होना, अधिक महत्वपूर्ण तथा गहरे सम्बंधों का विकास।

8.3.3 किशोरावस्था की विशेषताएं

किशोरावस्था की सम्पूर्ण अवधि में कुछ महत्वपूर्ण विशेषतायें पाई जाती हैं जो निम्नलिखित हैं:

1. किशोरावस्था परिवर्तन की अवस्था है: किशोरावस्था को परिवर्तन की अवस्था भी कहा जाता है क्योंकि इसी अवस्था में बालक में महत्वपूर्ण परिवर्तन (शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक आदि) तीव्रता से होते हैं। किशोर अपनी पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेते हैं, उनकी दाढ़ी-मूछें निकल जाती हैं, आवाज में भारीपन भी आ जाता है। किशोरियों में मासिक धर्म का आरम्भ हो जाता है तथा उनके वक्ष आकार में वृद्धि हो जाती है।

2. किशोरावस्था मानसिक विकास की अवस्था है: शारीरिक विकास के साथ-साथ किशोर का मानसिक विकास भी होता है जिससे किशोर किसी समस्या के समाधान तर्क, चिन्तन, कलपना व निर्णय लेने में सक्षम होता है। अपने कार्य में वह किसी प्रकार का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते हैं।

3. किशोरावस्था समस्या बाहुल्य की अवस्था है: किशोरावस्था में किशोर के जीवन में तीव्रता से परिवर्तन होता है जो उसके लिये बिल्कुल नया होता है। अचानक हो रहे परिवर्तनों से बालक सामंजस्य नहीं बिठा पाता है। साथ ही माता-पिता, शिक्षकों, मित्रों आदि की अपेक्षाओं के अनुकूल किशोर को व्यवहार करना पड़ता है।

4. किशोरावस्था कल्पना बाहुल्य की अवस्था है: तीव्र परिवर्तनों के कारण किशोर स्वयं को पहले से भिन्न प्रतीत करते हैं। वे स्वयं को वयस्क महसूस करते हैं। किशोर अपना अधिकतम समय कल्पना करने में व्यतीत करते हैं। अपने काल्पनिक संसार में वो उन सब बातों को साकार करते हैं जिन्हें वास्तविकता में साकार करना मुश्किल होता है। जिन समस्याओं का समाधान उसके लिये मुश्किल होता है, अपनी कल्पनाओं में किशोर उस समस्या का समाधान अपने तरीके से करते हैं।

5. किशोरावस्था सांवेगिक अस्थिरता की अवस्था है: किशोर अपने सभी कार्यों को स्वयं करना चाहते हैं। किसी अन्य व्यक्ति का हस्तक्षेप उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं आता है। महत्वकाक्षाओं के पूरा होने पर किशोर अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसके विपरीत विषम परिस्थितियों में वे निराश तथा खुद को असहाय महसूस करते हैं। इस अवस्था में संवेग अस्थिर होते हैं। इसका प्रमुख कारण हारमोन परिवर्तन,तीव्र विकास, ज्ञान का अभाव व अभिभावक से मार्गदर्शन की कमी होती है।

6. किशोरावस्था कामुकता जागरण की अवस्था है: किशोरावस्था में किशोर के शारीरिक वृद्धि व हार्मोन परिवर्तन के कारण प्रजनन अंगों में परिपक्वता आती है तथा वे अपने विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होते हैं। विपरीत परिस्थतियों में किशोर इस आकर्षण के कारण गलत कार्य भी कर सकते हैं। अत: अभिवावक, शिक्षक के द्वारा उनका सही मार्गदर्शन किया जाना चाहिये ताकि वे किसी गलत कार्य अथवा गलत प्रवृत्ति का शिकार ना हों।

7. किशोरावस्था तनाव की अवस्था है: किशोरावस्था में भिन्न-भिन्न परिवर्तन (मानसिक, शारीरिक, हार्मोन सम्बंधी, संवेगात्मक) होते हैं जो किशोर के लिए बिल्कुल नए होते हैं। साथ ही अभिभावकों द्वारा जिम्मेदारियों, व्यवसाय का चयन आदि अति महत्वपूर्ण अपेक्षाएं किशोरों से की जाती हैं जिस कारण वह अपेक्षाकृत अधिक तनाव में रहने लगता है।

8. किशोरावस्था आत्मनिर्भरता प्रारम्भ होने का समय है: जन्म से ही जीवन की प्रत्येक अवस्था में कोई न कोई समस्या अवश्य होती है परन्तु बाल्यावस्था तक बालक की समस्याओं का समाधान करने के लिये अभिवावक, शिक्षक आदि तत्पर होते हैं क्योंकि बालक उन पर निर्भर होता है। किशोरावस्था को परिपक्वता की ओर ले जाने की अवस्था कहा गया है क्योंकि किशोर में जीवन के लिये आवश्यक परिवर्तन इसी काल से प्रारम्भ होते हैं।

9. किशोरावस्था घनिष्ठ व्यक्तिगत मित्रता की अवस्था है: किशोरावस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं जिस कारण वह तनाव में रहता है। वह अपने इस तनाव का कारण किसी को

भी बताने में हिचकिचाहट महसूस करता है। वह अपने मित्रों को ही अपनी समस्याओं से अवगत कराता है क्योंकि इस अवधि में किशोर, मित्रों को अभिवावक की अपेक्षा अधिक महत्व एवं प्राथमिकता देते हैं। इस अवस्था में किशोर के एक या दो साथी किशोरों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं।

10. किशोरावस्था व्यवसाय चयन की अवस्था है: किशोरावस्था में किशोर महत्वपूर्ण निर्णय लेना प्रारम्भ कर लेते हैं। अपने आगामी भविष्य में वह किस प्रकार के व्यवसाय में कार्य करना चाहते हैं इससे सम्बन्धित निर्णय भी वह स्वयं की रुचि एवं क्षमता को ध्यान में रखते हुये स्वयं लेते हैं। हांलाकि अभिवावक व शिक्षक का मार्गदर्शन इस समय महत्वपूर्ण होता है। इस समय व्यवसाय चयन से सम्बन्धित निर्णय आवश्यक होता है क्योंकि उसी के आधार पर किशोर को अपने विषय का भी चयन करना होता है।

8.4 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

मानव का शारीरिक विकास गर्भाधन की प्रक्रिया के बाद से ही प्रारम्भ हो जाता है तथा जीवन चक्र की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं शारीरिक विकास की गति भी भिन्न रहती है। अध्ययनों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि जीवन चक्र में शारीरिक विकास जन्म से दो वर्ष के मध्य तीव्र गति से होता है। बाल्यावस्था में शारीरिक विकास की गति मन्द होती है परन्तु किशोरावस्था में विकास की गति पुन: तीव्र होती है।

शारीरिक विकास मनुष्य के अन्य सभी प्रकार के विकास जैसे मानसिक विकास, सामाजिक विकास तथा संवेगात्मक विकास को भी प्रभावित करता है। शारीरिक रूप से कमजोर तथा अस्वस्थ व्यक्ति स्वभाव से चिड़चिड़े हो जाते हैं जिससे उनके समूह में कम मित्र होते हैं। अत: उनका सामाजिक विकास भी प्रभावित होता है। शारीरिक विकास के अन्तर्गत शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का भी अध्ययन किया जाता है।

किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तन निम्नलिखित हैं:

1. किशोरावस्था में लम्बाई में वृद्धि: शरीर की लम्बाई में वृद्धि की दृष्टि से यह अवस्था अत्यन्त महतवपूर्ण है। पूर्व किशोरावस्था में लड़कियों की लम्बाई, लड़कों की तुलना में अधिक होती है परन्तु मासिक धर्म शुरू होने के बाद लड़कियों की लम्बाई में वृद्धि की गति थोड़ी धीमी होती है। किशोरावस्था की समाप्ति तक लड़के समान आयु की लड़कियों से अधिक लम्बे हो जाते हैं। अत: लड़कियाँ 15-16 वर्ष में अपनी पूर्ण लम्बाई प्राप्त कर लेती हैं जबकि लड़के 18-20 वर्ष की आयु में भी बढ़ते रहते हैं। लम्बाई की वृद्धि पर पिट्यूटरी ग्रन्थि

के स्राव का प्रभाव पड़ता है। जिन किशोरों में यह कम स्रावित होता है उनकी लम्बाई में वृद्धि कम होती है।

2. किशोरावस्था में भार में वृद्धि: किशोरों में पहले लम्बाई में वृद्धि होती है, उसके पश्चात भार में वृद्धि होती है। इस अवस्था में भार में वृद्धि, हड्डियों तथा मांसपेशियों में विकास के कारण होती है। पूर्व किशोरावस्था में लड़कियों का भार समान आयु के लड़कों से अधिक होता है परन्तु बाद में लड़कों का भार लड़कियों से अधिक हो जाता है।

3. हृदय एवं रक्त वाहिनियों का विकास: किशोरावस्था की समाप्ति तक किशोरों के हृदय तथा रक्त वाहिनियों का विकास पूर्ण हो जाता है। किशोरावस्था की समाप्ति तक हृदय का भार जन्म भार की अपेक्षा 12 गुना हो जाता है। रक्त वाहिनियों की वृद्धि शरीर के अनुपात में होती है।

4. किशोरावस्था में विभिन्न शारीरिक अंगों का विकास: इस अवस्था के प्रारम्भ में शरीर के विभिन्न अंगों का विकास प्रारम्भ होता है तथा इस अवस्था की समाप्ति तक लगभग सभी अंग विकसित हो जाते हैं। शरीर की हड्डियाँ, मांसपेशियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ, फेफड़े आदि जन्म की अपेक्षा 20 गुना अधिक बढ़ जाते हैं।

इस अवस्था की समाप्ति तक अस्थियाँ जन्म की अपेक्षा कम हो जाती हैं। जन्म के समय 270 अस्थियाँ होती हैं जो 14 वर्ष की आयु में बढ़कर 350 हो जाती हैं और प्रौढ़ावस्था में घटकर 206 रह जाती हैं क्योंकि छोटी एवं कोमल अस्थियाँ आपस में मिलकर दृढ़ हो जाती हैं।

5. किशोरावस्था में त्वचा में परिवर्तन: किशोरावस्था में किशोरों के चेहरे में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। किशोरियों की त्वचा मुलायम तथा चिकनी हो जाती है तथा उसमें गुलाबीपन लिये हुये निखार आ जाता है और किशोरों के चेहरे पर दाढ़ी, मूंछें आ जाने के कारण उनकी त्वचा मोटी हो जाती है।

6. किशोरावस्था में मांसपेशियों का विकास: लड़कियों में मांसपेशियों का विकास, लड़कों की तुलना में जल्दी होता है। लड़कियों में मांसपेशियाँ 16-17 वर्ष की आयु तक पूर्ण रूप से विकसित हो जाती हैं तथा लड़कों में 20-21 वर्ष तक की आयु में मांसपेशियाँ पूर्ण रूप से विकसित होती हैं। मांसपेशियों के विकास से किशोरों का शरीर सुडौल प्रतीत होता है।

7. किशोरावस्था में आवाज में परिवर्तन: किशोरावस्था में लड़कों तथा लड़कियों की आवाज में बहुत परिवर्तन पाया जाता है। सामान्यत: लड़कों की आवाज में कर्कशता एवं भारीपन तथा लड़कियों की आवाज कोमल तथा सुरीली हो जाती है।

8. किशोरावस्था में स्थायी दाँत: किशोरावस्था में दाँत भी स्थायी हो जाते हैं। सामान्यत: 13 वर्ष की आयु तक बालकों के लगभग 27-28 दाँत निकल आते हैं। शेष चार दाँतों का विकास समान रूप से नहीं होता है। इसमें व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है।

9. किशोरावस्था में यौन सम्बन्धी शारीरिक परिवर्तन: किशोरावस्था में यौन अंगों का विकास तीव्र गति से होता है। अध्ययन की दृष्टि से इन्हें दो भागों में बाँटा गया है।

1) यौन सम्बन्धी मुख्य परिवर्तन

2) यौन सम्बन्धी गौण परिवर्तन

1) यौन सम्बन्धी मुख्य परिवर्तन: प्रजनन अंगों का विकास ही किशोरावस्था में यौन सम्बन्धी मुख्य परिवर्तन है। इस अवस्था के प्रारम्भ से इन अंगों का विकास प्रारम्भ हो जाता है। जननांगों के आकार में वृद्धि होने के साथ इसमें परिपक्वता भी आ जाती है। किशोर के अण्डकोषों से वीर्य तथा किशोरियों की डिम्ब ग्रन्थियों से अण्डाणु का निर्माण होने लगता है जिस कारण उनमें सन्तानोत्पत्ति की क्षमता आ जाती है।

किशोरियों में मासिक धर्म का प्रारम्भ: मासिक धर्म, किशोरियों में यौन अंगों की परिपक्वता का संकेत होता है। मासिक धर्म का आना एक प्राकृतिक क्रिया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि अब किशोरियों में प्रजनन शक्ति का विकास हो गया है। पहली बार मासिक धर्म का आना किशोरियों में घबराहट पैदा कर सकता है। अत: इससे सम्बन्धित जानकारी से किशोरियों को पूर्व से ही अवगत कराया जाना चाहिये ताकि वे इस स्थिति में न घबराएं तथा स्वच्छ तरीके से मासिक धर्म से सम्बन्धी समस्याओं का सामना कर सकें।

2) यौन सम्बन्धी गौण परिवर्तन: बालकों में दाढ़ी-मूंछें निकलना, बगलों तथा गुप्तागों में बालों का निकलना, आवाज में परिवर्तन, कंधों का चौड़ा होना तथा चेहरे पर वयस्कता आना आदि यौन सम्बन्धी गौण परिवर्तन हैं। बालिकाओं में स्तनों का विकास, चेहरे में कोमलता व आर्कषण, आवाज में मधुरता आदि लक्षण यौन सम्बन्धी गौण परिवर्तन हैं।

8.4.1 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

शरीर का विकास एक स्वभाविक प्रक्रिया है लेकिन अनेक कारक हैं जिनके बिना शरीर का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। प्राय: देखा जाता है कि सन्तुलित आहार की कमी, भार में कमी, रक्ताल्पता, चोट आदि के कारण शरीर का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। शरीर के विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं:

1. वंशानुक्रम: ये वे कारक हैं जो व्यक्ति को गर्भ धारण के समय अपने माता पिता से प्राप्त होते हैं। विभिन्न शारीरिक गुण जैसे शरीर की लम्बाई, रंग, लैंगिक परिपक्वता, शारीरिक गठन, शारीरिक विकृतियाँ, बुद्धि आदि का निर्धारण वंशानुक्रम द्वारा ही होता है। अत: बालक के माता पिता के शारीरिक विकास के अनुसार ही अनकी सन्तानों का भी शारीरिक विकास होता है।

2. आहार: गर्भावस्था की अवधि में माँ को दिया जाने वाला संतुलित एवं पौष्टिक आहार गर्भस्थ शिशु का शारीरिक विकास सामान्य तरीके से करता है जिससे होने वाले शिशु का स्वस्थ रूप से जन्म हो सके। उसी प्रकार जन्म के बाद भी शिशु के उचित शारीरिक विकास के लिए शिशु का आहार पौष्टिक तत्वों से युक्त होना आवश्यक है। सन्तुलित आहार के अभाव में शिशु अनेक रोग से ग्रस्त हो जाते हैं जिस कारण उनका शारीरिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। किशोरावस्था में आने पर भी वे अनेक प्रकार के कुपोषण जनित बीमारियों का शिकार होते हैं फलस्वरूप उनका शारीरिक विकास सभी क्षेत्रों में पूर्ण रूप से नहीं हो पाता है। किशोरावस्था के महत्वूपर्ण शारीरिक परिवर्तन किशोर द्वारा लिये जाने वाले आहार पर भी निर्भर करते हैं। अत: किशोर द्वारा सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार लिया जाना चाहिए।

3. भौतिक वातावरण: वे सभी वस्तु तथा दशायें जो प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से शारीरिक विकास को प्रभावित करती हैं जैसे जलवायु, स्थान, धूप, हवा, पानी, प्रकाश की व्यवस्था आदि भौतिक वातावरण कहलाते हैं। इनकी सही स्थिति को प्राप्त होने से शारीरिक विकास समुचित तरीके से हो पाता है।

4. रोग: रोग, शारीरिक विकास को सबसे ज्यादा प्रभावित करते हैं। यदि किशोर गम्भीर रूप से किसी रोग से ग्रस्त हो, तो उसका शारीरिक विकास समुचित तरीके से नहीं हो पायेगा। गम्भीर तथा दीर्घकालीन रोग शारीरिक विकास में अत्यधिक रूकावट पैदा करते हैं। विभिन्न प्रकार के रोग व उनकी प्रकृति निम्नलिखित हैं:

अ) सामान्य बिमारियाँ: बदलते मौसम अथवा वातावरण के कारण होने वाले रोग जैसे सर्दी, जुकाम, दस्त, उल्टी, ज्वर आदि रोग सामान्य रोगों की श्रेणी में आते हैं। समय से उपचार मिलने पर ये शीघ्रता से ठीक हो जाते हैं।

ब) दीर्घकालीन रोग: कुछ रोग ऐसे होते हैं जो शरीर में काफी लम्बे समय रहते हैं। ये रोग व्यक्ति के शारीरिक विकास को अवरूद्ध करते हैं तथा रोग के समाप्ति के बाद भी उस रोग का प्रभाव शारीरिक अंगों पर बना रहता है।

5. शारीरिक विकृतियाँ: किसी भी प्रकार के शारीरिक दोष का प्रभाव शारीरिक विकास के साथ-साथ किशोर के मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास पर भी पड़ता है। वाणी दोष, श्रवण एवं दृष्टि दोष, हड्डियों में दोष, तुतलाना, स्नायु प्रणाली में दोष आदि शारीरिक दोष हो सकते हैं।

6. दुर्घटनायें: दुर्घटनायें सदैव शारीरिक विकास प्रभावित करती हैं। दुर्घटना का प्रभाव उसकी प्रकृति पर निर्भर होता है। दुर्घटनाओं के फलस्वरूप शरीर में स्थायी व अस्थायी दोष जैसे अस्थि विकृति, अस्थि का टूटना, दाँत का टूटना, आँख, नाक आदि का विकृत हो जाना उत्पन्न हो सकता है जिससे शारीरिक विकास प्रभावित होता है।

7. पारिवारिक वातावरण: परिवार का आन्तरिक वातावरण भी शारीरिक विकास को प्रभावित करता है। जिन परिवारों का आन्तरिक वातावरण खुशहाल एवं सौहार्दपूर्ण होता है वहाँ किशोर स्वयं को सुरक्षित महसूस करते हैं जिससे वे अपना कार्य भय रहित होकर करते हैं। इसके विपरीत जिस परिवार का वातावरण कलहपूर्ण होता है वहाँ किशोर अपने आप को असुरक्षित महसूस करते हैं जिससे उनका शारीरिक विकास प्रभावित होता है।

8. आर्थिक स्तर: जिन परिवारों का आर्थिक स्तर अच्छा/उच्च होता है वे अपने किशोर की भौतिक अथवा मूलभूत आवश्यकताओं जैसे संतुलित आहार, वस्त्र, घर आदि की पूर्ति भली-भाँति करते हैं जिससे उनका शारीरिक विकास अच्छा होता है। इसके विपरीत निम्न आर्थिक स्थिति वाले परिवार अपने किशोर की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं कर पाते, जिससे उनका शारीरिक विकास प्रभावित होता है।

शारीरिक विकास का किशोरावस्था में अत्यधिक महत्व है क्योंकि इसी अवस्था में किशोर के शरीर में महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तनके कारण उनके शरीर में परिपक्वता आती है। इसलिये आवश्यक है कि शारीरिक विकास पर ध्यान दियाजाये एवं जिन कारक से शारीरिक विकास में अवरोध उत्पन्न होता है उन पर नियन्त्रण रखा जाये क्योंकि शारीरिक विकास ही सर्वांगीण विकास का आधार है। अत: शारीरिक विकास के महत्व को ध्यान में रखकर प्रत्येक स्थिति में शरीर को स्वस्थ बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
    a. किशोरावस्था का प्रारम्भ किशोरों की अपेक्षा किशोरियों में एक वर्ष पहले हो जाता है।

b. किशोरियों में मासिक धर्म उनमें लैगिक परिपक्वता का संकेत है।

c. लम्बाई में वृद्धि पर पिट्यूटरी ग्रन्थि के स्राव का प्रभाव पड़ता है।

d. किशोरों में पहले भार में वृद्धि होती है, उसके पश्चात लम्बाई में वृद्धि होती है।

8.5 किशोरावस्था में स्वास्थ्य एवं पोषण

किशोरावस्था में किशोर का सर्वांगीण विकास होता है। शारीरिक विकास के साथ साथ किशोरों का मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक विकास भी होता है। किशोर अपने निर्णय, अपना व्यवहार आदि समाज के अनुकूल करने का प्रयत्न करता है, साथ ही उसे अपने संवेगों पर नियन्त्रण करना आ जाता है।

किशोरावस्था में शरीर में वृद्धि के कारण किशोरों की पौष्टिक तत्वों की माँग बढ़ जाती है। किशोर के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास इसी अवस्था में होता है। इस कारण उनके पोषण पर ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है। आइए, किशोरों की पोषण आवश्यकताओं पर चर्चा करें।

1. ऊर्जा: किशोरावस्था में किशोरों की लम्बाई तथा भार में वृद्धि तथा क्रियाशीलता एवं आधारीय चयापचय दर (बी0एम0आर) में वृद्धि हो जाती है। इसी कारण उनमें कैलोरी (ऊर्जा) की माँग बढ़ जाती है। किशोरियों की अपेक्षा किशोर अधिक क्रियाशील खेल, जैसे व्यायाम, तैरना, साइकिल चलाना आदि करते हैं, इस कारण किशोर की कैलोरी मांग अधिक होती है।

2. प्रोटीन: किशोरावस्था में शारीरिक विकास अपनी चरम सीमा पर होता है। शारीरिक विकास में मांसपेशियों के निर्माण, कोशिकाओं की टूट फूट में मरम्मत, नये कोशों एवं तन्तुओं के निर्माण तथा हार्मोन्स के निर्माण होते हैं। चूँकि प्रोटीन का प्रमुख कार्य शरीर का निर्माण करना है, अत: किशोरावस्था में प्रोटीन युक्त भोज्य पदार्थ दिए जाने चाहिये।

3. वसा: वसा का मुख्य कार्य ऊर्जा देना है। परंतु इस बात का ध्यान देना आवश्यक है कि अधिक वसा का सेवन करने से मोटापा हो सकता है। अत: आहार में वसा की संतुलित मात्रा होनी चाहिए।

4. लौह लवण: लौह लवण का प्रमुख कार्य शरीर में ऑक्सीजन की पूर्ति करना है। ऑक्सीजन की आवश्यकता शरीर में क्षेत्रफल के अनुकूल होती है। अत: किशोरों का शरीर, किशोरियों से क्षेत्रफल में अधिक होने के कारण उनमें लौह लवण की मात्रा अधिक होती है। लौह लवण प्रोटीन यौगिक के साथ मिलकर हीमोग्लोबिन बनाता है। लौह तत्व के अभाव में

रक्त का निर्माण नहीं हो पाता, फलत: रक्ताल्पता रोग हो जाता है। किशोरियों में मासिक धर्म के दौरान अधिक रक्त निकलने के कारण रक्ताल्पता रोग हो सकता है अत: लौह लवण युक्त भोज्य पदार्थों को आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

5. विटामिन: विटामिन को जीवन सत्व भी कहते हैं। ये हमारे शरीर में रक्षात्मक कार्य करते हैं। विटामिन के अभाव में शरीर अनेक रोग से ग्रस्त हो जाता है। किशोरों को विटामिन युक्त आहार दिया जाना चाहिये।

6. कैल्शियम: हड्डियों तथा दाँतों के विकास के लिये कैल्शियम अत्यन्त आवश्यक है। चूँकि किशोरावस्था में शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है इसलिये अस्थियों के निर्माण हेतु कैल्शियम को भी आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिये।

8.5.1 किशोरावस्था में आहार को प्रभावित करने वाले कारक

इस अवस्था में किशोरों की खान पान सम्बन्धित आदतें बदल जाती हैं। किशोरावस्था में किशोर, मित्रों को अधिक महत्व देते हैं। अत: मित्रों के साथ खान पान करते समय ऐसे भोज्य पदार्थों का चयन करते हैं जिनमें पौष्टिक तत्वों की मात्रा अक्सर कम होती है। निम्न कारक किशोरावस्था में आहार को प्रभावित करते हैं:

- **अशिक्षा:** पोषण सम्बन्धी अज्ञानता किशोरों के आहार को प्रभावित करती है।
- **तनाव:** यौन परिवर्तन के कारण किशोर तनाव में रहते हैं क्योंकि वे अपनी समस्याओं को बताने में शर्माते हैं। इन शारीरिक परिवर्तनों के कारण किशोरों को मानसिक तनाव हो जाता है। तनाव का भूख पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। कुछ किशोर तनाव में खाना छोड़ देते हैं और कुछ किशोर तनाव की अवस्था में अत्यधिक भोजन खाते हैं।
- **भोजन सम्बन्धी भ्रन्तियाँ:** कुछ किशोरों को भोजन सम्बन्धी गलत भ्रन्तियाँ होती हैं कि वे भोजन खाने से मोटे हो जाएंगे। इस धारणा के कारण वे, विशेषकर किशोरियाँ डायटिंग, या भूख से कम भोजन खाना आदि करती हैं जो उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

अत: उक्त सभी कारकों से किशोरों का आहार प्रभावित होता है जो उनके शारीरिक विकास पर प्रभाव डालता है। किशोरों को पोषण सम्बन्धी उचित जानकारी दी जानी चाहिये जिससे वे सन्तुलित आहार ग्रहण करें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।

   a. किशोरियों की अपेक्षा किशोर में ……………………….. की माँग अधिक होती है।

   b. अस्थि तथा दाँतों के विकास के लिये .... आवश्यक है।

   c. लौह लवण की कमी से .... रोग हो जाता है।

8.6 किशोरावस्था में व्यवहारिक परिवर्तन

किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक परिवर्तनों के फलस्वरूप व्यवहारिक परिवर्तन भी होता है। पूर्व किशोरावस्था में किशोर को बालक न समझकर उससे एक वयस्क की भाँति व्यवहार की अपेक्षा की जाती है। उत्तर किशोरावस्था के आने तक किशोर एक वयस्क की भाँति व्यवहार करते हैं। उन्हें अपने माता पिता का अपने कार्यों में हस्तक्षेप पसन्द नहीं होता है। वह अपना अधिकतम समय अपने मित्रों के साथ व्यतीत करना पसन्द करते हैं। किशोरावस्था में निम्न व्यवहारिक परिवर्तन देखे जाते हैं:

1. **स्वतन्त्रता:** किशोरावस्था में शारीरिक, सामाजिक, संवेगात्मक परिपक्वता के कारण वह एक वयस्क की भाँति व्यवहार करता है। वे अपने सभी निर्णय स्वयं लेता है जिस कारण उसमें स्वतंत्र रहने की प्रवृति आ जाती है। अपने किसी भी कार्य को वे स्वतंत्रता पूर्वक करते हैं तथा किसी अन्य व्यक्ति का हस्तक्षेप उन्हें पसन्द नहीं होता है।
2. **पहचान:** किशोरावस्था से किशोर में परिपक्वता आ जाती है जिस कारण वह अपनी एक अलग पहचान बनाना चाहते हैं जिससे उन्हें समाज में प्रतिष्ठा मिले और अपनी इसी पहचान को बनाने का वह हर सम्भव प्रयास करते हैं। इसलिये वे अपने को अन्य लोगों से भिन्न एवं उच्च दर्शाने का प्रयास करते हैं।
3. **घनिष्ठता:** किशोरावस्था में अनेक महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तन होते हैं। ये परिवर्तन किशोर के लिये एकदम नये होते हैं। किशोर अपने आप में हो रहे इन शारीरिक परिवर्तनों के बारे में सिर्फ अपने मित्रों को बताते हैं क्योंकि अन्य लोगों को बताने में किशोर को हिचकिचाहट महसूस होती है। अत: यह वह समय होता है जब किशोर अपनी समस्या अपने मित्र को बताता है और उसके किशोर मित्र को भी समान समस्या होती है। फलस्वरूप वह अपने मित्र से इस सम्बन्ध में खुलकर वार्तालाप करते हैं। इस प्रकार

किशोर का अपने मित्र से घनिष्ठ सम्बन्ध बन जाता है। घनिष्ठ मित्रता किशोरावस्था की विशेषता है।

4. **समूहों का निर्माण:** किशोरावस्था में किशोर अपने माता पिता की अपेक्षा अपने मित्रों के साथ समय बिताना अधिक पसंद करते हैं। किशोर किशोरियाँ अपने लिंग के अनुसार अपने समूहों का निर्माण करते हैं तथा किशोरों की समस्त गतिविधियाँ अपने समूह द्वारा निर्धारित होती हैं।
5. **बौद्धिकता:** किशोरावस्था में किशोर समाज के अनुकूल व्यवहार, स्वयं के लिये महत्वपूर्ण निर्णय, आत्मनिर्भरता आदि से अपनी बौद्धिकता का परिचय देते हैं।

8.7 सारांश

किशोरावस्था जीवन की सबसे जटिल अवस्था है। यह बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य की अवस्था है जो बालक को वयस्क बनाती है। इस अवस्था में किशोर में महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक परिवर्तन होते हैं। किशोरावस्था में किशोरों में शारीरिक परिवर्तन प्रारम्भ हो जाते हैं। तीव्र शारीरिक परिवर्तनों के फलस्वरूप किशोर तनाव में रहते हैं क्योंकि ये परिवर्तन उनके जीवन में नये तथा अचानक से होते हैं। अत: किशोरावस्था को "तीव्र वृद्धि की अवस्था", "तूफान की अवस्था" तथा "तनाव की अवस्था" भी कहा जाता है। इन परिवर्तनों के कारण वे अपने संवेगों पर नियन्त्रण नहीं कर पाते हैं। इसलिये इस अवस्था को संवेगिक अस्थिरता की अवस्था भी कहते हैं। उत्तर किशोरावस्था तक किशोर में समस्त महत्वपूर्ण परिवर्तन होने के साथ किशोर शारीरिक रूप से परिपक्व हो जाते हैं तथा उनमें संतानोत्पत्ति की क्षमता भी आ जाती है। इन सभी परिवर्तनों के लिए महत्वपूर्ण है कि किशोर अपने भोजन में संतुलित आहार का उपयोग करें क्योंकि शारीरिक वृद्धि के लिये भोजन में पर्याप्त पोषक तत्वों का होना अनिवार्य है। इन पोषक तत्वों की कमी से किशोर की शारीरिक वृद्धि में रूकावट आ सकती है। कुछ कारकों जैसे अशिक्षा, अज्ञानता, तनाव आदि के कारण किशोर संतुलित आहार से वंचित रहते हैं। अत: अभिभावकों को संतुलित आहार के महत्व का ज्ञान होना चाहिए जिससे वे किशोरों को संतुलित आहार दे सकें। अभिभावकों तथा शिक्षक का कर्तव्य है कि वे किशोरों को किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों तथा तनाव से अवगत कराकर उनका मार्गदर्शन करें जिससे वे शारीरिक परिवर्तनों से होने वाली जटिलताओं का सामना कर सकें।

8.8 परिभाषिक शब्दावली

- **वंशानुक्रम:** वे विशेषतायें जो व्यक्ति को अपने माता पिता द्वारा जन्म से प्राप्त होती हैं।
- **संतुलित आहार:** वह आहार जो शरीर में ऊर्जा, निर्माणात्मक तत्वों तथा सुरक्षात्मक तत्वों की पूर्ति करता है।
- **सामाजिक विकास:** सामाजीकरण की वह प्रक्रिया जिसके द्वारा व्यक्ति समाज में मान्यता प्राप्त व्यवहार के अनुकूल कार्य करता है।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सत्य अथवा असत्य बताइए।
   a. सत्य
   b. सत्य
   c. सत्य
   d. असत्य

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
   a. ऊर्जा/कैलोरी
   b. कैल्शियम
   c. रक्ताल्पता

8.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 वीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास। उन्नीसवाँ संस्करण, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. डॉ0 रीना खनूजा, आहार एवं पोषण विज्ञान, चौथा संस्करण, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

3. प्रो0 मधुरेश्वर पारीक, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. डॉ0 आशा पारीक, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
5. भाई योगेन्द्र जीत, बाल विकास की रूप रेखा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. डॉ0 वृन्दा सिंह , मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध। नौवां संस्करण 2015, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किशोरावस्था का अर्थ, उपअवस्थाओं को विस्तार में समझाइये।
2. किशोरावस्था की विशेषताओं की व्याख्या कीजिये।
3. किशोरावस्था में शारीरिक विकास पर विस्तृत चर्चा कीजिये।
4. किशोरावस्था में आहार तथा पोषण के महत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई 9: किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 संवेग
    9.3.1 संवेग का अर्थ एवं संवेग की विभिन्न परिभाषाएं
    9.3.2 संवेग की दशाएं
    9.3.3 संवेगों का महत्व
9.4 किशोरावस्था में संवेग
    9.4.1 किशोरों में पाये जाने वाले मुख्य संवेग
    9.4.2 किशोरावस्था में संवेगात्मक परिपक्वता
    9.4.3 संवेगों पर नियंत्रण
    9.4.4 किशोरों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व
9.5 किशोरावस्था में किशोरों की मुख्य रुचियाँ
9.6 किशोरावस्था में समायोजन
9.7 सारांश
9.8 पारिभाषिक शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

व्यक्ति के जीवन में संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था में किशोरों में विभिन्न महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं और इन्हीं परिवर्तनों के कारण किशोर परिपक्वता को प्राप्त कर लेते हैं। किशोरावस्था में किशोरों के भावी व्यक्तित्व की आधारशिला तथा उसके विकास में संवेगों का प्रभाव पड़ता है। जैसा कि पूर्व के अध्याय में हम जान चुके हैं कि किशोरावस्था संवेगात्मक अस्थिरता की अवस्था है। किशोरों में होने वाले परिवर्तन उनके लिये बिल्कुल नए होते हैं तथा यह परिवर्तन इतने तीव्र होते हैं कि किशोर उन्हें समझने में खुद को अहसहाय महसूस करते हैं। यदि इस अवस्था में किशोरों की आलोचना की जाती है या उनसे असमानता

का व्यवहार किया जाता है तो उनमें तीव्र क्षणिक संवेग उत्पन्न होते हैं जिस कारण वे आवेश में आकर अप्रिय कार्य करते हैं तथा क्रोध में चीजों का विनाश करने लगते हैं। ये संवेग इतने तीव्र और क्षणिक होते हैं कि किशोर आत्महत्या तक कर लेते हैं। अत: अभिभावक व शिक्षकों को संवेगों के महत्व को समझकर किशोरों में संवेगात्मक स्थिरता लाने का प्रत्यन करना चाहिये।

किशोरावस्था में किशोर स्वयं की समस्याओं के लिये दूसरों पर निर्भर न रहकर स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान का प्रयास करते हैं। वे अपने कार्यों में किसी का भी हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते हैं। अपने निर्णय स्वयं लेने लगते हैं। इसी समय किशोरों की रुचियों में परिवर्तन आने लगता है। सामान्यत: अभिभावक यह उम्मीद करते हैं कि बालक सभी कार्य स्वयं कर, हर समस्या का समाधान कर लेगा परन्तु यह भ्रान्ति गलत है। किशोर अभी इतना परिपक्व नहीं होता है कि वह अपनी सभी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके। समाधान न होने पर किशोर में तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अत: अभिभावक व शिक्षकों का यह दायित्व है कि किशोरों के समायोजन में सहायता करें।

9.2 उद्देश्य

किशोरावस्था में संवेगात्मक विकास होना अत्यन्त जटिल एवं महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात शिक्षार्थी:

- किशोरावस्था में संवेगों की स्थिति तथा महत्व को समझ पाएंगे;
- विभिन्न क्षेत्रों में किशोरों की रुचियों के बारे में समझ पाएंगे; तथा
- किशोरावस्था में समायोजन के मुख्य क्षेत्रों की जानकारी प्राप्त कर, उनकी समायोजन में उपयुक्त सहायता कर सकेंगे।

9.3 संवेग

सभी मानवों के जीवन में सुख दु:ख अनुभूति होती है। सामान्य अवस्था में ये अनुभूतियाँ भाव कहलाती हैं परन्तु इन्हीं अनुभूतियों का प्रबल रूप धारण करने पर ये संवेग कहलाते हैं। यह अनुभूतियाँ आन्तरिक होती हैं परन्तु जब हम अनुभूतियों को अपने क्रिया कलापों, शारीरिक व्यवहार के द्वारा व्यक्त करते हैं, तो वह संवेग कहलाते हैं। संवेग, शरीर की उत्तेजित अवस्था है जिसमें शारीरिक तथा मानसिक दोनों क्रियाएं सम्मिलित रहती हैं। संवेग एक साधारण तथा सरल मानसिक अवस्था नहीं बल्कि यह एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है। विभिन्न

परिस्थितियों में किसी भी व्यक्ति का व्यवहार क्रोध, स्नेह, प्रेम, भाव, सुख, दु:ख, ईर्ष्या, विरोध आदि से प्रभावित होता है। संवेगों की दशा में व्यक्ति के शरीर में उत्तेजना आ जाती है। जैसे क्रोध आने पर क्रोधित व्यक्ति के माथे पर सिलवटें आना, क्रोध में हाथ उठाना, भय होने पर व्यक्ति का अपने स्थान से भाग जाना या बेहोश हो जाना। कभी कभी कोई संवेग इतना तीव्र व उग्र होता है कि कई व्यक्ति आत्मदाह या ऐसे कार्य कर देते हैं जिन्हें शरीर की शान्त अवस्था में सोचा भी नहीं जा सकता है।

प्रत्येक प्राणी अपने जीवन में संवेगों का प्रदर्शन अपने व्यवहार के माध्यम से करता है। संवेग ही व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। संवेग ही व्यक्ति के समाजिक समायोजन को भी प्रभावित करते हैं। संवेगों की स्थिति यदि सामान्य ना हो तो विभिन्न घातक बिमारियाँ जैसे तनाव, मानसिक रोग आदि हो जाते हैं।

9.3.1 संवेग का अर्थ एवं संवेग की विभिन्न परिभाषाएं

"संवेग" अंग्रेजी भाषा के इमोशन (Emotion) शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है और इमोशन (Emotion) शब्द लैटिन भाषा के "इमोवेरे" (*Emovere*) शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है 'उत्तेजित करना'। अत: जब भी संवेगों की उत्पत्ति होती है तो शरीर उत्तेजित हो जाता है। व्यक्ति इस अवस्था में कोई भी असामान्य व्यवहार करता है। इसी उत्तेजना के कारण व्यक्ति में शारीरिक व मानसिक व्यवहारों का प्रदर्शन होता है जैसे हृदय की धड़कन बढ़ना, आँखों से आंसू निकलना, चेहरे के हाव भाव में परिवर्तन होना। किसी भी भाव का उग्र रूप संवेग है। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने संवेग को विभिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं:

जरसील्ड के अनुसार, "संवेग शब्द किसी भी प्रकार से आवेश में आने, भड़क उठने अथवा उत्तेजित होने की दशा को सूचित करता है"।

वेबस्टर के अनुसार, "संवेग व्यक्ति विशेष की वह उत्तेजित अवस्था है, जो विभिन्न कारकों का प्रतिनिधित्व करती है"।

पी0टी0यंग के अनुसार, "संवेग की अवस्था में व्यक्ति के व्यवहारों में तीव्र क्षुब्धता उत्पन्न हो जाती है, जिसका प्रभाव उस व्यक्ति पर पूर्ण रूप से पड़ता है"।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार, "संवेग शरीर की जटिल अवस्था है जिसमें श्वास, नाड़ी, ग्रन्थियों, मानसिक दशा, उत्तेजना, अवरोध आदि की अनुभूति पर प्रभाव पड़ता है और मांसपेशियाँ तदानुसार निर्धारित व्यवहार करने लगती हैं"।

उपरोक्त परिभाषाओं से संवेगों के सम्बंध में निम्न बातें स्पष्ट होती हैं कि:

संवेग	शारीरिक व मानसिक दशाओं में परिवर्तन लाते हैं।
	बाह्य व आन्तरिक उद्दीपक के फलस्वरूप प्रकट होते हैं।
	तंत्रिका तंत्र एवं मस्तिष्क को प्रभावित करते हैं।
	व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओं में व्यवहारिक परिवर्तन होते हैं।
	संवेग का अनुभव (अनुभूति) चेहर पर स्पष्ट होता है।

अत: यह कहा जा सकता है कि संवेग वह जटिल अवस्था है जो आन्तरिक तथा बाह्य उद्दीपक के फलस्वरूप उत्पन्न होती है। इस अवस्था में व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक दशाओं में परिवर्तन होता है।

9.3.2 संवेग की दशाएं

मनुष्य विभिन्न परिस्थितियों में अपने संवेगों को प्रकट करता है। यह संवेग मनुष्य में मुख्यत: दो प्रकार से प्रकट होते हैं। ये स्थितियाँ व्यक्ति की क्रियाओं में परिवर्तन लाती हैं।

1. बाह्य शारीरिक दशाएं

2. आंतरिक शारीरिक दशाएं

1. बाह्य शारीरिक दशाएं: संवेग की इस स्थिति में शरीर की बाह्य दशाओं में परिवर्तन प्रदर्शित होता है। जैसे आँखों से आँसू का निकलना, आँखों का लाल होना, चेहरे के हाव भाव बदल जाना, माथे पर लकीरें आना, चेहरे का लाल हो जाना, शरीर का काँपना, आवाज में परिवर्तन आदि के द्वारा व्यक्ति संवेग को प्रकट करता है।

2. आंतरिक शारीरिक दशाएं: संवेग की इस स्थिति में बाह्य शारीरिक परिवर्तन के साथ आंतरिक अंगों में भी परिवर्तन आ जाता है। जैसे क्रोध में रक्त चाप का बढ़ना/घटना, नाड़ी की गति तथा श्वास की गति में परिवर्तन आना, अन्त: स्रावी ग्रंथियों तथा पाचक रसों की क्रियाओं में परिवर्तन आना आदि।

संवेगों की कुछ विशेषतायें निम्नलिखित हैं:

- संवेग सभी प्राणी में पाये जाते हैं।

- प्रत्येक प्राणी के संवेग व्यक्तिगत होते हैं, एक ही परिस्थिति में दो व्यक्तियों के संवेगों में भिन्नता पायी जाती है।
- व्यक्ति के संवेगों का प्रकटीकरण उसके व्यवहार के माध्यम से होता है।
- किसी भी परिस्थिति में संवेग के प्रकट अथवा उत्पन्न होने में व्यक्ति को सुख अथवा दु:ख की अनुभूति होती है।
- संवेगों की उत्पत्ति किसी बाहरी उद्दीपक या परिस्थिति के कारण होती है।
- संवेग का मन तथा शरीर दोनों से सम्बन्ध होता है। अत: भाव या सुख/दु:ख की अनुभूति मन से होती है तथा इनका प्रकटीकरण शारीरिक क्रियाओं के द्वारा होता है।
- संवेग की अवस्था में स्थिरता नहीं होती है।
- संवेग के अति प्रबल होने की अवस्था में व्यक्ति की विचार शक्ति कार्य नहीं करती है। व्यक्ति संवेग में बिना सोचे समझे कार्य करता है।

9.3.3 संवेगों का महत्व

व्यक्ति के जीवन में संवेगों का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। किशोरावस्था में किशोर परिपक्वता प्राप्त कर युवावस्था की ओर अग्रसर होते हैं। अत: किशोरों में तीव्र शारीरिक परिवर्तन के कारण किशोरावस्था को संवेगात्मक अस्थिरता की अवस्था भी कहा गया है। संवेग किशोरों के व्यक्त्वि निर्धारण एवं सामाजिक समायोजन के लिये महत्वपूर्ण हैं, साथ की संवेग किशारों के सर्वांगीण विकास में सहायक होते हैं। किशारों के जीवन में संवेगों का महत्व निम्नानुसार है:

1. प्रसन्नता एवं आनन्द की अनुभूति: किशोरों में तीव्र परिवर्तनों के कारण उनके संवेगों में अस्थिरता रहती है। हर्ष, खुशी, आनंद आदि किशोरों को सुख की अनुभूति प्रदान करते हैं जिसके फलस्वरूप किशोरों में सकारात्मक गुणों का विकास होता है। नकारात्मक संवेगों से वे अपने भीतर छिपे क्रोध, ईर्ष्या, भय आदि को बाहर निकालकर अपने जीवन को तनावमुक्त एवं आनंदित होकर जीते हैं।

2. सामाजिक समायोजन में सहायक: संवेग व्यक्ति के सामाजिक समायोजन में सहायता करते हैं। यदि व्यक्ति अपने जीवन में सकारात्मक संवेगों को अपनाकर अच्छी आदतों का निर्माण करता है तो अपने समाज, साथियों आदि के साथ उसका समायोजन अच्छा होता है परन्तु यदि व्यक्ति अपने जीवन में नकारात्मक संवेगों को अपनाते हैं तो उन्हें सामाजिक समायोजन में मुश्किल का सामना करना पड़ता है।

3. आदतों के निर्माण में सहायक: संवेगों के माध्यम से बच्चों में अच्छी आदतों का विकास किया जा सकता है। यदि किसी संवेग से बच्चों में सुख अथवा खुशी की अनुभूति होती है तो वह उस संवेगात्मक अनुक्रियाओं की पुनरावृत्ति बार- बार करता है। जब किसी भी क्रिया की पुनरावृत्ति होती है तो वह आदत का स्वरूप ले लेती है।

4. भाषा विकास में सहायक: संवेगों के तीव्र व प्रबल होने पर शारीरिक क्रियाशीलता बढ़ जाती है जिससे व्यक्ति की आवाज में परिवर्तन आ जाता है। व्यक्ति अपनी बात को अपने हाव भाव के साथ अधिक जोर से बोलता है जिससे उसकी जीभ, जबड़ा, स्वरयन्त्र, गला आदि की मांसपेशियों में परिपक्वता आ जाती है जो भाषा के विकास में सहायक होते हैं। जो व्यक्ति संवेगों के फलस्वरूप उत्पन्न क्रियाओं का प्रकटीकरण नहीं कर पाते हैं, वह संवेग उसके अन्दर घुटन पैदा कर नकारात्मक गुणों को उत्पन्न करते हैं उसके विकास को प्रभावित करते हैं।

5. संवेग समाजिक अन्त: क्रियाओं को प्रभावित करते हैं: यदि व्यक्ति हर्ष, प्रसन्नता, स्नेह आदि संवेगों की अनुभूति करता है तो वह समाज के साथ अच्छा सामंजस्य स्थापित करता है। वहीं नकारात्मक संवेगों के कारण व्यक्ति के स्वभाव एवं व्यवहार में चिड़चिड़ापन आ जाता है जो व्यक्ति का समाज के साथ समायोजन अथवा अन्त: क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।

6. संवेग कार्यों के प्रेरक होते हैं: अनेक संवेग अच्छे कार्य के प्रेरक या उद्दीपक होते हैं जैसे दया, करूणा आदि व्यक्ति को समाज के प्रति जागरूक करते हैं तथा समाज की विभिन्न रूप में सहायता करते हैं जैसे दान आदि।

7. संवेग मानसिक क्रियाओं में बाधा पहुँचाते हैं: अनेक नकारात्मक संवेग जैसे ईर्ष्या, घृणा, भय, क्रोध आदि की स्थिति में व्यक्ति अत्यधिक उत्तेजित हो जाता है जिससे उसमें किसी भी कार्य अथवा परिस्थिति में सोचने व समझने की क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जिससे आवेश में आकर व्यक्ति गलत कार्य कर बैठता है। जिन व्यक्तियों में नकारात्मक संवेगों की अधिकता होती है वे शैक्षणिक और सह शैक्षणिक गतिविधियों में अन्य बालकों से पीछे रह जाते हैं।

8. आत्म मूल्यांकन एवं सामाजिक मूल्यांकन में सहायक: सकारात्मक संवेगों की उपस्थिति में व्यक्ति समाज के समक्ष सुखदायक संवेग अथवा व्यवहार प्रकट करता है जिससे समाज में उसकी लोकप्रियता बढ़ती है, साथ ही उसे अपने समूह में नेता माना जाता है। इसके विपरीत नकारात्मक संवेग की उपस्थिति में व्यक्ति सामाजिक समायोजन नहीं कर पाता है,

लोग समूह में उसे कम पसन्द करते हैं। समाज में लोगों की पसंद अथवा नापसंद के आधार पर व्यक्ति अपना आत्म मूल्यांकन एवं सामाजिक मूल्यांकन करता है।

9.4 किशोरावस्था में संवेग

किशोरावस्था को “तनाव” की अवस्था या “तूफान की अवस्था” भी कहा जाता है। तूफान का तात्पर्य संवेगात्मक अस्थिरता से है। जैसा कि पूर्व अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कि किशोरावस्था में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास अत्यधिक तीव्र गति से होता है। अभिभावक किशोरों से बड़ों की भाँति व्यवहार की अपेक्षा करते हैं। वे किशोरों की तुलता अन्य किशोरों से करते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें ईर्ष्या, क्रोध आदि संवेगों का विकास होता है। किशोरावस्था में संवेगात्मक समायोजन की अति आवश्यकता होती है क्योंकि अति संवेगशीलता किशोरों के विकास को प्रभावित करती है।

9.4.1 किशोरों में पाये जाने वाले मुख्य संवेग

किशोरावस्था में किशोरों के संवेगों में अस्थिरता पायी जाती है। वे क्षण में खुशी तथा क्षण में ही दु:ख की अनुभूति करते हैं। किशोरावस्था में निम्नलिखित संवेग पाये जाते हैं:

1. स्नेह व प्रेम: शारीरिक वृद्धि के फलस्वरूप किशोरों में यौन परिपक्वता आ जाती है जिससे उनमें काम इच्छा जागृत होने लगती है। किशोर अपने विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण महसूस करता है। यही आकर्षण आगे चलकर प्रेम सम्बन्धों का रूप ले लेते हैं जिसमें वे एक दूसरे के प्रति अति प्रेम व स्नेह महसूस करते हैं।

2. हर्ष / खुशी: किशोरों में सकारात्मक संवेग से हर्ष तथा खुशी जैसे सुखदायी भाव की उत्पत्ति होती है। यदि किशोर समाज, अभिभावक तथा शिक्षक की अपेक्षाओं के अनुकूल व्यवहार करता है तो उसे प्रशंसा मिलती है जिससे किशोरों में हर्ष/खुशी जैसे धनात्मक संवेगों की उत्पत्ति होती है। किशोरों को अपने समूह में खेलने, टी0वी0 देखने, मित्रों के साथ समय व्यतीत करने से अधिक हर्ष तथा आनंद की अनुभूति होती है।

3. ईर्ष्या: ईर्ष्या एक प्रकार का नकारात्मक संवेग है जिसकी उत्पत्ति क्रोध से होती है। ईर्ष्या से अप्रसन्नता की उत्पत्ति होती है। किशोरावस्था में यदि अभिभावक या शिक्षक के द्वारा किशोरों की तुलना किसी अन्य किशोर से की जाती है तो किशोर उस बालक से ईर्ष्या करने लगता है। किशोर उन बालकों से अधिक ईर्ष्या रखते हैं जो उनसे पढ़ने, खेल कूद आदि स्पर्धाओं में आगे होते हैं। लड़के इस अवस्था में उन लड़कों से अधिक ईर्ष्या रखते हैं जिन्हें लड़कियाँ

ज्यादा पसंद करती हैं तथा लड़कियाँ उन लड़कियों से ईर्ष्या रखती हैं जो दिखने में ज्यादा आकर्षक एवं सुन्दर होती हैं।

4. भय: किशोरावस्था में आते आते बाल्यावस्था के अनेक भय दूर हो जाते हैं परन्तु किशोर अब नई चीजों अथवा परिस्थितियों से भयभीत होता है। भय एक प्रकार की अप्रिय अनुभूति है जिसमें व्यक्ति अप्रिय वस्तु/परिस्थिति से दूर भागने का प्रयत्न करता है। किशोरावस्था में रात में अकेले बाहर जाने का भय, एकान्त में रहने का भय, अंधेरे में रहने का भय, बड़े समूह के समक्ष उपस्थिति देने में भय आदि भय प्रमुख रूप से देखे जाते हैं।

इसके अतिरिक्त किशोरावस्था में किशोरों में कुछ काल्पनिक भय भी पाये जाते हैं जो उनकी चिन्ता का कारण भी बनते हैं जैसे परीक्षा में फेल होने, विपरीत लिंग के द्वारा मजाक बनाये जाने आदि का भय रहता है जो निराधार होता है।

5. क्रोध: क्रोध एक नकारात्मक संवेग है जो किशोर के मुख एवं व्यवहार से स्पष्ट दिखाई देता है। यदि किशोरों का उपहास किया जाये, उनकी आलोचना अथवा तुलना किसी अन्य से की जाये, उन्हें चिढ़ाया जाये, उन्हें अबोध बालक की भाँति समझा जाये अथवा उन पर पाबन्दी लगायी जाये, ऐसी सभी परिस्थितियों से किशोरों में क्रोध उत्पन्न होता है। किशोर क्रोध में खाना पीना छोड़ देते हैं या अपने मित्र जिससे वे क्रोधित हों, उससे बोलना छोड़ देते हैं। कभी- कभी क्रोध इतना तीव्र होता है कि किशोर अपनी प्रिय वस्तु या स्वयं को नुकसान पहुँचा देते हैं।

6. जिज्ञासा: यह प्रकार का सकारात्मक संवेग है जिससे किशोर में उत्सुकता अथवा उनमें खोजी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। वे हर विषय वस्तु के बारे में जानने का प्रयत्न करते हैं। हांलाकि यह प्रवृत्ति बाल्यावस्था की भाँति तीव्र नहीं होती है परन्तु किशोरों में हो रहे तीव्र शारीरिक परिवर्तन उनकी जिज्ञासा के लिये उद्दीपक का कार्य करते हैं। किशोर सबसे अधिक विपरीत लिंग तथा अपने यौन अंगों के बारे में जानने में अधिक उत्सुक रहते हैं। सामाजिक वातावरण के प्रतिबन्धों के कारण उनमें इन जिज्ञासाओं का दमन हो जाता है। अपने भविष्य से सम्बन्धित विषय चयन तथा उपयोगिता, भिन्न प्रकार के व्यवसाय आदि के बारे में भी जानने को किशोर उत्सुक रहते हैं।

7. चिन्ता: यह एक ऐसी अप्रिय भविष्य मानसिक विचार की स्थिति है जिसमें किशोर अपने भविष्य तथा सम्भावित विपत्तियों से होने वाले कष्ट का अनुभव करता है। चिन्ता का उदय भय से होता है। किशोर विद्यालय का कार्य समय पर न होने, फेल होने, व्यवसाय की चिन्ता,

लोकप्रियता, विफल प्रेम संबंधों आदि के बारे में कल्पना कर भविष्य की चिन्ता करते हैं। किशोरों में तीव्र शारीरिक परिवर्तन भी उनकी चिन्ता का कारण होता है।

9.4.2 किशोरावस्था में संवेगात्मक परिपक्वता

मानव के व्यक्तित्व के निर्माण में संवेगों का महत्वपूर्ण योगदान है। व्यक्ति की आयु में वृद्धि के साथ ही उनके मस्तिष्क एवं अन्त: स्रावी ग्रंथियों का विकास होता है। अन्त: स्रावी ग्रंथियों के विकास तथा इसके स्रावण से संवेग के विकास में सहायता मिलती है। भिन्न-भिन्न आयु में व्यक्ति के संवेग भिन्न-भिन्न होते हैं। आयु में वृद्धि के साथ ही संवेगों में परिपक्वता आने लगती है। किशोरावस्था तक अनेक परिस्थितियों के माध्यम से तथा अधिगम एवं परिपक्वता के माध्यम से किशोरो में संवेगों का विकास होता है। अधिगम एवं परिपक्वता संवेगों के उत्तम विकास के लिये महत्वपूर्ण है। अत: अधिगम के माध्यम से किशोरों में सकारात्मक संवेगों का निर्माण किया जा सकता है।

9.4.3 संवेगों पर नियंत्रण

किसी भी संवेग की अधिकता नुकसानदायक होती है। अत: किशोरों के संवेगों पर नियन्त्रण करना आवश्यक है। कुछ नकारात्मक संवेग जैसे क्रोध, ईर्ष्या, चिन्ता आदि किशोरों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक विकास को बाधित करते हैं। नकारात्मक संवेग की अधिकता से किशोरों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है तथा उनमें नकारात्मकता एवं हीन भावना का विकास होता है।

सकारात्मक संवेग, जिज्ञासा या प्रेम/स्नेह की अधिकता से भी किशोर अप्रिय कार्य को अन्जाम दे देता है। अत: अभिभावक का यह दायित्व है कि किशोरों में होने वाले अधिक संवेगों को नियंत्रित कर उनमें संवेगात्मक स्थिरता का विकास करें।

संवेगों को नियन्त्रित करने की प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं:

1. दमन: दमन की प्रक्रिया में किशोर नकारात्मक संवेगों, विचार, व्यक्ति, अप्रिय प्रसगों आदि को भूलने का प्रयास करते हैं। सही मार्गदर्शन के माध्यम से नकारात्मक संवेगों का दमन किया जा सकता है तथा किशोर शान्त होकर अपने अन्य कार्य करने लगता है। दमन दो प्रकार से होता है:

- **बाह्य दमन:** यदि किशोरों के संवेगों का दमन अभिभावक, शिक्षक एवं समाज के लोगों द्वारा किया जाता है तो इस प्रकार का दमन बाह्य दमन कहलाता है।

- **आन्तरिक दमन:** जब किशोर अपने संवेगों का दमन स्वयं कर लेता है तो उसे आन्तरिक दमन कहा जाता है।

2. प्रतिगमन: किशोर द्वारा अपने तनाव को दूर करने के लिये कम परिपक्व उत्तर का सहारा लिया जाता है तो यह रचना प्रतिगमन कहलाती है। इसमें किशोर अपने से कम आयु के बालकों जैसा व्यवहार करके अपने संवेगात्मक तनाव को दूर करता है।

3. शोधन: संवेगों के प्रकाशन तथा स्वरूप में परिवर्तन के माध्यम से संवेगों में शोधन किया जाता है। यह संवेग नियन्त्रण की सबसे उत्तम विधि है क्योंकि इस प्रक्रिया में संवेग का दमन भी नहीं होता और इनका प्रकाशन भी हो जाता है। जैसे क्रोध में तोड़ फोड़ करने वाले किशोरों को यदि बॉक्सिंग आदि व्यवसाय से जोड़ दिया जाये तो उनके क्रोध का दमन भी नहीं होगा और उस संवेग का प्रकाशन भी हो जायेगा।

4. उद्यमिता: किशोरों को संवेगात्मक अस्थिरता से बचाने या उन्हें नियन्त्रित करने का सबसे सरल उपाय है कि किशोरों को अन्य कार्यों में व्यस्त रखा जाये जिससे कि किशोर कभी खाली न हो तथा उसके संवेग अनियंत्रित स्थिति में ना आएं।

5. स्वतन्त्र अभिव्यक्ति: प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री रूसो तथा मान्टेसरी के द्वारा इस प्रणाली का प्रतिपादन किया गया है जिससे व्यक्ति के संवेगों पर नियंत्रण किया जा सकता है। इस विधि में व्यक्ति अपने संवेग की अभिव्यक्ति स्वतंत्र रूप से करता है तथा व्यक्ति स्वयं ही इसके परिणामों से अवगत रहता है। परिणामों के नकारात्मक होने पर वह स्वत: ही उन संवेगों का नियन्त्रण करता है।

9.4.4 किशोरों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

व्यक्ति के संवेगात्मक विकास में अधिगम/शिक्षण एवं परिपक्वता का महत्वपूर्ण योगदान है परन्तु इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे कारक हैं जो व्यक्ति के संवेगात्मक व्यवहार अथवा विकास को प्रभावित करते हैं। ये कारक निम्नलिखित हैं:

1. शारीरिक स्वास्थ्य: व्यक्ति के संवेगों पर उसके शारीरिक स्वास्थ्य का प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त संवेगात्मक व्यवहार के प्रदर्शन में शारीरिक स्वास्थ्य का महत्वपूर्ण योगदान है। जो व्यक्ति शारीरिक रूप से स्वस्थ रहते हैं वे हमेशा खुश, आनन्द एवं प्रसन्न दिखाई देते हैं। इसके विपरीत अस्वस्थ व्यक्ति में क्रोध, चिड़चिड़ापन आदि संवेग उत्कृष्ट होते हैं। शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति, अस्वस्थ व्यक्ति की अपेक्षा अधिक मिलनसार होते हैं तथा इनका सामाजिक समायोजन भी अच्छा होता है।

2. थकान एवं भूख: किशोरावस्था में किशोरों में अनेक परिवर्तन होते हैं जिनके कारण किशोर अधिकतर तनाव की स्थिति में रहते हैं। इस तनाव के कारण किशोर भोजन से दूरी बना लेते हैं। किशोर इस अवस्था में अपने शारीरिक स्वरूप पर अत्यधिक ध्यान देते हैं तथा उन्हें लगता है कि अधिक भोजन लेने से वे मोटे हो जाएंगे, फलस्वरूप वह भोजन सम्पूर्ण मात्रा में नहीं लेते हैं। भूख एवं तनाव की स्थिति में किशोर से यदि कोई कार्य करने को कहा जाता है तो किशोर सम्भवत: क्रोध में आकर चिल्लाता है अथवा वस्तु को तोड़ना आदि व्यवहार प्रकट करता है।

3. लिंग: संवेगात्मक व्यवहार के प्रकटीकरण में लैंगिक भिन्नता पायी जाती है। किशोरावस्था की लड़कियों में चिन्ता, ईर्ष्या, भय आदि संवेग पाये जाते हैं तथा लड़कों में क्रोध अधिक विद्यमान होता है। वे विपरीत अवस्था में क्रोध के आवेश में आकर झगड़ा करने लगते हैं। क्रोध लड़कियों की तुलना में लड़कों में अधिक पाया जाता है परंतु भय, ईर्ष्या लड़कों की तुलना में लड़कियों के व्यवहार में अधिक प्रकट होता है।

4. पारिवारिक वातावरण: बालक की प्रथम पाठशाला उसका परिवार होता है। जिस पारिवारिक वातावरण में किशोरों का पालन पोषण होता है वही गुण माता पिता से किशोर को प्राप्त होते हैं। यदि परिवार का वातावरण शान्त, सुखी, आनंदित एवं प्रसन्न हो तो किशोरों के संवेग भी हर्ष एवं प्रसन्नता से भरपूर होंगे परन्तु यदि परिवारिक वातावरण से नकारात्मक संवेगों की प्राप्ति होती है तो निश्चित ही किशोर नकारात्मक संवेग जैसे क्रोध, अप्रसन्नता, भय, द्वेष की भावना से पूर्ण व्यवहारों का प्रदर्शन करता है।

5. सामाजिक वातावरण: किशोरावस्था में किशोरों पर अपने मित्र समूह का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। किशोरावस्था में किशोरों के संवेगात्मक विकास पर उनके सामाजिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है। यदि किशोर का सामाजिक समूह अत्यधिक सृजनात्मक है तो किशोर में 'जिज्ञासा', यदि किशोर का सामाजिक समूह झगड़ालू या अपराधी प्रवृति का है तो किशोर में 'क्रोध, द्वेष' तथा यदि किशोर का सामाजिक समूह हँसमुख, मिलनसार, खुश है तो किशोर में सकारात्मक संवेगों जैसे हर्ष, प्रेम/स्नेह, आनंद आदि संवेगों का विकास होगा।

6. आर्थिक सामाजिक स्तर: संवेगात्मक विकास किशोर के आर्थिक सामाजिक स्तर पर भी निर्भर करता है। उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के परिवार के बालकों में संवेगात्मक स्थिरता अधिक देखने को मिलती है। इसकी तुलना में निम्न एवं मध्यम स्तरीय परिवार के बालकों में संवेगात्मक अस्थिरता अधिक होती है। निम्न आर्थिक सामाजिक स्तर के किशोर

अपने उच्च स्तरीय मित्रों की अपेक्षा आर्थिक स्तर पर पीछे महसूस करते हैं जिस कारण उनमें शर्म, भय, हिचकिचाहट आदि संवेग व्यवहार के माध्यम से प्रदर्शित होते हैं।

7. किशोर अभिभावक सम्बन्ध: किशोर का उसके अभिभावक के साथ सम्बन्ध किशोर के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करता है। अभिभावक की अभिवृत्तियाँ, पालन पोषण का तरीका आदि किशोर के संवेगों को प्रभावित करते हैं। अभिभावक का किशोर के साथ सम्बन्ध चार प्रकार से वर्गीकृत किया गया है।

- कठोर अभिभावक
- पक्षपाती अभिभावक
- तिरस्कार करने वाले अभिभावक
- अति सतर्क अभिभावक

कठोर अभिभावक किशोर को कठोर नियमों/नियन्त्रण में रखते हैं जिससे किशोरों में भय के संवेग का विकास होता है। बच्चों में पक्षपात करने से किशोरों को अभिभावक से क्रोध तथा अपने भाई बहन से ईर्ष्या का विकास होता है। अभिभावक द्वारा तिरस्कार से किशोर क्रोध, झगड़ा करने जैसे आक्रमक व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। माता पिता के अतिसतर्क होने पर किशोर के अधिकतम कार्य माता पिता स्वयं कर देते हैं। वे किशोर को आत्मनिर्भर बनने का वातावरण नहीं दे पाते जिससे किशोर दूसरों पर निर्भर हो जाता है। फलस्वरूप उसमें भय जैसे संवेगों का विकास होता है।

8. किशोरों का व्यक्तित्व: आनुवांशिकता एवं वातावरण के प्रभाव के द्वारा किशोरों के व्यक्तित्व का निर्माण होता है जो एक किशोर को दूसरे किशोर से भिन्न करती है। कुछ किशोर अन्तर्मुखी तथा कुछ बहिर्मुखी होते हैं। बहिर्मुखी किशोरों की संवेगात्मक स्थिरता अन्तर्मुखी किशोरों की तुलना में अधिक होती है।

9. परिवार का आकार: संयुक्त परिवार में रहने वाले किशोरों का संवेगात्मक विकास एकल परिवार की तुलना में अधिक होता है। संयुक्त परिवार में किशोर अपने परिवार में विभिन्न सदस्यों के संवेगों का अनुकरण करता है जिससे संयुक्त परिवार के किशोरों का संवेगात्मक विकास जल्दी होता है।

10. बुद्धि: बुद्धिमान किशोरों में संवेगात्मक स्थिरता अधिक पायी जाती है क्योंकि वे विभिन्न परिस्थितियों में संवेगों का विश्लेषण कर उसके आधार पर अपने निर्णय लेते हैं। वे अपने

संवेगों का प्रकटीकरण समाज द्वारा मान्य तरीकों के अनुसार करना सीख लेते हैं। इसके विपरीत कम बुद्धिमान किशोरों में संवेगात्मक नियन्त्रण एवं स्थिरता कम पायी जाती है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सत्य एवं असत्य बताइए।
   a. संवेगों का प्रकटीकरण व्यक्ति के व्यवहार के माध्यम से होता है।
   b. यदि किशोरों के संवेगों का दमन माता पिता, शिक्षकों के द्वारा किया जाता है तो इस प्रकार के दमन को आन्तरिक दमन कहते हैं।
   c. संवेगों की उत्पत्ति बाहरी उद्दीपक के कारण होती है।
   d. केवल अधिगम ही संवेगों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
   e. संवेग कार्यों के प्रेरक होते हैं।

9.5 किशोरावस्था में किशोरों की मुख्य रुचियाँ

जैसा कि पूर्व के अध्ययन से हम यह जानते हैं कि किशोरावस्था व्यवसाय चयन की अवस्था है। व्यवसाय के चयन में व्यक्ति की रुचियों का विशेष महत्व है। किशोरावस्था में किशोरों की रुचियों का विकास कर उन्हें सफल प्रौढ़ बनाया जा सकता है। यदि व्यक्ति अपने व्यवसाय का चयन अपनी रुचि एवं क्षमता के आधार पर नहीं करता है तो रुचियों के विपरीत व्यवसाय चयन से व्यक्ति को जीवन में तनाव का सामना करना पड़ता है। अत: किशोरों में उनकी रुचियों को आधार बनाकर, उन्हें प्रशिक्षण के माध्यम से विकसित कर किशोरों को अर्थोपार्जन हेतु तैयार किया जा सकता है।

किशोरों में पायी जाने वाली रुचियाँ निम्नलिखित हैं:

1. **शरीर के प्रति रुचि:** किशोरावस्था में किशोरों में शारीरिक परिवर्तन अत्यन्त तीव्र गति से होते हैं। किशोरावस्था में किशोर अपनी पूर्ण शारीरिक परिपक्वता को प्राप्त कर लेते हैं। शरीर में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन जैसे शारीरिक भार/आकार में वृद्धि, लड़कियों में मासिक धर्म का प्रारम्भ, लड़कों में वीर्य निर्माण का प्रारम्भ होना, आवाज का मोटा होना आदि परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन किशोरों के लिये बिल्कुल नये होते हैं तथा इन परिवर्तन के सम्बन्ध में वह किसी से भी चर्चा करने पर शर्म महसूस करते हैं। अत: इन परिवर्तनों को समझने के लिये वह विभिन्न माध्यम जैसे किताबें, अखबार, टी0वी0,

इंटेर्नेट एवं दोस्तों की सलाह का इस्तेमाल करता है। सभी स्रोतों से किशोर आधी अधूरी जानकारी प्राप्त करते हैं। किशोरावस्था में किशोर चाहते हैं कि वे सबसे सुन्दर दिखें एवं सभी के आकर्षण का केन्द्र बनें तथा सब उन्हीं के विषय पर चर्चा करें। इस कारण किशोर अपने शरीर का पूरा ध्यान रखते हैं। किशोरियाँ विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों के प्रयोग द्वारा अपने आप को आकर्षित बनाने का प्रयास करती हैं तथा फैशन के अनुसार वस्त्रों का चयन करती हैं एवं बालों को कटवाती हैं। किशोर अपने शरीर निर्माण पर अधिक ध्यान देते हुये जिम अथवा शारीरिक व्यायाम के माध्यम से अपने शरीर को भार प्रदान कर अधिक शक्तिशाली बनाने में अपनी रुचि रखते हैं।

2. **वस्त्रों में रुचि:** किशोरावस्था में किशोर स्वयं को आकर्षक बनाने का हर सम्भव प्रयत्न करते हैं। इसके लिये उन्हें अपने वस्त्रों के चयन में अधिक रुचि होती है। वे विभिन्न प्रकार के फैशनेबल वस्त्र को पहनना पसंद करते हैं। जन्म के बाद बच्चे वही वस्त्र पहनते हैं जो माता पिता उन्हें देते हैं परन्तु किशोरावस्था में किशोर फैशन तथा मित्रों के अनुकूल वस्त्रों का चयन करते हैं। किशोर उन वस्त्रों का चयन अधिक करते हैं जो उसके मित्र समूह के द्वारा स्वीकार्य हों। किशोर अधिकतर रंग बिरंगे, नये डिजाइन, नये स्टाइल/फैशन के वस्त्र पहनना पसंद करते हैं। विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण के कारण किशोरों की वस्त्रों के चयन में रुचि बढ़ती है।
3. **अध्ययन में रुचि:** किशोरावस्था को व्यवसाय चयन की अवस्था भी कहा जाता है। किशोरावस्था में अध्ययन से सम्बन्धित रुचि बढ़ जाती है। उन्हें यह ज्ञात हो जाता है कि एक सफल प्रौढ़ बनने के लिये पढ़ना लिखना अत्यन्त आवश्यक है। कठिन परिश्रम, अध्ययन के द्वारा ही धनोपार्जन कर जीवन को सफल बनाया जा सकता है। इस बात को ध्यान में रखकर किशोर अपनी रुचि के विषयों का चयन कर उसका अध्ययन करते हैं। किशोरावस्था में किशोरों को अध्ययन करने के लिये पर्याप्त समय मिलता है क्योंकि इस समय किशोरों पर कोई सामाजिक, पारिवारिक एवं आर्थिक जिम्मेदारी नहीं होती है, साथ ही अभिभावक भी किशोरों के अध्ययन में अपनी सहभागिता निभाते हुये उन्हें अध्ययन के लिये उत्तम वातावरण प्रदान करते हैं। किशोरों के अध्ययन में अभिभावक का मार्गदर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

4. **खेल कूद में रुचि:** किशोरावस्था में किशोरों का ध्यान भविष्य निर्माण, पढ़ाई में अधिक होता है परंतु वे कुछ महत्वपूर्ण/पसंदीदा खेल को खेलने में रुचि लेते हैं। किशोरावस्था में किशोर शारीरिक खेल की अपेक्षा मानसिक खेल में अधिक रुचि लेते हैं।
5. **लैंगिक रुचियाँ:** किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन एवं शारीरिक परिपक्वता प्राप्त करने के कारण किशोर विपरीत लिंग के प्रति आकर्षित होते हैं। लड़कियों में मासिक धर्म का प्रारम्भ तथा लड़कों में वीर्यस्खलन भी शुरू हो जाता है। फलत: उनमें कामेच्छा का जागरण होता है। इस स्थिति में माता पिता का यह दायित्व है वे किशोरों को यौन सम्बन्धी जानकारी दें तथा इसके सम्बन्ध में किशोरों से खुलकर बात करें। उन्हें इससे सम्बंधित गलत परिणामों जैसे कम आयु में किशोरियों का गर्भवती हो जाना, यौन सम्बंधी रोग आदि के बारे में उचित जानकारी देना आवश्यक है।
6. **मित्रता में रुचि:** बाल्यावस्था में बालक बालिकाओं के अनेक मित्र होते हैं परन्तु किशोरावस्था में आते आते किशोरों के दो चार गिने चुने मित्र रह जाते हैं। किशोरावस्था में किशोर अपने ही लिंग के साथ मित्रता करते हैं। घनिष्ठ मित्रता किशोरावस्था की विशेषता है। अत: किशोरावस्था के अन्त तक किशोरों के गिने चुने मित्र रह जाते हैं जिससे वे अपनी सभी प्रकार की समस्या को खुलकर बताते हैं, उस पर चर्चा करते हैं तथा मित्रों के द्वारा दी गई सलाह पर ज्यादा विश्वास करते हैं। जिन किशोरों का अपने मित्र के साथ अच्छा समायोजन होता है उनका पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत समायोजन भी अच्छा होता है।
7. **मनोरंजन के प्रति रुचि:** किशोरों को घूमना फिरना, दोस्तों के साथ पार्टी करना, समारोह में जाना, गेम खेलना, टी0वी0 देखना, कम्प्यूटर से खेलना अच्छा लगता है। किशोर अपना आधे से अधिक समय मनोरंजन में ही व्यतीत करते हैं। मनोरंजन से किशोरों को सुख की अनुभूति होती है। जो किशोर पढ़ाई को अधिक महत्व देते हैं वे मनोरंजन को कम समय देते हैं। अभिभावक के नियंत्रण से किशोरियाँ अपना अधिकांश समय घर पर ही व्यतीत करती हैं। किशोरों पर सामाजिक पाबन्दियाँ किशोरियों की अपेक्षा कम होती हैं। अत: वे अपने मित्रों के साथ घर से बाहर घूमने, खेलने आदि के द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं। अभिभावकों का यह दायित्व है कि किशोरों को मनोरंजन के लिये समय दिया जाना चाहिये परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि किशोर अपने मनोरंजन के लिये गलत माध्यम का इस्तेमाल ना करें।

8. **सामाजिक रुचि:** किशोरावस्था के अन्त तक किशोरों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं तथा किशोर एक व्यस्क प्रौढ़ के अनुरूप व्यवहार करते हैं। वह समाज के प्रति अपना कर्तव्य समझने लगते हैं। सामाजिक क्रिया कलापों में प्रतिभाग करते हैं। वे समाज के नियम अनुकूल व्यवहार करते हैं तथा उन कार्यों को अधिक करते हैं जिससे उनकी समाज में प्रशंसा हो। वे अपनी क्षमता के अनुसार विभिन्न सामाजिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग करते हैं जैसे रक्तदान, किताबों, कपड़ों का दान।
9. **व्यवसाय के प्रति रुचि:** किशोरावस्था में किशोरों की रुचियों में व्यक्तिगत भिन्नता पायी जाती है। किशोरों की रुचि अनेक कारकों से प्रभावित होती है। किशोर इस आयु में विभिन्न प्रकार के व्यवसाय से सम्बन्धित जानकारी एकत्रित कर अपनी रुचि एवं सामर्थ के अनुसार विषय का चयन करते हैं। इस अवधि में किशोर अपने भावी व्यवसाय से प्रेरित होकर विषयों का चयन करते हैं, परन्तु इस समय किशोर अपने मित्रों से अत्यधिक प्रेरित होता है। किशोर उसी कार्य को अधिक करते हैं जिससे उसके मित्र समूह में उसे स्वीकार्यता मिले। अत: कुछ किशोर अपनी रुचि एवं सामर्थ को ध्यान में ना रखते हुये अपने मित्रों के समान विषय का चयन कर लेते हैं, जो भविष्य में उसके तनाव का कारण बनता है। अत: अभिभावक एवं शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वे किशोरों की विशेषताओं एवं रुचियों का पता कर उनका विकास करने में सहायता प्रदान करें। किशोरों को विभिन्न प्रकार के व्यवसाय के प्रति जागरूक किया जाना चाहिये जिससे किशोरों को विभिन्न विषयों के महत्व का ज्ञान हो सके।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
   - a. किशोरावस्था में किशोर शारीरिक खेल की अपेक्षा .... खेल में अधिक रुचि लेते हैं।
   - b. .... के साथ अच्छे समायोजन से किशोरों का पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत समायोजन अच्छा होता है।
   - c. किशोरावस्था में किशोर अपने शारीरिक .... पर अधिक ध्यान देते हैं।
   - d. किशोरावस्था के अन्त तक किशोर सामाजिक नियमों के .... व्यवहार करते हैं।

9.6 किशोरावस्था में समायोजन

समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीव अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन रखता है। किशोरावस्था परिवर्तनों की अवस्था है। किशोरावस्था में अनेक महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक, समाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन होते हैं जो किशोरों के लिये बिल्कुल नये होते हैं। इन परिवर्तन को समझने में किशोर स्वयं को असमर्थ प्रतीत करते हैं।

जीवन की प्रत्येक अवस्था में कोई ना कोई समस्या अवश्य पायी जाती है। बाल्यावस्था तक बालक सम्पूर्ण रूप से अपने अभिभावक पर निर्भर रहता है, अत: बालक की सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान उसके माता पिता के द्वारा कर दिया जाता है परन्तु किशोरावस्था में अभिभावक, किशोर से एक व्यस्क की भाँति व्यवहार की अपेक्षा करते हैं तथा यह सोचते हैं कि किशोर अपनी सभी प्रकार की समस्या का समाधान स्वयं कर लेगा। माता पिता एवं शिक्षकों के द्वारा यह सोचना एकदम गलत है क्योंकि बालक अभी इतना परिपक्व नहीं होता है कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर ले। माता पिता एवं शिक्षक का यह दायित्व है कि वे किशोर के सभी कार्यों में सहयोग एवं मार्गदर्शन प्रदान करें जिससे किशोर में सुरक्षा एवं संतोष की भावना का विकास हो। किशोरावस्था में किशोरों को निम्न समायोजन करने होते हैं:

- **शैक्षिक समायोजन:** किशोरों को सम्पूर्ण रूप से परिपक्व एवं आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार अपने व्यवसाय का चयन करता है परन्तु बढ़ती प्रतियोगिता एवं जनसंख्या के कारण किशोर बेरोजगारों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। किशोर अनेक प्रतियोगिता परीक्षाओं को पास करने तथा सभी अहर्ताओं के बावजूद नौकरी से वंचित रह जाता है। नौकरी के अभाव में उसे मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित रहना पड़ता है जिसके फलस्वरूप उसमें हीन भावना का विकास हो जाता है। किशोरावस्था में किशोरों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं करें परन्तु पाठ्यक्रम में भिन्नता, विषय के महत्व एवं उपयोगिता से सम्बन्धित ज्ञान तथा सही मार्गदर्शन के अभाव में किशोरों को विषय चयन से सम्बन्धित समस्या का सामना करना पड़ता है।

  किशोरों को अपनी क्षमताओं, भविष्य में पाठ्यक्रमों की उपयोगिता, व्यवसाय से पाठ्यक्रम का जुड़ाव आदि के सम्ब्न्ध में विद्वानों एवं शिक्षकों से गहनता से विचार विमर्श करना चाहिये, उस विषय के सम्बन्ध में जानकारी एवं सलाह लेनी चाहिये। यदि

किशोर विद्वानों एवं शिक्षकों की सलाह एवं उनसे जानकारी नहीं लेते हैं, तब वे अज्ञानता के कारण गलत विषय का चयन करते हैं जिसकी भविष्य में कोई उपयोगिता नहीं होती है जिससे उनको तनाव का सामना करना पड़ता है। फलस्वरूप उनका शैक्षिक समायोजन नहीं हो पाता है।

- **माता पिता/अभिभावक के साथ समायोजन:** किशोरावस्था में विभिन्न परिवर्तनों के कारण किशोर स्वयं व्यस्क की भाँति व्यवहार करता है। किशोर अब अपने कार्य को अपनी पसंद- ना पसंद के अनुसार करते हैं। इस अवस्था में उसे पारिवारिक समायोजन में समस्या का सामना करना पड़ता है क्योंकि माता पिता के पालन के समय के परिवेश एवं किशोर के परिवेश में काफी लम्बा अंतराल आ जाता है। अभिभावक के विकास की परिस्थिति एवं किशोर की परिस्थिति में अत्यधिक बदलाव आ जाता है। अभिभावक इस अवस्था में किशोरों के मित्रों, खेल कूद, मनोरंजन के साधनों पर प्रतिबंध लगाकर हर समय उन्हें पढ़ने के लिये मजबूर करते हैं। अभिभावक किशोर के लिये ऐसे लक्ष्य का निर्धारण करते हैं जो किशोर की क्षमताओं एवं योग्यताओं से काफी दूर होता है। अभिभावक के कारण किशोर उन विषयों का चयन करता है जिसमें उसकी रुचि नहीं होती है। रुचि एवं योग्यता के अभाव में यदि किशोर प्रतियोगिता में असफल होता है तो अभिभावक द्वारा उसकी उपेक्षा एवं तिरस्कार किया जाता है जिसके फलस्वरूप किशोर के मन में भय के कारण वह अपने माता पिता /परिवार से समायोजन नहीं कर पाता। अत: माता पिता को किशोरावस्था में होने वाले परिवर्तन एवं कठिनाईयों को समझ कर उनसे प्रेम पूर्वक वार्तालाप करना चाहिये। साथ ही किशोरों में अनावश्यक प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिये। कुछ महत्वपूर्ण क्षेत्र, व्यवसाय चुनाव, विषय चयन एवं विवाह आदि के सम्बन्ध में किशोर की भावनाओं को महत्व दिया जाना चाहिये।
- **सामाजिक समायोजन:** किशोरावस्था में किशोर को बालक न समझकर, उसे एक व्यस्क व्यक्ति समझा जाने लगता है। किशोर में अब समाज, रीति रिवाज, आदर्श, समाज के द्वारा मान्य व्यवहार के सम्बंध में जानकारी हो जाती है तथा अब वह यह समझने लगता है कि समाज में उसका स्थान क्या है तथा उससे किस प्रकार की अपेक्षा की जाती है। वह समाज के मान्य व्यवहारों के अनुकूल व्यवहार करता है परन्तु यदि किशोर समाज द्वारा मान्य व्यवहार के अनुकूल व्यवहार नहीं कर पाता तो उसे समाजिक समायोजन में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। अत: माता पिता को बाल्यावस्था से ही बालकों को

लालन पोषण करते समय नैतिक मूल्यों, समाज द्वारा मान्य व्यवहार, रीति रिवाज से सम्बन्धित जानकारी देनी चाहिये ताकि किशोर उस के अनुकूल व्यवहार कर सके।

- **शारीरिक समायोजन:** जैसा कि पूर्व के अध्ययनों से हमें ज्ञात है कि किशोरावस्था परिवर्तनों की अवस्था है। शारीरिक परिवर्तन ही किशोरावस्था के प्रारम्भ होने के सूचक हैं। किशोरों में शारीरिक परिवर्तन अत्यन्त तीव्र गति से होते हैं। यह शारीरिक परिवर्तन किशोर में आवाज में भारीपन, जननांगों के विकास से प्रारम्भ होता है तथा किशोरियों में स्तनों के विकास, आवाज में परिवर्तन, मासिक धर्म के प्रारम्भ से परिलक्षित होता है। यह परिवर्तन किशोरों के लिये नवीन होते हैं जिन्हें समझने में किशोर स्वयं को असमर्थ प्रतीत करते हैं। साथ ही किसी से भी इस विषय पर चर्चा करने में शर्म महसूस करते हैं। अत: इस विषय पर दूसरों से चर्चा ना करने के कारण उन्हें अन्दर ही अन्दर परेशानी तथा तनाव का सामना करता है। माता पिता/ अभिभावकों का यह दायित्व है कि वे किशोरों को इस अवस्था में होने वाले परिवर्तनों से अवगत कराएं तथा इससे सम्बन्धित किसी भी विषय पर खुल कर उनसे चर्चा करें।
- **लैंगिक समायोजन:** किशोरावस्था में किशोरों में लैंगिक विकास होता है जिसके कारण किशोरों के जननांगों का विकास होता है। किशोरों में प्रजनन क्षमता आ जाती है। उनमें शारीरिक वृद्धि एवं हारमोन परिवर्तन के कारण यौन अंगों में परिपक्वता आती है जिसके फलस्वरूप उनमें कामेच्छा उत्पन्न होने लगती है। किशोर अब विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण महसूस करते हैं। माता पिता किशोरो के प्रेम सम्बन्धों को प्रतिबन्ध कर उन पर निगरानी रखते हैं जिस कारण वे माता पिता को अपना शत्रु समझने लगते हैं। किशोर में संवेगों में अस्थिरता के कारण वे बलात्कार, विवाह पूर्व गर्भधारण, भाग कर विवाह अथवा आत्महत्या जैसे कार्य कर लेते हैं। अत: माता पिता /अभिभावकों का यह दायित्व है कि किशोरों का ध्यान इस क्षेत्र से हटाएं तथा शिक्षा का महत्व एवं भावी जीवन की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुये किशोरों का मार्ग दर्शन करें।
- **मित्रों के साथ समायोजन:** किशोरावस्था में किशोर अपने मित्रों के साथ अधिक समय व्यतीत करना पसंद करते हैं। वे वही व्यवहार करते हैं जो उसके मित्र समूह के द्वारा स्वीकार्य हों। किशोरों के जीवन में मित्रों का अत्यधिक महत्व है तथा उनमें अच्छी एवं बुरी आदतों का विकास भी मित्रों द्वारा प्रभावित होता है। मित्रों के साथ समायोजन न होने

पर किशोर को अत्यधिक दबाव का सामना करना पड़ता है क्योंकि इस अवस्था में किशोर अपने घनिष्ठ मित्र बनाते हैं जिनसे वे अपनी सभी समस्या बाँटते हैं तथा उनकी सलाह लेते हैं। मित्रों के साथ समायोजन अत्यन्त चुनौती पूर्ण होता है क्योंकि घनिष्ठ मित्रता उनकी उन मित्रों के साथ होती है जिनके मूल्य, रुचियां, समाजिक एवं आर्थिक स्थिति लगभग समान होती है। अत: किशोर मित्रों के साथ समायोजन बनाने के लिये मित्रों द्वारा स्वीकार्य व्यवहार करते हैं। यदि वे अपने मित्र समूह के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं या मित्रों की अवहेलना करते हैं तो मित्र समूह से उसका तिरस्कार किया जाता है।

9.7 सारांश

मानव जीवन में सर्वाधिक 'अस्थिरता की अवस्था' किशोरावस्था है। यह अवस्था बाल्यकाल के अन्त से प्रारम्भ होकर प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ तक रहती है। किशोरावस्था को तूफान की अवस्था भी कहा जाता है जिसका तात्पर्य संवेगात्क अस्थिरता से है जो किसी बाह्य उद्दीपक के कारण व्यक्ति के व्यवहार द्वारा उसके संवेगों का प्रकटीकरण होता है। संवेग व्यक्ति में आदतों के निर्माण, भाषा के विकास, संचार, अन्तर्क्रिया, समायोजन आदि में सहायक होते हैं। अनेक अध्ययनों के माध्यम से यह सिद्ध हुआ है कि पूर्व किशोरावस्था में संवेगात्मक अस्थिरता अपने चरम सीमा पर होती है तथा उत्तर किशोरावस्था में पहुँचने यह अस्थिरता अपेक्षाकृत कम हो जाती है। विभिन्न शारीरिक परिवर्तनों, हार्मोन्स के विकास के कारण किशोरों में यौन इच्छा की जागृति होती है, परन्तु पारिवारिक नियन्त्रण एवं सामाजिक अस्वीकार्यता के कारण उनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती जिस कारण किशोर दबाव ग्रस्त हो जाते हैं। किशोरावस्था में मुख्यत: स्नेह, चिन्ता, भय, खुशी, ईर्ष्या, क्रोध एवं जिज्ञासा जैसे संवेग पाये जाते हैं। संवेगात्मक अस्थिरता की अवस्था में अभिभावक के मार्गदर्शन के द्वारा दमन, प्रतिगमन, शोधन, उद्यमिता एवं स्वतन्त्र अभिव्यक्ति आदि विधियों के द्वारा संवेगों पर नियंत्रण किया जा सकता है। अनेक कारक जैसे शारीरिक स्वास्थ्य, थकान, लिंग, परिवार का आकार, आर्थिक स्थिति आदि किशोरों के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। किशोरों में अनेक प्रकार की रुचियाँ पायी जाती हैं तथा वे अपनी रुचि के क्षेत्रों में अधिक जानकारी एकत्रित करते हैं एवं अपने भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं। किशोरावस्था में किशोरों को अनेक प्रकार की समस्यायें होती हैं जिसके फलस्वरूप वे तनावग्रस्त हो जाते हैं। इस कारण किशोरों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास में बाधा उत्पन्न होती है। अत: इन सभी विकास के मुख्य क्षेत्रों में शैक्षिक, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक आदि समायोजन की आवश्यकता होती है। अभिभावक एवं शिक्षकों का यह दायित्व है कि वे

किशोरावस्था के महत्व एवं समस्याओं की पहचान कर उन समस्याओं के समायोजन के माध्यम से समाधान करने में किशारों का मार्ग दर्शन करें।

9.8 पारिभाषिक शब्दावली

- **प्रतिबल:** कोई भी परिस्थिति जो व्यक्ति पर दबाव डालती है तथा जिसके कारण व्यक्ति को समायोजन करना पड़ता है, वह प्रतिबल कहलाता है।
- **अन्तर्द्वंद:** अन्तर्द्वंद अवस्था है जिसमें दो या विरोधी प्रेरणा उत्पन्न होती है तथा जिनकी एक साथ तृप्ति सम्भव नहीं होती है।
- **कुण्ठा:** कुण्ठा वह अवस्था होती है जो किसी प्रेरणायुक्त व्यवहार की सन्तुष्टि के कठिन अथवा असम्भव हो जाने के कारण उत्पन्न होती है।
- **परिपक्वता:** परिपक्वता शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और मानसिक विभेदीकरण और एकता की वह स्वतन्त्र प्रक्रिया है जो विकासात्मक अवस्थाओं में बदली हुई होती है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक रूप से जीव की वृद्धि पूर्ण एवं सुदृढ़ होती है।

9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सत्य एवं असत्य बताइए।
   a. सत्य
   b. असत्य
   c. सत्य
   d. असत्य
   e. सत्य

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें।
   a. मानसिक
   b. मित्रों

c. निर्माण

d. अनुकूल

9.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ0 नीता अग्रवाल एवं डॉ0 वीना निगम, मातृकला एवं बाल विकास उन्नीसवाँ संस्करण,अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. डॉ0 आशा पारीक, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर।
3. भाई योगेन्द्र जीत, बाल विकास की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
4. प्रो0 मधुरेश्वर पारीक, बाल विकास एवं परिवारिक सम्बन्ध, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर।
5. सुरेश भटनागर, बाल विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, संशोधित संस्करण 2003, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
6. डॉ0 वृन्दा सिंह, मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, नौवाँ संस्करण 2015, पंचशील प्रकाशन, जयपुर।
7. डॉ0 डी0एन0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 प्रीति वर्मा, बाल मनोविज्ञान बाल विकास, नवीन संस्करण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संवेग को विस्तार पूर्वक समझाइये। किशोरावस्था में पाये जाने वाले प्रमुख संवेगों का वर्णन करें।
2. किशोरों में पाये जाने वाले प्रमुख रुचियों का वर्णन करें।
3. समायोजन का अर्थ स्पष्ट करें तथा समायोजन के विभिन्न क्षेत्रों का उल्लेख करें।

इकाई 10: किशोरावस्था के दौरान विभिन्न संबंध

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 किशोरावस्था में विभिन्न संबंधों का प्रभाव
    10.3.1 अभिभावक व किशोरावस्था का संबंध
    10.3.2 किशोरों का अपने साथियों के साथ संबंध
    10.3.3 किशोरों का विपरीत लिंग के साथ संबंध (विषम लैंगिकता)
    10.3.4 किशोर छात्रों का शिक्षक से संबंध
10.4 किशोरावस्था में विद्यालय और घर में आने वाली समस्याएँ
    10.4.1 किशोर व विद्यालय में समस्याएँ
    10.4.2 किशोर व घर में समस्याएँ
10.5 किशोरों में समाजीकरण
10.6 सारांश
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

विद्यार्थियों हमने पिछले अध्याय में जाना कि किशोरावस्था कि क्या विशेषताएं होती हैं तथा उनमें क्या शारीरिक, सामाजिक, मानसिक और भावनात्मक परिवर्तन आते हैं। किशोरावस्था बचपन और वयस्कता के मध्य की अवस्था है। यह जैविक, सामाजिक, भावनात्मक और संज्ञानात्मक विकास की अवधि है, और यदि इस आयु में सही तालमेल ना हो तो वयस्क जीवन में भावनात्मक और व्यवहार संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं। किशोरावस्था एक ऐसा भी समय है जब किशोर अपनी व्यक्तिगत पहचान और स्वायत्तता (autonomy) की भावना पैदा करने का प्रयास करते हैं, जिससे उनके माता-पिता, शिक्षकों और पेशे में बड़ी या मामूली, अस्थायी या स्थायी असहमति स्थापित हो जाती है। किशोरावस्था को विभिन्न विकास के दृष्टिकोणों से भी देखा जा सकता है। इन्हें आनुवांशिक, स्वभाव या पर्यावरणीय कारकों की विविधता से प्रभावित होने के रूप में भी देखा जा सकता है।

किशोरावस्था के दौरान युवा अपने मित्रों, माता-पिता, शिक्षकों और प्रेम प्रसंगयुक्त सहयोगियों के साथ सुरक्षित और स्वस्थ संबंध बनाना सीखते हैं। दोनों बालक व बालिकाएँ इस समय के दौरान अक्सर अलग-अलग पहचान और भूमिकाओं पर जोर देते हैं और सही सम्बंध उनके विकास में योगदान करते हैं। इस अवस्था में विशेष रूप से साथी पहचान बनाने में एक अहम भूमिका निभाते हैं। लेकिन वयस्कों के साथ-साथ माता-पिता, गुरुजन या प्रशिक्षक भी किशोरावस्था में विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। अभिभावक- किशोर संबंध वह होता है जो सूचित करता है कि एक युवा व्यक्ति अन्य सम्बंधों को कैसे संभालता है। दुर्भाग्यवश किशोरावस्था कभी-कभी कड़वे संबंधों का विकास करती है और बदमाशी, नशीले पदार्थ का सेवन, चोरी या हिंसा का प्रदर्शन करती है। अतः यह आवश्यक है कि हम किशोरों के साथ अपने सम्बंधों को मजबूत करें, उनकी परेशानियों को समझें ताकि वह बेहतर जीवन की ओर प्रेरित हों।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी;

- अभिभावक/माता-पिता व किशोरावस्था के संबंधों के बारे में जान पाएंगे;
- किशोरों का शिक्षकों, साथियों तथा विपरीत लिंग के साथ संबंध की व्याख्या कर पाएंगे;
- किशोरावस्था में विद्यालय व घर में आने वाली समस्याओं को जान पाएंगे, तथा
- किशोरावस्था में समाजीकरण के बारे में जानकारी ले पाएंगे।

10.3 किशोरावस्था में विभिन्न संबंधों का प्रभाव

किशोरावस्था में प्रवेश के उपरांत किशोर का माता-पिता, साथी किशोरों, शिक्षकों तथा विपरीत लिंग के साथियों से कैसा संबंध होता है तथा इसका उनके किशोर काल में क्या प्रभाव पड़ता है, आइये इस पर चर्चा करें।

10.3.1 अभिभावक व किशोरावस्था का संबंध

किशोरावस्था तेजी से होने वाले जैविक और मनोसामाजिक परिवर्तनों की अवधि है, जो उनके व माता-पिता के संबंधों पर प्रमुख प्रभाव डालती है। किशोरों का अपने माता-पिता से सही बातचीत का उनके मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। अभिभावकीय नियंत्रण को अधिक प्रतिबंधात्मकता के साथ भ्रमित नहीं करना चाहिए। माता-पिता की गर्मजोशी और मजबूत सामाजिक समर्थन के परिणामस्वरूप बच्चों के आत्मसम्मान

में सुधार होता है। समकालीन पारिवारिक जीवन में जो नाटकीय बदलाव आए हैं, वे किशोरों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। आज के परिवेश में माता-पिता, पड़ोसी व अन्य पारिवारिक सदस्य किशोरों को अधिक समय नहीं देते जिस कारण उनके बातचीत करने में, सहायता और पर्यवेक्षण में कमी आई है। किशोरावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक संज्ञानात्मक, सामाजिक और भावनात्मक परिवर्तनों के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त करने पर परिवार बेहतर तरीके से अपने बच्चों को समझ सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि माता-पिता को इस आयु में अपने बच्चों को सही तरीके से समझना चाहिए। माता-पिता को उनकी मनोदशा, सोच तथा अपेक्षाओं की जानकारी होना भी जरूरी है।

अभिभावक व बाल संघर्ष

जैसे-जैसे बच्चे किशोरावस्था में कदम रखते हैं, माता-पिता से उनका संघर्ष भी बढ़ जाता है। हम कह सकते हैं कि किशोरावस्था में यह आम बात है परंतु साथ ही यह चिंता का विषय भी है। किशोर अपने माता-पिता को कठोर, सख्त व्यवहार और तर्कहीन होने के रूप में देख सकते है। माता-पिता भी परेशान हो जाते हैं कि जो बच्चे पहले सहयोगी व जिम्मेदार थे, अब उनका व्यवहार शत्रुतापूर्ण और विनाशकारी क्यों है। ये दृष्टिकोण अक्सर उनके मध्य गलतफहमी को बढ़ाते हैं तथा इससे अभिभावक व बच्चों के बीच दूरी बढ़ जाती है।

अधिकांश परिवारों में इस बात पर बहस होती है कि आपने क्या कपड़े पहने हैं, आपको क्या पसंद है तथा आप अपना खाली समय कैसे सदुपयोग करते हैं। इसके विपरीत गंभीर विषयों जैसे नैतिक मूल्यों व आर्दशों की चर्चा नहीं होती है। किशोरावस्था में किशोर अधिक स्वतन्त्रता की मांग करते हैं, क्योंकि किशोर अपने दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले फैसलों पर अधिक से अधिक नियंत्रण चाहते हैं। उनके तर्क केवल स्वयं के लिए कुछ हासिल करने हेतु रह जाते हैं और इस आयु में वे माता-पिता के सवालों का जवाब देना भी उचित नही समझते हैं। इसके अलावा अत्यधिक तनावपूर्ण वातावरण कई नकारात्मक परिणामों से भी जुड़ा हुआ है जिसमें किशोर कई गलत कामों के आदि हो जाते हैं; जैसे अपराध करना, घर से भाग जाना, विद्यालय छोड़ना, अनियोजित गर्भावस्था, नशे का आदि होना तथा धर्म के विपरीत जाना आदि। सामान्य तौर पर प्रारम्भिक किशोरावस्था में संघर्ष बढ़ता है, मध्य किशोरावस्था में अपने चरम तक पहुँचता है, और बाद की अवस्था में इस संघर्ष में गिरावट आती है। परिवार के साथ बिताए गए समय में कमी एक किशोरावस्था की स्वतन्त्रता या स्वायत्तता की अधिक इच्छा का प्रतिबिंब हो सकता है। किशोरों की आलोचनात्मक सोच कौशल उन्हें माता-पिता की इच्छाओं के अनुरूप नहीं बनाती है, जैसा वे अपने बचपन में करते थे। किशोरावस्था में अहं-केंद्रिता की ओर झुकाव होता है और इसके परिणामस्वरूप माता-पिता की बातें भी उनके लिए अति संवेदनशील हो सकती हैं। युवावस्था तथा

किशोरावस्था में बच्चे कम आज्ञाकारी हो जाते हैं तथा वे माता-पिता के लिए कम संवेदनशील हो जाते है, उन्हें माता-पिता की हर बात गलत लगती है या वे अपनी मर्जी से जीना चाहते हैं।

किशोरावस्था में माता-पिता के साथ बालकों के सही संबंधों के लिए शोधकर्ताओं ने कुछ सलाह दी है (स्टाइनबर्ग, 2001) जो निम्न प्रकार हैं:

- अपने बच्चों के व्यवहार को समझने के लिए माता-पिता को किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक तथा मानसिक विकास की बुनियादी जानकारी होनी चाहिए।
- माता-पिता को बच्चों की बदलती आवश्यकताओं को समझना चाहिए तथा इसके अनुकूल होने के लिए कदम बढ़ाना चाहिए।
- माता-पिता को यह भी समझने की आवश्यकता है कि वे और उनका परिवार कैसे बदल रहा है। उन्हें वर्तमान परिवेश में हो रहे बदलाव को समझना चाहिए।

अतः हम कह सकते हैं कि अभिभावक व किशोरावस्था के बीच संबंधों का मधुर होना कठिन नहीं है। आपसी बातचीत से बच्चों की इस आयु की मनोदशा को समझते हुए, उन्हें प्यार से समझाना चाहिए तथा उनका मत भी अवश्य सुनना चाहिए।

10.3.2 किशोरों का अपने साथियों के साथ संबंध

किशोरावस्था के दौरान साथी समूह किशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं। दोस्तों के साथ किशोर अपना ज्यादा समय बिताते हैं तथा माता-पिता की निगरानी में कमी आ जाती है। किशोर इस आयु में विपरीत लिंग के दोस्तों के साथ जुड़ जाते हैं तथा अपने दोस्तों का बड़ा समूह बना लेते हैं जहाँ पर उनमें एक समानता होती है। साथी समूह सदस्यों को सहानभूति, साझाकरण और नेतृत्व जैसे विभिन्न सामाजिक कौशल विकसित करने का अवसर प्रदान करते हैं। इसके अलावा वे शैक्षिक प्रेरणा और प्रदर्शन सहित किसी भी किशोर पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं। अगर किशोरावस्था में साथी अच्छी आदतों के ना हों तो इसके नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलते है जैसे नशे की आदत, बर्बरता, चोरी करना और सही रास्ते से भटक जाना। यह भी पाया गया है कि प्रारम्भिक किशोरावस्था में साथी दबाव बढ़ जाता है, 14 साल की आयु में यह चरम पर होता है तथा फिर धीरे-धीरे कम होने लगता है। प्रारम्भिक किशोरावस्था के दौरान किशोर समान लिंग के साथी समूह के साथ ज्यादा रहते हैं तथा उनके सम्बंध घनिष्ठ होते हैं। परन्तु किशोरावस्था के अंत में ये समूह, मिश्रित लिंग समूहों में विलीन हो जाता है क्योंकि किशोर एक दूसरे के साथ प्रेम प्रसंगयुक्त रूप से जुड़ना शुरू कर

देते हैं। इस अवस्था में जो छोटे-छोटे समूह किशोरों द्वारा बनाए गए थे, वे टूटने लगते हैं क्योंकि किशोरों का समाजीकरण अधिक युगल उन्मुख (couple oriented) हो जाता है।

किशोरावस्था की सबसे बड़ी विशेषता होती है, केवल एक व्यक्ति के बजाय अपेक्षाकृत बड़ी संख्या में व्यक्तियों के साथ संबंध जोड़ना, जिसे हम विकास के एक महत्वपूर्ण सामाजिक संदर्भ के रूप में देखते हैं। किशोर इस आयु में छोटे समूह में और करीबी दोस्तों के साथ रहना पसंद करते हैं, जिसे डायडिक (दो-व्यक्ति) और छोटे समूह संबंधों से परिभाषित किया जाता है। किशोरावस्था के दौरान साथी संस्कृति की एक और मुख्य विशेषता होती है कि इस आयु में किशोर विपरीत लिंग के साथियों के साथ अधिक संपर्क में होते हैं। किशोरावस्था एक ऐसा समय है जब विपरीत लिंग वालों से मित्रता करना अच्छा लगता है, उनके साथ अपनी बातों, विचारों को साझा करना सही लगता है। इसके अलावा किशोरों में साथी समूहों का चयन किया जाता है जो अपनी खुद की मान्यताओं और मानदंडों को साझा करते हैं। यह भी पाया गया है कि साथी समूह में शामिल होने के लिए समान विचारधारा वाले किशोर सम्पर्क में आते हैं। साथी संस्कृति किशोरों के व्यवहार को भी प्रभावित करती है। साथी संस्कृति केवल विचलित व गलत व्यवहार तक ही सीमित नहीं होती है, बल्कि यह कई सकारात्मक व्यवहार के लिए भी उत्तरदायी है जैसे शैक्षणिक उपलब्धि, सामुदायिक कार्य करना, किसी अच्छे कार्य के लिए प्रेरित करना, व्यक्तियों की मदद करना, सांत्वना देना आदि। किशोरों की आवश्यकताओं के अनुसार एक सहायक साथी समुदाय वह है जो:

- अपने मूल्यों और शैक्षिक लक्ष्यों को साझा करता है।
- सक्रिय रूप से उनकी सीखने की आवश्यकताओं का समर्थन करता है।
- एक सुरक्षित और समर्थक सामाजिक वातावरण प्रदान करता है जिसमें किशोर कुछ अच्छा सीख सकते हैं।
- उनके योगदान को महत्व देता है।

अतः हम कह सकते है कि किशोरों का अपने सहकर्मियों से संबंध सकारात्मक भी हो सकता है और नकारात्मक भी। अभिभावक आवश्यक रूप से निगरानी रखें कि उनके बच्चों के मित्र कौन हैं, वे उनके व्यवहार में क्या भागीदारी निभा रहे हैं तथा किशोर उनसे कैसे व किस ढंग से प्रभावित हो रहे हैं।

10.3.3 किशोरों का विपरीत लिंग के साथ संबंध (विषम लैंगिकता)

विषम लैंगिकता एक ऐसी स्थिति है जब कोई व्यक्ति विपरीत लिंग के व्यक्ति के लिए यौन आकर्षित होता है। यह हमारे समाज में यौन अभिविन्यास का सबसे आम और स्वीकार्य रूप

है। किशोरावस्था के दौरान विषम लैंगिक प्रेम प्रसंग सम्बंध धीरे-धीरे उभरते हैं। किशोरावस्था का मध्य अंतराल विषम लैंगिक सम्बंधों के लिए सबसे सटीक समय माना गया है।

किशोरावस्था में दो विपरीत लिंग वाले किशोर जो प्रेम संबंधों में रहते हैं, उन्हें इस दौरान संचार, भावना, सहानुभूति, पहचान और यौन सम्बंधों के बारे में सीखना होता है। ये बातें अक्सर वयस्कता में दीर्घकालिक संबंधों के लिए एक मूल्यवान नींव प्रदान करती हैं तथा किशोर वर्षों में विकास, लचीलापन और खुशी के लिए महत्वपूर्ण योगदानकर्ता होती हैं। किशोरावस्था में एक प्रेमिका या प्रेमी होने से किशोर का आत्मविश्वास बढ़ सकता है। प्रेम सम्बंध मधुर होने पर किशोर सदैव प्रसन्न प्रतीत होते हैं। प्रेम प्रसंगयुक्त किशोर युगल इस अवस्था में अपने माता-पिता व साथियों के साथ ज्यादा संघर्ष व बहस करते हैं, हालांकि आयु बढ़ने के साथ प्रेम प्रसंगों में लिप्त जोड़ों के बीच भी संघर्ष बढ़ जाता है। यह वह मनोदशा होती है जब दोनों के विचार टकराने लगते हैं तथा उनके बीच की निकटता कम होने लगती है। वर्तमान परिपेक्ष्य में किशोर प्रेम सम्बंधों में यौन सम्बंधों को भी अधिक महत्व देते हैं जो उनके मध्य निकटता लाते हैं।

कम गुणवत्ता वाले प्रेम सम्बंध जिनमें विश्वास की कमी होती है, किशोरों के लिए अवसाद और चिंता का विषय बन जाते हैं। कई बार यह सम्बंध यौन हिंसा में भी परिवर्तित हो जाते हैं जो युवा किशोर/किशोरियों को अवसाद की ओर ले जाता है।

यौन अभिविन्यास (sexual orientation)

किशोरावस्था के दौरान होने वाले हार्मोन सम्बंधी और शारीरिक बदलाव का मतलब आमतौर पर लोग यौन भावनाओं में वृद्धि से समझने लगते हैं। कई युवाओं को यह समझने में समय लगता है कि वे कौन है और वे क्या बनने जा रहे हैं। इसके एक हिस्से में अपनी स्वयं की यौन भावनाओं की बेहतर समझ शामिल है और यह भी महत्वपूर्ण है कि वे किससे प्रति आकर्षित हैं। किसी व्यक्ति का यौन अभिविन्यास किसी विशेष लिंग या लिंग के प्रति उनका भावनात्मक और शारीरिक आकर्षण है। यह एक व्यक्तिगत गुण है जो व्यक्ति को किसी विशेष लिंग के व्यक्ति के प्रति यौनाकर्षित करता है।

यौन अभिविन्यास को कई तरीकों से परिभाषित किया जा सकता है।

- विषमलैंगिकता: विपरीत लिंग वाले व्यक्ति के लिए आकर्षण।
- समलैंगिकता: समान लिंग वाले व्यक्ति के प्रति आकर्षण।
- द्विलैंगिकता: किसी व्यक्तिका पुरूष और महिला, दोनों की ही तरफ मानसिक या शारीरिक रूप से आकर्षित होना।

- अलैंगिकता: व्यक्ति का किसी भी लिंग के प्रति यौन आकर्षण न होना।

यौन अभिविन्यास का विकास

वर्तमान वैज्ञानिक समझ के अनुसार व्यक्तियों को आमतौर पर मध्य बचपन और किशोरावस्था के बीच उनके यौन अभिविन्यास के बारे में पता चलता है। हालांकि यह हमेशा सही नहीं होता, कुछ व्यक्तियों को बहुत बाद के वर्षों में भी यौन अभिविन्यास के बारे में जागरूकता नहीं होती है। इन भावनात्मक प्रेम प्रसंगयुक्त और शारीरिक आकर्षण के बारे में जागरूक होने के लिए यौन गतिविधि में भाग लेना आवश्यक नहीं है। कुछ शोधकर्ताओं का तर्क है कि यौन अभिविन्यास जन्मजात नहीं होता है, बल्कि पूरे जीवनकाल में परिवर्तनशील होता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   a. किशोरावस्था एक जैविक व .... परिवर्तनों की अवधि है।
   b. किशोरावस्था में .... की ओर झुकाव होता है, जिससे वे किसी की बात नहीं मानते हैं।
   c. किशोरावस्था में .... छोटी आयु के बजाय भिन्न होती है, जहाँ पर वे बड़ी संख्या में साथी समूह बनाते हैं।
   d. .... एक ऐसी स्थिति है, जब व्यक्ति विपरीत लिंग वाले व्यक्ति के प्रति यौन आकर्षित होता है।

2. कॉलम A का कॉलम B के साथ मिलान करें।

कॉलम A	**कॉलम B**
a. समलैंगिकता	i. युगल उन्मुख
b. द्विलैंगिकता	ii. अभिभावक से दूरी
c. प्रेम प्रसंगयुक्त	iii. विपरीत लिंग
d. साथी विशेषता	iv. समान लिंग वाले व्यक्ति से सबंध
e. बाल संघर्ष	v. नकारात्मकता
f. तनावपूर्ण वातावरण	vi. पुरूष व महिला दोनों से संबंध

10.3.4 किशोर छात्रों का शिक्षक से संबंध

अभी तक आपने जाना कि किशोरों का अपने माता-पिता, साथी व विपरीत लिंग के व्यक्तियों से कैसा संबंध होता है। आइये अब हम जानें कि जब किशोर बालक/बालिका विद्यालय जाते हैं, तो उनका अपने अध्यापकों से कैसा संबंध होता है।

रोसेनशाइन और बर्लिनर (1978) ने बताया है कि छात्रों की शैक्षणिक रूप से व्यवस्था और उनकी बाद की उपलब्धि के स्तर के बीच निरंतर और प्रत्यक्ष संबंध है। जो शिक्षक छात्रों के बीच कार्य के समय के उच्च, सुसंगत स्तरों को बनाए रखने में सक्षम होते हैं, वे छात्र उपलब्धि के उच्च समग्र स्तरों वाले होते हैं। जो शिक्षक प्रभावशाली होते हैं, वे एक अच्छे प्रबंधक भी होते हैं तथा अपनी कक्षा को अच्छे से संभाल सकते हैं।

शोध में पता चलता है कि शिक्षकों का अपने छात्रों के साथ सकारात्मक संबंध कई बेहतर बातों में परिलक्षित होता है जैसे प्रेरणा का स्रोत, परिवर्तन की भावना, विद्यालय में रूचि, उपलब्धि की आशाएं और अच्छे मूल्यों के साथ-साथ प्रयास और प्रदर्शन में बदलाव। जब शिक्षक छात्रों की ओर ध्यान व्यक्त करते हैं तो छात्र संवेदनशील व्यवहार करते हैं, प्रभावी ढंग से संवाद करते हैं, हर किसी को सम्मान देते हैं, रूचि दिखाते हैं और हमेशा हर कार्य के लिए तैयार रहते हैं। यह न केवल व्यक्तिगत संबंधों में सुधार करता है बल्कि छात्रों में विद्यालय से संबंधित होने की भावना का विकास, छात्रों के बीच सहयोग और छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित करता है। साथ ही एक छात्र व शिक्षक के बीच अच्छे संबंध कक्षा में होने वाले संघर्षों को भी कम करता है।

एक अच्छा शिक्षक किशोरों को उनकी विशेष समस्याओं को दूर करने में मदद कर सकता है जिससे वो कठिन समय को भी आसानी से पार कर लेते हैं। शिक्षक सभी परिवर्तनों और अस्थिरताओं को किशोरों को अपने शरीर में स्वीकार करने में मदद करता है। शिक्षक व्याख्यान, चर्चा और उपयुक्त पढ़ने के माध्यम से उन्हें जीवन का एक स्वस्थ दर्शन प्रदान कर सकता है। वे किशोरों को उपयुक्त अवसरों के माध्यम से स्वस्थ साथी समूह के संबंधों और मित्रता को विकसित करने में मदद कर सकता है। इसके अलावा शिक्षक किशोरों को वैज्ञानिक, स्वस्थ और उद्देश्यपूर्ण तरीके से यौन शिक्षा प्रदान कर सकते हैं। शिक्षक को छात्रों के व्यवसाय के चयन में मदद करनी चाहिए तथा उनका मार्गदर्शन भी करना चाहिए।

किशोरों के विकास में शिक्षकों की भूमिका

1. **उचित भावनात्मक विकास:** एक कर्मठ शिक्षक छात्रों को संतुलित भावनात्मक विकास प्राप्त करने में मदद करता है कि कैसे किशोर अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखे और सामाजिक रूप से वांछनीय तरीके से व्यक्त करने के लिए सीखने में मदद करे।

2. **उचित सामाजिक संबंध:** शिक्षक को छात्रों को संचार कौशल के वांछनीय तरीके हासिल करने और विद्यालय के भीतर और बाहर उचित सामाजिक संबंधों को विकसित करने में मदद करनी चाहिए।
3. **आकांक्षा का उचित स्तर:** शिक्षक को किशोरों के लिए उचित स्तर की आकांक्षा को निर्धारित करने में मदद करनी चाहिए। किशोरों को अपनी रूचियों, योग्यता, सामर्थ्य और सीमाओं को जानना चाहिए। तदनुसार उन्हें कठिन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए न तो अत्यधिक संघर्ष करना चाहिए और ना ही हमेशा आसान और महत्वहीन कार्य या समस्या को हल करने के लिए बहुत कम स्तर की आकांक्षा निर्धारित करनी चाहिए।
4. **अस्वास्थ्यकर प्रतियोगिताओं की जाँच करना:** ऐसी प्रतियोगिताएँ किशोरों को असहज और परेशान करती हैं। दूसरे से बेहतर व आगे निकलने की होड़ में बच्चे अपने धैर्य और मन की उपस्थिति को खो देते हैं जो ईर्ष्या व बेईमानी जैसी नकरात्मक भावनाओं को हावी होने देती हैं। इसलिए शिक्षकों को उन्हें इनसे बचाना चाहिए तथा अच्छे व स्वस्थ्य मन से कैसे आगे बढ़ें, इसके बारे में बताना चाहिए।
5. **आत्म अनुशासन को प्रोत्साहन:** शिक्षक को कक्षा में आत्म-अनुशासन को प्रोत्साहित करना चाहिए। छात्रों को अनुशासन और व्यवस्था बनाए रखने की आवश्यकता महसूस की जानी चाहिए। विद्यालय और समूह के प्रति उनमें अपनेपन की भावना विकसित की जानी चाहिए और उन्हें जिम्मेदारियाँ साझा करनी चाहिए।
6. **यौन शिक्षा प्रदान करना:** किशोरावस्था यौन सम्बंध, यौन संचारित रोगों और यौन संचारित संक्रमणों पर वैज्ञानिक तरीके से उन्मुखीकरण प्रदान करने का उचित समय है। इससे उन्हें स्वस्थ यौन जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित करने में मदद मिलती है।
7. **उचित मार्गदर्शन सेवाएँ प्रदान करना:** मार्गदर्शन का अर्थ है प्रशिक्षित शिक्षकों या व्यवसाय विशेष सलाह देने वाले व्यक्तियों द्वारा छात्रों की मदद करना ताकी वह अपना भविष्य सही तरीके से बना सकें और उनकी क्षमताओं का विकास करना ताकि वे अपने तत्कालीन व भविष्य से संबंधित समस्याओं को हल कर सकें और एक सफल व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन जी सकें। शिक्षक छात्रों की दिन प्रतिदिन आने वाली समस्याओं को भी हल करने में मदद करता है और छात्रों को उचित करियर चुनने में मदद करता है। इस

प्रकार से वह उनके असामान्य मानसिक तनाव, संघर्ष और विकारों को दूर करने में उनकी मदद करता है।

8. **प्रभावशाली शिक्षण के तरीकों को अपनाना:** शिक्षकों को शिक्षण प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक तरीकों को अपनाना चाहिए। छात्रों की क्षमताओं और काबिलियत के अनुरूप ही शिक्षण प्रक्रिया को योजनाबद्ध करना चाहिए। छात्रों को शिक्षक के पढ़ाने के तरीके से खुशी एवं संतुष्टि मिलनी चाहिए।

10.4 किशोरावस्था में विद्यालय और घर में आने वाली समस्याएँ

अब हम जानेंगे कि जब किशोर विद्यालय में जाता है तो उसके जीवन में कौन-कौन सी समस्याएँ आती हैं तथा उसका कैसे निवारण किया जा सकता है।

10.4.1 किशोर व विद्यालय में समस्याएँ

एक किशोर का प्राथमिक काम है कि वह रोज विद्यालय जाए, अच्छे से पढ़े तथा परिक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो। किशोरावस्था के दौरान हालांकि कई कारण हैं जो विद्यालय की समस्याओं को जन्म देते हैं। अभिभावक अक्सर यह देखते हैं कि उनके किशोरों के अंक सही नहीं आ रहे हैं, उनके सामाजिक संपर्क में कमी आयी है, वे विद्यालय जाने से बचते हैं आदि। इसके कई शारीरिक व मानसिक कारण हो सकते हैं।

छात्रों में कई “सीखने के विकार” हो सकते हैं, जो उन्हें विद्यालय में परेशान करते हैं तथा शिक्षक उनकी इस कमी को भाँप नहीं पाते। उन्हें होशियार छात्रों के आगे झुकना पड़ता है जिस कारण वे हीन भावना के शिकार हो जाते हैं। कभी-कभी कम बौद्धिक विकलांगता जो पूर्व के जीवन में नहीं दिखाई देती, वह भी अब समस्या बन जाती है, जो उनकी पढ़ाई को प्रभावित करती है। व्यवहार संबंधी समस्याएँ जो पहले बचपन में नहीं विकसित हुई जैसे सही से ध्यान ना लगना, सक्रियता विकार किशोरों के लिए विद्यालय में बड़ी समस्या बन जाता है।

1 से 5 प्रतिशत किशोरों में विद्यालय जाने का डर विकसित होता है। इस डर का मुख्य कारण या तो कोई विशेष व्यक्ति, चाहे वह शिक्षक हो या कोई छात्र जिससे वह बहुत डरता है, हो सकता है। अक्सर विद्यालय में कुछ बदमाश छात्र भी होते हैं जो सीधे व कमजोर छात्रों को तंग करते हैं तथा उनसे अपना विद्यालय का व विद्यालय में दिया जाने वाला गृह कार्य भी करवाते हैं। इसके अलावा विद्यालय में घटित कोई घटना भी हो सकती है, जैसे शिक्षक द्वारा दी गई सजा जिस कारण भी छात्र विद्यालय नहीं जाना चाहते हैं। यदि इस तरह का कोई कारण चाहे व विद्यालय में हो या घर में, उसका निवारण करना चाहिए और किशोरों को विद्यालय

जाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। आमतौर पर ऐसे किशोरों की शैक्षणिक उपलब्धि खराब होती है तथा उन्हें विद्यालय से संबंधित गतिविधियों में भाग ना लेने के कारण कम सफलता मिलती है। ऐसे छात्र अक्सर उच्च जोखिम वाले व्यवहारिक कार्यों में संलग्न होते हैं जैसे असुरक्षित यौन संबंध, नशीले पदार्थों का सेवन तथा हिंसा में संलग्न रहना।

किशोरावस्था के दौरान विद्यालय की समस्याओं के निम्न परिणाम हो सकते हैं:

- विद्रोह और स्वतंत्रता की आवश्यकता
- शैक्षणिक गिरावट
- मानसिक स्वास्थ्य विकास जैसे चिंता या अवसाद
- नशीले पदार्थों का उपयोग
- पारिवारिक संघर्ष
- व्यवहार संबंधी विकास

यदि कोई छात्र इन समस्याओं से घिरा हुआ हो तो परिवार, विद्यालय, सहकर्मियों और समाज में रहने वाले लोगों को उसकी मदद करनी चाहिए। अगर बच्चे में सीखने व ग्रहण करने से संबंधित कोई कठिनाई हो तो उसे पहचानकर चिकित्सकों के उपचार द्वारा दूर किया जाना चाहिए। इस कार्य में विद्यालय व माता-पिता सहयोग भी महत्वपूर्ण है। यदि कोई बौद्धिक विकलांगता मौजूद है, तो एक व्यक्तिगत शैक्षिक योजना के माध्यम से उपयुक्त सेवाएं प्रदान की जानी चाहिए। पर्यावरण या आस-पास के माहौल के परिवर्तन और कभी कभी दवा चिकित्सा से संघर्षरत छात्रों को काफी मदद मिल सकती है।

10.4.2 किशोर व घर में समस्याएँ

समस्याएँ केवल विद्यालय या बाहरी वातावरण में नहीं होती हैं, घर में भी किशोरों में कई समस्याएँ देखी गई हैं जो उनके व्यवहार में नकारात्मक छवि को दिखाती हैं। घर किसी भी इंसान के लिए एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पूरे दिन की थकान के बाद किशोर घर में आता है ताकी वह अच्छा सोच सके व मानसिक तौर पर स्वस्थ रह सके। अगर घर का वातावरण सही न हो तो यह किशोरों पर कई तरीकों से प्रभाव डाल सकता है। आये किशोरों में घर की समस्याओं को समझें।

1. माता-पिता की अधिक कठोरता: कुछ घरों में माता-पिता या दोनों में से एक अधिक कठोर होते हैं। वे अपने बच्चों पर जबरन अपने नियम व कानून का उपयोग करते हैं तथा उनकी मांग होती है कि बच्चे उनका हर आदेश मानें। ऐसे माता-पिता अपने बच्चों की

मनोदशा को नहीं समझते हैं तथा बच्चे अपने मन की बात उनके आगे नहीं रख पाते। ऐसी स्थिति में बच्चों को पढ़ाई के विषय तथा करियर में भी माता-पिता की इच्छा का पालन करना होता है। ऐसी स्थिति में बच्चे उदासीन, अकेलापन महसूस करते हैं तथा कभी-कभी वे अवसाद का भी शिकार हो जाते हैं।

2. घरेलू हिंसा: बच्चे अपने माता-पिता या दूसरे सदस्यों द्वारा मार-पीट का भी शिकार होते हैं जिससे वे मानसिक व शारीरिक रूप से कमजोर व टूट जाते हैं। इसके कई कारण हो सकते हैं जैसे विद्यालय में अच्छा काम न करना, कम अंकों का आना, माता-पिता की बातों के विरूद्ध जाना आदि। घरेलू हिंसा से बच्चों को कभी-कभी गंभीर शारीरिक चोट भी आ जाती है। ऐसी हिंसा से बच्चों का मनोबल कम हो जाता है तथा वे जीवन के प्रति नकारात्मक हो जाते हैं और आत्मदाह या घर छोड़ने की स्थिति पैदा कर देते हैं।

3. यौन हिंसा: अक्सर ये पाया गया है कि किशोर बालिकाओं का अपने परिवार के पुरूष सदस्यों द्वारा यौन शोषण होता है और वो चुपचाप रहती हैं तथा घर में ये बात किसी को नहीं बताती हैं। इस कारण बालिकाएँ विद्यालय, समाज व दोस्तों से दूरी बना लेती हैं तथा खुद को इसका जिम्मेदार मानती हैं। मानसिक तौर पर वे कमजोर व क्षीण हो जाती हैं।

4. परिवार में माता-पिता या किसी एक की मृत्यु का होना: अगर परिवार में माता या पिता में से किसी एक की मृत्यु हो जाये तो किशोरावस्था पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अगर माँ की मृत्यु होती है तो बच्चे मायूस हो जाते हैं, उन्हें प्यार व लाड़पन की कमी महसूस होती है और अगर पिता की अचानक मृत्यु हो जाए तो परिवार पर आर्थिक संकट आ जाता है जो उनके आने वाले भविष्य को प्रभावित करता है।

5. भाई-बहनों के साथ मन-मुटाव: अक्सर देखा जाता है कि घर में एक बच्चे को ज्यादा प्यार, सहानुभूति व देखभाल मिले तो दूसरे भाई/बहन में गुस्सा या उसके प्रति गलत व्यवहार आ जाता है जो लम्बे समय तक भी रह सकता है तथा इससे मानसिक क्षति भी पहुँचती है।

6. माता-पिता के बीच तलाक: अगर किशोरावस्था में माँ-बाप तलाक लेकर अलग हो जाएँ तो सबसे ज्यादा नुकसान बच्चे का होता है। उसे किसी एक के पास रहना होता है तथा उसे माता-पिता के बीच रहने का सुख भी नहीं मिलता। इससे उसके दिमाग में विवाह व रिश्तों के प्रति नकारात्मकता आ जाती है जो आगे चलकर और मुश्किलें पैदा कर सकती है।

यह बहुत जरूरी है कि बच्चे अपने घर के माहौल में खुश रहें तथा उनका विकास उचित हो। माता-पिता जो घर के मुखिया होते हैं, उन्हें अपने बच्चों का हित, उनकी सोच को महत्वता

तथा उनकी राय भी लेनी चाहिए। माता-पिता को बच्चों से उनकी समस्या पूछनी चाहिए, चाहे व विद्यालय से, दोस्तों से, शिक्षकों से संबंधित हो। अगर बच्चा किसी गलत संगत में आ गया हो तो उसे प्यार से, बातचीत से समझाना चाहिए और उसकी मानसिक, शारीरिक और व्यक्तिगत समस्याओं के बारे में भी पूछना चाहिए। माता-पिता को बच्चों का दोस्त बनकर उनसे उनकी इच्छा व राय भी लेनी चाहिए। ऐसा करने से बच्चे खुश व सफल रहते हैं।

10.5 किशोरों में समाजीकरण

मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज के बीच रहता है और अपना विकास करता है, तथा समाज के अनुसार अपना जीवन बिताता है। इस प्रकार वह समाज की परम्पराओं और मान्यताओं को अपनाकर ही सामाजिक बनता है। समाजीकरण से तात्पर्य उन मानदण्डों, रीति रिवाजों और विरासत के प्रसार की आजीवन प्रक्रिया से है, जो किसी व्यक्ति को समाज के भीतर भाग लेने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करती है। कुछ सामाजिक वैज्ञानिकों का कहना है कि समाजीकरण जीवन भर सीखने की प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है और बच्चों के साथ-साथ वयस्कों के व्यवहार, विश्वास और कार्यों पर एक केन्द्रीय प्रभाव डालता है। समाजीकरण से बच्चे सीखते हैं कि उन्हें समाज में कैसा बर्ताव करना चाहिए, उनके क्या कर्तव्य हैं जो उनके विकास व भविष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। समाजीकरण उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा युवाओं को सक्षम रूप से और सफलतापूर्वक अपने सामाजिक समूह या संस्कृति के सदस्यों के रूप में कार्य करने के लिए आवश्यक कौशल हासिल करने में मदद मिलती है। समाजीकरण प्रक्रिया में किशोर अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाते हैं। शोधकर्ताओं ने पहचान के विकास को समझाने के लिए तीन सामान्य दृष्टिकोणों का उपयोग किया है: आत्म- अवधारणा, पहचान की भावना और आत्म-सम्मान। इसके अलावा समाजीकरण के चलते किशोर अपने साथियों के साथ ज्यादा समय व्यतीत करते हैं जहाँ व माता-पिता की निगरानी में ज्यादा नहीं रहना चाहते हैं। साथी समूह सदस्यों को सहानुभूति, साझाकरण और नेतृत्व जैसे विभिन्न सामाजिक कौशल विकसित करने का अवसर प्रदान करते हैं। इस अवस्था में किशोरों के बीच प्रेम संबंध भी स्थापित हो जाते हैं और यह सम्बंध किशोरावस्था के अंत तक रहते हैं जो उनके जीवन में सकारात्मकता लाते हैं।

प्रारम्भिक सैद्धांतिक मॉडलों ने समाजीकरण को एक बड़े पैमाने पर एक ही दिशा की ओर जाने वाले प्रक्रिया के रूप में देखा जिसमें माता-पिता अपने बच्चों में सांस्कृतिक मानदण्डों और मानकों को हस्तांतरित करते थे जिसे उनके बच्चे अपनी आगे आने वाली पीढ़ियों को दें। लेकिन आज के शोधकर्ता मानते हैं कि समाजीकरण कहीं ज्यादा जटिल प्रक्रिया है। हालांकि शोधकर्ताओं ने माना है कि भाई- बहनों का आपस का संबंध, वयस्कों से किशोरों के संबंध,

साथियों के साथ उनका व्यवहार आदि सभी समाजीकरण को प्रभावित करते हैं। शोधकर्ताओं ने माता-पिता पर बहुत अधिक ध्यान केन्द्रित किया है। ऐसा इसलिए क्योंकि समाज माता-पिता को बच्चों की परवरिश के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार मानता है और माता-पिता के पास आमतौर पर उन्हें प्रभावित करने का सबसे अधिक समय और अवसर होता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही विकल्प चुनें।
   a. जो शिक्षक प्रभावशाली होते हैं, वे अच्छे............................(गुणवान/प्रबंधक) भी होते हैं तथा अपनी कक्षा को अच्छे से संभालते हैं।
   b. एक कर्मठ शिक्षक छात्रों में संतुलित...........................(शारीरिक विकास/ भावनात्मक विकास) प्राप्त करने में मदद करता है।
   c. छात्रों में कई तरह के ....(अवगुण विकार/सीखने के विकार) विकार होते हैं, जो उन्हें विद्यालय में परेशान करते हैं।
   d. समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं को ....(समुदाय/घर) के आदर्शों के अनुकूल बनाता है।
   e. माता-पिता के अधिक.................................(स्नेहपूर्ण/कठोर) स्वभाव से बच्चे अपनी बात नहीं कह पाते तथा परेशान रहते हैं।

2. सही/गलत बताएँ।
   a. मानव समाज की मान्यताओं और परम्पराओं को अपनाकर ही सामाजिक बनता है।
   b. बच्चे घरेलू हिंसा का शिकार होते हुए भी मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं।
   c. शिक्षक के सही ज्ञान व दिशा से किशोर भविष्य में ऊँचाईयों को प्राप्त करता है।
   d. समाजीकरण प्रक्रिया में किशोर अपनी व्यक्तिगत पहचान नहीं बनाते हैं।

10.6 सारांश

किशोरावस्था जैविक, संज्ञानात्मक और सामाजिक विकास का एक चरण है जो व्यक्तियों को वयस्क भूमिकाओं को निभाने के लिए तैयार करता है। किशोरावस्था में व्यक्ति के संबंध सभी के साथ अलग-अलग होते हैं तथा संबंधों में महत्वता भी अलग होती है। किशोर किशोरावस्था में माता-पिता के निदेर्शों का सही से पालन नहीं करता, वह माता-पिता को

कठोर मानता है। इस आयु में किशोर अपने साथियों से ज्यादा घुलते मिलते हैं। दोस्तों का साथ उन्हें ज्यादा अच्छा लगता है तथा वे उनके साथ ज्यादा समय रहते हैं। इस आयु में किशोर विपरीत लिंग वाले साथी से प्रेम संबंध भी बना लेते हैं तथा उनके साथ अपनी सारी बातें साझा करते हैं। किशोरों का अपने शिक्षकों के साथ भी सकारात्मक संबंध देखा गया है। शिक्षक उन्हें जीवन की अच्छी शिक्षा देते हैं तथा उनका मार्गदशन करते हैं ताकी वे अपना अच्छा भविष्य बना सकें। इसी अवस्था में किशोरों में गलत व्यवहार का होना भी पाया गया है जैसे बुरे साथियों का साथ जो उन्हें गलत आदतों में डाल देते हैं। ऐसे में किशोर चोरी करना, नशा करना, जुआ खेलना, हिंसक प्रवृति का होना, किसी की बात ना सुनना, विद्यालय से गायब रहना आदि गलत आदतें सीख जाते हैं।

किशोरावस्था में किशोरों को विद्यालय व घर में भी कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है जिससे वे मानसिक व शारीरिक रूप से कमजोर हो जाते हैं। समाजीकरण की प्रक्रिया से भी किशोर बहुत कुछ सीखते हैं कि कैसे उन्हें समाज में रहना है तथा उनके समाज के प्रति क्या कर्तव्य हैं।

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।
   a. मनोसामाजिक
   b. अहं-केंद्रिता
   c. साथी संस्कृति
   d. विषम लैंगिकता

2. कॉलम A का कॉलम B के साथ मिलान करें।

	कॉलम A	**कॉलम B**
a.	समलैंगिकता	(iv)
b.	द्विलैंगिकता	(vi)
c.	प्रेम प्रसंगयुक्त	(iii)
d.	साथी विशेषता	(i)
e.	बाल संघर्ष	(ii)
f.	तनावपूर्ण वातावरण	(v)

अभ्यास प्रश्न 2

1. सही विकल्प चुनें।
   a. प्रबंधक
   b. भावनात्मक विकास
   c. सीखने के विकार
   d. समुदाय
   e. कठोर

2. सही/गलत बताएँ।
   a. सही
   b. गलत
   c. सही
   d. गलत

10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एडसन, जे0 (1980) किशोर मनोविज्ञान की हैंडबुक, न्यूयॉर्क: जॉनबेल।
2. ऐलिजाबेथ, बी0 हरलॉक (2017); चाइल्ड डेवलपमेन्ट (छठा संस्करण), मैक ग्रो हिल बुक कम्पनी, टोक्यो, जापान।
3. जे0 सी0, अग्रवाल (1996), शिक्षक और शिक्षा एक विकासशील समाज में; विकास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. लॉरा, ई0 बर्क (1989), चाइल्ड डेवलपमेन्ट (छठा संस्करण), पियरसन हायर एजुकेशन, पब्लिकेशन।

इंटरनेट स्रोत

- www.egyankosh.ac.in
- wws.srcd.onlinelibrary.wileg.com
- https://course.lumenlearning.com
- http://psyncet.apa.org
- https://www.msdmanuals.com

- www.actforyouth.net

10.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किशोरावस्था में विभिन्न संबंधों का उनके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? इस पर प्रकाश डालें।
2. किशोरों के विकास में शिक्षकों की भूमिका को समझाएँ।
3. किशोरावस्था में आने वाली विद्यालय व घर की समस्याओं पर चर्चा करें तथा उन्हें दूर करने के सुझाव भी दें।
4. किशोरावस्था में समाजीकरण प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? समाजीकरण का किशोरों के जीवन में क्या महत्व है?

इकाई 11: किशोर मार्गदर्शन

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 किशोरावस्था के दौरान प्रमुख मुद्दे एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता
    11.3.1 बाह्य वातावरण में परिवर्तन
    11.3.2 किशोरावस्था तथा सहकर्मियों का दबाव
    11.3.3 किशोरावस्था में नशाखोरी
    11.3.4 एच0आई0वी0/एड्स
    11.3.5 किशोरावस्था में यौन शिक्षा
    11.3.6 बाल अपराध
11.4 सारांश
11.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.6 निबन्धात्मक प्रश्न
11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

11.1 प्रस्तावना

किशोरावस्था के चरण को मोटे तौर पर यौवन की शुरुआत से वयस्कता तक की अवधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। किशोरावस्था के दौरान एक व्यक्ति यौन परिपक्वता तक पहुंचता है। किशोरावस्था बचपन के अंत और तेजी से हो रहे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक वृद्धि और विकास के मध्य का चरण है। यह बचपन से वयस्कता के बीच का परिवर्तनकाल है जो जैविक रूप से यौवन की शुरुआत द्वारा तथा सामाजिक रूप से माता-पिता के नियंत्रण से बढ़ती मुक्ति एवं शिक्षा पूरी करने और व्यवसाय/ रोजगार के लिए तैयार होने द्वारा चिह्नित किया जाता है। किशोरावस्था व्यक्ति के अंदर तेजी से हो रहे परिवर्तनों के कारण कुछ हद तक बढ़ी हुई उथल-पुथल, चिंता और तनाव द्वारा सार्वभौमिक रूप से चिह्नित होती है।

किशोरावस्था परिवर्तनकाल की अवस्था है जो मानव जीवन की अत्यंत महत्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है। यह उतार-चढ़ाव तथा तनाव का काल भी है। यह वह समय है जब व्यक्ति को किसी देश के भविष्य के रूप का आकार दिया और ढाला जा सकता है। किशोर आदर्शवादी

होते हैं और जो कुछ भी वे करते हैं उसमें वे अच्छा प्रदर्शन करने की तीव्र इच्छा और ईमानदारी से प्रेरित होते हैं। इस समय दिशा की कमी, उचित और सही मार्गदर्शन की कमी और व्यर्थ भावना युक्त विभिन्न गतिविधियां निराशा और भ्रम का एक बड़ा कारण हो सकती हैं। किसी भी कार्यक्रम और गतिविधियों में सार्थक या रचनात्मक भागीदारी के अभाव में किशोर कुछ विकृत समस्याओं का प्रदर्शन कर सकते हैं जैसे स्कूल ना जाना, स्कूल जाने पर कक्षा में उपस्थित ना होना, अवांछनीय व्यवहार से कक्षा की गतिविधियों / वातावरण को विचलित करना, कैंटीन, सिनेमा,ऑनलाइन खेलों आदि में समय बिताना, बिना किसी अर्थ के इधर-उधर घूमना, विभिन्न असामाजिक गतिविधियों में लिप्त रहना जैसे नशीली दवाओं का सेवन और अपराध आदि। किशोर मुखर क्रिया से भरे होते हैं, किशोरावस्था मे इनकी शारीरिक शक्ति भी शिखर पर होती है। कई आधुनिक समाज के दबावों के अधीन होकर ये अवांछित कार्य करने लगते हैं। किशोर शारीरिक वृद्धि और विकास के साथ होने वाले मनोवैज्ञानिक तनाव के अलावा अपने शैक्षणिक कैरियर में भी तनाव से गुजरता है। वृद्धि और विकास के इस स्तर पर वे विभिन्न क्षेत्रों जैसे शिक्षा, गृह जीवन, सामाजिक जीवन, भविष्य की संभावना, वित्तीय समस्याएं, धर्म और स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न समस्याओं का सामना करते हैं।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी:

- किशोरावस्था में बाह्य वातावरण में परिवर्तन का प्रभाव जानेंगे;
- किशोरावस्था में पारिवारिक, पड़ोस के प्रभाव तथा मार्गदर्शन के सुझावों की जानकारी लेंगे;
- किशोरों में सहकर्मी दबाव तथा उससे निपटने हेतु युक्तियाँ एवं मार्गदर्शन के तरीकों को जानेंगे;
- किशोरावस्था में नशीले पदार्थों के सेवन के हानिकारक प्रभावों तथा इससे बचने हेतु मार्गदर्शन के तरीकों को जानेंगे;
- किशोरों में यौन शिक्षा के महत्व को जानेंगे;
- बाल अपराध, उसके कारणों, रोकथाम तथा सुधार के उपायों को जानेंगे।

11.3 किशोरावस्था के दौरान प्रमुख मुद्दे एवं मार्गदर्शन की आवश्यकता

11.3.1 बाह्य वातावरण में परिवर्तन

किशोरावस्था के बाह्य वातावरण में होने वाले परिवर्तन उसे प्रभावित करते हैं और किशोरावस्था में आंतरिक परिवर्तनों से प्रभावित भी होते हैं। ये बाहरी प्रभाव, जो संस्कृतियों और समाजों के बीच भिन्न होते हैं, में सामाजिक मूल्य और मानदंड और जीवन की इस अवधि की बदलती भूमिकाएं, जिम्मेदारियां, सम्बंध और अपेक्षाएं शामिल हैं। ये परिवर्तन परिवार, स्कूल और समुदाय के तात्कालिक वातावरण में किशोरों को प्रभावित करते हैं, लेकिन बढ़ते शहरीकरण, वैश्वीकरण और डिजिटल मीडिया तथा सामाजिक नेटवर्क तक पहुंच सहित कई व्यापक सामाजिक परिवर्तनों को भी दर्शाते हैं।

जबकि किशोर समान जैविक, संज्ञानात्मक और मनोसामाजिक विकास प्रक्रियाओं का अनुभव करते हैं, इन प्रक्रियाओं का समय और प्रभाव व्यक्तिगत विशेषताओं और उस वातावरण पर निर्भर करता है जिसमें वे रहते हैं, सीखते हैं, खेलते हैं और काम करते हैं।

किशोरावस्था में पारिवारिक प्रभाव

किशोरों के सर्वांगीण विकास पर परिवार का अत्यधिक प्रभाव होता है। कई पारिवारिक कारक हैं जो आसानी से देखे तथा मापे जा सकते हैं उदाहरण के लिए पारिवारिक आर्थिक स्थिति, पारिवारिक संबंध, परिवार में भाई-बहन आदि। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, परिवार को खुद भी बदलावों से गुजरना पड़ता है जो क्रमश: बच्चों पर माता-पिता के नियंत्रण का कम हो जाना से परिलक्षित होता है। बच्चे के विकास के क्रमिक चरणों से गुजरना हमेशा माता-पिता को पुनर्जीवित करता है जो प्रत्येक चरण के लिए उनके अपने अनसुलझे संघर्षों को विशिष्ट बनाता है। यदि माता-पिता को अपनी किशोरावस्था के दौरान संबंधित अनुभव नहीं होता है, तो अक्सर वे इसे बच्चे की किशोरावस्था के माध्यम से व्यावहारिक रूप से अनुभव करने की आवश्यकता महसूस करते हैं जिस कारण किशोर तनाव में आ जाते हैं जिससे माता-पिता से उनके सम्बंधों में निकटता की कमी देखी जा सकती है।

कई माता-पिता किशोरों पर अत्यधिक नियंत्रण रखने का प्रयास करते हैं जिसके परिणामस्वरूप कई बार किशोर विद्रोही स्वभाव के हो जाते हैं तथा अपराध की ओर अग्रसर हो जाते हैं। दूसरी स्थिति में अत्यधिक नियंत्रण के कारण किशोर का स्वभाव दब्बू हो जाता है और उनमें आत्मविश्वास की कमी हो जाती है। इसका प्रभाव उनके शारीरिक और मानसिक

विकास पर भी पड़ता है। ऐसे किशोर पढ़ाई में अपना मन नहीं लगा पाते तथा किसी भी कार्य को करने में संशय में रहते हैं कि उसके परिणामों से उसे माता-पिता द्वारा सजा मिल सकती है। माता-पिता के आपसी सम्बंधों का भी किशोरों पर प्रभाव पड़ता है। कई अध्ययनों से यह पता चला है कि सकारात्मक किशोरावस्था का विकास एकल अभिभावक परिवार के बजाय उन परिवारों में अधिक होता है जहाँ माता-पिता दोनों साथ में हों। माता-पिता के सम्बंध विच्छेद अथवा तलाक तथा मृत्यु का किशोरों के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर यह देखा गया है कि परिवार में मां का नौकरीपेशा होना किशोरियों के विकास को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है, जबकि किशोरों के विकास पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है।

माता-पिता का अच्छा स्वास्थ्य भी किशोरों पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

माता-पिता को अपने बच्चों को समझने की आवश्यकता

- **किशोरों को सुनें तथा विचार करें:** कई बार जब किशोर-किशोरियां अपनी समस्याओं को माता-पिता के साथ बांटते हैं तो वे उनको सलाह देना स्वयं का अधिकार समझते हैं। उनको सलाह देने से पहले यह सोच लेना चाहिए कि जो उन्होंने कहा है उस पर आपने अच्छी तरह से विचार कर लिया है। उनसे समस्याओं के बारे प्रश्न पूछ कर यह जाना जा सकता है।
- **निर्णायक न बनें:** युवाओं की ग्रहणशीलता बहुत अच्छी होती है तथा यदि माता-पिता एक निर्णायक की भांति व्यवहार करते हैं तो वे तुरंत समझ जाते हैं। इसके लिए माता-पिता को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि उनकी बातें बहुत आदर्शवादी तथा तर्कहीन न हों। उनको समझना चाहिए किशोर-किशोरियों के लिए शारीरिक परिपक्वता के साथ-साथ भावनात्मक एवं मानसिक परिपक्वता भी आवश्यक होती है।
- **अपने अनुभव उन पर न थोपें:** किशोर-किशोरियों की समस्याओं को हल करते समय उन्हें यह बिल्कुल न कहें कि उनमें अनुभव की कमी है। उनकी मदद करते समय माता-पिता को हमेशा अपने अनुभव उनसे बांटने की आवश्यकता नहीं है।
- **वास्तविकता तथा अभिनय के बीच अंतर करना:** जब परिवार में किशोर-किशोरी रहते हैं तो वास्तविक खतरों तथा नाटक के बीच अंतर को समझना बहुत आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में किसी पेशेवर विश्वसनीय व्यक्ति की मदद लेनी चाहिए जो कि

उचित सलाह दे सके। परंतु हर बात पर किशोरों पर झूठ बोलने का संदेह नहीं करना चाहिए अन्यथा वे सत्य बोलने से कतराने लगेंगे।

- **युवाओं की सोच चरमतावादी होती है:** प्रायः किशोर-किशोरियां अपनी समस्या को एक गंभीर समस्या समझते हैं तथा अनुभव की कमी के कारण वे नहीं जानते कि इस प्रकार की समस्याओं का सामना अन्य किशोर-किशोरियां भी करते हैं तथा इस अवस्था में ये एक सामान्य बात होती है। ऐसी स्थिति को परखकर उन्हें समुचित रूप से मार्गदर्शन देना माता-पिता का कर्तव्य है। यह किशोरों की निराशावादी सोच को घटाता है।

किशोर-किशोरियों में तनाव एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य समस्या है जिसे अक्सर अनदेखा किया जाता है। किशोरावस्था में कई प्रकार के परिवर्तन तेजी होते हैं। अधिकांश किशोर-किशोरियां यौवनकाल, साथियों के साथ परिवर्तित होते संबन्धों, स्कूल में नई जरुरतें, अपने आसपास के वातावरण में सुरक्षा के मुद्दे तथा पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण तनावग्रस्त होते हैं। किशोर-किशोरियों के तनाव के प्रति सचेत (ALERT) रहने में सहायक बातें:

- **संज्ञान लेना (Acknowledge):** इस बात को समझना आवश्यक है कि किशोरावस्था का तनाव वयस्क अवस्था में होने वाले तनाव से भिन्न होता है।
- **सुनना (Listen):** किशोर-किशोरियों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए तथा पता करना चाहिए कि माता-पिता के सहयोग करने पर वे कैसी प्रतिक्रिया करते हैं।
- **प्रोत्साहन (Encourage):** किशोर-किशोरियों को तनावगस्त परिस्थिति में अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।
- **मान्यता देना (Recognize):** इस बात को स्वीकार करना चाहिए कि किशोर-किशोरियां एक-दूसरे से अलग होते हैं जिसके कारण उनकी समस्यायें भिन्न-भिन्न होती हैं तथा उनसे लड़ने की क्षमता भी भिन्न होती है।
- **समय (Time):** माता-पिता को यह बात समझनी चाहिए कि इस अवस्था में किशोर-किशोरियां विभिन्न मुद्दों पर उनसे भिन्न राय रख सकते हैं।

किशोर-किशोरियों से व्यवहार एवं उनके मार्गदर्शन के तरीके

- **प्रशंसा:** माता-पिता को हमेशा अपने बच्चों के प्रदर्शन तथा सफलता पर उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। इससे माता पिता एवं बच्चों के बीच आपसी विश्वास बढ़ता है तथा वे अपनी बातों को बांटने में संकोच नहीं करते हैं।

- **चिंतन/वार्तालाप:** माता-पिता को किशोर-किशोरियों की चिंताओं तथा गतिविधियों को समझकर उनसे मित्रतापूर्वक चर्चा कर उन्हें समझाना चाहिए।
- **सीमायें:** माता-पिता को किशोर-किशोरियों के मामलों में एक सीमा तक ही हस्तक्षेप करना चाहिए।
- **व्यवहारिक कौशल:** किशोर-किशोरियां बहुत ही जटिल व्यवहार करते हैं; उनको सरल, स्पष्ट तथा कार्य करने लायक विकल्प उपलब्ध करवाना माता-पिता की जिम्मेदारी होती है।
- **मनोरंजन:** माता-पिता को अपने बच्चों के साथ समय बिताना चाहिए तथा उनके कार्यकलापों में रुचि लेनी चाहिए।

किशोरावस्था में आस-पड़ोस का प्रभाव

आमतौर पर यह देखा गया है कि परिवार के सदस्यों के अलावा अन्य वयस्कों से किशोरों का अलगाव उनकी मनोवैज्ञानिक परिपक्वता में विफलता का कारण बन सकते हैं। कमजोर सामाजिक नेटवर्क कुछ किशोरों को अपने स्वयं के विकासात्मक जरूरतों के लिए उपयुक्त वयस्कों से प्रेरित होने के अवसर को प्रतिबंधित करता है। सहानुभूति, अधिकार और नियंत्रण की क्षमता युक्त व्यक्तियों की किशोरों के आसपास कमी उनके विकास के लिए प्रतिकूल होती है विशेषकर उन किशोरों के जिनके माता-पिता अपने व्यक्तित्व के लक्षणों या संरचना के आधार पर सहानुभूति और नियंत्रण के क्षेत्र में कमजोर होते हैं। यह दोष कुछ किशोरों को एक तरफ तो आवेग नियंत्रण के संबंध में बहुत व्याकुल करता है, वहीं दूसरी तरफ यह कठोर बचाव के विकास को बढ़ावा देता है। वयस्क अवधि में ऐसे किशोरों को घर और कार्य क्षेत्र पर अपने अधिकार की अभिव्यक्ति के साथ समस्या हो सकती है।

कभी-कभी पड़ोस अत्यधिक उच्च जोखिम वाले संदर्भों का भी प्रतिनिधित्व करते हैं जैसे हिंसा, नशीली दवाओं के दुरुपयोग और अन्य समस्याएं जो युवा व्यक्तियों के अस्तित्व को खतरे में डालती हैं या समस्याग्रस्त व्यवहार में उनकी भागीदारी की संभावना को बढ़ाती हैं।

माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यों का यह कर्तव्य है कि वे इस संदर्भ में किशोरों का मार्गदर्शन करें। उन्हें सामाजिक रूप से मान्य एवं सही कृत्यों के बारे में समुचित पूर्व जानकारी दें जिससे घर से बाहर के वातावरण में किशोर उचित सामंजस्य बिठा सकें तथा सही-गलत की पहचान कर सकें। किशोर यह जान सके कि उसे किन कृत्यों या स्थितियों से उसे प्रेरणा लेनी है तथा कौन-सी स्थितियाँ गलत तथा अमान्य हैं जो उसके भविष्य को प्रतिकूल रूप से प्रभावित कर सकती हैं।

11.3.2 किशोरावस्था तथा सहकर्मियों का दबाव

सहकर्मियों का दबाव (Peer pressure) किशोरावस्था में अक्सर देखा जाता है। किशोरावस्था में बच्चे अपने दोस्तों, सहपाठियों को प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी यह सहकर्मी प्रभाव सकारात्मक होता है जिसमें एक बच्चा खेल से जुड़ी गतिविधियों में अधिक भाग लेने या पढ़ाई में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित होता है क्योंकि उसके दोस्त ऐसा कर रहे होते हैं। लेकिन कभी-कभी किशोर पर दोस्तों का गलत प्रभाव भी पड़ सकता है जिसकी वजह से बच्चे गलत चीजों का शिकार बन जाते हैं और अगर माता-पिता बच्चों पर ज़बरदस्ती करने की कोशिश करते हैं तो उसका विपरीत असर होता है। ऐसे में बच्चे का स्वभाव विद्रोही हो जाता है और वो अपने माता-पिता की बात नहीं सुनता। वे आक्रामक हो जाते हैं या माता-पिता से अपनी बातें छुपाने लगते हैं। किशोर अपने दोस्तों से काफी जल्दी प्रभावित हो जाते हैं क्योंकि वे दोस्तों से अलग रहकर अपना मज़ाक नहीं बनाना चाहते हैं। कई बार उत्सुकता के कारण भी किशोर दोस्तों से प्रभावित होने लगते हैं। सहकर्मियों के दबाव में किशोर निम्न सकारात्मक गतिविधियां करते हैं:

- वे स्कूल में नियमित हो जाते हैं।
- शैक्षणिक प्रदर्शन अच्छा हो जाता है।
- शिक्षा को पूरा करने या आगे की शिक्षा के लिए प्रेरणा मिलती है।
- खेल और अन्य पाठयक्रम गतिविधियों में भाग लेने में की प्रेरणा मिलती है।

परन्तु कभी कभी दोस्तों का गलत प्रभाव भी पड़ सकता है। सहकर्मियों के दबाव में वे निम्न नकारात्मक गतिविधियों में संलिप्त हो जाते हैं:

- धूम्रपान या तंबाकू/ हुक्का का सेवन।
- मादय पेयों जैसे शराब का सेवन।
- ड्रग्स लेना।
- अभिभावकों को बिना बताये स्कूल या कॉलेज छोड़ देना।
- परीक्षा में नकल करना।
- डेटिंग या वयस्क संबंधों में शामिल होना अथवा यौन अपराधों में संलिप्तता।
- वज़न कम करने की दवाइयों का अनुचित तरीके से सेवन करना।
- अस्वास्थ्यकर सौंदर्य या फैशन युक्तियों को अपनाने की कोशिश करना।

- कभी-कभी, छात्र अपने माता-पिता को फोन / लैपटॉप या महंगे गैजेट खरीदने के लिए मजबूर करते हैं क्योंकि उनके दोस्तों के पास वह होते हैं।

किशोरों में सहकर्मी दबाव से निपटने हेतु युक्तियाँ एवं मार्गदर्शन

1. **मना करना सीखें:** यदि किशोर को ऐसा प्रतीत हो कि उसका सहकर्मी या मित्र किसी ऐसी गतिविधि के लिए प्रेरित कर रहा है जो उसके लिए बिलकुल सही नहीं है, तो बिना डरे अपने मित्र को ऐसी गतिविधियों के लिए मना करना चाहिए।
2. **बड़ों से बात करें:** यदि सहकर्मियों द्वारा किशोर पर दबाव बढ़ता रहे, तो इस बारे में सबसे पहले उसे अपने माता-पिता के साथ या स्कूल में शिक्षकों और सलाहकारों से परामर्श करना चाहिए।
3. **नजरअंदाज करना सीखें:** यह आवश्यक नहीं कि किशोर अपने दोस्तों की सभी गतिविधियों में शामिल हों। यदि दोस्त हानिकारक गतिविधियों में शामिल हैं तो ऐसी घटनाओं से बचने के लिए उन्हें नजरांदाज करना बेहतर उपाय है।
4. **सही दोस्त चुनें:** यदि किशोर अपने किसी मित्र के साथ सहज महसूस नहीं करते तो ऐसी स्थिति में उसे ऐसे मित्र का चुनाव करना चाहिए जिसके साथ वह सहज महसूस करे।

सहकर्मी दबाव की स्थिति में किशोरों को नकारात्मक गतिविधियों से दूर करने हेतु अभिभावकों को निम्न बिंदुओं का ध्यान रखना चाहिए:

- अपने बच्चे से बात करें और उसे जीवन में सही निर्णय लेने में मदद करें। बच्चे से उसकी दिनचर्या, स्कूल और मित्रों के बारे में रोज पूछें जिससे वो आपसे अपने मन की बात खुलकर बता सके।
- अपने बच्चे को न बोलना भी सिखाएँ। उसे बताएं की उसे दोस्तों को खुश करने के लिए हर बात मानने की ज़रूरत नहीं है। वो अपने मन के अनुसार दोस्तों की बात मान सकता है या न भी कर सकता है।
- बच्चों को गलत आदतों और उनसे होने वाले नकारात्मक प्रभाव के बारे में समझाएं जैसे की सिगरेट पीने के नुकसान या शराब के स्वास्थ पर क्या दुष्प्रभाव होते हैं आदि जिससे कि यदि उनके दोस्त कभी उनको ऐसी गलत आदतों के लिए उकसाएँ तो वो उनको मना कर पाएं।

- अपने बच्चे को हमेशा यह विश्वास दिलाएँ की आप हमेशा उसके साथ हैं तथा उसे किसी भी परिस्थिति में अकेला नहीं छोड़ेंगे। ऐसा करने से वो अपनी बातों को आपसे नहीं छुपाएगा और उसका आत्मविश्वास भी बढ़ेगा।

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।
   a. माता-पिता द्वारा अत्यधिक नियंत्रण के कारण किशोर का स्वभाव दब्बू हो जाता है।
   b. किशोर-किशोरियों का अपनी समस्याएं बांटते समय माता-पिता को हमेशा उन्हें सलाह देनी चाहिए तथा आदर्शवादी बातें करनी चाहिए।
   c. किशोरावस्था में सहकर्मियों का दबाव सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों रूपों में हो सकता है।
   d. यदि सहकर्मियों द्वारा किशोर पर दबाव बढ़ता रहे, तो इस बारे में सबसे पहले उसे अपने माता-पिता से परामर्श करना चाहिए।

11.3.3 किशोरावस्था में नशाखोरी

आप पूर्व की इकाईयों में जान चुके है कि किशोरावस्था एक संक्रमण काल की अवस्था है जिसमें तेजी से हो रहे शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता चाहने लगता है तथा अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेना चाहता है। इस अवस्था में किशोरों को सब कुछ जानने की जिज्ञासा होती है तथा वह सब कुछ आजमाना चाहते हैं। जोखिम उठाना, बड़ी-बड़ी बातें सोचना, हर काम को करने के लिए तत्पर रहना विशेषकर जिसमें अधिक साहस की आवश्यकता हो तथा उन कार्यों को करना जिनके लिए मना किया जाता है, किशोरावस्था में अक्सर दृष्टिगत होते हैं। ये सभी विशेषताएं किशोरों को रचनात्मक अथवा गैर-रचनात्मक, दोनों में से किसी भी दिशा में ले जा सकती हैं। बेहतर मार्गदर्शन के अभाव में किशोर नकारात्मक कार्यों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं जिसकी वजह से किशोरों में नशीले/मादक पदर्थों के सेवन की आदत हो जाती है।

मादक पदार्थों का सेवन

मादक पदार्थों का सेवन जिसे ड्रग्स लेना भी कहते हैं, नशीले पदार्थों का नियमित रुप से सेवन है जिसमें व्यक्ति इन पदार्थों को अत्यधिक मात्रा में लेता है या ऐसे तरीकों से लेता है जो उसके

स्वयं के लिए अथवा अन्य लोगों के लिए हानिकारक होते हैं। मादक पदार्थों के अंतर्गत शराब, तंबाकू, ड्रग्स जैसे नशे वाले पदार्थ एवं अवसादक आदि सम्मिलित हैं।

- **शराब का सेवन**

शराब के सेवन से किशोर-किशोरियों में गंभीर सामाजिक, चिकित्सीय तथा व्यवहारिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इसके लक्षणों में प्रमुख हैं; शारीरिक निर्भरता, शारीरिक एवं मानसिक नियंत्रण खोना, सहनशीलता कम हो जाना, वजन बढ़ना, शरीर में कंपन होना, शराब के प्रभाव में दुर्घटना, चोट, हत्या या आत्महत्या।

मार्गदर्शन हेतु सुझाव

परिवार के सदस्य किशोर से प्रेमपूर्वक बात करें तथा ऐसी छवि बनायें जिससे कि वह उन पर विश्वास करे। शराब की लत लगने के कारणों को ढूँढने का प्रयास करें। उसे शराब के द्वारा स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों के बारे में बतायें तथा उसे शराब छोड़ने के लिए प्रेरित करें और यदि वह इस आदत को छोड़ने का इच्छुक है तो उसकी मदद करें। अधिक गम्भीर स्थिति में किशोर के लिए पुनर्वास केन्द्र या नशामुक्ति केंद्र में सम्पर्क करें जो इस आदत को छोड़ने में उनकी मदद कर सकते हैं।

- **तंबाकू का सेवन तथा धूम्रपान**

तंबाकू उत्पादों में निकोटिन तत्व पाया जाता है जिसके कारण लोग इसके आदि हो जाते हैं जो कि आगे चल कर एक आदत का रुप ले लेता है। लोग तंबाकू का सेवन विभिन्न रुपों में करते हैं जैसे कि धूम्रपान, अन्य पदार्थों के साथ मिला कर चबाना। शरीर द्वारा निकोटिन की अवशोषित मात्रा विभिन्न कारकों पर निर्भर करती है जैसे तंबाकू के प्रकार, मात्रा तथा सेवन की आवृत्ति। तंबाकू प्रयोग से कई रोग जैसे कैंसर, ह्रदय तथा रक्तवाहनियों के रोग, ह्रदयाघात, मृत शिशु का जन्म, गर्भावस्था में जटिलताएं, श्वास रोग आदि हो जाते हैं। किशोरों में इस जोखिमपूर्ण व्यवहार को अपनाने के कई कारण हो सकते हैं जैसे उत्सुकता, साथियों का दबाव, पारिवारिक समस्या, अवसाद, अल्प आत्मविश्वास तथा आसानी से उपलब्धता आदि।

नियमित धूम्रपान करने वाले वयस्कों में आधे से अधिक तम्बाकू का सेवन किशोरावस्था से प्रारम्भ कर देते हैं। इसके कई अल्प लक्षण हैं जैसे ह्रदय गति तथा रक्तचाप का बढ़ना, शरीर में कम्पन, रक्त नलिकाओं का संकुचित होना, रक्त आपूर्ति एवं ऑक्सीजन का प्रवाह घट जाना,

तनाव आदि। दीर्घकालीन प्रभावों में फेफड़ों, हृदय तथा रक्तवाहनियों के रोग प्रमुख रूप से देखे जाते हैं।

मार्गदर्शन हेतु सुझाव

उदाहरण प्रस्तुत करें: किशोर-किशोरियां जिनके माता-पिता धूम्रपान करते हैं उनको यह लत लगने की संभावना अधिक होती है। इसलिए ऐसे अभिभावकों का दायित्व है कि सर्वप्रथम वे स्वयं इस आदत को त्यागें।

ऐसी आदतों के आकर्षण को समझें: किशोरावस्था में उग्र स्वभाव, मित्रों के किसी विशेष समूह तथा फैशनेबल एवं स्वतंत्र दिखने की होड़ के कारण धूम्रपान की लत लग सकती है। ऐसे आकर्षण के हानिकारक प्रभावों को समझें।

किशोर-किशोरियों को इसकी निरर्थकता समझायें: धूम्रपान कोई सम्मोहक चीज नहीं है। उन्हें समझायें कि धूम्रपान गंदा तथा दुर्गंधयुक्त होता है। धूम्रपान से कई दुष्प्रभाव देखे जाते हैं जैसे सांस में बदबू, चेहरे पर धब्बे, कपड़ों तथा बालों से दुर्गंध, दातों में पीलापन आदि।

धूम्रपान के आर्थिक पहलू को समझाएं: किशोर-किशोरी को एक दिन में एक पैकेट धूम्रपान की कीमत हफ्तों, महीनों तथा साल के आधार गणना कर उसके आर्थिक प्रभाव को समझायें।

उन्हें इसके दीर्घकालीन परिणामों की जानकारी दें: अधिकांश किशोर-किशोरियां सोचते हैं कि कैंसर, हृदय रोग तथा उच्च रक्तचाप उन्हें नहीं हो सकता है। उन्हें उदाहरण जैसे उनके किसी प्रिय, मित्र, पड़ोसी तथा चर्चित हस्तियों के माध्यम से समझाएं।

धूम्रपान विरोधी कार्यक्रमों में शामिल हों: किशोरावस्था धूम्रपान के विरुद्ध सक्रिय भूमिका निभायें। स्थानीय तथा स्कूल स्तर पर होने धूम्रपान रोकथाम के कार्यक्रमों में प्रतिभाग करें।

11.3.4 एच0आई0वी0/एड्स

एच0आई0वी0 (HIV) का अर्थ है, ह्यूमन इम्यूनो डेफिशियन्सी वाइरस (Human immune deficiency virus)

एड्स (AIDS) का अर्थ है, एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिशियन्सी सिंड्रोम (Acquired immune deficiency syndrome)

एक्वायर्ड इम्यूनो डेफिशियन्सी अर्थात शरीर की मुख्य सुरक्षा प्रणाली के बाह्य रोग को उत्पन्न करने वाली संरचना से लड़ने में असमर्थता तथा सिन्ड्रोम का अर्थ है रोग अथवा लक्षणों का समूह।

यह एक विषाणु जनित रोग है जो धीरे-धीरे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को समाप्त कर शरीर की संक्रमण से लड़ने की क्षमता को समाप्त कर देता है। एच0आई0वी0 ग्रसित व्यक्ति में कई प्रकार के संक्रमणों को होने की संभावना अधिक होती है जैसे क्षय रोग (टी0बी0)। एच0आई0वी0 संक्रमण के कई माध्यम हैं जैसे विभिन्न प्रकार के यौन संपर्क, गर्भावस्था, प्रसव तथा स्तनपान के दौरान संक्रमित माँ से बच्चे को, संक्रमित रक्त तथा अन्य शारीरिक द्रवों से दूषित सुइयों के प्रयोग करने से आदि।

एच0आई0वी0 संक्रमण से बचने के लिए मार्गदर्शन

यौन मुद्दों पर परामर्श का उद्देश्य इससे जुड़े सभी पहलुओं को ध्यान में रखकर व्यक्ति के यौन जीवन को समझकर इसका यौन तथा प्रजनन स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों को जानना होता है। इस प्रकार मार्गदर्शन हेतु एक ऐसे वातावरण की आवश्यकता होती है जिसमें व्यक्ति अपनी यौन संबन्धों के विषय में खुलकर बता सके तथा उसे उपहास, भेदभाव तथा असम्मानित व्यवहार का भय न हो।

लैंगिकता एक संवेदनशील विषय है तथा इस विषय पर समदुाय में उपलब्ध बहुत कम तथा गलत जानकारी होने के कारण इसे गंभीरता से लेना चाहिए। यह आवश्यक है कि वह किशोर-किशोरियों में स्वयं निर्णय लेने की क्षमता विकसित हो। उन्हें उसके फायदे तथा नुकसान बतायें जाएं। यौन क्रियाओं में संलग्नता के विषय पर बात करते समय किशोर-किशोरियों को इसके फायदों (जैसे कि इससे वे स्वयं को किसी के निकट पाते हैं तथा अगला कदम उठाना चाहते हैं) के साथ ही साथ इससे जुड़े खतरों (जैसे यौन संचारित रोग, एड्स, भावनात्मक परिणाम) पर भी विचार करना चाहिए। किशोर-किशोरियों को यह परामर्श देना आवश्यक है कि यदि यौन गतिविधियों के दौरान उचित सावधानी न रखी जाए तो इनसे क्या-क्या खतरे तथा परिणाम हो सकते हैं।

11.3.5 किशोरावस्था में यौन शिक्षा

किशोरावस्था में हार्मोन सम्बंधी परिवर्तनों के कारण उतेजना, साहस, भावुकता और काम के प्रति उत्सुकता स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है। इस अवस्था में शरीर भी यौन क्रियाओं के लिए परिपक्व होने लगता है। वास्तव में भूख, प्यास तथा नींद की भाँति ही यौन आवश्यकता भी जीवन में जरूरी है। यौन भावना बालकों के व्यक्तित्व विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका

निभाती है। यदि इस अवस्था में होने वाले परिवर्तनों को सही तरीके से नहीं समझा जाए तो किशोर-किशोरियां गलत रास्ते या भटकाव भरे जीवन में जा सकते हैं।

यौन शिक्षा के माध्यम से किशोरों को किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक तथा सामाजिक परिवर्तनों, यौन एवं यौन संक्रमित रोगों की वैज्ञानिक जानकारी दी जानी आवश्यक है जिससे उनका शरीर स्वस्थ रहे और वे अज्ञानता तथा भ्रमों से बच सकें। यौन शिक्षा का अर्थ केवल शारीरिक संसर्ग से सम्बन्धित नहीं है अपितु यौन शिक्षा के माध्यम से यौन जनित विभिन्न जिज्ञासाओं, विभिन्न यौन जनित रोगों की जानकारी और उससे बचने के उपायों के प्रति जागरूक करना है। यदि समुचित तरीके से किशोर एवं किशोरियों को यौन सम्बन्धी सलाह दी जाए तो यौन रोगों तथा यौन अपराधों में भी कमी आ सकती है। यौन शिक्षा उन्हें अपने शरीर के प्रति, यौन सम्बन्धों के प्रति, रिश्तों की गरिमा के प्रति सचेत करती है। यौन शिक्षा से तात्पर्य बालक एवं बालिकाओं को लैंगिक भेद एवं यौन सम्बंधी हर पहलू के बारे में सही-सही जानकारी देकर उसके प्रति एक स्वस्थ मनोवृत्ति कायम करना है जिससे वे वयस्कावस्था में स्वस्थ, तनावरहित सामाजिक जीवन व्यतीत कर सकें।

किशोरों के लिए यौन शिक्षा का महत्व

- यौन शिक्षा आजीवन यौन स्वास्थ्य के लिए एक मजबूत आधार बनाती है।
- बेहतर यौन स्वास्थ्य को न केवल रोग या दुर्बलता की कमी बल्कि कामुकता के सम्बन्ध में शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक और सामाजिक कल्याण के रूप में भी माना जाता है।
- इस अवस्था में किशोर अपने शारीरिक व्यवहार में विकास के बदलावों का अनुभव करते हैं। बेहतर समझ के लिए यौन शिक्षा आवश्यक है।

किशोरावस्था में यौन शिक्षा सम्बंधी मार्गदर्शन हेतु सुझाव

परिवार में माता-पिता व अन्य वयस्क सदस्यों को किशोरों से बिना किसी हिचकचाहट के यौन विषयों पर बात करनी चाहिए और उचित उदाहरण देकर उन्हें यौन विकृति तथा कुप्रभावों से अवगत कराना चाहिए। विद्यालयों में यौन शिक्षा को पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बनाना चाहिए। किशोरों में यौन शिक्षा इस विषय से सम्बंधित फिल्मों के माध्यम से भी दी जा सकती है। किशोरों के मामले में ये तरीका काफी प्रभावी हो सकता है।

11.3.6 बाल अपराध

परिभाषा

जब किसी बालक द्वारा कोई कानून-विरोधी या समाज विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे बाल अपराध कहते हैं। कानूनी दृष्टिकोण से बाल अपराध 8 वर्ष से अधिक तथा 16 वर्ष से कम आयु के बालक द्वारा किया गया कानूनी विरोधी कार्य है जिसे कानूनी कार्यवाही के लिये बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है। बाल अपराध को कई रूप से परिभाषित किया गया है:

सिरिल बर्ट के अनुसार, ‘‘तकनीकी दृष्टि से एक बालक को उस समय अपराधी माना जाता है जब उसकी समाज विरोधी प्रवृत्तियाँ इतनी गम्भीर हो जाएं कि उसके विरूद्ध शासन वैधानिक कार्यवाही करे या कार्यवाही कराना आवश्यक हो जाए’’।

मार्टिन न्यूमेयर के अनसुार, ‘‘एक बाल अपराधी निर्धारित आयु से कम आयु का वह व्यक्ति है जो समाज विरोधी कार्य करने का दोषी होता है और जिसका दुराचार कानून का उल्लघंन माना जाता है’’।

एच. एच. लाऊ के अनुसार, ‘‘बाल अपराध किसी ऐसे बालक द्वारा किया गया विधि विरोधी कार्य है जिसकी अवस्था कानून में बाल अवस्था की सीमा में रखी गयी है और जिसके लिए कानूनी कार्यवाही तथा दंड व्यवस्था वयस्कों से भिन्न है’’।

मावरर ने बाल अपराध की परिभाषा इस प्रकार दी है, ‘‘वह व्यक्ति जो जान बूझकर इरादे के साथ तथा समझते हुए उस समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है जिससे उसका संबंध है’’।

हीली के अनुसार, ‘‘वह बालक जो समाज द्वारा स्वीकृत आचरणों का पालन नहीं करता है, बाल अपराधी कहलाता है’’।

बाल अपराध के कारण

बाल अपराध के कारणों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

1. वंशानुक्रम सम्बन्धी कारण

कई मनोवैज्ञानिकों के अनुसार बाल अपराध के आनुवांशिक कारण हो सकते हैं जैसे स्वास्थ्य का ठीक न होना, शारीरिक विकृति, कम विकसित शरीर। ऐसे बालक असमान्य व्यवहार प्रदर्शित करते हैं जिस कारण वह अपराधों की ओर अग्रसर होते हैं।

2. वातावरण सम्बन्धी कारण

ये कारक जन्मजात नहीं होते। बालक जिस वातावरण में रहता है, ये कारक वहाँ से उत्पन्न होते हैं जो बालक को आपराधिक प्रवृत्ति की ओर ले जाते हैं।

वातावरण सम्बन्धी कारक निम्नलिखित हैं:

- **सामाजिक कारण**

किशोरापराध के कारणों में सर्वाधिक व्यापक कारण सामाजिक कारण हैं। इन कारणों में मुख्य हैं:

1. परिवार: किशोरापराध के कारणों में इलियट व मैरिल ने दूषित पारिवारिक प्रभाव को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है। परिवार से सम्बंधित मुख्य परिस्थितियां हैं:

परिवार में घनिष्ठता न होना: परिवार का तात्पर्य केवल कुछ व्यक्तियों का इकट्ठा रहना मात्र नहीं है बल्कि उनका परस्पर घनिष्ठ संबंध है। घनिष्ठता की अनुपस्थिति में परिवार विश्रृंखलित हो जाते हैं जिससे बालक अपराधों की ओर आकृष्ट होते हैं।

माता-पिता का व्यवहार: जब बालक को माता-पिता का प्रेम नहीं मिलता तथा बात-बात में कठोर दण्ड मिलता है तो उसमें विद्रोह और क्षोभ बढ़ता है जिससे वह अपराध की ओर अग्रसर हो जाता है।

अपराधी भाई-बहनों का प्रभाव: केवल माता-पिता व बालकों के संबंध का ही नहीं बल्कि भाई-बहनों के व्यक्तित्व का भी बालकों के व्यक्तित्व पर प्रभाव पड़ता है। यदि बड़े भाई-बहन अपराधिक प्रवृत्ति के होते हैं तो उसका असर छोटे भाई-बहनों पर अवश्य पड़ता है।

माता-पिता का चरित्र व आचार: माता-पिता के चरित्र और आचार का बालकों के व्यक्तित्व पर बहुत प्रभाव पड़ता है। माता-पिता द्वारा झूठ बोलना, असामाजिक व्यवहार करना, यौन अनैतिकता, चोरी करना आदि का बालकों के अपराधी हो जाने पर बहुत योगदान होता है।

2. विद्यालय: परिवार के बाद बालक के व्यक्तित्व पर उसके विद्यालय का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। इसके अंतर्गत स्कूल से भागना, चोरी करना तथा यौन अपराध प्रमुख अपराध हैं। इसके प्रमुख कारण हैं, माता-पिता द्वारा उपेक्षा, अध्यापक द्वारा दण्ड, बालक का पढ़ने-लिखने में कमजोर होना।

3. बुरी संगति: मनुष्य के व्यवहार पर उसके साथियों का काफी असर पड़ता है। बालक की संगति यदि अपराधी प्रवृत्ति के लोगों की है, ऐसी स्थिति में वह भी अपराधी बन जाता है।

4. मनोरंजन: बालकों के विकास के लिए मनोरंजन के साधनों का भी बहुत महत्व है। विद्यालय के बाद शेष समय में स्वस्थ क्रियाएं करने की प्रेरणा उन्हें अच्छे वातावरण में ही मिल सकती है। खाली समय का सदुपयोग न होना भी अपराधी व्यवहार को प्रेरित करता है। बालकों के सामाजीकरण और नैतिक प्रशिक्षण में खेलकूद प्रमुख तत्व हैं।

5. स्थानान्तरण: स्थानान्तरण का भी बालकों के व्यक्तित्व एवं विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। नए परिवेश में समायोजन में बालक को परेशानियों का सामना करना पड़ता है जिस कारण वे बुरी संगत में पड़कर अपराध की ओर प्रेरित हो सकते हैं।

6. सामाजिक विघटन: सामाजिक विघटन में व्यक्ति का भी विघटन होता है। समाज के विघटित होने पर अपराधियों की संख्या बढ़ जाती है। अत: सामाजिक विघटन भी बाल अपराध का एक कारण है। आधुनिक औद्योगिक समाज में समन्वय और समानता का अभाव होता है। इससे तनाव बढ़ता है और बालक अपराध की ओर बढ़ते हैं।

- **मनोवैज्ञानिक कारण**

कई मनोवैज्ञानिक कारणों से भी बालक अपराधिक प्रवृत्ति का बन जाता है। इन कारणों में प्रमुख हैं:

1. मानसिक रोग: मानसिक रोगग्रस्त व्यक्ति को परिवार में उचित देखभाल एवं स्नेह की आवश्यकता होती है। इन सबके अभाव में वह अपराध के लिए प्रेरित होता है।

2. बौद्धिक दुर्बलता: बालक की बौद्धिक दुर्बलता अपराध का कारण बन सकती है।

3. व्यक्तित्व के लक्षण: व्यक्तित्व के लक्षणों और अपराध की प्रवृत्ति में भी बहुत निकट संबंध पाया गया है। व्यक्तित्व व्यक्ति के परिवेश से अनुकूलन करने का ढंग है। अपराधी बालक इस अनुकूलन में अपराधी कार्यों का प्रयोग करते हैं।

4. संवेगात्मक अस्थिरता: संवेगात्मक अस्थिरता अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। प्रेम और सहानुभूति की कमी संवेगात्मक असुरक्षा, कठोर अनुशासन, हीनता तथा अपर्याप्ता की भावना और विद्रोह की प्रतिक्रिया बालकों के व्यक्तित्व को असन्तुलित बना देती है जिससे बालक को अपराधी व्यवहार की प्रेरणा मिलती है।

- **आर्थिक कारण**

आर्थिक कारण एवं बाल अपराधों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में विद्वानों में मतभेद है परन्तु यदि भारतीय सन्दर्भों में देखा जाए तो आर्थिक दशा और बाल अपचार में घनिष्ठ सम्बन्ध देखा गया है। आर्थिक कारणों में प्रमुख हैं:

1. निर्धनता: बाल अपचार का एक प्रमुख कारण गरीबी है। गरीबी के कारण माता-पिता अपने बच्चों की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाते हैं। परिणामस्वरूप बच्चे पैसे के लिए चोरी, पॉकेटमारी, राहजनी और हेराफेरी आदि असामाजिक कार्य करने लगते हैं। निर्धनता के कारण बच्चों का अचेतन मन उन सभी सुविधाओं को पाने के लिये उत्प्रेरित रहता

है जिन्हें सम्पन्न परिवारों के बच्चे भोग रहे होते हैं। इसके लिये वह अवैध तरीके अपनाता है और अपराधी कार्य करने लगता है।

2. भुखमरी: निर्धनता के कारण लोग अपना भरण पोषण उचित ढंग से नहीं कर पाते हैं। अत: उन्हें भुखमरी का सामना करना पड़ता है। भोजन के लिए बालक अपराध की ओर अग्रसर होता है।

3. बाल मजदूरी: यह कारण भी निर्धनता से जुड़ा हुआ है। निर्धनता के कारण परिवार के छोटे बालकों को अपनी आवश्यकताओं के लिए छोटे-मोटे काम करने पड़ते हैं। निर्धन परिवारों के बच्चे होटलों, दुकानों और धनी परिवारों में काम करते हैं। फलस्वरूप उनमें हीन भावनाएं और मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। ऐसी स्थिति में रहने वाले बालकों में नशाखोरी, धूम्रपान, जुआ, चोरी और वैश्यावृति की बुरी आदतें पड़ जाती हैं।

4. पारिवारिक संघर्ष: अध्ययनों से ज्ञात होता है कि बाल अपराधियों का पारिवारिक जीवन संगठित और शक्तिपूर्ण नहीं होता है। ऐसे परिवार जहाँ तलाक, बंटवारा, परित्याग एवं माता-पिता की मृत्यु के फलस्वरूप वातावरण दूषित हो गया हो, वहाँ बालकों में अपराधिक प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है। ऐसे परिवारों में बच्चों का संवेगात्मक संतुलन बिगड़ जाता है और उनका सामाजिक विकास नहीं हो पाता।

बाल अपराध की रोकथाम

बाल अपराधों की रोकथाम हेतु यह आवश्यक है कि परिवार, विद्यालय एवं समाज द्वारा इस दिशा में सामूहिक प्रयास किए जाएं। बाल अपराधों की रोकथाम हेतु निम्न उपाय किए जा सकते हैं:

- **समुचित पालन पोषण:** विभिन्न अध्ययनों में यह पाया गया है कि अपराध को प्रेरित होने का मूल कारण बालक का समुचित पालन पोषण न होना है। परिवार में पर्याप्त स्नेह और प्यार न पाने से बालक का भावनात्मक विकास नहीं हो पाता। अत: प्रेम का बालक के जीवन में बहुत महत्व है। मारपीट और अपमान बहुधा बालक को अपराध के रास्ते पर ले जाते हैं। बालक की जिज्ञासाओं के समाधान में भी सावधानी की आवश्यकता होती है। कोई बात पूछने पर यदि बालक को झिड़क दिया जाए या उससे झूठ बोल दिया जाए तो इसका बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। आवश्यक यौन शिक्षा के अभाव में अनेक बालक-बालिकाएं बाल अपराध की राह पर अग्रसर हो जाते है। माता-पिता बालक के

सामने आदर्श होते हैं। उनके आपस में झगड़ों और तनाव का भी बालक के मन पर बुरा प्रभाव होता है।

- **स्वस्थ मनोरंजन:** मनोरंजन का व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। स्वस्थ मनोरंजन के अभाव में बालक की अपराधी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलता है। दोषपूर्ण चलचित्र, अश्लील साहित्य तथा भ्रामक विज्ञापन आदि बालक को अपराधों की ओर प्रेरित करते हैं। अत: अपराधों को रोकने के लिए स्वस्थ तथा सुसंस्कृत मनोरंजन की सामग्रियों का उपलब्ध होना अत्यंत आवश्यक है। सरकार को भी इस दिशा में आवश्यक कदम उठाने चाहिए।
- **समुचित शिक्षा:** परिवार के बाद बालक पर विद्यालय का प्रभाव पड़ता है। अत: बाल अपराध को रोकने के लिए बालक की समुचित शिक्षा का प्रबंध होना जरूरी है। समुचित शिक्षा में शिक्षक का व्यक्तित्व, विद्यालय का पाठ्यक्रम, शिक्षा की विविधता और पाठ्यक्रम के अतिरिक्त कार्यक्रमों का बहुत महत्व होता है। शिक्षकों को बाल मनोविज्ञान का विशेष ज्ञान होना चाहिए ताकि वे बालकों के सम्मुख अपने विषय को मनोरंजक ढंग से उपस्थित कर सकें और बालक में विषय के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकें। शिक्षक का आचरण और व्यवहार सुधरा हुआ होना चाहिए क्योंकि कई बालक अपने शिक्षकों को अपना आदर्श मानते हैं। विद्यालय में शिक्षकों को शारीरिक दण्ड का प्रयोग यथासम्भव नहीं करना चाहिए। पढ़ाई में कमजोर बालकों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि उनके अपराधी बनने की संभावना अधिक रहती है। विद्यालय में खेलकूद, नाटक, वाद विवाद तथा विभिन्न प्रकार की प्रतयोगिताओं के द्वारा बालक की विभिन्न प्रवृत्तियों को अभिव्यक्त होने का अवसर मिलने से उसकी अपराध की ओर जाने की संभावना कम हो जाती है। सामान्य शिक्षा के साथ-साथ बालकों को शारीरिक तथा नैतिक शिक्षा की भी आवश्यकता होती है। स्कूल से भागना अपराध की पहली सीढ़ी है, अत: स्कूल का वातावरण तथा शिक्षा पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि बालक विद्यालय से न भागें।
- **मनोवैज्ञानिक परामर्श की सुविधा:** मनोवैज्ञानिक दोष अपराध के महत्वपूर्ण कारण हैं। अत: बालकों को अपराधों से रोकने के लिए उनके मनोवैज्ञानिक दोषों का उपचार अत्यंत आवश्यक है। इसके लिए विद्यालयों में मनोवैज्ञानिक परामर्श की सुविधा होनी चाहिए

जिससे बालक की परेशानियों तथा स्थितियों के विषय में उचित जानकारी मिल सके तथा उन्हें उपयुक्त परामर्श मिल सके।

बाल अपराध के उपचार

बाल अपराधियों का उपचार करने के लिए मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सा एवं मनोविश्लेषणत्मक प्रविधियों का प्रयोग करना चाहिए। ये प्रविधियाँ निम्न हैं:

- **मनोवैज्ञानिक प्रविधि:** मनोवैज्ञानिक प्रविधियों के द्वारा बाल अपराधों के कारणों का पता लगाया जाता है तथा उनका विश्लेषण कर उपचार के उपाय सुझाये जाते हैं। इस प्रविधि के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है:

वातावरण उपचारः इस उपचारात्मक विधि के द्वारा सामान्यतः बालक के घर एवं स्कूल के वातावरण को सुधारने का प्रयास किया जाता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बालकों को खराब वातावरण से हटाकर अच्छे वातावरण में भेजने से उनकी प्रवृत्ति में सुधार होता है।

पुनर्शिक्षा: अपराधी बालक असामाजिक क्रियाएं पूर्व ही में सीख चुका होता है। पुनर्शिक्षा का उद्देश्य बालक को पारिवारिक संबंधों एवं यौन समस्याओं के विषय में सही जानकारी देना और उसका मार्ग प्रदर्शित करना है। बालक की समस्याओं के सम्बंध में वैचारिक स्पष्टता उत्पन्न करना पुनर्शिक्षा का उद्देश्य है।

अनिर्देशित विधि: पारस्परिक विचार- विमर्श एवं वार्ता के द्वारा बालक में अवदमित इच्छाओं एवं संवेगों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अवसर देना इस विधि के अंतर्गत निहित है। इस विधि में मनोवैज्ञानिक बालक के साथ घुल-मिल जाता है। इसी बीच वह बालक की इच्छाओं, भावनाओं एवं संवेगों को जान लेता है और तदनुरूप उपचार के प्रयास किये जाते हैं।

सुझाव और परामर्श: बाल-अपराधियों को सकारात्मक सुझाव देकर सही मार्ग पर लाया जा सकता है। समय-समय बालकों को उचित परामर्श देकर उनकी समस्याओं का निवारण किया जा सकता है।

प्रोत्साहन: मनोवैज्ञानिक बाल अपराधियों को भविष्य में अपराध न करने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह प्रोत्साहन तार्किक होना चाहिए जिससे इसका बालक पर उचित प्रभाव पड़ सके।

- **मनोविश्लेषण प्रविधि:** बाल अपराध की मनोविश्लेषणात्मक प्रविधियों के द्वारा बालक के अचेतन मन में छिपे मनोभावों, संवेगों तथा इच्छाओं को समझने का प्रयास किया जाता है।

इस प्रकार बालक के अपराधी व्यवहार के कारण जान कर, उनका विश्लेषण कर उपचारात्मक उपाय सुझाये जाते हैं।

- **मनोचिकित्सा प्रविधि:** मनोचिकित्सक बाल अपराधियों का उपचार अपनी पद्धति से करते हैं और इसके लिए खेल पद्धति सबसे उपयोगी विधि है। खेल में बालक खुलकर व्यवहार करता है। बालक अपनी दमित इच्छाओं और संवेगों का प्रदर्शन खेल में करता है। मनोचिकित्सक बालक के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करता है और इस प्रकार उसके साथ संवेगात्मक संबंध स्थापित करके उसे अपने विश्वास में ले लेता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
   a. तंबाकू उत्पादों में .... तत्व पाया जाता है जिसके कारण लोग इसके आदि हो जाते हैं।
   b. एच0आई0वी0 (HIV) का अर्थ है; ....।
   c. किशोरावस्था में .... परिवर्तनों के कारण उतेजना, साहस, भावुकता और काम के प्रति उत्सुकता स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होती है।
   d. .... अपराध के मनोवैज्ञानिक कारणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।
   e. ऐसे परिवार जहाँ तलाक, बंटवारा, परित्याग एवं माता-पिता की मृत्यु के फलस्वरूप वातावरण दूषित हो गया हो, वहाँ बालकों में अपराधिक प्रवृत्ति .... पाई जाती है।

11.4 सारांश

किशोरावस्था के चरण को मोटे तौर पर यौवन की शुरुआत से वयस्कता तक की अवधि के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। किशोरावस्था के दौरान एक व्यक्ति यौन परिपक्वता तक पहुंचता है। किशोरावस्था बचपन के अंत और तेजी से हो रहे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक वृद्धि और विकास के मध्य का चरण है। किशोरावस्था में दिशा की कमी, उचित और सही मार्गदर्शन की कमी और व्यर्थ भावना युक्त विभिन्न गतिविधियां निराशा और भ्रम का एक बड़ा कारण हो सकती हैं। किशोरावस्था के बाह्य वातावरण में होने वाले परिवर्तन उसे प्रभावित करते हैं और किशोरावस्था में आंतरिक परिवर्तनों से प्रभावित भी होते हैं। ये बाहरी

प्रभाव, जो संस्कृतियों और समाजों के बीच भिन्न होते हैं, में सामाजिक मूल्य और मानदंड और जीवन की इस अवधि की बदलती भूमिकाएं, जिम्मेदारियां, सम्बंध और अपेक्षाएं शामिल हैं। ये परिवर्तन परिवार, स्कूल और समुदाय के तात्कालिक वातावरण में किशोरों को प्रभावित करते हैं, लेकिन बढ़ते शहरीकरण, वैश्वीकरण और डिजिटल मीडिया तथा सामाजिक नेटवर्क तक पहुंच सहित कई व्यापक सामाजिक परिवर्तनों को भी दर्शाते हैं। सहकर्मियों का दबाव (Peer pressure) किशोरावस्था में अक्सर देखा जाता है। किशोरावस्था में बच्चे अपने दोस्तों, सहपाठियों को प्रसन्न करने की कोशिश करते हैं। कभी-कभी यह सहकर्मी प्रभाव सकारात्मक होता है जिसमें एक बच्चा खेल से जुड़ी गतिविधियों में अधिक भाग लेने या पढ़ाई में बेहतर प्रदर्शन करने के लिए प्रोत्साहित होता है क्योंकि उसके दोस्त ऐसा कर रहे होते हैं। लेकिन कभी-कभी किशोर पर दोस्तों का गलत प्रभाव भी पड़ सकता है जिसकी वजह से बच्चे गलत चीजों का शिकार बन जाते हैं और अगर माता-पिता बच्चों पर ज़बरदस्ती करने की कोशिश करते हैं तो उसका विपरीत असर होता है। जोखिम उठाना, बड़ी-बड़ी बातें सोचना, हर काम को करने के लिए तत्पर रहना विशेषकर जिसमें अधिक साहस की आवश्यकता हो तथा उन कार्यों को करना जिनके लिए मना किया जाता है, किशोरावस्था में अक्सर दृष्टिगत होते हैं। ये सभी विशेषताएं किशोरों को रचनात्मक अथवा गैर-रचनात्मक, दोनों में से किसी भी दिशा में ले जा सकती हैं। बेहतर मार्गदर्शन के अभाव में किशोर नकारात्मक कार्यों की ओर अधिक आकर्षित होते हैं जिसकी वजह से किशोरों में नशीले/मादक पदर्थों के सेवन की आदत हो जाती है। यौन शिक्षा के माध्यम से किशोरों को किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक तथा सामाजिक परिवर्तनों, यौन एवं यौन संक्रमित रोगों की वैज्ञानिक जानकारी दी जानी आवश्यक है जिससे उनका शरीर स्वस्थ रहे और वे अज्ञानता तथा भ्रमों से बच सकें। बच्चों को शैशवकाल से ही माता-पिता के स्वस्थ संरक्षण, स्नेह, अनुशासन, अच्छी संगति तथा स्वस्थ सामाजिक वातावरण की आवश्यकता होती है। इन सब के न मिलने पर बालक में समायोजन समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं जिससे वे अपराधों की ओर बढ़ जाते हैं। इस तरह के बच्चे अधिकतर अपराधिक गतिविधियों में शामिल हो जाते हैं जिसे बाल अपराध के रूप में जाना जाता है। बाल अपराधों की रोकथाम हेतु कई उपाय किए जा सकते हैं जैसे समुचित पालन-पोषण, स्वस्थ मनोरंजन, समुचित शिक्षा तथा मनोवैज्ञानिक परामर्श की सुविधा।

11.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. सही अथवा गलत बताइए।

a. सही
b. गलत
c. सही
d. सही

अभ्यास प्रश्न 2

1. रिक्त स्थान भरिए।
    a. निकोटिन
    b. ह्यूमन इम्यूनो डेफिशियन्सी वाइरस
    c. हार्मोन सम्बंधी
    d. संवेगात्मक अस्थिरता
    e. अधिक

11.6 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किशोरावस्था में पारिवारिक प्रभाव के बारे में चर्चा करें। किशोर-किशोरियों के तनाव के प्रति सचेत (ALERT) रहने में सहायक बातें क्या हैं?
2. किशोरों में सहकर्मी दबाव से निपटने हेतु युक्तियाँ एवं मार्गदर्शन के तरीकों की व्याख्या कीजिए।
3. किशोरावस्था में नशाखोरी के बारे में टिप्पणी कीजिए।
4. किशोरावस्था में यौन शिक्षा के महत्व को समझाइए तथा यौन शिक्षा सम्बंधी मार्गदर्शन के बारे में लिखिए।
5. बाल अपराध के कारणों तथा रोकथाम के उपायों की चर्चा कीजिए।

11.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

- राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन, राष्ट्रीय किशोर स्वास्थ्य कार्यक्रम, किशोर स्वास्थ्य परामर्शदाताओं हेतु प्रशिक्षण मैनुअल।

- कमला भसीन, "किशोरावस्था से तीसरी मुलाकात; चलो एचआईवी के खतरे को वरदान बनाएं", United Nations Population Fund, Lodi Estate, New Delhi.
- कमला भसीन, "किशोरावस्था से चौथी मुलाकात; नशा बड़ा या किशोर-किशोरी?", United Nations Population Fund, Lodi Estate, New Delhi.
- HEALTH FOR THE WORLD'S ADOLESCENTS; A second chance in the second decade. World Health Organization. https://apps.who.int/adolescent/second-decade
- V. Rudan, Adolescent Development and External Influences. Journal of the Croatian Anthropological Society. 24 (2000) 2: 585–596.
- Ravindra Kumar Dubey, किशोरावस्था में यौन शिक्षा की आवश्यकता: एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। International Journal of Advanced Research and Development. Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 563-564.

खण्ड 4: प्रारम्भिक एवं मध्य वयस्कता

इकाई 12: प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता: विशेषताएँ व विकास

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 वयस्कता में शारीरिक विकास
    12.3.1 प्रारम्भिक वयस्कता (20-30 साल)
    12.3.2 मध्य वयस्कता (40-50 की आयु)
12.4 मनोवैज्ञानिक परिवर्तन
    12.4.1 प्रारम्भिक वयस्कता (20-30 आयु)
    12.4.2 मध्य वयस्कता (40-50 साल)
12.5 प्रारंभिक और मध्य वयस्कता में संज्ञानात्मक बदलाव
    12.5.1 प्रारम्भिक/युवा वयस्कता में संज्ञानात्मक बदलाव
    12.5.2 मध्य वयस्कता में संज्ञानात्मक बदलाव
12.6 प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता में सामाजिक परिवर्तन
12.7 सारांश
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 पारिभाषिक शब्दावली
12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

जैसे-जैसे हमारी आयु बढ़ती है, हमारे शरीर में शारीरिक बदलाव आते हैं। इसी तरह प्रारम्भिक और मध्य-वयस्क आयु में भी कई बदलाव आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति कई कारकों के आधार पर आयु- संबंधित परिवर्तनों का अनुभव करता है। शरीर में जैविक कारक जैसे आणविक और कोशिकाओं में परिवर्तन को हम प्राथमिक कारक मानते हैं जो आयु को बढ़ाते है तथा हमें

बुढापे की ओर ले जाते हैं। इसके अलावा आयु बढ़ने के और भी नियंत्रणीय कारक होते है, जैसे कि शारीरिक व्यायाम की कमी और खराब खान-पान, जिसे हम माध्यमिक श्रेणी में रखते हैं। इस अध्याय में हम वयस्कों में होने वाले विकास व बदलाव के बारे में जानेंगे। वयस्कता की अवधि समाज द्वारा वयस्क के रूप में किसी के कर्तव्यों को निभाने की अपेक्षा से चिन्हित होती है। कुछ विशेष भूमिकाएं और रिश्ते जैसे परिवार और व्यायाम वयस्कता के प्रमुख मील के पत्थर है।

हमें अक्सर हमारे बुजुर्गों द्वारा हमारी आयु के अनुसार कार्य करने के लिए कहा गया जाता है। क्या आपने कभी सोचा है कि इसका क्या मतलब है? इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि एक निश्चित आयु के व्यक्तियों को किस प्रकार का कार्य करना चाहिए। वयस्कता में विकास की गति स्थिर हो जाती है और व्यक्ति समाज में अधिक ठोस भूमिकाओं के लिए तत्पर रहता है। हमेशा हमारी क्षमताओं और व्यवहारों में परिवर्तन जारी रहता है, क्योंकि हम न केवल जैविक विकास प्रक्रिया के कारण बड़े होते हैं, बल्कि हमारी समझ और हमारा पर्यावरण के साथ बातचीत करने के तरीके के कारण भी बढ़ते हैं। भारतीय परम्परा में वयस्कता की अवधि गृहस्थ आश्रम को संदर्भित करती है। इस दौरान एक व्यक्ति सामाजिक जीवन में प्रवेश करता है और परिवार, विवाह और एक व्यवसाय को अपनाता है ताकि उसकी व परिवार की जीविका सही से हो सके। वयस्कता के चरण में निम्नलिखित उप अवधि होती है:

(1) प्रारम्भिक वयस्कता (20 से 30 वर्ष की आयु में)
(2) मध्य वयस्कता (40 से 50 वर्ष की आयु में)
(3) बाद में वयस्कता या वृद्धावस्था (60 वर्ष और उससे अधिक)

1970 तक मनोवैज्ञानिक, वयस्कता को एक एकल विकासात्मक अवस्था के रूप में मानते थे, जिसमें विभिन्न अवधियों और किशोरावस्था और मृत्यु के बीच से गुजरने वाले कुछ या कोई अन्तर नही था। वर्तमान समय में मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि शारीरिक, संज्ञानात्मक और भावनात्मक प्रतिक्रियाएं जीवन भर विकसित होती रहती हैं। विद्यार्थियों इस इकाई में हम जानेंगे कि प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता के दौरान कौन से शारीरिक, मनोसामाजिक, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और विकासात्मक कार्य होते हैं तथा वयस्क कैसे इन परिस्थितियों में अपने आप को रखता है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी जानेंगे कि;

- प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं;

- प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता में क्या शारीरिक बदलाव होते हैं तथा उनका प्रभाव क्या होता है;
- वयस्कता में मनोवैज्ञानिक प्रभाव कैसा होगा तथा उसके परिणाम क्या होंगे;
- वयस्कता में क्या संज्ञानात्मक परिवर्तन होगा;
- प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता में क्या सामाजिक परिवर्तन देखा जा सकता है; तथा
- प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता में विकासात्मक कार्यों की क्या रूप रेखा होगी और व कैसे निभाई जायेंगी।

12.3 वयस्कता में शारीरिक विकास

एक मानव के शिशु होने से वयस्क होने तक उसके शरीर में बहुत से बदलाव आते हैं, जब व्यक्ति प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता से गुजरता है, तो शरीर में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं, आईये हम इन्हें एक-एक करके समझने का प्रयास करते है।

12.3.1 प्रारम्भिक वयस्कता (20-30 साल)

शारीरिक विकास के संन्दर्भ में, किशोरावस्था और यौवन पर आमतौर पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है तथा वयस्क वर्षो में शारीरिक विकास पर कम ध्यान दिया जाता है। प्रारम्भिक अवस्था, वयस्कता का पहला चरण है, जिसमें शरीर शारीरिक रूप से बदलता है। प्रारम्भिक वयस्कता ज्यादातर लोगों के लिए चरम शारीरिक क्षमता का समय है। किशोरावस्था तक युवक पूरी ऊँचाई तक पहुँच जाते हैं और शारीरिक शक्ति 20 की आयु के अंत और 30 वर्ष की शुरूआत में बढ़ जाती है। शरीर में चुस्ती, चपलता, समन्वय और संवेदी क्षमता जैसे देखने और सुनने का काम भी अपने चरम पर होता है। इस आयु में इसके अलावा कंधे की चौड़ाई और छाती का आकार भी बढ़ता है, और लोग अपनी एथलेटिक क्षमताओं को विकसित करना जारी रखते हैं। शरीर महत्वपूर्ण हार्मोनल परिवर्तनों से गुजरना जारी रखता है।

इन हार्मोनल परिवर्तनों से दाढ़ी थोड़ी मोटी हो सकती है और आवाज थोड़ी गहरी और समृद्ध हो जाती है। यह वह अवधि है जिसमें आमतौर पर महिलाएं बच्चे को जन्म देती हैं, इस कारण उनमें वजन बढ़ना भी देखा जाता है और साथ ही साथ उनके स्तनों का पूर्ण विकास भी होता है। 20 की आयु के उत्तरार्ध में उच्च स्वरमान वालों की वाणी में कुछ गिरावट देखी जाती है और 30 वर्ष के मध्य में कौशल व निपुणता में कमी आने लगती है। सामान्य तौर पर, शुरूआती वयस्कता में लोग मजबूत और ऊर्जावान महसूस करते हैं। दूसरी ओर इस आयु वर्ग

के लोग कानूनी रूप से हानिकारक पदार्थों जैसे शराब और तंबाकू का उपयोग करने में सक्षम होते हैं और कई अवैध उत्तेजक या नशीले पदार्थों तक पहुँच प्राप्त कर सकते हैं। युवा वयस्कों के पास अपने स्वयं के खाने की आदतों और व्यायाम करने के आयोजन की जिम्मेदारी बढ़ जाती है। युवा वयस्कता की अवधि के दौरान कोई भी खुद को एक स्वायत्त और स्वतंत्र वयस्क के रूप में देखता है। इस अवधि में व्यक्ति माता-पिता पर आर्थिक रूप से कम ही निर्भर होते हैं।

इस अवधि के दौरान एक प्रमुख विकासात्मक कार्य युवाओं में देखा गया है, वह है एक अच्छे व्यवसाय का चुनाव करना। युवा पुरूष व महिलाएं अपने पसंद के व्यवसाय में जुड़ जाते हैं। इसके अलावा युवा वयस्क अपनी खुद के पारिवारिक जीवन को बसाने का भी प्रयास करते हैं, अर्थात वे विवाह के बंधन में भी बंध जाते हैं। वे विभिन सामाजिक मुद्दों पर भी चिंतित रहते हैं तथा समुदाय के सदस्यों के साथ भी घनिष्ठ संबंध बनाने के बारे में सोचते हैं। युवा वयस्कता के चरण को नए कार्यों से जाना जाता है, तथा साथ ही साथ नई वयस्क चुनौतियों के लिए भी जाना जाता है जैसे- वित्तीय और भावनात्मक स्वतंत्रता की स्थापना और वैवाहिक संबंध में प्रवेश करना। इसके अलावा प्रारम्भिक वयस्कता में बेरोजगारी और वैवाहिक कलह दो विशिष्ट संकट की स्थिति भी देखी जाती है।

12.3.2 मध्य वयस्कता (40-50 की आयु)

मध्य वयस्कता 40 से कम आयु में शुरू होती है और यह जीवनकाल का 50 प्रतिशत या उससे अधिक अवधि की हो सकती है। मध्य-जीवन के दौरान लोग बाहरी और आंतरिक शारीरिक परिवर्तनों की एक श्रृंखला का अनुभव करते हैं। बाहरी परिवर्तनों में भूरे बालों और बालों का पतला होना, चेहरे की झुर्रियों में वृद्धि होना और कमर या निचले भाग के शरीर में मोटापा बढ़ने की प्रवृत्ति हो जाती है। आंतरिक परिवर्तनों में हृदय, श्वसन और तंत्रिका तंत्र की क्षमता में कमी आदि शामिल हैं। इनमें सबसे ज्यादा है संवेदी तीक्ष्णता का कम होना।

मध्य वयस्कता में परिवर्तन निम्न प्रकार हैं:

- संवेदनशीलता: इस आयु में लोग प्रकाश के प्रति कम संवेदनशील हो जाते हैं, दूरी के अंतर को समझने में उन्हें कठिनाई होती है और उन्हें देखने में भी परेशानी होने लगती है। इस आयु तक आते-आते उच्च तरंगों की ध्वनियों को सुनने में भी कठिनाई होने लगती है। मध्य वयस्कता में गंध, स्वाद और दर्द की संवेदनशीलता कम हो जाती है।
- दूरदर्शिता: चालीस वर्ष की आयु में दूरदर्शिता कम हो जाना आम बात है और इसे सही करने के लिए चश्मे का प्रयोग आवश्यक हो जाता है।

- दृष्टि वैषम्य (देखने में तकलीफ): मध्य आयु में देखने की क्षमता में परिर्वतन आ जाता है जिसमें आँखों के लैन्स में लचीलापन कम हो जाता है, जो पास से दूर तक ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई का कारण बनता है।
- रजोनिवृत्तिकाल: यह महिलाओं में होने वाला शारीरिक बदलाव है जब महिलाओं में रजोनिवृत्ति आ जाती है अर्थात उन्हें मासिक धर्म बंद हो जाता है जिससे शरीर में एस्ट्रोजन हार्मोन का संतुलन कम हो जाता है। रजोनिवृत्ति में महिलाओं की प्रजनन क्षमता बंद हो जाती है तथा एस्ट्रोजन व प्रोजेस्टेरॉन का स्तर गिरता है।
- पुरूष रजोनिवृत्ति: पुरूषों में रजोनिवृत्ति एक विवादास्पद अवधारणा है जिसमें कहा गया है कि पुरूषों के पास रजोनिवृत्ति का अपना संस्करण है जो कई लोगों के लिए एक मनोवैज्ञानिक घटना के बजाय एक मनोवैज्ञानिक के रूप में अनुभव किया जाता है।
- मध्य आयु में वसा का जमाव: मध्य आयु में शरीर में वसा का पुनर्वितरण, जो महिलाओं में कमर के उपर और पुरूषो में कमर के नीचे अधिक होता है। महिलाओं में इस आयु में गर्भाशय सिकुड़ जाता है तथा स्तनों का आकार भी कम हो जाता है। 70 प्रतिशत से 80 प्रतिशत महिलाओं को हॉट फ्लैश आने लगते हैं, जो कि मासिक धर्म बंद होने का संकेत है। इसमें महिलाओं को अत्यंत पसीना आता है तथा उनकी दिल की धड़कन भी तेज हो जाती है और वे बेहोशी जैसे लक्षण महसूस करती हैं।
- अस्थिसुषिरता या ऑस्टियोपोरिस: यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें महिलाओं में एस्ट्रोजन का स्तर कम हो जाता है तथा हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और उनके टूटने का खतरा बढ़ जाता है।

आइए अब हम वयस्कों में मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिवर्तनों के बारे में चर्चा करें।

12.4 मनोवैज्ञानिक परिवर्तन

12.4.1 प्रारम्भिक वयस्कता (20-30 आयु)

युवा अवस्था में कोई भी अपने आप को एक स्वायत्त और स्वतंत्र वयस्क के रूप में देखता है। इस अवधि में युवा व्यवसाय शुरू करता है तथा अपने माता-पिता पर कम निर्भर होकर आत्मनिर्भर होने की कोशिश करता है। युवा अवस्था जिसकी मुख्य विशेषता होती है, नये जोखिम भरे कार्यों को करना तथा नई चुनौतियों का सामना करना जैसे वित्तीय और

भावनात्मक रूप से स्वतंत्र होना तथा वैवाहिक संबंध में प्रवेश करना। महान मनोवैज्ञानिक एरिकसन के अनुसार यह अवधि आत्मीयता (intimacy) बनाम अलगाव (isolation) के संकट की विशेषता है। युवाओं को दूसरों के साथ गहरे व आत्मीय संबंध स्थापित करना चाहिए, जैसे कि वे विवाह के बाद कर सकते हैं। इससे वे सामाजिक व भावनात्मक रूप से जुड़े रहते हैं।

लेविंसन (1978) ने एरिकसन के कुछ विचारों को आगे बढ़ाया, लेकिन व्यक्ति और समाज की मांगों के बीच के संबंधों को समझाने के लिए सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर भी विचार किया। उन्होंने विभिन्न जीवन चरणों में सामाजिक भूमिका की आवश्यकताओं और व्यक्तिगत विकास और संबंधों के बीच बातचीत पर जोर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि सभी सामान्य रूप से विकासशील वयस्क एक ही क्रम में समान चरणों के माध्यम से प्रगति करते हैं।

प्रारम्भिक व्यस्कता शुरूआती दौर में 17-22 वर्ष के उप-चरण के साथ शुरू होती है, जिसमें युवा अपने माता-पिता के दिशा निदेर्शों का पालन करते हैं और वे जीवन में जो कुछ भी बनना चाहते हैं उसका एक स्वप्न तैयार करते हैं। युवाओं के सपने एक महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि यह व्यवसायिक और व्यक्तिगत दोनों क्षेत्रों में उनके प्रयासों और विकल्पों का मार्गदर्शन करता है। आप सोचें, आपका कोई अपना सपना है, या आपके जीवन में था जब आप इस आयु में थे, और यह आपके वर्तमान व्यवसाय और योजनाओं से कैसे संबंधित है?

अगला उप-चरण वयस्क दुनिया (22-28) में प्रवेश करने की अवधि है, और यह उप-चरण उनको सही काम की दिशा में ले जाता है और एक विशेष व्यक्तिगत संबंध प्राप्त करने का मनोबल देता है। इसके बाद अगला उप-चरण 30 की आयु का होता है (28-32)। यहाँ पर लोग स्वयं से प्रश्न पूछते हैं जो उनके सपने, उनके द्वारा किए गए विकल्पों और उनके जीवन में आने वाली समस्याओं की एक मध्यम डिग्री से गुजरता है। इस आयु की बाकी बची अवधि में (33-40 साल) वयस्क अपनी पहचान व जगह बना लेते हैं और पेशेवर और घरेलू भूमिकाओं को मजबूत करने का प्रयास करते हैं जिससे जीवन में सही संतुलन बना रहता है। इस प्रकार हम कह सकते है कि युवा वयस्क के लिए मनोसामाजिक विकास की पहचान सामाजिक रूप से स्वतंत्र होने और सफल होने की उच्च महत्वाकांक्षा के साथ की जा सकती है। इसमें व्यवसाय का चयन, जीवनसाथी का चयन करना, परिवार शुरू करना, जिम्मेदारियों को स्वीकार करना और सामाजिक नेटवर्किंग शामिल हैं।

युवा वयस्कता के मुख्य लक्षण व विशेषताएं निम्न हैं:

- व्यवसाय का चुनाव

- परिवारिक जीवन शुरू करना
- समाज के बारे में चिंता
- साथियों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाना

12.4.2 मध्य वयस्कता (40-50 साल)

व्यक्ति, मध्य वयस्कता में चालीसवें और पचास की आयु में आता है। मध्य आयु में क्षमता, परिपक्वता, जिम्मेदारी और स्थिरता की विशेषता होती है। यह वह समय है जब कोई अपने व्यवसाय का आनन्द उठाता है तथा परिवार व समाज से संतुष्टि प्राप्त करता है। लोग अपने बच्चों की सफलता के लिए हरदम तत्पर रहते हैं। ज्यादातर ध्यान अपनी सेहत पर केन्द्रित होता है। इसके अलावा बच्चों का बेहतर भविष्य बनाने पर, वृद्ध माता-पिता की देख-भाल, अवकाश के समय का उपयोग करना और अपने बुढ़ापे की योजना बनाना मुख्य है। महिलाओं में 45 से 50 की आयु के बीच का समय रजोनिवृत्ति का होता है। रजोनिवृत्ति में महिलाओं को कई शारीरिक व मानसिक बदलाव से गुजरना पड़ता है। इस अवधि में पुरूष अपने स्वास्थ्य, शक्ति, ऊर्जा और यौन शक्ति के प्रति अधिक चिंतित दिखाई देते हैं।

मध्य-जीवन संकट ("मिड-लाइफ क्राइसिस")

मध्य आयु को रचनात्मक और समाज में महत्वपूर्ण योगदान के रूप में भी देखा जाता है। एक अध्ययन में यह पाया गया है कि वैज्ञानिकों, लेखकों तथा कलाकारों का सबसे अच्छा काम चालीस साल के अंत व और पचास साल के शुरूआती समय में किया जाता है। एरिकसन मध्य वयस्कता को संकट के चरण के रूप में दर्शाता हैं जिसमें उदारता बनाम ठहराव शामिल है। जब तक कोई व्यक्ति इस अवधि के दौरान सार्थक योगदान नहीं देता है, वह स्वार्थी जरूरतों और इच्छाओं का शिकार हो सकता है। हाल के शोध ने एरिकसन के दावों का समर्थन किया है कि उदारता, सकारात्मक रूप से मध्यम आयु वर्ग के लोगों में व्यक्तिपरक कल्याण के साथ जुड़ी हुई है।

लेविंसन (1978) ने मध्य-जीवन को आंतरिक संघर्ष के काल के रूप में दर्शाया है। लेविंसन ने 33 से 40 साल की आयु को 'बसने' (settle down) होके रूप में देखा है। लेविंसन ने पाया कि उनके अधिकांश साक्षात्कार मध्य जीवन क्रमण में एक नये व बड़े दौर से गुजरे हैं। बहुत से पुरूषों ने साक्षात्कार में बताया कि यह समय उनके जीवन में व्यक्तिगत संकट लाया। ऐसे पुरूषों ने अपने जीवन की समीक्षा करना शुरू कर दी और खुद से सवाल पूछे कि उन्होंने जीवन में क्या हासिल किया है और वे क्या कर रहे हैं। कई लोग सोचते थे जो उन्होंने व्यक्तिगत और व्यवसाय के क्षेत्र में संघर्ष किया, क्या वे सार्थक थे और कुछ ने दिशा में

बदलाव करके मौलिक परिर्वतन किए। हालांकि लेविंसन के अध्ययन में सभी पुरूष थे, पर दूसरे शोधों से भी यही सामने आया कि महिलाएँ भी मध्य आयु में यही महसूस करती हैं। इस प्रकार के पुनर्मूल्यांकन लोकप्रिय रूप से मध्य-जीवन संकट की धारणा से जुड़े हैं। मध्यम आयु वर्ग में एक इंसान कई उतार चढ़ाव देखता है, जैसे व्यवसाय में निराशा, बच्चों के भविष्य की चिंता, परिवार में सही ताल मेल ना होना, सेहत का बिगड़ना जो कि मध्य-जीवन संकट को उत्पन करता है।

मध्य वयस्कता के लक्षण व विशेषताएं

- क्षमता , परिपक्वता , जिम्मेदारी और पुरूष व महिला के बीच स्थिरता ।
- बच्चों पर ध्यान केंद्रित रहता हैं।
- बुढापे के लिए योजनाए ।
- महिलाओं में रजोनिवत्ति का होना।

आगे बढ़ने से पहले हम कुछ प्रश्नों का अभ्यास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. प्रारंभिक व मध्य वयस्कता से आप क्या समझते हैं? इन दोनों की क्या विशेषताएँ हैं तथा इनमें क्या-क्या शारीरिक बदलाव आते हैं?
2. एरिकसन ने प्रारंभिक वयस्कता में क्या मनोवैज्ञानिक परिवर्तन के बारे में बताया है, समझाएं।
3. मध्य-जीवन संकट से आप क्या समझते हैं?
4. आपके घर में अगर कोई प्रारंभिक व मध्य वयस्क आयु में है तो उसकी सूची बनाए तथा उनके कार्यों को अलग - अलग कीजिए।

12.5 प्रारंभिक और मध्य वयस्कता में संज्ञानात्मक बदलाव

हम वयस्कता में किसी भी अन्य चरण से सबसे अधिक वर्ष बिताते हैं। इस दौरान कई संज्ञानात्मक परिवर्तन होते हैं। शोध से यह ज्ञात होता है कि वयस्कों में संज्ञानात्मक विकास एक जटिल प्रक्रिया है और यह प्रारंभिक बाल्यावस्था से भी अधिक वयस्कता में सक्रिय रहती है। हमारी शरीर की ऊर्जा 20 की आयु में चरम पर होती है तथा 30 के बाद ऊर्जा में गिरावट आने लगती है लेकिन हमारी संज्ञानात्मक क्षमताएं अपेक्षाकृत स्थिर रहती हैं। शोध में

यह पाया गया है कि जो वयस्क मानसिक और शारीरिक रूप से उत्तेजक गतिविधियों में संलग्न होते हैं वे बाद के वयस्क वर्षों में कम संज्ञानात्मक गिरावट का अनुभव करते हैं।

12.5.1 प्रारम्भिक/युवा वयस्कता में संज्ञानात्मक बदलाव

जैसा कि हम जान चुके हैं कि युवा वयस्कता एक ऐसा समय है जब हम में से अधिकांश अपनी पढ़ाई खत्म कर लेते हैं और अपना व्यवसाय खोजना शुरू कर देते हैं। शारीरिक रूप से यह वह समय है जब हम स्फूर्तिमान रहते हैं तथा अच्छा प्रदर्शन करते हैं। हम कह सकते हैं कि किशोर अवस्था के बाद यह वह समय है जब हमारा शरीर, शारीरिक रूप से बदलता है तथा हमें जीवन में बहुत कुछ अच्छा-बुरा देखना पड़ता है एवं हमें हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना होता है।

संज्ञानात्मक (Cognitive) रूप से यह बड़े होने और जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय लेने का समय है। सामाजिक रूप से यह स्वतन्त्र होने, एक बेहतर जीवन शैली जीने, विवाह और परिवार की भूमिकाओं को निभाने का समय है। एरिक एरिकसन के विकास के आठ चरणों के अनुसार यह आत्मीयता (Intimacy) बनाम अलगाव (Isolation) का समय होता है। या तो व्यक्ति जीवन के इस काल में आत्मीय संबंधो में बंध जाते हैं या खुद को सब से अलग कर लेते हैं। अपने जीवन के इस समय के दौरान वे खुद को स्वतंत्रता की एक नई भावना के साथ पाते हैं और जीवन में पहली बार वास्तव में स्वतंत्र महसूस करते हैं। हालांकि इसके साथ ही उनके पास अपने और दूसरों के लिए बहुत सारी व्यक्तिगत जिम्मेदारी आ जाती है और वास्तव में अपने साथ-साथ दूसरे के साथ सामाजिक संपर्क के बारे में वे अधिक जानने लगते हैं।

संज्ञानात्मक परिवर्तन

प्रारम्भिक वयस्कता के दौरान संज्ञानात्मक चरणों को यथार्थवादी और व्यवहारिक सोच की अवधि के रूप में भी जाना जाता है। चिंतनशील और सापेक्षवादी सोच भी इसी में शामिल है। पियाजे के अनुसार युवा वयस्क उनकी सोच में मात्रात्मक (Quantitatively) रूप से उन्नत हैं, हालांकि वे गुणात्मक रूप से समान हैं। उनका यह भी मानना था कि वयस्क एक विशिष्ट क्षेत्र में अपने ज्ञान को बढ़ाते हैं।

वयस्कों में संज्ञानात्मक परिवर्तनों का वर्णन निम्नलिखित चरणों में किया जा सकता है:

- **यथार्थावादी और व्यावहारिक सोच**

यथार्थवादी सोच का अर्थ है निष्कर्ष निकालने से पहले किसी भी स्थिति के सभी पहलुओं (सकारात्मक, नकारात्मक और तटस्थ) को देखना। दूसरे शब्दों में, यथार्थवादी सोच का अर्थ है अपने आप को, दूसरों को, दुनिया को संतुलित और निष्पक्ष तरीके से देखना। कुछ विशेषज्ञों का तर्क है कि युवा वयस्कता में पियाजे के औपचारिक संचालन चरण (Formal operational Stage) में गिरावट आती है, और वह अधिक यथार्थवादी, व्यवहारिक सोच द्वारा प्रतिस्थापित की जाती है।

- **कुछ प्राप्त करने का चरण**

इस चरण में अपनी बुद्धिमत्ता को विभिन्न जगहों में प्रदर्शित करना शामिल है जो दीर्घकालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने पर गहरा परिणाम देते हैं, जैसे व्यवसाय से जुड़े लोग। विकास के इस चरण में अपने स्वयं के व्यवहार की निगरानी के लिए आवश्यक संज्ञानात्मक कौशल में महारत हासिल करना शामिल है। इस अवस्था में युवा वयस्क भी काफी हद तक स्वतंत्रा प्राप्त कर सकते हैं।

- **जिम्मेदारी का चरण**

विकास का यह चरण प्रारम्भिक वयस्कता से शुरू होता है और मध्य वयस्कता तक बढ़ता है। यह वह समय है जब एक परिवार की स्थापना की जाती है अर्थात वयस्क वैवाहिक बंधन में बँध जाते हैं और बच्चों की जरूरतों पर ध्यान दिया जाता है। युवा वयस्क सामाजिक जिम्मेदारियों को अपनाते हैं, जैसे अपना व्यवसाय शुरू करना।

- **चिंतनशील और सापेक्षवादी सोच**

किशोर अक्सर द्वैतवादी, निरपेक्ष सोच में संलग्न होते हैं, जबकि वयस्कों की चिंतनशील, सापेक्षवादी सोच में संलग्न होने की अधिक संभावना होती है। दोहरी सोच शब्द का उपयोग दुनिया के किशोरों के दृष्टिकोण का वर्णन करने के लिए किया जाता है। इसके उदाहरण हैं, सही/गलत या अच्छा/बुरा। जैसे-जैसे युवा परिपक्व होते हैं, दोहरी सोच कई अन्य तरह की सोच में बदल जाती है। वे धीरे-धीरे अन्य लोगों में राय की विविधता से अवगत हो जाते हैं और महसूस करते हैं कि प्राधिकरण के पास सभी जवाबों का उत्तर नहीं हो सकता है। युवा अपनी अलग सोच को विकसित करने लगते हैं। यह सोचने के अगले रूप की ओर जाता है, जिसे हम सापेक्ष अधीनस्थ सोच कहते हैं। यहाँ पर व्यक्तिगत राय को दूसरों द्वारा चुनौती दी जाने लगती है और ज्ञान का तार्किक मूल्यांकन सक्रिय रूप से किया जाता है। यह सोच के अंतिम रूप की ओर जाता है जो पूर्ण रूप से सापेक्षवाद है। सोच के इस चरण में युवा वयस्क पूरी तरह से समझते हैं कि सच्चाई सापेक्ष है और ज्ञान का निर्माण किया जाता है।

12.5.2 मध्य वयस्कता में संज्ञानात्मक बदलाव

मध्य वयस्कता, युवा वयस्कता से बाद की अवधि है लेकिन यह बुढ़ापे से पहले का चरण भी है। मध्य वयस्कता में सबसे महत्पूर्ण चुनौती होती है, आने वाली पीढ़ियों के कल्याण के बारे में सोचना और परिवार के लिए काम करना। मध्य आयु की विशेषता क्षमता, परिपक्वता, जिम्मेदारी और स्थिरता होती है। किशोरावस्था से युवावस्था तक होने वाले परिवर्तन कई बार तनावपूर्ण हो सकते हैं। 19 से 30 की आयु के बीच हमारा शरीर शारीरिक तौर पर सही रहता है तथा इस बीच हमारा संज्ञानात्मक कौशल भी विकसित होता है। युवा वयस्कता तब होती है जब वयस्क यह तय करते हैं कि यह वही कार्य है जो हम अपने जीवन के बाकी हिस्सों के साथ करना चाहते हैं, चाहे वह परिवार का पालन-पोषण हो या करियर की शुरूआत हो।

संज्ञानात्मक परिवर्तन

मध्य वयस्कता वह अवधि है जिसमें व्यक्ति अपनी बुद्धि के अनुसार संज्ञानात्मक कार्य में परिवर्तन करता है, जैसे सघन और द्रव, सूचना प्रसंस्करण और स्मृति, विशेषज्ञता, करियर, काम और आराम, धर्म, स्वास्थ्य और जीवन में अर्थ।

- **बुद्धि**

संज्ञानात्मक विकास बहुआयामी है। यह कुछ क्षेत्र में लाभ तो दूसरे में हानि करता है। बुद्धि विकास पर बेहतर व अधिक अवधि तक स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का फर्क पड़ता है। अनुदैर्ध्य उपायों (longitudinal measures) में कम से कम 50 की आयु तक वृद्धि दिखाई देती है।

निम्न दो प्रकार की बुद्धिमत्ताओं के बारे में बताया गया है:

(क) द्रव बुद्धिमत्ता: द्रव बुद्धि एक लचीला तर्क है और किसी भी विषय को समझने के लिए आवश्यक प्रेरक तर्क, अमूर्त सोच और सोचने की गति जैसी बुनियादी मानसिक क्षमताओं से बना है। इसमें अशाब्दिक क्षमता और अशाब्दिक पहेली को सुलझाने, उपन्यास लेखन, तर्क समस्याओं, गणितज्ञों, वैज्ञानिकों और कवियों द्वारा 20-30 वर्ष की आयु में सर्वोत्तम कार्य करने की अनुमति देना निहित है। द्रव बुद्धि प्रारम्भिक वयस्कता में चरम पर होती है और फिर इसमें गिरावट आती है। यह हमारी मानसिक शक्ति का प्रयोग कर समस्याओं को सुलझाना, रिश्तों को समझना, अवधारणाएं बनाना तथा कोई निष्कर्ष निकालना जैसे कार्य को करने में सक्षम बनाती हैं। मस्तिष्क में परिवर्तन के कारण इसमें गिरावट आती है। ये परिवर्तन आयु के बजाय शैक्षिक अंतर से संबंधित सहसंबंध प्रभाव के कारण हो सकते हैं।

(ख) सघन बुद्धिमत्ता: सघन बुद्धिमत्ता मौखिक तर्क है जो जीवन भर रहती है और संचित ज्ञान और शब्दावली को दर्शाती है। यह 40 से 50 की आयु में सबसे अच्छा काम करती है

जैसा कि इतिहासकारों, दार्शनिकों, गद्य लेखकों द्वारा किया जाता है। यह तथ्यों, सूचना और ज्ञान के संचय को संदर्भित करती है जो विशेष संस्कृति के भीतर शिक्षा और अनुभव के साथ आता है। जैसे-जैसे मध्य आयु बढ़ती है, सघन बुद्धि भी अच्छी होती है। जीवन भर में अर्जित जानकारी को याद रखने और उपयोग करने की क्षमता बढ़ जाती है और यह व्यक्ति की शिक्षा और संस्कृति पर भी निर्भर करती है। इसी कारण एक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में संग्रहित जानकारी और प्रक्रिया को उपयोग करने में सक्षम होता है।

राबर्ट स्टर्नबर्ग ने प्रस्ताव दिया कि बुद्धि तीन अलग-अलग भागों से बनी है।

(क) विश्लेषणात्मक/शैक्षिक: इसमें मानसिक प्रक्रियाएं होती हैं जो कुशल शिक्षण, याद रखने और सोचने को बढ़ावा देती हैं। विश्लेषणात्मक बुद्धि वाले लोगों के पास किसी एक ज्ञानक्षेत्र में व्यापक जानकारी, उच्च संगठित ज्ञान और अपने किये गये कार्य से संतुष्टि व उसमें वृद्धि होना शामिल है। ऐसे लोग नौकरी के प्रति ज्यादा प्रतिबद्धता दिखाते हैं। वर्तमान में मध्यम आयु वर्ग के कार्यकर्ता को अधिक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, और अपने करियर की चुनौतियों में वृद्धि के लिए वे दूसरी नौकरी की तलाश करते हैं।

(ख) रचनात्मक: हम जानते हैं कि कुछ प्रकार की रचनात्मकता जैसे लेखन मध्य वयस्कता में चरम पर होती है। रचनात्मकता और व्यवहारिक बुद्धि अक्सर उन लोगों को बनाने के लिए गठबंधन करती है जिन्हें हम उनके क्षेत्रों में विशेषज्ञ मानते हैं, चाहे वे कारों की मरम्मत करना हो, खेती-बाड़ी का काम हो या फिर अंतरिक्ष में जाने के लिए रॉकेट तैयार करना हो। इसमें नई परिस्थितियों से निपटने के लिए लचीला और अनुभव होने की क्षमता शामिल है। विशेषज्ञता भी मध्य वयस्कता में ही आकर बढ़ती है तथा ऐसे लोग अपनी समस्याओं को हल करने के लिए अपने जीवन स्थितियों के संचित अनुभव का उपयोग करते हैं। नौसिखियों की तुलना में उनके ज्ञानक्षेत्र में अधिक रचनात्मकता और लचीलापन होता है।

(ग) व्यवहारिक: यह व्यक्ति को उसकी क्षमताओं को प्रासंगिक मांगों के अनुकूल बनाने में सक्षम बनाता है। उनके पास गतिविधियों और हितों को आगे बढ़ाने के लिए अधिक समय और पैसा होता है। मध्यम आयु में यदि वे छुट्टियाँ व अवकाश लेते हैं, उससे उनकी सेहत ठीक रहती है तथा इस दौरान वे खुद को निवृत्ति के लिए तैयार करते हैं।

- **सूचना प्रसंस्करण और स्मृति:** मध्य वयस्कता के दौरान सूचना प्रसंस्करण, प्रतिक्रिया समय और स्मृति में गिरावट या कमी आती है। अगर वयस्क प्रभावी रणनीतियाँ बनाकर अपनी स्मृति का उपयोग करें तो वे अच्छा प्रदर्शन कर सकते हैं।

12.6 प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता में सामाजिक परिवर्तन

वयस्कता की प्रमुख पहचान है एक प्रभावी और स्वतंत्र जीवन निर्माण की क्षमता। जबकि बच्चों और किशोरों को आम तौर पर माता-पिता द्वारा समर्थन दिया जाता है। यह आवश्यक है कि वयस्कों को अपना जीवन खुद से यापन करना चाहिए तथा जिम्मेदारियाँ भी उठानी चाहिए क्योंकि वयस्कों की आवश्यकताएं युवाओं से अलग होती हैं।

यद्यपि प्रारम्भिक और मध्य वयस्कता में होने वाली प्रमुख जीवन की घटनाओं का समय व्यक्तियों में पर्याप्त रूप से भिन्न होता है, फिर भी वे एक सामान्य अनुक्रम का पालन करते हैं, जिसे "सामाजिक घड़ी" के रूप में जाना जाता है। सामाजिक घड़ी प्रमुख जीवन की घटनाओं के लिए सांस्कृतिक रूप से पसंदीदा "सही समय" को संदर्भित करती है, जैसे कि बचपन के बाद घर से बाहर निकलना, शादी करना व बच्चे पैदा करना। जो लोग सामाजिक घड़ी का पालन नहीं करते हैं, (उदाहरण के लिए, युवा वयस्क जो अभी भी अपने माता-पिता के साथ रहते हैं, वे व्यक्ति जो कभी शादी नहीं करते हैं और ऐसे युगल जो बच्चे नहीं चुनते हैं) को असामान्य या विचलन के रूप में देखा जा सकता है और उन्हें दूसरों के द्वारा अपमानित किया जाता है। हालांकि कुछ लोग विवाह के बंधन में देर से बंधते हैं और सामाजिक घड़ी का पालन करते हैं। शादी मानसिक स्वास्थ्य और शारीरिक स्वास्थ्य दोनों की दृष्टि से वयस्कों के लिए फायदेमंद है। जो लोग विवाहित होते हैं, वे अपने जीवन में अधिक संतुष्ट होते हैं।

वर्तमान में मध्य वयस्कता में तलाक की घटनाएं पहले की अपेक्षा ज्यादा हो गई हैं। हालांकि तलाक लेने वाले तीन चौथाई लोग पुनर्विवाह कर लेते हैं। अधिक तलाक की घटनाएं युवाओं में 20-30 की आयु में ज्यादा पायी जाती हैं क्योंकि वे विवाह के बाद भी परिपक्व नहीं होते और अपने वैवाहिक जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास ना करके अलगाव की स्थिति बना लेते हैं। जो वयस्क परिपक्व होते हैं, आयु में अधिक होते हैं और बेहतर शिक्षित होते हैं, उनमें यह स्थिति कम पायी जाती है। वयस्क माता-पिता में एक प्रमुख और लम्बे समय तक चलने वाली प्रतिबद्धता शामिल है और अक्सर माता-पिता तनाव में भी आ जाते हैं। अगर परिवार के बीच अच्छी समझ व निकटता है तो जीवन मधुर हो जाता है तथा सभी परेशानियों से निपटा जा सकता है। पारस्परिक संबंध दो या दो से अधिक लोगों के बीच एक मजबूत, गहरा या घनिष्ठ संबंध या परिचित होना है, जो संक्षिप्त अवधि से लेकर स्थायी अवधि तक हो सकता है। सम्बंध समय के साथ बेहतर हो सकते हैं या टूट सकते हैं। दो लोगों के बीच संबंध विभिन्न कारकों पर आधारित हो सकते हैं। प्रेम, एकजुटता, व्यवस्था, या कोई अन्य संदर्भ जिसमें दो या अधिक लोगों की बातचीत करने की आवश्यकता होती है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता में संज्ञानात्मक परिवर्तन को सक्षिप्त में समझाए।
2. शादी के संबंध में अपने व्यवहार, मूल्यों और दृष्टिकोण की तुलना करें और अपने माता-पिता व दादा-दानी की सोच पर काम करे, किस तरह आपके मूल्य उनसे समान व अलग है।
3. अपनी खुद की पसंदीदा सामाजिक घड़ी की रूप रेखा खीचें और आप बताए कि आप सामाजिक घड़ी का पालन कर रहे है या करेंगे तो कैसे?

12.7 सारांश

इस इकाई में हमने चर्चा की कि प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता में क्या-क्या परिवर्तन आते हैं तथा उनकी प्रमुख विशेषताएँ क्या होती हैं। हमने वयस्कों की मनोदशा के बारे में भी जाना कि वयस्कता में वे क्या सोच रखते हैं, किस बारे में चिंतित रहते हैं। यहाँ पर हमने महान मनोवैज्ञानिक पियाजे व एरिक्सन के सिद्धान्तों को भी संक्षिप्त में जाना। इस इकाई में हमने वयस्कों में होने वाले संज्ञानात्मक, सामाजिक व विकासात्मक परिवर्तनों व कार्यों के बारे में भी जाना। इन सब बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि वयस्कावस्था चुनौतियों से भरी होती है, इस आयु में वयस्क अपना व्यवसाय व गृहस्थी आरम्भ करते हैं तथा बच्चों की देख-रेख, सामाजिक कार्य व अपने बूढ़े माता-पिता की देखभाल करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि वयस्कों के ऊपर बहुत अहम जिम्मेदारियाँ होती हैं जिन्हें शांतिपूर्ण व विवेक के साथ निभाना चाहिए। इस अवस्था में अपनी सेहत का ध्यान रखना तथा आगे के बारे में सोचना भी वयस्कों के लिए महत्वपूर्ण है।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

इकाई का मूल भाग देखें।

12.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **रजोनिवृत्तिकाल:** यह महिलाओं में होने वाला शारीरिक बदलाव है। जब महिलाओं में रजोनिवृत्ति आ जाती है, उन्हें मासिक धर्म बंद हो जाता है, जिससे शरीर में एस्ट्रोजन

हार्मोन का संतुलन कम हो जाता है। रजोनिवृत्ति में महिलाओं की प्रजनन क्षमता बंद हो जाती है तथा एस्ट्रोजन व प्रोजेस्टेरोन का स्तर गिरता है।

- **अस्थिसुषिरता या आस्टियोपोरिस:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें महिलाओं में एस्ट्रोजन का स्तर कम हो जाता है तथा हड्डियाँ कमजोर हो जाती हैं और उनके टूटने का खतरा बढ़ जाता है।

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. एलिजाबेथ, बी हरलॉक (1980), डेवलपमेन्ट साइकोलाजी, ए लाइफ स्पैन ऐप्रोच, टाटा मैकग्रॉ हिल।
2. पी0 जे0 व्हाइट हाउस और जी0 सी0 गिलमोर (संस्करण) 1989, स्मृति, एजिंग और डिमेशिया, न्यूयॉर्क, स्प्रिंगर।
3. लैचमैन, एम ई (एड) (2001), हैडबुक ऑफ मिडलाईफ डेवलपमेन्ट, न्यूयॉर्क, बिली।
4. सिगेलमैन, कैरल, के0 और राइडर एलिजाबेथ (2009), आजीवन मानव विकास, बार्डवर्थ, न्यूयॉर्क।

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकासात्मक कार्य से आप क्या समझते हैं तथा प्रारम्भिक व मध्य वयस्कता में कौन-कौन से विकासात्मक कार्य होते हैं? इन्हें समझाएं तथा खुद पर लागू करें कि आप कौन-कौन से विकासात्मक कार्य कर रहे हैं?
2. आप कौन सी आयु में हैं, प्रारम्भिक या मध्य? आप पर उस वयस्कता में होने वाले शारीरिक, मनौवैज्ञानिक, संज्ञानात्मक व सामाजिक परिवर्तन का विवरण दें तथा आप इस दौरान क्या सोचते हैं, क्या चाहते हैं, उसकी सूची बनाएं।

इकाई 13: प्रारम्भिक एवं मध्य वयस्कता में विकासात्मक परिवर्तन

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 वयस्कता का वर्गीकरण
13.4 प्रारम्भिक वयस्कता
  13.4.1 अर्थ और परिभाषा
  13.4.2 प्रारम्भिक वयस्कता की विशेषताएं
13.5 मध्य वयस्कता की अवस्था
  13.5.1 अर्थ एवं परिभाषा
  13.5.2 मध्य वयस्कता की विशेषताएं
13.6 सारांश
13.7 पारिभाषिक शब्दावली
13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

मानव वयस्कता मनोवैज्ञानिक वयस्क विकास को शामिल करती है। वयस्कता को परिभाषित करना अक्सर असंगत और विरोधाभासी होता है; जहाँ एक ओर एक व्यक्ति जैविक रूप से वयस्क हो सकता है, और वयस्क व्यवहार कर सकता है, लेकिन फिर भी एक बच्चे के रूप में माना जाता है। प्रत्येक संस्कृति में ऐसी घटनाएं होती हैं जो एक बच्चे के वयस्क होने से संबंधित होती हैं, जहां वयस्कों को यह साबित करने के लिए परीक्षणों की एक श्रृंखला का प्रयास करना पड़ता है और सिद्ध करना पड़ता है कि एक व्यक्ति वयस्कता के लिए तैयार है। ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रूप से वयस्कता का निर्धारण मुख्य रूप से यौवन की शुरुआत

(महिलाओं में मासिक धर्म, पुरुषों में स्खलन, और दोनों लिंगों में जनांग बालों की उपस्थिति) द्वारा किया गया है। पुराने समय के दौरान एक व्यक्ति आमतौर पर बच्चे की स्थिति से सीधे वयस्क की स्थिति में चला जाता है, अक्सर इस बदलाव को किसी प्रकार के आने वाले आयु परीक्षण या समारोह द्वारा चिह्नित किया जाता है। किशोरावस्था के सामाजिक निर्माण के बाद, वयस्कता को दो रूपों में विभाजित किया गया: जैविक वयस्कता और सामाजिक वयस्कता। इस प्रकार हम वयस्कों को वयस्कों के दो प्राथमिक रूपों में विभाजित कर सकते हैं; 1) जैविक वयस्क (जिन लोगों ने प्रजनन क्षमता प्राप्त की है या जो माध्यमिक यौन विशेषताओं का प्रमाण देते हैं) और 2) सामाजिक वयस्क (वे लोग जो अपनी संस्कृति या कानून द्वारा वयस्क होने के रूप में मान्यता प्राप्त हैं)।

13.2 उद्देश्य

यह इकाई प्रारंभिक और मध्य वयस्कता की विशेषताओं को समझने में मदद करेगी। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप;

- वयस्कता विकासात्मक परिवर्तन और समायोजन की विशेषताओं को समझेंगे,
- वयस्कता का वर्गीकरण समझेंगे,
- प्रारंभिक और मध्य वयस्कता की विशेषताओं को समझेंगे।

13.3 वयस्कता का वर्गीकरण

चूंकि वयस्कता जीवन काल में एक लंबी अवधि होती है, इसलिए इसे तीन व्यापक श्रेणियों में विभाजित किया जाता है-

1. पूर्व वयस्कता (20-40 वर्ष)

2. मध्य वयस्कता (40-60 वर्ष)
   - प्रारंभिक मध्य वयस्कता (40-50 वर्ष)
   - उत्तर मध्य वयस्कता (50-60 वर्ष)

3. उत्तर वयस्कता / वृद्धावस्था (60 से मृत्यु)
   - शुरुआती उत्तर वयस्कता (60-70 वर्ष)
   - वृद्ध वयस्क / वृद्ध (70 वर्ष)

13.4 प्रारम्भिक वयस्कता

13.4.1 अर्थ और परिभाषा

पूर्व वयस्कता जीवन के नए प्रतिमानों और नई सामाजिक अपेक्षाओं के प्रति समायोजन की अवधि है। यह 20 वर्ष से 40 तक मानी जाती है। प्रारंभिक वयस्कता के समय में व्यक्ति में निम्न विशेषताएं देखी जाती हैं:

1. व्यक्तिगत और आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति
2. पहचान की खोज, विशेष रूप से प्रेम और काम में
3. अस्थिरता; स्व ध्यान केंद्रित
4. जीवन के मध्य में महसूस करना

एक युवा वयस्क को जीवनसाथी, माता-पिता और आय अर्जित करने वाले की नई भूमिकाओं को निभाना और समायोजित करना और इन नई भूमिकाओं को ध्यान में रखते हुए नए दृष्टिकोण, रुचियों और मूल्यों को विकसित करना होता है। जीवन चक्र के ये नए समायोजन, शुरुआती वयस्कता जीवन काल को विशिष्ट के साथ साथ एक कठिन अवधि बनाते हैं। यह विशेष रूप से मुश्किल समय होता है क्योंकि अब तक ज्यादातर लड़कों और लड़कियों में किसी के माता-पिता, किसी के शिक्षक तो किसी के दोस्त या अन्य होते हैं जो उन्हें उन समायोजन को करने में मदद करते हैं जिनका वे सामना कर रहे हैं। अब एक वयस्क के रूप में उनसे ये समायोजन स्वयं करने की उम्मीद की जाती है। समायोजन का सफलतापूर्वक अकेले सामना करना मुश्किल लगने पर भी वयस्क अक्सर सलाह और मदद के लिए दूसरों के पास जाने में संकोच करते हैं कि कहीं उन्हें "अपरिपक्व" न मान लिया जाए।

13.4.2 पूर्व वयस्कता की विशेषताएं

पूर्व वयस्कता की निम्न विशेषताएं हैं-

प्रारंभिक वयस्कता स्थायीकरण की अवस्था है।

बचपन और किशोरावस्था “बड़े होने” की अवधि है और वयस्कता स्थायीकरण का समय है। पूर्व में यह माना जाता था कि यदि लड़के और लड़कियां कानूनी परिपक्वता की आयु तक पहुंच गए हैं तो उनकी स्वतंत्रता के दिन खत्म हो गए हैं और समय आ गया है जब कि वे घर बसा लें और वयस्क जीवन की जिम्मेदारियों को स्वीकार करें। इसका मतलब यह था कि वह अपने जीवन के शेष समय के लिए पुरुष आय अर्जित करने का काम करेगा, जबकि युवा

महिला से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह गृहिणी और माँ की ज़िम्मेदारियों को निभाए। वर्तमान में देखा गया है कि जल्दी शादी करना या बहुत जल्दी जीवन-साथी चुनने के विकल्पों के कारण युवाओं में असंतोष दिखायी देता है। नतीजतन सभी युवा काम के विभिन्न क्षेत्रों को देखने का प्रयास करते हैं जो उनकी जरूरतों को पूरा करता है और उन्हें आजीवन संतुष्टि भी प्रदान करता है। इसी समय वे अपने लिए एक अच्छे जीवन साथी को ढूँढने का भी प्रयास करते हैं।

विभिन्न जीवन पद्धतियों और विभिन्न व्यक्तियों द्वारा अपने जीवन प्रतिमानों को साझा करने के लिए प्रयास करने में समय लगता है। नतीजतन युवा वयस्क आजकल आमतौर पर अपने माता-पिता की तुलना में देर से घर बसाना चाहते हैं। आज के वयस्क घर कब बसायेंगे यह दो कारकों पर निर्भर करता है; पहला ये की कितनी जल्दी वे एक आत्मनिर्भर वयस्क बनने में सक्षम होते हैं जिससे की वे अपनी जरूरतों को पूरा कर सकें और उनके पास जीवन यापन का साधन हो। दूसरा कारक उन्हें ऐसा करने से पहले उन जिम्मेदारियों को स्वीकार करना होगा जो घर बसाने के साथ में आयेंगी। किसी भी युवा द्वारा घर बसाने में लगने वाला समय व्यक्ति द्वारा चुने गए व्यवसाय अथवा करियर विकल्प पर निर्भर करता है जोकि हर क्षेत्र के लिए भिन्न भिन्न हो सकता है।

प्रारंभिक वयस्कता “प्रजनन आयु” है।

माता-पिता बनना युवा वयस्कों के जीवन में सबसे महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से एक है। जिनकी शादी किशोरावस्था के उत्तरार्ध के वर्षों में हुई हो, वे अपने बीसवें वर्ष के अंत तक अथवा तीस वर्ष की शुरुआत में ही माता पिता बन जाते हैं तथा कुछ प्रारम्भिक वयस्कता के समाप्त होने तक दादा-दादी भी बन जाते हैं। जो लोग अपनी शिक्षा पूरी करने तक या अपने जीवन के करियर शुरू करने तक शादी नहीं करते हैं, वे तब तक माता-पिता नहीं बनते जब तक उन्हें नहीं लगता कि वे परिवार का खर्च उठा सकते हैं। इसके अलावा, अगर महिलाएं शादी के बाद करियर बनाना चाहती हैं, तो वे तीस वर्ष के अंत तक ही बच्चे पैदा करती हैं।

प्रारंभिक वयस्कता एक “समस्याओं की आयु” है।

प्रारंभिक वयस्कता के वर्षों में आम तौर पर कई नई समस्याएं होती हैं जो प्रमुख पहलुओं में उनके जीवन के शुरुआती वर्षों में अनुभव की गई समस्याओं से भिन्न होती हैं। अठारह साल की कानूनी परिपक्वता की आयु पूरी होने के साथ युवा मतदान करने, अपनी संपत्ति जुटाने, माता-पिता की सहमति के बिना शादी करने के लिए, और कई चीजें करने के लिए सक्षम तो होते हैं किन्तु वयस्कों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनका वे पूरी तरह से सामना करने में असमर्थ होते हैं। यह एक सच्चाई है कि यह नई-मिली स्वतंत्रता युवा वयस्कों

और उनके माता-पिता दोनों के लिए अप्रत्याशित समस्याएं पैदा करती है। वयस्कता की समस्याओं का समायोजन इतना कठिन होने के कई कारण हैं जिनमें से निम्न तीन मुख्य हैं-

1. बहुत कम युवाओं को वयस्कता के समय उनके समक्ष आने वाली समस्याओं के लिए तैयार किया जाता है। हाई स्कूल और कॉलेज में शिक्षा केवल नौकरियों के लिए आपेक्षित प्रशिक्षण प्रदान करती है और कुछ ही स्कूल या कॉलेज विवाह और पितृत्व की सामान्य समस्याओं में पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं।
2. जिस तरह जब एक साथ दो या दो से अधिक कौशल सीखने की कोशिश की जाती है तो सामान्यतया व्यक्ति उनमें से किसी को भी अच्छी तरह से नहीं सीख पाता है, इसी प्रकार वयस्कता में प्रवेश करते ही व्यक्ति को दो या दो से अधिक नई भूमिकाओं (पति/पत्नी, पितृत्व/ मातृत्व, रोजगार) में समायोजन करना होता है जिसके परिणामस्वरूप वह कोई भी समायोजन ठीक से नहीं कर पाता है।
3. सबसे गंभीर बात यह है कि युवा वयस्कों को बचपन की भांति अपनी समस्याओं को पूरा करने और उन्हें हल करने में मदद नहीं मिलती है। अधिकांश युवा वयस्कों को अपनी नई स्थिति पर गर्व होता है कि वे अब किसी से सलाह नहीं लेते हैं और जीवन की नई स्थिति से जुड़ी समस्याओं का समाधान खुद ही ढूंढ लेते हैं। किशोरावस्था में कमी वयस्कता में आने वाली कठिनाइयों को बढ़ा देती है।

प्रारंभिक वयस्कता भावनात्मक तनाव की अवधि है।

तीस वर्ष की आयु तक, अधिकांश युवा वयस्क आमतौर पर नए परिवर्तनों के लिए समायोजन प्राप्त करते हैं और भावनात्मक रूप से स्थिर और शांत बनने के लिए अपनी समस्याओं को अच्छी तरह से हल करने में सक्षम होते हैं। भावनात्मक तनाव तीस के दशक में बनी रहती है जिसे आम तौर पर चिंताओं में व्यक्त किया जाता है। युवा वयस्क किस बात की चिंता करते हैं, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस समय वे किन समायोजन समस्याओं का सामना कर रहे हैं और इन समस्याओं को पूरा करने में उन्हें कितनी सफलता या असफलता मिल रही है। युवा वयस्क की चिंता आम तौर पर उनके काम पर आधारित होती है, क्योंकि उन्हें लगता है कि वे उतनी तेजी से आगे नहीं बढ़ रहे हैं जितनी उन्हें उम्मीद थी, या उनकी चिंताएं वैवाहिक या पितृत्व समस्याओं पर केंद्रित हो सकती हैं। इसलिए कई वयस्कों को लगता है कि वे अपने जीवन के प्रमुख क्षेत्रों में समस्याओं का सामना नहीं कर पाए हैं, वे अक्सर इतने भावुक रूप से परेशान होते हैं कि वे आत्महत्या के बारे में सोचते हैं या प्रयास करते हैं।

प्रारंभिक वयस्कता सामाजिक अलगाव की अवधि है।

काम और शादी के वयस्क जीवन पद्धति और घर के बाहर सामाजिक संपर्कों के अवसरों के प्रवेश के साथ, एक वयस्क को पुराने दोस्तों और समाज से अलग-थलग जीवन जीना शुरू करना पड़ता है। एरिक्सन ने इस आयु को "अंतरंगता बनाम अलगाव" की आयु के रूप में परिभाषित किया है। यह अवस्था लगभग 19 वर्ष से 40 वर्ष के मध्य होती है जिसमें व्यक्ति को अन्य लोगों के साथ अंतरंग प्रेमपूर्ण संबंध बनाने में संघर्ष करना पड़ता है। एरिकसन ने बताया कि यह महत्वपूर्ण है कि वयस्कता में प्रवेश करते समय व्यक्ति के करीबी, प्रतिबद्ध अंतरंग सम्बन्ध विकसित होने चाहिए। ये रिश्ते अक्सर प्रेम प्रसंगयुक्त प्रकृति होते हैं, लेकिन उनका यह भी मानना था कि घनिष्ठ मित्रता का होना भी महत्वपूर्ण है। इन अवस्था के दौरान सफलता मजबूत रिश्तों की ओर ले जाती है, जबकि असफलता अकेलेपन और अलगाव का कारण बनती है।

जिन वयस्कों ने अपने स्कूल और कॉलेज के दिनों में लोकप्रियता हासिल की और जिन्होंने अपना अधिकांश समय सहकर्मी गतिविधियों के लिए समर्पित किया, इस अवस्था के दौरान उन्हें समायोजन में अधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस आयु से आने वाला अकेलापन अस्थायी होगा या स्थायी रहेगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि युवा वयस्क कितने जल्दी और कितने संतोषजनक ढंग से स्कूल और कॉलेज के दोस्तों के स्थान पर नए सामाजिक संपर्क स्थापित कर सकते हैं। यह अलगाव प्रतिस्पर्धी भावना और व्यवसायिक पृष्ठभूमि पर उठने की तीव्र इच्छा से बढ़ता जाता है। सफलता प्राप्त करने के लिए वयस्कों को दूसरों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए, इस प्रकार किशोरावस्था की मित्रता को सफल वयस्क की प्रतिस्पर्धा के साथ बदलना चाहिए और उन्हें अपनी अधिकांश ऊर्जाओं को अपने काम के लिए भी समर्पित करना चाहिए जिससे उन्हें समाजीकरण के लिए भी बहुत थोड़ा समय मिलता मिलता है जिससे द्वारा ही करीबी रिश्तों का निर्माण होता है। अत: यह स्थिति उन्हें आत्म-केंद्रित होने की ओर ले जाती है और अकेलेपन में योगदान देती है।

प्रारंभिक वयस्कता प्रतिबद्धताओं का समय है।

युवा वयस्क छात्र और आश्रित, किशोरावस्था की विशेषता से लेकर स्वतंत्र वयस्क तक की अपनी भूमिका में बदलाव करते हैं, वे जीवन जीने के नए प्रतिमान स्थापित करते हैं, नई जिम्मेदारियां ग्रहण करते हैं और नई प्रतिबद्धताएं बनाते हैं। हालांकि जीवन के ये नए पैटर्न, नई ज़िम्मेदारियाँ, और नई प्रतिबद्धताएँ बाद में बदल सकती हैं, वे नींव बनाते हैं जिसके आधार पर जीवन जीने की ज़िम्मेदारियाँ, और प्रतिबद्धताएँ स्थापित की जाती हैं।

प्रारंभिक वयस्कता अक्सर निर्भरता की अवधि होती है।

अठारह वर्ष की आयु में कानूनी वयस्कता की स्थिति प्राप्त करने के बावजूद, कई युवा वयस्क आंशिक रूप से या पूरी तरह से अलग-अलग समय सीमा के लिए दूसरों पर निर्भर होते हैं। यह निर्भरता माता-पिता पर हो सकती है; किसी शिक्षण संस्थान पर हो सकती है जिसमें वे अपनी शिक्षा के लिए छात्रवृत्ति प्राप्त करते हैं या फिर सरकार पर जिससे वे अपनी आगे की पढाई के लिए ऋण लेते हैं।

प्रारंभिक वयस्कता मूल्य परिवर्तन का समय है।

बचपन और किशोरावस्था के दौरान पहले से विकसित मूल्य अनुभव और विभिन्न आयु के लोगों के साथ सामाजिक संपर्क के रूप में बदलते हैं। इस अवस्था में मूल्यों का अधिक परिपक्व दृष्टिकोण अपेक्षित है। वयस्क जो स्कूल को एक आवश्यक बुराई मानते थे, अब शिक्षा के मूल्य को सामाजिक और व्यवसायिक सफलता और व्यक्तिगत पूर्ति के लिए एक मील के पत्थर के रूप में पहचान सकते हैं। बदले हुए और परिपक्व मूल्यों के परिणामस्वरूप कई वयस्क जो स्कूल या कॉलेज से बाहर हो गए हैं, अपनी शिक्षा पूर्ण करने का निर्णय लेते हैं। कुछ लोग पढ़ने के लिए इतना प्रेरित हो जाते हैं की वे कॉलेज की डिग्री प्राप्त करने के बाद भी पढ़ाई जारी रखते हैं। शुरुआती वयस्कता में मूल्य परिवर्तन के कई कारण हैं, जिनमें से निम्न तीन बहुत आम हैं:

1. यदि युवा वयस्कों को वयस्क समूह के सदस्यों द्वारा स्वीकार किया जाना है, तो उन्हें वयस्क समूह के मूल्यों को स्वीकार करना चाहिए, जैसा कि उन्होंने बचपन और किशोरावस्था के दौरान सहकर्मी समूह की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए किया था। युवा वयस्कों को यह भी पता चलता है कि अगर उन्हें वयस्क आर्थिक और सामाजिक समूहों में स्वीकार किया जाना है, तो उन्हें वयस्क-अनुमोदित उपस्थिति और व्यवहार को अपनाना होगा।
2. युवा वयस्कों को जल्द ही पता चलता है कि अधिकांश सामाजिक समूह मान्यताओं और व्यवहार के बारे में पारंपरिक मूल्यों को धारण करते हैं, जैसे वे उपस्थिति के बारे में करते हैं।
3. युवा वयस्क जो माता-पिता बनते हैं, वे उन लोगों की तुलना में जो अविवाहित या निःसंतान हैं, न केवल अपने मूल्यों को पहले से बदल देते हैं बल्कि वे अधिक रूढ़िवादी और पारंपरिक मूल्यों में भी बदलाव करते हैं।

प्रारम्भिक वयस्कता के दौरान विकासात्मक परिवर्तन

शारीरिक परिवर्तन

- प्रारम्भिक वयस्कता के दौरान शारीरिक शक्ति आमतौर पर अपने चरम पर होती है (20 वर्ष से 30 वर्ष)।
- हालांकि इस चरण के दौरान शारीरिक परिवर्तन न्यूनतम हैं, आहार, व्यायाम, गर्भावस्था और स्तनपान के परिणामस्वरूप वजन और मांसपेशियों में परिवर्तन होता है।
- शुरुआती वयस्कता में ताकत में वृद्धि फिर बाद में धीमी गति से गिरावट।
- स्वास्थ्य और जीवन शैली से प्रभावित गिरावट।

संज्ञानात्मक परिवर्तन

- पियाजे का मानना है कि प्रारंभिक वयस्कता में वयस्कों को ज्ञान तो प्राप्त होता है, लेकिन सोचने के तरीके किशोरावस्था के समान ही होते हैं। हालांकि कुछ शोधकर्ता पियाजे की इस विचारधारा से असहमत हैं।
- प्रारंभिक वयस्कता अधिक यथार्थवादी और व्यवहारिक हो जाती है।
- उत्तर-औपचारिक विचार - ऐसे विचार जो चिंतनशील, सापेक्ष, यथार्थवादी हैं और उनका आदर्शवाद घटता है।
- भावनाएं और व्यक्तिपरक कारक सोच को प्रभावित कर सकते हैं।

भावनात्मक परिवर्तन

- मनोसामाजिक विकास के अपने सिद्धांत में, एरिक्सन ने दो मौलिक विषयों का वर्णन किया है जो वयस्कता पर हावी हैं: प्रेम और काम।
- प्रारंभिक वयस्कता के दौरान, व्यक्ति एरिक्सन की “अंतरंगता बनाम अलगाव” चरण में प्रवेश करते हैं (दूसरों के साथ अंतरंग संबंध बनाने या सामाजिक रूप से अलग-थलग होने का विकासात्मक कार्य)।
- स्वतंत्रता: मूल परिवार से अलग होना
    1. आराम, सुरक्षा, दिशा के प्रमुख स्रोत के रूप में माता-पिता का उपयोग किए बिना कार्य करना सीखें।

2. माता-पिता के साथ “समानता” की भावना स्थापित करें।
3. वयस्क मित्रता का विकास करें।

- माता-पिता बनना: कम आयु में बच्चे होने के फायदे;
  1. माता-पिता में अधिक शारीरिक ऊर्जा होने की संभावना होती है, गर्भावस्था और प्रसव के दौरान माँ को कम चिकित्सकीय समस्याएं होने की संभावना होती है।
  2. माता-पिता की अपने बच्चों के प्रति कम उम्मीदों के निर्माण की संभावनाएं होती हैं।

13.5 मध्य वयस्कता की अवस्था

13.5.1 अर्थ एवं परिभाषा

मध्य वयस्कता या मध्य आयु, युवा वयस्कता और वृद्धावस्था के बीच जीवन काल की अवधि है। यह अवधि 40 से 60 वर्ष तक रहती है, जो इन चरणों, आयु और कार्यो के आधार पर सांस्कृतिक रूप से परिभाषित होती है।

dreamstime.com

यह चरण युवा वयस्कता जैसे विभिन्न बदलाव भी लाता है। शारीरिक शक्ति में गिरावट हो सकती है और मध्यम आय वर्ग के लोग आहार, मादक द्रव्यों के सेवन, तनाव और आराम के प्रति अधिक संवेदनशील हो सकते हैं। विकलांगता या बीमारी के साथ पुरानी स्वास्थ्य समस्याएं भी एक मुद्दा बन जाती हैं। मध्यम आयु के दौरान, ऊंचाई में कमी प्रति दशक एक सेंटीमीटर के रूप में देखी जा सकती है। इस स्तर पर भावनात्मक प्रतिक्रियाएं और पूर्वव्यापीकरण एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न हो सकते हैं। मध्यम आयु वर्ग के लोगों को भी मृत्यु दर, उदासी या हानि की भावना का अनुभव होता है। मध्यम आयु वर्ग के व्यक्ति रिश्तों को विकसित करना और रिश्तों में बदलाव के अनुकूल होना जारी रखते हैं। ये बदलाव बढ़ते और बड़े होते बच्चों और आयु बढ़ने वाले माता-पिता के साथ बातचीत हो सकते हैं।

सामुदायिक भागीदारी वयस्कता के इस चरण के साथ-साथ करियर के विकास में भी काफी विशिष्ट है। संक्षेप में, मध्यम वयस्कता समय है:

- व्यक्तिगत और सामाजिक भागीदारी और जिम्मेदारी के विस्तार का,
- अगली पीढ़ी के लिए उन्हें अधिक सक्षम और परिपक्व व्यक्ति बनाने के लिए ज्ञान, कौशल और अनुभव को स्थानांतरित करने का,
- करियर में संतुष्टि तक पहुंचना और बनाए रखने का,
- शारीरिक कौशल में गिरावट,
- काम और रिश्तों को संतुलित करना,
- जीवन की प्राथमिकताओं का पुनर्मूल्यांकन,
- मध्यम आयु में अस्थि का एक प्रगतिशील नुकसान होता है।

13.5.2 मध्य वयस्कता की विशेषताएं

मध्य वयस्कता जीवन काल में एक लंबी अवधि होती है, यह प्रथागत रूप से प्रारंभिक मध्य वयस्कता जो चालीस से पचास वर्ष की आयु तक होती है तथा अग्रिम मध्य वयस्कता जो पचास से साठ वर्ष की आयु तक होती है। जीवन काल में हर अवधि की तरह, मध्य वयस्कता कुछ विशिष्ट विशेषताओं से जुड़ी होती है जो इसे विशिष्ट बनाती हैं। इन विशेषताओं में से कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएं नीचे सूचीबद्ध हैं:

मध्य वयस्कता एक खतरनाक अवधि है।

इस युग को जीवन काल में खूंखार अवधि कहा जाता है। यह माना जाता है कि वृद्धावस्था के बाद, यह कुल जीवन काल में सबसे खतरनाक अवधि है और एक वयस्क यह स्वीकार नहीं कर पाता है की वह आयु के आखिरी पड़ाव की ओर बढ़ रहे हैं। जैसा कि डेसमंड ने कहा है, “मध्य वयस्कता के लोग बहुत दुखी तथा भय की भावना से घिरे हुए रहते हैं”। यह माना जाता है कि इस आयु के बाद बुढ़ापा आपके नजदीक है तथा अब आपको चौकन्ना रहना होगा। इस अवधि में मानसिक व शारीरिक पतन भी होने लगता है, प्रजनन शक्ति समाप्त हो जाती है और वितीय स्वतंत्रता में प्रतिबंध लग जाता है।

मध्य आयु बदलाव का समय है।

बदलाव का मतलब हमेशा नए हितों में समायोजन, नए मूल्यों व्यवहार के नए तरीके, शारीरिक परिवर्तन, बदली हुई भूमिकाएं आदि से होता है। सबसे महत्वपूर्ण समायोजन

जीवनसाथी की मृत्यु के साथ होता है। इसके साथ आपको अपने बूढ़े माता-पिता के साथ भी समायोजन करना पड़ता है।

मध्य वयस्कता तनाव का समय है।

घर में तनाव, बच्चों की पढ़ाई व भविष्य का तनाव, सेहत का तनाव, महिलाओं में रजोनिवृत्ति की अवधि के दौरान तनाव।

मध्य वयस्कता उपलब्धि का समय है।

यहाँ ना केवल वित्तीय और सामाजिक सफलता के लिए बल्कि अधिकार और प्रतिष्ठा के लिए भी समय होना चाहिए। इस आयु में पुरूषों व महिलाओं द्वारा किये गये काम का लाभ लेने का समय होता है तथा आराम करने की भी।

मध्य वयस्कता मूल्यांकन का समय है।

धन, सामाजिक स्थिति, पारिवारिक आकार, उनकी पूर्व आकाक्षाएँ, भविष्य के जीवन की योजना आदि के संदर्भ में उनकी उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाता है।

मध्य वयस्कता ''खाली घोसलों'' का समय है।

यह वह समय है जब बच्चे अपनी आगे की पढ़ाई के लिए घर छोड़ देते हैं तथा दूसरी जगह चले जाते हैं। यह अवधि पुरूषों की तुलना में महिलाओं के लिए अधिक पीड़ादायक होती है।

मध्य वयस्कता संक्रमण काल है।

जिस प्रकार यौवन बचपन से किशोरावस्था तक और फिर युवावस्था में संक्रमण काल होता है, उसी तरह मध्य वयस्कता वह समय होता है जब पुरुष और महिला वयस्कता की शारीरिक और व्यवहार संबंधी विशेषताओं को पीछे छोड़ देते हैं और जीवन की एक अवधि में प्रवेश करते हैं जब नई शारीरिक और व्यवहारिक विशेषताएं प्रबल होती हैं। यह वह समय है जब पुरुष पौरुष में बदलाव से गुजरते हैं और महिलाएं प्रजनन क्षमता में बदलाव से।

मध्य वयस्कता के दौरान विकासात्मक परिवर्तन

भौतिक परिवर्तन:

1. मध्यम आयु वर्ग के वयस्कों में आयु बढ़ने के निम्न सामान्य लक्षण दिखाई देने लगते हैं:

- वजन बढ़ना: मध्यम आयु के दौरान वसा मुख्य रूप से पेट और कूल्हों पर जमा होती है।
- बालों का झड़ना और सफ़ेद होना: अधेड़ आयु के व्यक्ति की हेयरलाइन फिर से बनने लगती है, बाल पतले हो जाते हैं और सिर के शीर्ष पर गंजापन बहुत आम हो जाता है। इस चरण के दौरान नाक, कान और पलकों में बाल रूखे हो जाते हैं, जबकि चेहरे के बाल धीरे-धीरे बढ़ते हैं। महिलाओं के बाल पतले हो जाते हैं, और ऊपरी होंठ पर बालों की वृद्धि होती है और पचास वर्ष के आस पास कुछ महिलाओं के बाल सफेद हो जाते हैं।
- त्वचा में परिवर्तन: चेहरे, गर्दन और हाथों पर त्वचा मोटी और झुर्रीदार हो जाती है। आंखों के नीचे काले घेरे अधिक स्थायी और स्पष्ट हो जाते हैं।
- शारीरिक शिथिलता: कंधे अक्सर गोल हो जाते हैं, पेट बाहर निकल जाता है और व्यक्ति छोटा दिखता है।
- मांसपेशियों में परिवर्तन: ज्यादातर मध्यम आयु वर्ग के लोगों की मांसपेशियां ठोड़ी, ऊपरी बांहों और पेट के क्षेत्रों में नरम हो जाती हैं।
- संयुक्त समस्याएं: कुछ मध्यम आयु वर्ग के लोगों को जोड़ों और शरीर के अन्य अंगों में समस्याएं होती हैं जो उन्हें चलने में कठिनाई पैदा करती है।
- दांत में परिवर्तन: दांत पीले हो जाते हैं और अक्सर आंशिक या पूर्ण रूप से प्रतिस्थापित करने पड़ते हैं।
- मांसपेशियों की ताकत, लचीलापन और सहनशक्ति में गिरावट शुरू हो सकती है।

2. महिलाओं में शारीरिक परिवर्तन

- मासिक धर्म का समापन: महिला को मासिक धर्म के अचानक समाप्ति का अनुभव हो सकता है जिसे रजोनिवृत्ति कहते हैं।
- प्रजनन प्रणाली का सामान्यीकृत क्षय: जननांग पथ का सामान्यीकृत क्षय होने लगता है जिसके परिणामस्वरूप न तो परिपक्व अण्डाणु और न ही डिम्बग्रंथि हार्मोन, एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टिन का उत्पादन होता है।

- शारीरिक असुविधाएँ: रजोनिवृत्ति के दौरान अनुभव की जाने वाली सबसे आम शारीरिक परेशानियों में सिर, गर्दन और ऊपरी छाती में गरमी लगना तथा पसीना आना शामिल हैं। इसके अतिरिक्त पूरे शरीर पर झनझनाहट, सिर दर्द, थकान; घबराहट और चिड़चिड़ापन; दिल की घबराहट; बेचैनी आदि सामान्य परेशानियां भी होती हैं।
- वजन बढ़ना: जिस तरह कई बच्चे अपनी युवावस्था में मोटापे की परेशानी से गुजरते हैं, इसी प्रकार कई महिलाएं रजोनिवृत्ति के दौरान वजन बढ़ना महसूस करती हैं।
- व्यक्तित्व परिवर्तन: कई महिलाओं को रजोनिवृत्ति के दौरान व्यक्तित्व परिवर्तन का अनुभव होता है। वे उदास, शत्रुतापूर्ण और आत्म-आलोचनात्मक हो जाते हैं। रजोनिवृत्ति समाप्त होने के साथ अंतःस्रावी संतुलन की बहाली के साथ, ये परिवर्तन सामान्य रूप से गायब हो जाते हैं।

3. पुरूषों में शारीरिक परिवर्तन

- प्रजनन अंगों के कार्य में गिरावट: पचास के बाद जननांगों की गतिविधि में धीरे-धीरे गिरावट आती जाती है। हालांकि कुछ पुरुष सत्तर और अस्सी वर्ष तक भी पिता बनते हैं। मध्यम आयु वर्ग की महिलाओं की तरह, पुरुष भी मध्य अवस्था के दौरान जैविक परिवर्तनों का सामना करते हैं जिन्हें सामूहिक रूप से एंड्रोपॉज के रूप में जाना जाता है, जो पुरुष प्रजनन प्रणाली से संबंधित शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की अवधि है।
- यौन इच्छा में कमी: यौन इच्छा में गिरावट से प्रजनन अंगों की कार्यप्रणाली में गिरावट आती है। यह आंशिक रूप से जनन संबंधी कार्य में गिरावट और आंशिक रूप से मनोवैज्ञानिक कारणों, जैसे प्रतिकूल वैवाहिक संबंधों या व्यवसाय, आर्थिक या पारिवारिक चिंताओं के कारण होता है।
- पौरुष रूप में गिरावट: जननागों की गतिविधि में गिरावट के साथ, व्यक्ति आम तौर पर अपनी कुछ पौरुष विशेषताओं को खो देता है।
- शारीरिक परेशानी: कई मध्यम आयु वर्ग के पुरुषों में अवसाद, चिंता, चिड़चिड़ापन, सिर दर्द, अनिद्रा, पाचन संबंधी गड़बड़ी, घबराहट, थकान और मामूली खुजली और दर्द की शिकायत होती है।

संज्ञानात्मक परिवर्तन

- एरिक एरिक्सन वयस्कता की इस अवधि को संदर्भित करता है; ‘‘उत्पादकता -बनाम-ठहराव’’ चरण।
- मध्य वयस्क या मध्यम आयु के व्यक्तियों में कुछ संज्ञानात्मक हानि हो सकती है।
- कुछ बौद्धिक क्षमताएँ मध्यम आयु में कम हो जाती हैं, लेकिन अन्य में वृद्धि होती है, जैसे 1) क्रिस्टलीकृत बुद्धि: सूचना, कौशल, रणनीतियों का संग्रह प्राप्त करना मध्यम वयस्कता में बढ़ जाता है 2) द्रव बुद्धि: नई परिस्थितियों के साथ सामना करने की क्षमता में मध्य वयस्कता में गिरावट शुरू होती है ।

सामाजिक परिवर्तन

- वैवाहिक संतुष्टि बनी रहती है लेकिन अन्य पारिवारिक रिश्ते अधिक कठिन हो सकते हैं।
- करियर विकल्प और नौकरियां आंतरिक संतुष्टि और संतोष पर अधिक और महत्वाकांक्षा और 'अग्रिम' की इच्छा पर कम केंद्रित हैं।
- मध्य वयस्कता या मध्य आयु एक ऐसा समय हो सकता है जब कोई व्यक्ति अपनी उपलब्धियों का मूल्यांकन करके अपने जीवन का पुन: परीक्षण करता है।
- नैतिकता बदल सकती है और अधिक सचेत हो सकती है। यह धारणा कि जीवन के इस चरण में लोग ‘‘मध्य-जीवन’’ के संकट से गुजरते हैं, काफी हद तक गलत है।
- जीवन में यह अवधि आमतौर पर संतोषजनक, शांत होती है। इस अवधि के दौरान व्यक्तित्व की विशेषताएँ स्थिर रहती हैं।
- मध्य वयस्कता में संबंध, स्थिर रहने वाले सम्बंधों में विकसित हो सकते हैं।

रूचि में परिवर्तन

- रुचियों को सामान्यतः अधिक संकुचित किया जाता है जो आगे बढ़ने की आयु के साथ विस्तारित होते हैं।
- एकांत प्रिय होना रुचियों की ओर एक और बदलाव है जैसे शौक पूरे करना, पढ़ना और टेलीविजन देखना।

- कई मध्यम आयु वर्ग के लोग सांस्कृतिक गतिविधियों में रुचि बढ़ाते हैं जैसे पढ़ना, पेंटिंग करना और व्याख्यान और संगीत कार्यक्रम में भाग लेना।
- तथाकथित महिलाओं की गतिविधियों में अधिक रुचि दिखाने वाले पुरुषों के साथ यौन संबंधी मतभेदों में कमी आती है, जैसे आनंद के लिए पढ़ना, खेलों में संलग्न होना या खेल प्रतियोगिता देखना।
- पुरुषों और महिलाओं को साझा हितों में संलग्न होने की प्रवृत्ति होती है, जैसे समान लिंग के सदस्यों के साथ हितों को उलझाने के बजाय शौक और सांस्कृतिक खोज।
- आत्म-सुधार के लिए अग्रणी गतिविधियों में रुचि बढ़ना, जैसे व्याख्यान और संगीत कार्यक्रम में भाग लेना। ऐसी गतिविधियों में रुचि कम हो जाती है जो विशुद्ध रूप से आनंद के लिए होती हैं, जैसे फिल्म देखना या ताश खेलना।

भावनात्मक परिवर्तन

- "उत्पादक बनाम ठहराव" के अनुसार, एरिकसन का सातवां चरण, जिसमें व्यक्ति अगली पीढ़ी के लिए खुद की विरासत छोड़ देते हैं।
- अगली पीढ़ी को पढ़ाने / मार्गदर्शन करने में सक्रिय भागीदारी।
- ठहराव में शामिल होने / स्व-केंद्रित होने के लिए निर्गम द्वार की मांग नहीं करना शामिल है।
- अगली पीढ़ी का मार्गदर्शन करना, या सामान्य रूप से समाज में सुधार करना या स्वयं को केंद्रित करना, अलग-थलग करना और दुनिया में सार्थक रूप से भाग लेने में असमर्थ होना।

13.6 सारांश

इस इकाई में हमने जाना कि आयु बुनियादी श्रेणियों में से एक है जिसमें लोगों को वर्गीकृत किया जाता है। वयस्कता के प्रत्येक उप चरण में, कुछ विशेष आवश्यकताएं और मांगें होती हैं जिन्हें स्वस्थ समायोजन के लिए पूरा करने की आवश्यकता होती है। युवावस्था के दौरान, एक उपयुक्त नौकरी की जरूरत होती है और परिवार की सुरक्षा बहुत महत्वपूर्ण है। इस अवस्था के दौरान वे एक सफल नौकरी और पारिवारिक जीवन से संतुष्टि प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। वृद्धावस्था में, मध्यम आयु वर्ग के लोग शारीरिक और मनोवैज्ञानिक

स्वास्थ्य और भावनात्मक और वित्तीय सुरक्षा के प्रति अधिक चिंतित होते हैं। प्रारंभिक वयस्कता जीवन के नए पैटर्न और नई सामाजिक अपेक्षाओं के समायोजन की अवधि है। यह चरण किशोरावस्था की समाप्ति अथवा 20 वर्ष से 40 वर्ष तक रहती है। प्रारंभिक वयस्कता व्यक्तिगत और आर्थिक स्वतंत्रता की स्थापना का समय है, जिसमें व्यक्ति प्यार और काम में स्वयं की पहचान की खोज करता है।

13.7 पारिभाषिक शब्दावली

- **जैविक वयस्क:** युवा वयस्क जिन्होंने प्रजनन क्षमता प्राप्त की है।
- **सामाजिक वयस्क**: युवा वयस्क जो अपनी संस्कृति या कानून द्वारा वयस्क होने के रूप में पहचाने जाते हैं।
- **रजोनिवृत्ति:** रजोनिवृत्ति एक ऐसी अवधि है जब किसी महिला को मासिक धर्म लगातार 12 महीनों तक नहीं होता है। यह महिलाओं में प्रजनन क्षमता के अंत का सूचक है।
- **शारीरिक और क्रियात्मक विकास:** इसमें शरीर, विशेष रूप से मांसपेशियों और शारीरिक समन्वय पर नियंत्रण विकसित करना शामिल है।

13.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Hurlock,. B. (2016), Developmental Psychology: A Life Span Approach, Fifth Edition, Tata McGraw-Hill Education (India), Pvt. Ltd. New Delhi, 01-Aug-2001
2. E.B. Hurlock (2001), Child Development, Tata McGraw-Hill Education
3. Berk,E.L.(2013): Exploring Life span development,3rd edi. Mc Graw Hill. New York.
4. Papalia,D.E. and Olds.SW.(2008). Human development, 11th edi.Mc Graw Hill. New York.
5. Santrock,John.(2012).Life span development,14th edi. Mc Graw Hill. New York.

6. David,McGuireThomas, GaravanLarry M Dooley. 2012 Fundamentals of Human Resource Development, *SAGE Publications Ltd*
7. Gates, A.I. Elementary Psychology, New York: McMillan, 1960.
8. Gilmen, B. Vonhaller, Psychology (International Ed.) Harper, 1970.

13.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रारम्भिक वयस्कता की सामान्य विशेषताएं विस्तार से बताइये।
2. मध्य वयस्कता में होने वाले प्रमुख भौतिक परिवर्तनों को सविस्तार लिखिए।

इकाई 14 : प्रारम्भिक एवं मध्य वयस्कता में सामाजिक और भावनात्मक विकास

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 प्रारंभिक और मध्य वयस्क अवस्था के दौरान व्यक्तिगत और सामाजिक विकास
    14.3.1 भावनात्मक और सामाजिक विकास: अंतरंगता बनाम अलगाव
    14.3.2 पारिवारिक समायोजन
    14.3.3 व्यवसायिक समायोजन
    14.3.4 प्रजनन/ यौन-भूमिका, परिवर्तन और सामंजस्य
    14.3.5 रूचि में परिवर्तन
14.4 सारांश
14.5 पारिभाषिक शब्दावली
14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.7 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

सिद्धांत इंगित करते हैं कि वयस्क किशोरावस्था के अंत से वृद्धावस्था तक जीवन के पथों के संदर्भ में विकासात्मक आयाम बहुत भिन्न होते हैं। इनमें से कुछ मतभेद व्यक्तित्व, प्रेरणा और रुचियों में अंतर के कारण होते हैं और कुछ अप्रत्याशित और अवांछित जीवन की घटनाओं (जैसे तलाक; बेरोजगारी; बीमारी) के कारण होते हैं। हालाँकि वयस्क अवस्था के दौरान अधिकांश वयस्क दूसरों के साथ घनिष्ठ संबंध बनाते हैं, अधिकांश वयस्क के एक या अधिक बच्चे होते हैं और अधिकांश के पास अपने वयस्क जीवन के लिए नौकरियां होती हैं। सिद्धांतकारों ने उपर्युक्त सामान्य विषयों पर ध्यान केंद्रित किया है तथा प्रारंभिक व मध्य वयस्क वर्षों में व्यक्तिगत और सामाजिक परिवर्तनों की पहचान करने के लिए इनका आधार के रूप में उपयोग किया है।

14.2 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के उपरान्त शिक्षार्थी जानेंगे;

- प्रारंभिक तथा मध्य वयस्क अवस्था के दौरान व्यक्तिगत विकास;
- प्रारंभिक तथा मध्य वयस्क अवस्था के दौरान सामाजिक विकास; तथा
- प्रारंभिक तथा मध्य वयस्क अवस्था के दौरान भावनात्मक विकास।

14.3 प्रारंभिक और मध्य वयस्क अवस्था के दौरान व्यक्तिगत और सामाजिक विकास

प्रारंभिक वयस्क अवस्था की लंबी अवधि के दौरान कुछ शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन अनुमानित समय पर होते हैं। बचपन और किशोरावस्था की तरह निश्चित समय पर शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। वयस्क अवस्था को उस समय के आधार पर विभाजित किया जाता है जिस समय ये बदलाव समायोजन समस्याओं व सांस्कृतिक दबाव और उनसे उत्पन्न होने वाली अपेक्षाओं के साथ होते हैं। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि ये उप-विभाजन निश्चित और कठोर नहीं हैं। इसके बजाय, वे केवल उन युगों को इंगित करते हैं जिन पर औसत पुरुष या महिला से अपेक्षा की जा सकती है कि वे उपस्थिति, शारीरिक कार्यों, रुचियों, व्यवहारों या व्यवहार में कुछ बदलावों को दिखाना शुरू करें। हमारी संस्कृति में कुछ पर्यावरणीय दबाव समायोजन समस्याओं को जन्म देते हैं जिनसे कुछ पुरुष या महिला बच जाते हैं। जैसा कि गॉल्ड ने जोर दिया है कि “निश्चित आयु जिस पर परिवर्तन होते हैं वह एक व्यक्ति के कुल व्यक्तित्व, जीवन शैली और उपसंस्कृति का एक उत्पाद है”। प्रारंभिक वयस्क अवस्था कई व्यक्तिगत, सामाजिक और अन्य कारकों से प्रभावित होती है, जैसे परिवार, भावना, यौन भूमिकाएं, परिवार, कार्य और पारस्परिक संबंध। आयु बढ़ने के साथ सामाजिक और भावनात्मक विकास पहलुओं पर बहुत सारे सिद्धांत उपलब्ध हैं। आप जानते हैं कि व्यक्तिगत विकास किसी व्यक्ति की सामाजिक परिवेश यानी घर, कार्यस्थल, समुदाय आदि के साथ तालमेल बिठाने की क्षमता को संदर्भित करता है। इसका मतलब है कि यह किसी व्यक्ति के भावनात्मक विकास को भी प्रभावित करता है। निम्नलिखित वर्गों में हम शुरुआती वयस्क अवस्था के दौरान होने वाले व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के बारे में जानेंगे। प्रारंभिक वयस्क अवस्था के दौरान व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन विभिन्न शीर्षकों के तहत परिभाषित किए गए हैं जो कि निम्नवत हैं।

14.3.1 भावनात्मक और सामाजिक विकास: अंतरंगता बनाम अलगाव

एरिकसन के योगदान ने वयस्क व्यक्तित्व विकास के अध्ययन को सक्रिय किया है। एरिकसन के दृष्टिकोण ने सभी समकालीन सिद्धांतों को प्रभावित किया है। एरिकसन के अनुसार वयस्क तीन चरणों से गुजरते हैं, प्रत्येक चरण अवसर और जोखिम दोनों लाता है जो कि बेहतर या निकृष्टतर (बदतर) क्रांतिकारी परिवर्तन हो सकता है। एरिकसन के सिद्धांत के अनुसार, युवा वयस्कों को मनोसामाजिक संघर्ष का सामना करना पड़ता है; "अंतरंगता बनाम अलगाव" जो इस आयु के दौरान एक अंतरंग साथी के लिए एक स्थायी प्रतिबद्धता बनाने के बारे में विचारों और भावनाओं की ओर जाता है। अंतरंगता की अपनी परिभाषा में एरिकसन ने कहा कि यह दूसरे लिंग के प्रिय साथी के साथ कामोन्माद की सौहार्दता को संदर्भित करता है, जिसके साथ वह एक पारस्परिक विश्वास साझा करने में सक्षम और इच्छुक है, काम के चक्र को विनियमित करने के लिए तैयार है तथा प्रजनन, मनोरंजन और संतान की सुरक्षा के लिये तैयार है। एरिकसन ने बताया कि संभोग को व्यक्तियों के बीच अंतरंगता का सबसे महत्वपूर्ण पहलू नहीं माना जाना चाहिए। वह यौन अंतरंगता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है; किसी अन्य व्यक्ति के लिए गहरी आशाओं और भय से संबंधित होने की क्षमता और बदले में अंतरंगता के लिए किसी अन्य की आवश्यकता को स्वीकार करना। जिन लोगों ने अंतरंगता के चरण को प्राप्त किया है, वे खुद को दूसरों के साथ ठोस जुड़ाव और साझेदारी के लिए प्रतिबद्ध करने में सक्षम हैं और "प्रतिबद्धताओं, महत्वपूर्ण बलिदानों और समझौतों के बंधन का पालन करने की नैतिक ताकत" विकसित करते हैं। एरिकसन को फ्रायड की प्रतिक्रिया को प्रस्तुत करते हुए पाया गया, जब उनसे पूछा गया कि उन्हें क्या लगता है कि एक सामान्य व्यक्ति को अच्छा काम करने में सक्षम होना चाहिए। फ्रायड के लिए, फिर पारस्परिक उपलब्धियों और प्यार करने वाली भावनाओं के लिए जिम्मेदारी साझा करना वयस्क अवस्था का सार है। एरिकसन पूरी तरह से इस बात से सहमत हैं। इस प्रकार जब फ्रायड इस अवधि का वर्णन करने के लिए जननांगता का उपयोग करते हैं, तो वह केवल यौन संभोग का मतलब नहीं है बल्कि वह किसी के गहरे मूल्यों, जरूरतों को साझा करने की क्षमता को संदर्भित करते हैं।

14.3.2 पारिवारिक समायोजन

अधिकांश युवा लोगों को अंतरंगता की तलाश शादी की ओर ले जाती है। उनका जीवन परिवार के जीवन चक्र के भीतर आकार लेता है। प्रारंभिक वयस्क अवस्था में वयस्क आमतौर पर शादी कर लेते हैं और अपने बच्चों के पालन-पोषण में लिप्त रहते हैं। जैसे-जैसे वे मध्य वयस्कता में प्रवेश करते हैं और उनके बच्चे घर छोड़ देते हैं, उनके पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी कम हो जाती है, जबकि उत्तर वयस्क अवस्था सेवानिवृत्ति, वृद्धावस्था में प्रवेश

और पति या पत्नी की मृत्यु जैसे अन्य परिवर्तन लाती है। पारिवारिक समायोजन के अंतर्गत निम्न बिंदु निहित हैं:

1. **घर से प्रस्थान:** माता-पिता के घर से प्रस्थान वयस्क जिम्मेदारियों को संभालने की दिशा में एक बड़ा कदम है। आजकल अधिकांश युवा विवाह से पहले स्वतंत्र रूप से रहते हैं। उनके प्रस्थान का समय कारण के साथ बदलता रहता है। परिवार के टकराव से बचने की इच्छा रखने वाले युवा वयस्कों की एक छोटी संख्या जल्दी ही घर पलायन कर जाती है और तलाकशुदा एवं एकल माता-पिता के घरों के युवा परिवार के तनाव के कारण जल्दी ही घर छोड़ देते हैं।
2. **विवाह में परिवारों का शामिल होना:** पूर्व की अपेक्षा आजकल के युवा वयस्क शादी अधिक देरी से कर रहे हैं। पहले और दूसरे विवाह की संख्या में पिछले कुछ दशकों में गिरावट आई है क्योंकि अधिक लोग एकल या साथ में रहते हैं और तलाक के बाद पुनर्विवाह नहीं करते हैं। विवाह को आमतौर पर दो व्यक्तियों के शामिल होने के रूप में माना जाता है लेकिन वास्तव में पति और पत्नी के परिवार एक नई उप-प्रणाली बनाने के लिए सामंजस्य स्थापित करते हैं। नतीजतन, शादी युगल जोड़ों के लिये जटिल चुनौतियों को प्रस्तुत करती है। इसलिए आजकल पति-पत्नी की भूमिकाएं एक सच्ची साझेदारी की दिशा में आगे बढ़ना शुरू हो गई हैं।
3. **वैवाहिक भूमिका:** शादी और हनीमून पूरा होने के बाद, युगल उन मुद्दों पर विचार करते हैं, जिन्हें उन्होंने पहले व्यक्तिगत रूप से तय किया था या जो उनके परिवार के लोगों ने निर्धारित किए थे। वे चर्चा करते हैं और रोज़मर्रा के मामलों पर निर्णय लेते हैं कि कब और कैसे खाना, सोना, बात करना, काम करना, आराम करना और पैसे खर्च करना है। वे यह भी तय करते हैं कि कौन सी पारिवारिक परंपराओं और रीति-रिवाजों को बनाए रखना है और जो एक युगल के रूप में अपनी सामाजिक दुनिया से संबंधित हैं, वे अपने माता-पिता, भाई-बहन, विस्तारित परिवार, दोस्तों और सहकर्मियों के साथ अपने संशोधित संबंधों को स्वीकार करते हैं। महिलाओं के अधिकारों के क्षेत्र में प्रगति के बावजूद, पारंपरिक विवाह में पति की स्पष्ट रूप से भिन्न भूमिका शामिल है जो हमारे समाज में अभी भी मौजूद है। आदमी घर का मुखिया है; उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी उनके परिवार की आर्थिक भलाई है। महिला अपने पति और बच्चों की देखभाल के

लिए और आरामदायक घर बनाने के लिए खुद को समर्पित करती है। हालांकि, हाल के दशकों में पारंपरिक विवाह बदल गए हैं। यद्यपि महिलाएं अपने बच्चों के युवा होने पर मातृत्व को सर्वोच्च प्राथमिकता देती हैं, लेकिन कई महिलाएं बाद में कार्य क्षेत्र में लौट आती हैं।

समतावादी विवाह में, पति और पत्नी समान रूप से एक दूसरे से संबंधित होते हैं तथा शक्ति एवं अधिकार का सामान रूप से एक दूसरे से साझा करते हैं। दोनों जीवन-साथी अपने व्यवसाय, अपने बच्चों और अपने संबंधों के लिए समर्पित समय और ऊर्जा को संतुलित करने का प्रयास करते हैं। बहुसंख्यक पढ़ी-लिखी, करियर बनाने वाली महिलाएं शादी के इस रूप की उम्मीद करती हैं। लेकिन महिलाओं के रोजगार का घरेलू श्रम कार्य के विभाजन पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ा है। दोहरे कमाने वाले परिवारों में पुरुष एकल कमाने वाले परिवारों की तुलना में अधिक भाग लेते हैं।

4. **वैवाहिक संतुष्टि:** वैवाहिक जीवन की कठिन शुरुआत के बावजूद, अधिकांश विवाह खुशियों के रूप में या खुश रहने के लिए आगे बढ़ते हैं। कई युगल परिवार नियोजन के बारे में नहीं सोचते जब तक कि करियर सही से स्थापित नहीं है और एक साथ रहने की भावना उत्पन्न न हो जो प्रत्येक को एक व्यक्ति के रूप में पनपने की अनुमति देता है। धैर्य, देखभाल, मूल्यों का साझा, एक दूसरे के साहचर्य का आनंद और अच्छे संघर्ष-संकल्प कौशल ने युगल संगतता में योगदान देता है। वैवाहिक रिश्तों को संतुष्टि देने वाले अनेक कारक हैं। महिलाओं की तुलना में अधिक पुरुष खुशी से विवाहित होने की आख्या देते हैं।
5. **अभिभावकता:** अतीत में कई वयस्कों के लिए, "एक जैविक रूप से दी गई या एक अपरिहार्य सांस्कृतिक मांग" के लिए बच्चे उत्पन्न करना एक मुद्दा था। अब यह व्यक्तिगत पसंद की बात है। अब कई जन्म नियंत्रण तकनीकें उपलब्ध हैं जो वयस्कों को बच्चों के न होने और बच्चों में अंतराल बनाने में मदद करती है। बदलते सांस्कृतिक मूल्य भी लोगों को सामाजिक आलोचना और अस्वीकृति की कम आशंका के साथ संतानहीन रहने की अनुमति देते हैं।
    - **बच्चे पैदा करने का निर्णय:** आर्थिक परिस्थितियों, व्यक्तिगत और धार्मिक मूल्यों, और स्वास्थ्य स्थितियों आदि कारकों की एक जटिल सारणी से अभिभावकता की पसंद प्रभावित होती है। पारंपरिक रूप से महिलाएं आमतौर पर

बच्चे पैदा करने का फैसला करती हैं। उच्च-स्थिति और प्रगतिशील करियर वाली महिलाएं अक्सर मातृत्व का चयन करती हैं। बच्चों की इच्छा के बारे में पूछे जाने पर, दंपतियों ने कई प्रकार के नुकसानों का उल्लेख किया है, जैसे कि स्वतंत्रता की हानि, वित्तीय तनाव, चिंता और बच्चों के जोखिम, गोपनीयता की हानि आदि।

- **अभिभावकता की ओर पारगमन:** एक बच्चे के प्रवेश करने के बाद के शुरुआती सप्ताह परिवार में गहन बदलाव से भरे होते हैं जैसे नींद की समय-सारणी बाधित होना, नये घर के काम और देखभाल, जोड़ों को एक-दूसरे को समर्पित करने के लिए कम समय और वित्तीय जिम्मेदारियों का बढ़ना। एक बच्चे के आगमन से अधिकांश नए माता-पिता के लिए महत्वपूर्ण वैवाहिक तनाव नहीं होता है। ऐसे विवाह जो संतुष्टिदायक और सहायक होते हैं, वे ऐसे ही बने रहते हैं और समग्र सुख में संतानहीन विवाह से मिलते जुलते होते हैं। इसके विपरीत, एक बच्चे के जन्म के बाद परेशान विवाह आमतौर पर अधिक व्यथित हो जाते हैं।
- **अतिरिक्त जन्म:** ये ऐसे कारक हैं जो परिवार के आकार को प्रभावित करते हैं। अधिक प्रभावी जन्म नियंत्रण के अलावा, एक प्रमुख कारण यह है कि औद्योगिक देशों में दंपतियों के पास आज के बच्चों की तुलना में कम बच्चे हैं, जो कि महिलाओं की बढ़ी हुई करियर उन्मुखता है। कुल मिलाकर, एक छोटे से परिवार का आकार माता-पिता के बीच सम्प्रेषण को बढ़ाता है। कम बच्चों के माता-पिता अधिक धैर्यवान और कम दंडात्मक होते हैं। उनके पास प्रत्येक बच्चे की गतिविधियों, स्कूल के काम और अन्य विशेष आवश्यकताओं के लिए समर्पित होने के लिए अधिक समय होता है। इसके अलावा, छोटे परिवारों में, भाई-बहनों के बीच व्यापक रूप से 2 साल से अधिक अंतर होने की संभावना ध्यान और संसाधनों को जोड़ता है। माता-पिता एक-दूसरे और प्रत्येक बच्चे में निवेश कर सकते हैं।
- **अभिभावक शिक्षा:** इस पीढ़ी के वयस्क मॉडलिंग और प्रत्यक्ष अनुभव के माध्यम से पालन-पोषण के बारे में सीखते हैं। समकालीन माता-पिता उत्सुकता से लोकप्रिय पुस्तकों के माध्यम से बच्चे के पालन की जानकारी चाहते हैं। नई माताएं इन स्रोतों को विशेष रूप से मूल्यवान मानती हैं, दूसरा महत्व वह केवल अपने

डॉक्टरों को देती है। विशेष अभिभावक शिक्षा पाठ्यक्रम भी सामने आए हैं, जो माता-पिता को बच्चे के पालन-पोषण मूल्यों को स्पष्ट करने, परिवार के संचार में सुधार करने, बच्चों के विकास और प्रभावी पालन-पोषण रणनीतियों को लागू करने में मदद करने के लिए डिज़ाइन किए गए हैं।

14.3.3 व्यवसायिक समायोजन

व्यावसायिक पसंद प्रारंभिक वयस्कता के दौरान विकास पहचान का एक प्रमुख तत्व है। कार्य आत्म-सम्मान, समान विचारधारा वाले लोगों के साथ जुड़ने का एक समूह, एक निश्चित आर्थिक स्थिति और युवा वयस्कों को अच्छी जीवन शैली प्रदान करता है।

व्यावसायिक विकल्प को प्रभावित करने वाले कारक

- हम ऐसे काम खोजने की कोशिश करते हैं जो हमारे व्यक्तित्व में फिट हों। यह संबंध मजबूत नहीं है, लेकिन सुसंगत है। हम एक से अधिक व्यक्तित्व प्रकार रखते हैं और विभिन्न नौकरियों को सीखने के लिए लचीलापन रखते हैं, लेकिन हम उस नौकरी के माहौल में अधिक सफल होते हैं जो हमारे हितों और क्षमताओं के अनुकूल होती हैं। कई कारक उन नौकरियों को प्रभावित करते हैं जिनके लिए हम प्रयास करते हैं- अर्थशास्त्र, पारिवारिक जिम्मेदारियां और शैक्षिक अवसर।

✓ **खोजी व्यक्ति**- विज्ञान में रुचि रखते हैं।

✓ **सामाजिक व्यक्ति**- लोगों के साथ बातचीत करना, मानव सेवा और शिक्षण पसंद करते हैं।

✓ **यथार्थवादी व्यक्ति**- बाहरी यांत्रिक पेशा पसंद करते हैं।

✓ **कलात्मक व्यक्ति**- कला, संगीत में व्यक्तिगत अभिव्यक्ति करते हैं।

✓ **पारंपरिक व्यक्ति**- संरचना, भौतिक संपत्ति, सामाजिक स्थिति, व्यवसाय, गुणवत्ता नियंत्रण पसंद करता है।

✓ **मनोरंजक व्यक्ति**- साहसी, प्रेरक और नेता जो राजनीति के लिए तैयार हो।

- परिवार के प्रभाव शक्तिशाली होते हैं क्योंकि एक छात्र अपने परिवार में जो देखता है उसे वह उचित और परिचित लगता है। युवा आकांक्षाएं माता-पिता की नौकरियों के साथ निकटता से संबंध रखती हैं और शैक्षिक आकांक्षाओं और सफलताओं के साथ जुड़ी होती हैं। विद्यालय शिक्षा के वर्षों से व्यावसायिक स्थिति का सबसे

अच्छा पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले माता-पिता भी अपने बच्चों के लिए नेटवर्क बना सकते हैं और उन्हें सार्थक तरीके से काम खोजने में मदद कर सकते हैं। ये माता-पिता स्वतंत्रता पर भी जोर देते हैं, इसलिए उनके बच्चे उन्हें खुश करने के लिए उच्च स्तर की नौकरियों की तलाश करते हैं।

- शिक्षक अपने उत्साह और ज़मीनी अंतर्दृष्टि से किसी भी क्षेत्र के छात्र की पसंद को प्रभावित कर सकते हैं, जो सफल होने के लिए महत्वपूर्ण है। यह कम सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले परिवारों के छात्रों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।
- लिंग रूढ़ियों ने पिछले 20 वर्षों तक महिलाओं को करियर के क्षेत्रों में पीछे रखा है। महिलाओं ने उन व्यवसायों पर प्रशिक्षण प्राप्त किया है जो आमतौर पर पुरुषों द्वारा आयोजित किए जाते थे। महिलाओं को कई करियर क्षेत्रों में समान प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है। महिलाएं अभी भी पारंपरिक रूप से स्त्री व्यवसायों में केंद्रित हैं: लेखन, सामाजिक कार्य, शिक्षा और नर्सिंग। वे पुरुषों के समान उत्पादन स्तर तक नहीं बढ़ती हैं। यह लड़कियों के लिए लिंग आधारित अंतर से सम्बंधित है जिसके परिणामस्वरूप लड़कियों में आत्मविश्वास कम होता है। युवा वयस्कों को अपने करियर के विकल्पों के लिए आत्मनिरीक्षण और पुनर्विचार करना शामिल है ताकि लचीलापन शुरू हो सके जो एक परिवार को शुरू करने की अनुमति दे।
- व्यावसायिक जानकारी तक पहुँच छात्रों को वास्तविक कार्य दुनिया में अपना रास्ता खोजने में मदद करता है। बहुत से छात्रों को यह स्पष्ट विचार नहीं होता है कि वे अपने सपनों को किस प्रकार सच कर पाएंगे। वे यह महसूस नहीं कर पाते हैं कि इसके लिए उन्हें उस क्षेत्र से सम्बंधित शिक्षा की आवश्यकता है।

14.3.4 प्रजनन/ यौन-भूमिका, परिवर्तन और सामंजस्य

प्रारंभिक वयस्कता के दौरान यौन भूमिका के लिये समायोजन बेहद मुश्किल होता है। किशोरावस्था समाप्त होने से बहुत पहले, लड़कों और लड़कियों को अनुमोदित वयस्क यौन भूमिकाओं के बारे में अच्छी तरह से पता होता है। अधिकांश किशोरियाँ अपने वयस्क होने पर पत्नी और माँ की भूमिका निभाने की इच्छा रखती हैं, लेकिन वे पारंपरिक अर्थों में पत्नियाँ और माँ नहीं बनना चाहतीं जो अपने पति के अधीनस्थ, अपने घर और बच्चों के लिए अपना

अधिकांश समय समर्पित करती हैं और कोई भी रुचियाँ नहीं रखती हैं। आजकल एक समजातीय विवाह के लिए युवा वयस्कों के जीवन जीने के तरीकों में परिवर्तन हुए हैं।

पारंपरिक अवधारणाओं को धीरे-धीरे संशोधित किया जा रहा है तथा उन्हें अधिक समतावादी लोगों की अवधारणाओं द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है जो दो लिंगों के सदस्यों के लिए समान व्यवहार पैटर्न पर जोर देते हैं। समतावादी अवधारणाओं को सभी सामाजिक समूहों के बीच स्वीकार किया जाता है, यहां तक कि जो पूर्व में पुरुष और महिला भूमिकाओं की पारंपरिक अवधारणाओं को मजबूती से पकड़ते थे। वयस्क यौन भूमिकाओं की पारंपरिक और समतावादी अवधारणाएं निम्न दी गई हैं।

वयस्क यौन भूमिकाओं के प्रति अवधारणा: निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत वयस्क यौन भूमिका को परिभाषित किया गया है-

पारंपरिक अवधारणाएँ: यौन भूमिकाओं की पारंपरिक अवधारणाएं व्यक्तिगत रूचि या क्षमताओं की परवाह किए बिना व्यवहार के एक निर्धारित पैटर्न पर जोर देती हैं। वयस्क पुरुष आमतौर पर पौरुष वर्चस्व और किसी भी ऐसी विशेषता के प्रति असहिष्णुता प्रदर्शित करते हैं जो स्त्रीत्व की ओर संकेत देते हैं।

पुरुष: बहुसंख्यक परिवारों में पुरुष सामाजिक और व्यवसायिक दुनिया में अधिकार और प्रतिष्ठा रखता है; घर में वह आय अर्जक, निर्णय लेने वाला, बच्चों का सलाहकार, अनुशासक और अपने बेटों के लिए पुरुषत्व का मॉडल होता है।

महिला: महिलाओं से घर के बाहर काम करने की अपेक्षा नहीं होती है। वित्तीय आवश्यकता होने पर महिलाओं से काम करने की अपेक्षा की जाती है और वे अधिकतर नर्सिंग, शिक्षण अदि कार्यों में संलग्न रहती हैं।

समतावादी अवधारणाएं: यौन भूमिकाओं की समतावादी अवधारणाएं पुरुष और महिलाओं की समतावादी स्थिति पर जोर देती हैं और इन्हें व्यक्तिगत पूर्ति की ओर ले जाती हैं।

पुरुष: घर और घर से बाहर, पुरुष महिला के साथ एक साहचर्य संबंध में काम करते हैं। पुरुष यदि अपनी पत्नी के साथ बराबरी का व्यवहार करता है, तो पुरुष को स्त्रीवश में नहीं समझना चाहिए। पत्नी यदि पति से अधिक प्रतिष्ठित या पारिश्रमिक वाली नौकरी में है तो पुरुष न ही शर्म महसूस करता है।

महिला: घर और कार्यस्थल दोनों जगह महिलाएं अपनी क्षमता का अहसास करा पाती हैं। महिलाएं अपनी संतुष्टि देने के लिए अपनी क्षमताओं और प्रशिक्षण का उपयोग करने के लिए दोषी महसूस नहीं करती हैं, भले ही इसके लिए घर और बच्चों की देखभाल के लिए उन्हें किसी और को नियुक्त करना पड़े।

14.3.5 रूचि में परिवर्तन

प्रारंभिक वयस्कता के दौरान रूचि में सबसे बड़ा परिवर्तन रूचि की संकीर्णता या कम होना है। युवा वयस्क पूरी तरह से अपनी रुचि बदलने के बजाय रूचि को एक सीमा तक कम करते हैं। परिणामस्वरूप मध्य वयस्कता में आते ही उनकी रुचियाँ कम होती जाती हैं। शुरुआती वयस्कता के दौरान युवा वयस्क खुद की उपस्थिति (भौतिक स्वीकृति, सौंदर्य उत्पाद का उपयोग, आहार और व्यायाम) के बारे में चिंतित हो जाते हैं, कपड़ों पर अधिक समय और पैसा खर्च करते हैं। मनोरंजन रुचि (बात करना, नृत्य करना और खेल) और सामाजिक हित (सामाजिक भागीदारी, दोस्ती, नेतृत्व, स्थिति प्रतीक, सामाजिक गतिशीलता, यौन-भूमिका) युवा वयस्कों के काफी दृश्य रुचि क्षेत्र हैं।

14.4 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा की प्रारंभिक वयस्कता कई व्यक्तिगत और सामाजिक कारकों से प्रभावित होती है, जैसे परिवार, भावना, यौन भूमिकाएं, कार्य और पारस्परिक संबंध। आयु बढ़ने के सामाजिक और भावनात्मक पहलुओं पर बहुत सारे सिद्धांत उपलब्ध हैं। आप जानते हैं कि व्यक्तिगत विकास किसी व्यक्ति की सामाजिक परिवेश यानी घर, कार्यस्थल, समुदाय आदि के साथ तालमेल बिठाने की क्षमता को दर्शाता है। एरिक्सन ने प्रारंभिक वयस्कता की इस अवस्था को अंतरंगता बनाम अलगाव का नाम दिया है। मनोवैज्ञानिक एरिकसन ने परिभाषित किया कि अंतरंगता बनाम अलगाव का सफल संकल्प व्यक्ति को मध्यम वयस्कता के लिए तैयार करता है, जो उन्हें अगली पीढ़ी की उचित देखभाल करने और समाज को बेहतर बनाने में मदद करता है। अधिकांश युवा लोगों के लिए, अंतरंगता की खोज शादी की ओर ले जाती है। उनका जीवन पारिवारिक जीवन चक्र के भीतर आकार लेता है। प्रारंभिक वयस्कता में लोग आमतौर पर कई कार्यों में संलग्न रहते हैं घर छोड़ना, विवाह कर परिवार बढ़ाना, वैवाहिक जीवन, वैवाहिक संतुष्टि, वैवाहिक अपेक्षाएं और मिथक, पितृत्व का निर्णय, बच्चे आदि। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने मध्य वयस्कता में होने वाले सामाजिक तथा भावनात्मक विकास को विस्तार से पढ़ा। आने वाली इकाइयों में आप उत्तर वयस्कता को विस्तार से समझेंगे।

14.5 पारिभाषिक शब्दावली

- **यौन भूमिकाओं की पारंपरिक अवधारणाएं :** यह अवधारणा व्यक्तिगत रूचि या क्षमताओं की परवाह किए बिना सभी से एक निश्चित व्यवहार की अपेक्षा करती है। इसके अनुसार अपेक्षित व्यवहार, व्यक्ति का रवैया और गतिविधियाँ पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए एक समान हैं।
- **यौन भूमिकाओं की समतावादी अवधारणाएं:** यह अवधारणा हर व्यक्ति को अलग अलग देखती है अर्थात हर व्यक्ति की व्यक्तिगत इच्छाओं एवं व्यवहार को मान्यता देती है।

14.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Hurlock, E. B. (2016) , Developmental Psychology: A Life Span Approach, Fifth Edition, Tata McGraw-Hill Education (India), Pvt. Ltd. New Delhi, 01-Aug-2001
2. E.B. Hurlock (2001), Child Development, Tata McGraw-Hill Education
3. Berk,E.L.(2013): Exploring Life span development,3rd edi. Mc Graw Hill. New York.
4. Papalia,D.E. and Olds.SW.(2008). Human development,11th edi.Mc Graw Hill. New York.
5. Santrock,John.(2012).Life span development,14th edi. Mc Graw Hill. New York.
6. David,McGuireThomas, GaravanLarry M Dooley. 2012 Fundamentals of Human Resource Development, SAGE Publications Ltd
7. Gates, A.I. Elementary Psychology, New York : McMillan, 1960.
8. Gilmen, B. Vonhaller, Psychology (International ed.) Harper, 1970

9. Forrance, E.P. Guiding Creative Talent, Englewood Cliffs, N.J.: Prentice – Hall, 1980.
10. Jung, C.G., Modern Man in Search of a Soul, New York: Harcourt Porace, 1968.
11. Cavanaugh, J.C. (1998). Adult Development and Aging. Pacific Grove, CA: Brooks/Cole. An excellent textbook, covering most aspects of adult psychological development in a clear and thoughtful style.
12. Erikson, E.H., & Erikson, J.M. (1997). The Life Cycle Completed. New York: Norton. One of the major accounts of Erikson's theory of the stages of adult development, extended in this book to consider development in very old age.
13. Pratt, M.W., & Norris, J.E. (1994). The Social Psychology of Aging. Oxford: Blackwell. A rich account of developments in social reasoning and communication in later life.
14. Schaie, K.W. (1996). Intellectual Development in Adulthood: The Seattle Longitudinal Study. New York: Cambridge University Press. A detailed research report, and a very readable account of some of the key psychological changes of adulthood.
15. Skinner, B.F., & Vaughan, M.E. (1983). Enjoy Old Age: A Program of Self-management. New York: Norton. A practical guidebook on how to ensure positive reinforcement, productive activity and rewarding social relationships in old age.
16. Whitbourne, S.K. (2001). Adult Development and Aging: Biopsychosocial Perspectives. New York: John Wiley & Sons. Combines laboratory and applied perspectives on successful aging, covering biological, social, cognitive and personality factors.

14.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राम्भिक वयस्कता के दौरान व्यक्तिगत और भावनात्मक परिवर्तनों की व्याख्या कीजिए।
2. प्राम्भिक वयस्कता के दौरान पारिवारिक एवं व्यवसायिक परिवर्तनों को समझाइए।
3. एरिक्सन के अंतरंगता बनाम अलगाव सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

खण्ड 4:

वृद्धावस्था

इकाई 15: वृद्धावस्था में विकासात्मक परिवर्तन

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 वृद्धावस्था का अर्थ व परिभाषा
15.4 वृद्धावस्था का वर्गीकरण
15.5 वृद्धावस्था के लक्षण
15.6 वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तन
    15.6.1 शारीरिक परिवर्तन
    15.6.2 क्रियात्मक क्षमताओं में परिवर्तन
    15.6.3 मानसिक क्षमताओं में परिवर्तन
    15.6.4 व्यक्तित्व में परिवर्तन
15.7 वृद्धावस्था के दौरान पोषण की आवश्यकता
15.8 सारांश
15.9 पारिभाषिक शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

वयस्कता जीवन काल की सबसे बड़ी अवधि है जिसके बारे में हमनें पिछले अध्याय में जाना। जन्म से मृत्यु तक की प्रत्येक अवस्था में बदलाव आते रहते हैं। जीवन का विस्तार कभी भी स्थिर नहीं पाया गया है। व्यक्ति में बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। जीवन में कुछ परिवर्तन तेजी से और कुछ धीमी गति से होते हैं। वृद्धावस्था के दौरान नये लक्षण उत्पन्न होते हैं और पुराने गुणों का लोप होता रहता है। वृद्धावस्था वृद्ध होने की

प्रक्रिया है जो समय के साथ किसी व्यक्ति में परिवर्तनों के संचय का प्रतिनिधित्व करती है। वृद्धावस्था के दौरान शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक परिवर्तन, परिवर्तनों की बहुआयामी प्रक्रिया होती है। इस अध्याय में हम वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक और उनके व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों के बारे अध्ययन करेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस अध्याय को पढ़ने के उपरान्त शिक्षार्थी जानेंगे;

- वृद्धावस्था का अर्थ व परिभाषा;
- वृद्धावस्था के लक्षण;
- वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तन तथा
- वृद्धावस्था के दौरान पोषण की आवश्यकता।

15.3 वृद्धावस्था का अर्थ व परिभाषा

वृद्धावस्था का तात्पर्य मानव की जीवन प्रत्याशा के निकट या उससे अधिक आयु से है, और इस प्रकार यह मानव जीवन चक्र का अंतिम चरण है। वृद्धावस्था को सेवानिवृत्ति की आयु के रूप में सबसे अच्छी तरह से परिभाषित किया गया है जो 60 वर्ष और उससे अधिक होती है।

वृद्धावस्था एक जैविक प्रक्रिया है जिसे कोई भी टाल नहीं सकता है। थोड़ी सी सावधानी वृद्धावस्था के दौरान होने वाली अक्षमता को रोक सकती है। उचित देखभाल के साथ हर स्वस्थ व्यक्ति आयु बढ़ने का आनंद लेता है। आयु बढ़ने के साथ कई बीमारियाँ हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। मोटापा, उच्च रक्तचाप और मधुमेह आहार से संबंधित रोग हैं और उनकी वृद्धि को नियंत्रित किया जा सकता है या आहार को संशोधित करके रोका भी जा सकता है।

15.4 वृद्धावस्था का वर्गीकरण

आमतौर पर वृद्धावस्था को जीवन के समापन का अध्याय माना जाता है। यह जीवन की अवधि है जब मध्यम आयु वर्ग के लोग अपकर्ष प्रक्रिया की ओर पहुंचते हैं। वृद्धावस्था को आधुनिक दुनिया में प्रारंभिक वृद्धावस्था (60-70 वर्ष) और उन्नत वृद्धावस्था (मृत्यु तक 70 वर्ष) के रूप में विभाजित किया गया है। वृद्धावस्था के दौरान शारीरिक और मानसिक गिरावट

को वृद्धत्व कहा जाता है। "आयुर्वृद्धि" शब्द काफी हद तक अस्पष्ट है। इसलिए आयुर्वृद्धि के प्रकार नीचे दिए गए हैं-

1. **सार्वभौमिक आयुर्वृद्धि** इस बात पर केंद्रित है कि आयु के कारण होने वाले बदलाव सभी लोगों द्वारा कैसे साझा किए जाते हैं और ये बदलाव सार्वभौमिक हैं।
2. **संभावित आयुर्वृद्धि** परिभाषित करता है कि आयु के कारण होने वाले परिवर्तन कुछ लोगों के लिए हो सकते है, लेकिन सभी लोगों में नहीं होते हैं।
3. **सामाजिक आयुर्वृद्धि** सांस्कृतिक आयु-अपेक्षाओं की व्याख्या करता है कि लोगों को बड़े होने पर कैसे कार्य करना चाहिए।
4. **जैविक आयुर्वृद्धि** आयु के अनुसार शारीरिक स्थिति को बताता है।
5. **निकटस्थ आयुर्वृद्धि** आयु-आधारित प्रभावों को बताता है जो कि हाल के दिनों में कारकों के कारण आते हैं।
6. **दूरस्थ आयुर्वृद्धि** आयु-आधारित अंतरों को परिभाषित करता है जो किसी व्यक्ति के जीवन में प्रारंभिक कारण से वापस पता लगाया जा सकता है। जैसे कि बचपन में पोलियोमाइलाइटिस।
7. **कार्यात्मक आयुर्वृद्धि** बताता है कि दो लोग एक ही आयु के हो सकते हैं, लेकिन उनकी मानसिक और शारीरिक क्षमता में उनकी परिस्थितियों के अनुसार अंतर होता है।
8. **जनसंख्या आयुर्वृद्धि** समाज में वृद्ध लोगों की संख्या और अनुपात में वृद्धि को परिभाषित करती है।
9. **वैधिक आयुर्वृद्धि** वैधिक कालानुक्रमिक वर्षों का वर्णन करता है।

15.5 वृद्धावस्था के लक्ष्ण

वृद्धावस्था के लक्षणों को निम्नवत पारिभाषित किया जा सकता है:

1. **वृद्धावस्था क्षय का समय है:** वृद्धावस्था को शारीरिक, क्रियात्मक, मानसिक क्षमताओं में कमी और व्यक्तित्व परिवर्तनों की अवधि से परिभाषित किया जाता है। वृद्धावस्था की कालावधि जिसके दौरान शारीरिक और मानसिक क्षय को वृद्धत्व कहा जाता है।
2. **आयुर्वृद्धि के प्रभाव में व्यक्तिगत अंतर:** व्यक्तियों में आयु बढ़ने का स्वरुप अलग-

अलग होता है क्योंकि उनके पास अलग-अलग वंशानुगत वृत्ति, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, शैक्षिक पृष्ठभूमि और जीवन शैली होती है। ये अंतर सामान लिंग के व्यक्तियों में भी दिखाई देते हैं।

3. **वृद्धावस्था कम समायोजन का काल है:** कई बुजुर्ग उनके प्रति प्रतिकूल सामाजिक दृष्टिकोण के कारण प्रतिकूल आत्म अवधारणाएं विकसित करते हैं। आयुर्वृद्धि शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक नुकसान के साथ-साथ तनावों के लिए अनुकूलन और क्षतिपूर्ति करने की कम क्षमता के साथ जुड़ा हुआ है। सभी वृद्ध लोगों को कई नुकसानों का सामना करना पड़ता है, उदाहरण के लिए - नौकरी की हानि (सेवानिवृत्ति), प्रतिष्ठा, भूमिका परिवर्तन, आय में कमी, चिकित्सा सेवाओं पर खर्च में वृद्धि आदि। कई पुरानी बीमारियां और मृत्यु दर के बारे में जागरूकता बुढ़ापे के दौरान खराब समायोजन का कारण होती है।
4. **पुनर्जीवन की इच्छा वृद्धावस्था में व्यापक है:** पुनर्जीवन का अर्थ है किसी को या किसी चीज़ को बेहतर, तरुण या अधिक महत्वपूर्ण बनाने की प्रक्रिया। सभी लोग समय-समय पर स्वस्थता उपचार का उपयोग करके युवा रहने की कोशिश करते हैं। युवा बने रहने की इच्छा बुजुर्गों की एक सामान्य विशेषता है।
5. **वृद्धावस्था को मापदण्ड द्वारा आंका जाता है:** आयु बढ़ने का अर्थ अस्पष्ट और अपरिभाषित है, शारीरिक उपस्थिति और गतिविधियों से आयु का अनुमान लगाते हैं। वृद्ध और बच्चे वयस्कों की तुलना में समान होते हैं और उनकी देखभाल की जानी चाहिए जबकि वयस्क बड़े होते हैं और अपनी देखभाल कर सकते हैं।
6. **वृद्धावस्था निर्भरता की अवधि है:** वृद्धावस्था अक्सर निर्भरता की अवधि होती है क्योंकि आयु बढ़ने की प्रक्रिया के दौरान शारीरिक शक्ति और वृद्ध व्यक्तियों की क्षमता में गिरावट आती है। अधिकांश वृद्ध व्यक्तियों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे शरीर में लचीलेपन की कमी, दृष्टि और श्रवण में कमी, स्मृति समस्याएं या मनोभ्रंश, मांसपेशियों की शक्ति का नुकसान, क्रियात्मक कौशल की हानि आदि। इस प्रकार सभी वृद्ध लोगों को परिवार के सदस्यों पर, चिकित्सा देखभाल, दैनिक दिनचर्या और व्यक्तिगत देखभाल की सुविधा पर निर्भर हो जाते हैं।
7. **वृद्ध लोगों के प्रति रूढ़िबद्ध धारणा:** रूढ़िबद्ध धारणा लोगों के एक समूह के बारे में एक सामाजिक विश्वास है। बुजुर्गों से संबंधित रूढ़ियाँ सकारात्मक और नकारात्मक दोनों

हैं। लोग आयु बढ़ने के बारे में सकारात्मक विश्वासों की तुलना में अधिक नकारात्मक रवैया रखते हैं। बुजुर्गों के बारे में विश्वास और रूढ़िवादिताएं अस्पष्ट हैं, लेकिन नकारात्मक हैं। बुजुर्गों के बारे में रूढ़िवादिता विशेष कार्यों पर उनके प्रदर्शन के बारे में विशिष्ट अपेक्षाएं विकसित करती हैं। नकारात्मक दृष्टिकोण और रूढ़िवादिता, कार्य प्रदर्शन के बारे में बुजुर्गों की आत्म-प्रभावकारी मान्यताओं को प्रभावित कर सकती है। वृद्धों की कुछ नकारात्मक और सकारात्मक रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं:

तालिका 15.1: वृद्ध व्यक्तियों के प्रति नकारात्मक एवं सकारात्मक रूढ़िबद्ध धारणा में अन्तर

नकारात्मक रूढ़िबद्ध धारणा (Negative Stereotype)	**सकारात्मक रूढ़िबद्ध धारणा (Positive Stereotype)**
✓ गंभीर रूप से दुर्बल (धीरे सोचना, कमज़ोर, वृद्धत्व) ✓ हताश (दुखी, निराश, भयभीत, अकेलापन) ✓ कर्कशा (बीमार स्वभाव, जिद्दी) ✓ वैराग्य (शांत, डरपोक, अनुभवहीन)	✓ वृद्ध व्यक्ति- सक्रिय, स्वतंत्र, खुश ✓ संपन्न दादा-दादी, सहायक, बुद्धिमान, दयालु ✓ देशभक्त, अभिमानी, धार्मिक

8. **वृद्धावस्था के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण:** रूढ़िवादिता ने वृद्धावस्था के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण पर प्रभाव को स्पष्ट किया है। वृद्धों के प्रति प्रतिकूल सामाजिक दृष्टिकोण वृद्धों को प्रभावित करता है। कई संस्कृतियों में बुजुर्गों के प्रति श्रद्धा और सम्मान के बजाय प्रतिकूल सामाजिक दृष्टिकोण से वृद्धों को लगता है कि वे अवांछित हैं।

15.6 वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तन

वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तनों का वर्णन दोनों शारीरिक और मानसिक विशेषताओं सहित कई कारकों से किया जा सकता है। वृद्धावस्था के लक्षण सब में एक समान नहीं होते हैं। कुछ लक्षण जीवन स्थितियों के आधार पर एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न हो सकते हैं। कुछ सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत सामान्य विशेषताएं भी हैं।

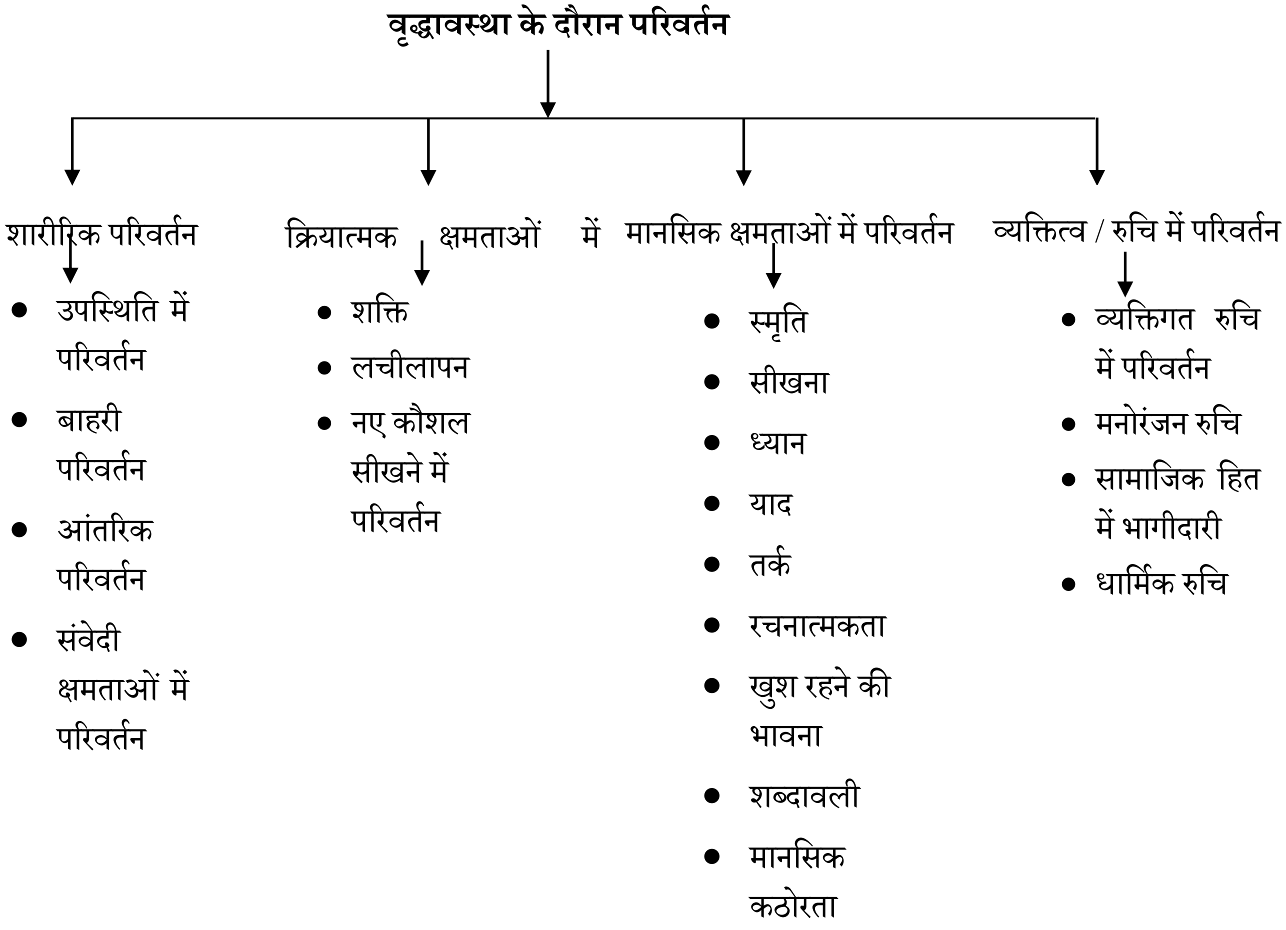
वृद्धावस्था के दौरान परिवर्तन
शारीरिक परिवर्तन
उपस्थिति में परिवर्तन
बाहरी परिवर्तन
आंतरिक परिवर्तन
संवेदी क्षमताओं में परिवर्तन
क्रियात्मक क्षमताओं में
शक्ति
लचीलापन
नए कौशल सीखने में परिवर्तन
मानसिक क्षमताओं में परिवर्तन
स्मृति
सीखना
ध्यान
याद
तर्क
रचनात्मकता
खुश रहने की भावना
शब्दावली
मानसिक कठोरता
व्यक्तित्व / रुचि में परिवर्तन
व्यक्तिगत रुचि में परिवर्तन
मनोरंजन रुचि
सामाजिक हित में भागीदारी
धार्मिक रुचि

15.6.1 शारीरिक परिवर्तन

वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक परिवर्तन निम्नलिखित हैं:

1. **बाह्य परिवर्तन:** वृद्धावस्था के दौरान शरीर में होने वाले परिवर्तन जो हमें स्पष्ट दिखाई देते है उन्हें बाह्य परिवर्तन कहते हैं। ये परिवर्तन निम्नवत हैं:

- त्वचा झुर्रीदार और लोचदार हो जाती है।

- बढ़ती आयु के साथ, व्यक्ति के बाल सफेद होने लगते हैं और वह अपनी चमक खो देते हैं। कुछ पुरुषों के बाल झड़ने लगते हैं और वे गंजे हो जाते हैं।
- समय के साथ लार का उत्पादन कम हो जाता है। इससे दाँत खराब होने का खतरा बढ़ जाता है। वृद्धावस्था के दौरान वृद्धों के सभी दाँत टूट जाते हैं जिसके कारण कई व्यक्तिओं को नकली दांत लगाने पड़ते हैं।
- वृद्धावस्था के दौरान शारीरिक शक्ति लगातार कम होने लगती है। कमर की और पैरों की मांसपेशियां मुख्य रूप से कमजोर होने लगती हैं जिससे चलने और खड़े होने में समस्या होती है। वृद्धावस्था के दौरान मांसपेशियों के ऊतकों के आकार और शक्ति में कमी होने लगती है और मांसपेशियों में वसा के इकट्ठा होने के कारण वे कठोर होने लगती हैं।
- वृद्धावस्था के दौरान पुरानी हड्डियों को "पतला और संकुचन" द्वारा चिह्नित किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप बहुत से लोगों में अस्थिभंग हो जाता है और कैल्शियम की कमी से हड्डी और जोड़ अधिक संवेदनशील हो जाते हैं जिसके कारण ऑस्टियोआर्थराइटिस और ऑस्टियोपोरोसिस जैसे रोगों की समस्या हो जाती है।
- वृद्धावस्था के दौरान स्वभाव में भी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अधिकांश वृद्ध चिड़चिड़े एवं क्रोधी हो जाते हैं। उनका व्यवहार बच्चों की भांति जिद्दी हो जाता है। स्वभाव में परिवर्तन के मुख्य कारक तंत्रिका तंत्र में परिवर्तन, हार्मोन का असंतुलन, आर्थिक स्थिति में परिवर्तन, संवेदनात्मक तनाव, सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आदि हो सकते हैं। यदि उनके जीवन साथी की मृत्यु हो जाती है तो स्थिति भयावह हो जाती है। विशेषकर वृद्ध स्त्री दु:ख, अवसाद, निराशा, उदासी तथा अकेलेपन से घिर जाती है। वह स्वयं को परिवार तथा समाज से अपेक्षित एवं तिरस्कृत महसूस करने लगती है।

2. **आंतरिक परिवर्तन:** वृद्धावस्था के दौरान शरीर के अंदर होने वाले परिवर्तन जो दिखाई नहीं देते या स्पष्ट नहीं होते, आंतरिक लक्षणों को संदर्भित करते हैं। ये निम्न प्रकार हैं:

- **श्वसन प्रणाली में परिवर्तन:** वृद्धावस्था के दौरान साँस लेने की क्षमता में कमी आना आम बात है। एक युवा व्यक्ति के फेफड़ों की तुलना में वृद्ध लोगों के फेफड़े उचित हवा की मात्रा में नहीं फैलते हैं। ऑक्सीजन की आपूर्ति में कमी से वृद्ध व्यक्ति कम सक्रिय और सुस्त हो जाता है।

- **जठरांत्र प्रणाली में परिवर्तन:** वृद्धावस्था के दौरान दाँत के टूट जाने के कारण खाना चबाने की क्षमता कम हो जाती है और वृद्धावस्था में नये कोषों एवं तन्तुओं का निर्माण नहीं होता है, साथ ही भूख भी कम लगती है। पाचन एंजाइमों और रसों का स्राव कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप भोजन का अधूरा पाचन होता है और पोषक तत्वों का उपयोग प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है। साथ ही वृद्धावस्था में शारीरिक क्रियाशीलता में भी कमी हो जाती है। इन सभी कारणों से चयापचय प्रक्रिया में कमी जाती है। इस के फलस्वरूप वृद्धावस्था में ऊर्जा की आवश्यकता अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा कम हो जाती है।
- **गुर्दे की प्रक्रिया में परिवर्तन:** गुर्दे मूत्र प्रणाली का हिस्सा हैं जिसमें मूत्रवाहिनी, मूत्राशय और मूत्रमार्ग भी शामिल हैं। वृद्धावस्था में गुर्दों में ऊतकों की मात्रा में कमी आ जाती है। नेफ्रॉन की संख्या घट जाती है जो रक्त से अपशिष्ट पदार्थ को छानने का कार्य करते हैं। गुर्दे की आपूर्ति करने वाली रक्त वाहिकाएं कठोर हो जाती हैं और मूत्राशय की मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं। इस वजह से वृद्ध व्यक्तियों को मूत्र असंयम जैसी समस्या हो जाती है।
- **ह्रदय प्रणाली और रक्तचाप में परिवर्तन:** अग्रिम आयु प्रक्रिया के साथ रक्त वाहिकाओं और रक्त कोशिका का उत्पादन धीरे होता है। वृद्धावस्था के दौरान ह्रदय को आराम की अवस्था में आने के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है क्योंकि ह्रदय और रक्त कोशिकाओं से जुड़े कुछ भाग जैसे शिराएं और धमनी में वसा जमा हो जाती है जिसकी वजह से धमनियाँ कठोर हो जाती हैं। जब इनके माध्यम से अधिक रक्त पंप किया जाता है तो वे इसके अनुरूप फैल नहीं पातीं। बढ़ती आयु के साथ ह्रदय बहुत धीमी गति से कार्य कर पाता है। रक्त के परिसंचरण से रक्त वाहिकाओं की दीवारों पर दबाव पड़ता है जिसको रक्तरचाप कहते हैं। वृद्धावस्थाव में रक्तचाप के स्तरों में भारी उतार चढ़ाव देखा जाता है जो कई बार उनके लिए घातक साबित हो सकता है। उच्च रक्तचाप एक बड़ी स्वास्थ्य समस्या है।
- **केंद्रीय तंत्रिका तंत्र:** आयु बढ़ने के साथ केंद्रीय तंत्रिका तंत्र में परिवर्तन होता है जैसे कि धमनी और शिरापरक में प्रवाह की दर में कमी, मस्तिष्क में रक्त प्रवाह में कमी, ऑक्सीजन और ग्लूकोज की खपत में गिरावट होती है। कोशिकाओं की संख्या में कमी

होने लगती है।

- **संवेदी क्षमताओं में परिवर्तन:** हम अपनी इंद्रियों के माध्यम से बाहरी दुनिया के साथ संवाद करते हैं। वृद्धावस्था के साथ संवेदी क्षमताओं में धीरे-धीरे कमी आती है। वृद्धावस्था के साथ दृष्टि में कई समस्याएं भी उत्पन्न होती हैं। पुतलियाँ आकार में छोटी और अनियमित हो जाती हैं जिस वजह से पलकें झपकने की प्रवृत्ति हो जाती है। रंग दृष्टि में कमी हो जाती है। वृद्धावस्था के दौरान मोतियाबिंद की समस्या आमतौर पर पाई जाती है। मोतियाबिंद की समस्या के कारण दृष्टि धुंधली होती है जिसके कारण देखने में तकलीफ होती है। वृद्धावस्था के साथ सुनने की क्षमता में धीरे-धीरे गिरावट आ जाती है। अधिकांश वृद्ध व्यक्तिओं में सुनने की क्षमता खत्म ही हो जाती है। मुँह में स्वाद ग्रंथियों और गालों की आंतरिक सतह में बदलाव होने के कारण वृद्धावस्था में स्वाद में परिवर्तन होता है और कभी कभी खाना अच्छा भी नहीं लगता है और भूख भी कम हो जाती है। आंशिक रूप से नाक में कोशिका के क्षय के परिणामस्वरूप गंध की संवेदनशीलता वृद्धावस्था के साथ कम तीव्र हो जाती है। वृद्धावस्था के साथ जैसे-जैसे त्वचा शुष्क और सख्त होती जाती है, स्पर्श की संवेदना भी कम होती जाती है।
- **हार्मोन के स्रावण में कमी:** वृद्धावस्था में अन्त: स्रावी ग्रंथियों से निकलने वाले हार्मोन की क्रियाशीलता में कमी होने के कारण शरीर में हार्मोन असंतुलन हो जाता है जिसके कारण शरीर में शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं। इस कारण उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। थाइरॉइड ग्रंथि से निकलने वाले हार्मोन के असन्तुलन से कैल्शियम का चयापचय ठीक से नहीं हो पाता जिसके कारण वृद्धों में ऑस्टियोपोरोसिस की समस्या आ जाती है और हड्डियां कमजोर और नाजुक हो जाती हैं।

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्न कथनों को सिद्ध करें।
   a. वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक और मानसिक परिवर्तन सार्वभौमिक है।
   b. बढ़ती आयु के साथ हृदय धीरी गति से कार्य करता है।

15.6.2 क्रियात्मक क्षमताओं में परिवर्तन

आयु बढ़ने के साथ क्रियात्मक क्षमता में परिवर्तन आता है। शरीर की शक्ति, लचीलापन और नया कौशल सीखने में रूचि बढ़ती आयु के साथ अनुपयुक्त दिखाई देती है।

- **शक्ति:** शरीर की ताकत में गिरावट सबसे अधिक अग्र बाहु की आकुंचक मांसपेशियों और शरीर को बढ़ाने वाली मांसपेशियों में स्पष्ट होती है। वृद्ध लोग जल्दी थक जाते हैं और युवा लोगों की तुलना में थकान से उबरने के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है।
- **गति:** आयु बढ़ने के साथ कुशल कार्य की गति में कमी होती है, जैसे लिखावट।
- **नए कौशल सीखना:** वृद्ध लोग नए कौशल सीखने में यह देखते हैं कि उन्हें व्यक्तिगत रूप से लाभ होगा या नहीं। वे युवा लोगों की तुलना में धीरे-धीरे सीखते हैं और अंतिम परिणाम कम संतोषजनक होता है।

15.6.3 मानसिक क्षमताओं में परिवर्तन

'ज्ञान' शब्द उन प्रक्रियाओं को संदर्भित करता है जिनके द्वारा जानकारी अधिग्रहित, संग्रहित और उपयोग की जाती है। 'स्मृति' ज्ञान के सबसे केंद्रीय पहलुओं में से एक है। स्मृति वृद्धावस्था के साथ कम हो जाती है। वृद्धावस्था के दौरान व्यक्ति की जीवन शैली, सीखने की योग्यता, स्मरण शक्ति, तर्क और ध्यान आदि कारक हैं जो स्मृति शक्ति को प्रभावित करते हैं।

बढ़ती आयु के साथ डिमेंशिया की समस्या हो जाती है। डिमेंशिया एक सिंड्रोम (लक्षणों का समूह) है, न कि एक विशिष्ट बीमारी है। इसका अर्थ यह है कि डिमेंशिया की नैदानिक विशेषताएं, जिसे अब प्रमुख न्यूरोकॉग्नेटिव डिसऑर्डर कहा जाता है जो किसी भी बड़े चोट, संक्रमण या बीमारियों के कारण हो सकता है। डिमेंशिया में अनेक समस्याएं शामिल हैं जिसमें स्मृति विफलता, कई कार्यो को एक साथ ध्यान में रखना और उनके बीच ध्यान को विभाजित करने की क्षमता में कमी, भाषा की समझ या अभिव्यक्ति के साथ समस्याएं होती हैं।

अल्जाइमर धीरे धीरे पनपने वाला रोग है जो मस्तिष्क के उस भाग में शुरू होता है जो स्मरण शक्ति को नियंत्रित करता है। इस रोग में बुद्धि, भावों और व्यवहार की क्षमता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। कई बार व्यक्ति खाना ग्रहण करना भूल जाता है अथवा खाना खाकर भूल जाता है कि उसने खाना खा लिया है जिसकी वजह से व्यक्ति का पोषण स्तर बिगड़ जाता है। इस रोग से बचने के लिए जरूरी है कि व्यक्ति स्वयं को मानसिक रूप से अपनी रूचि अनुसार व्यस्त रखें।

संज्ञान के चार प्रमुख पहलू इस प्रकार हैं: स्मृति, शिक्षण, ध्यान और विचार जिसके बारे में हम चर्चा करेंगे।

स्मृति: स्मृति संज्ञान के सबसे केंद्रीय पहलुओं में से एक है। वृद्ध लोगों के पास अल्पकालिक खराब स्मृति के साथ लेकिन बेहतर दूरस्थ यादें होती हैं। पुराने लोग उन कार्यों पर अच्छा प्रदर्शन नहीं करते हैं जो प्रतिलोम क्रम में दोहराए जाते हैं। स्मृति प्रदर्शन में बढ़ती आयु के साथ गिरावट आती है और वृद्धावस्था के दौरान स्मृति कई कारकों से प्रभावित होती है।

शिक्षण: सीखने का अर्थ है सामान्य नियमों का अधिग्रहण करके दुनिया के बारे में ज्ञान प्राप्त करना और नये मनोभाव को संगठित करना। आमतौर पर यह माना जाता है कि सीखने का व्यवहार वृद्धावस्था के दौरान धीमा होता है। वृद्ध लोग सीखने के बारे में अधिक सतर्क होते हैं क्योंकि उन्हें अपनी प्रतिक्रियाओं को एकीकृत करने के लिए अधिक समय की आवश्यकता होती है जो नई चीजों से सामना करने में कम सक्षम होते हैं।

ध्यान: ध्यान उस तरीके को संदर्भित करता है जिसमें कोई व्यक्ति उस पर ध्यान केंद्रित करता है जो वह कर रहा है। ध्यान अवधि हर व्यक्ति में भिन्न हो सकती है। यदि किसी व्यक्ति का ध्यान कम है, तो वह बहुत सारी जानकारी खो देता है। वृद्ध लोग अपनी ध्यान अवधि के संदर्भ में युवा लोगों से भिन्न हो सकते हैं। एक वृद्ध व्यक्ति किसी भी तरह के हस्तक्षेप से आसानी से विचलित हो जाता है, इस।समस्या को प्रशिक्षण से कम किया जा सकता है और ध्यान में सुधार किया जा सकता है।

विचार/ तर्क: विचार/ तर्क गति में सामान्य कमी होती है जिसके साथ व्यक्ति आगमनात्मक और निगमनात्मक तर्क दोनों से निष्कर्ष पर पहुंचता है। यह आंशिक रूप से आयु के साथ तेजी से सतर्क होने की प्रवृत्ति का परिणाम है।

15.6.4 व्यक्तित्व में परिवर्तन

व्यक्तित्व व्यवहार का एक संगठित, विशिष्ट प्रतिरूप है जो किसी विशेष व्यक्ति की विशेषता है जिसमें शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक व्यवहार शामिल होते हैं। वृद्धावस्था में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक और जीवनशैली में बदलाव की तरह, रूचि में बदलाव अपरिहार्य है। रूचि में परिवर्तन स्वैच्छिक या अनैच्छिक होते हैं।

वृद्धावस्था के दौरान कुछ वृद्धों में स्वयं की उपस्थिति, वस्त्र और धन में रुचि होती है। वृद्धावस्था में वृद्ध उदासीन और स्वयं उस बिंदु पर केंद्रित होते हैं जहाँ वे अपने बारे में अधिक सोचते हैं और दूसरों की रुचि और इच्छाओं के बारे में बहुत कम सोचते हैं। वृद्धावस्था के दौरान स्वयं की उपस्थिति में ज्यादा ध्यान नहीं देते। जो वृद्ध व्यक्ति सामाजिक गतिविधियों में

अत्यधिक सक्रिय होते हैं वह स्वयं की उपस्थिति में ध्यान देते हैं। वृद्ध पुरुष और महिलाएं मनोरंजक गतिविधियों में रुचि रखते हैं और आवश्यकता होने पर अपनी रूचि को बदलते हैं। वृद्धावस्था के दौरान सामाजिक कार्यों में रूचि कम हो जाती है जिसका कारण अस्वस्थता,आर्थिक परिस्थिति और पारिवारिक जिम्मेदारी हो सकती है। इस अवस्था के दौरान वृद्ध व्यक्तियों की रूचि धार्मिक कार्यों में होती है।

बर्निस न्यूगार्टन ने चार प्रकार के व्यक्तित्व का वर्णन किया है जो की निम्न हैं:

- **विघटित और अव्यवस्थित व्यक्तित्व:** वृद्ध व्यक्ति आयु बढ़ने को स्वीकार करने में असमर्थ होते हैं, वे आयु के बढ़ने में निराशा का अनुभव करते हैं जिसके कारण विघटित और अव्यवस्थित व्यक्तित्व विकसित होता है।
- **निष्क्रिय-निर्भर व्यक्तित्व:** वृद्ध व्यक्ति जो डर, बीमारी और भविष्य का सामना करने में अक्षम होते हैं और जरुरत होने में उम्मीद भी नहीं करते उनमें इसके कारण निष्क्रिय-निर्भर व्यक्तित्व विकसित होता है।
- **संरक्षित व्यक्तित्व:** व्यक्ति जो वृद्धावस्था के दौरान युवा अभिनय करने की कोशिश करते हैं। ये व्यक्ति जोरदार व्यायाम, युवा गतिविधियाँ करते हैं और ये अवास्तविक अपेक्षाएं निराशा की ओर ले जाती हैं जिसके कारण संरक्षित व्यक्तित्व का विकास होता है।
- **एकीकृत व्यक्तित्व:** वृद्ध जो सफल होते हैं, आयु बढ़ने के साथ आराम से रहते हैं। वृद्ध होने को स्वीकार करते हैं और आत्म गरिमा बनाए रखते हैं और एकीकृत व्यक्तित्व को विकसित करते हैं।

15.7 वृद्धावस्था के दौरान पोषण की आवश्यकता

वृद्धावस्था में शारीरिक, मानसिक तथा हार्मोन सम्बन्धी कई परिवर्तन होते हैं। वृद्धावस्था में शारीरिक कार्य कम होने के कारण कैलोरी की मांग कम हो जाती है। लेकिन प्रोटीन, लौह लवण, कैल्शियम एवं अन्य विटामिनों की माँग बढ़ जाती है।

कैलोरी: वृद्धावस्था में शरीर के कोषों, तन्तुओं एवं ऊतकों की क्षति अधिक होती है तथा निर्माण कार्य नहीं के बराबर होता है। आधारीय चयापचय व शारीरिक क्रियाशीलता में भी काफी कमी हो जाती है। इसलिए कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। अत: वृद्धावस्था में साधारण परिश्रम करने वाले प्रौढ़ व्यक्तियों की कैलोरी मांग की तुलना में 20 से 30 प्रतिशत

कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है। आहार में कैलोरी की मात्रा बढ़ने से वजन बढ़ता है जो इस आयु के व्यक्ति के लिए बहुत नुकसानदायक होता है क्योंकि मोटापा स्वयं में एक बीमारी होने के साथ साथ कई अन्य बीमारियों को भी जन्म देता है। वृद्ध पुरुष एवं महिलाएं जो 60 -69 वर्ष की आयु के हैं उन्हें क्रमशः 1940 किलो कैलोरी एवं 1500 किलो कैलोरी की ऊर्जा प्रति दिन आवश्यकता होती है। वृद्ध पुरुष एवं महिलाएं जो 70 से अधिक वर्ष की आयु के है उन्हें क्रमशः 1697 किलो कैलोरी एवं 1312 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रति दिन की माँग होती है (आई0सी0एम0आर0, 2000)।

प्रोटीन: वृद्धावस्था में शरीर के तन्तुओं में टूट फूट की क्रिया अधिक होती है। अत: तन्तुओं की टूट फूट की मरम्मत हेतु आहार में प्रोटीन का होना अत्यन्त आवश्यक है। इस आयु में पाचन तंत्र में विकार उत्पन्न हो जाते हैं और मांस जैसे भोजन को पचाने में काफी मुश्किल होती है। इसलिए वृद्ध व्यक्तियों द्वारा प्रोटीन दाल, सोयाबीन आदि स्रोत से लिया जाए तो बेहतर होता है। इस आयु में व्यक्ति अधिक भोजन ग्रहण नहीं कर पाता है किन्तु दूध एक ऐसा आहार है जिसको आसानी से लिया जा सकता है। दूध के सेवन से प्रोटीन के साथ ही कैल्शियम,फॉस्फोरस, विटामिन ए तथा विटामिन डी की भी पूर्ति हो जाती है। वृद्ध पुरुष जो 60 -69 वर्ष और 70 वर्ष से अधिक आयु के है उन्हें 60 ग्राम प्रोटीन प्रति दिन आवश्यक है। महिलाएं जो 60 -69 वर्ष और 70 वर्ष से अधिक आयु के हैं उन्हें 50 ग्राम प्रोटीन प्रति दिन आवश्यक है (आई0सी0एम0आर0, 2000)।

वसा: वृद्धावस्था में वसा का प्रयोग कम किया जाना चाहिए क्योंकि वसा के अधिक सेवन से मोटापा बढ़ता है। मोटापे से कई बीमारियाँ जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि उत्पन्न होते हैं। अधिक वसा के सेवन से अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है जो शरीर में वसीय ऊतकों के रूप में जमा होकर वजन बढ़ाती है। वृद्धावस्था में पाचन तंत्र कमजोर होने की वजह से वसायुक्त भोजन देर से पचता है जिससे बदहजमी, गैस, उल्टी , खट्टी डकारें आदि परेशानियों का सामना करना पड़ता है।

कैल्शियम: वृद्धावस्था में आमाशय से जठर रस का स्रावण कम होता है जिसके कारण लौह लवण एवं कैल्शियम का अवशोषण कम हो पाता है तथा ये पोषक तत्व बिना अवशोषित हुए ही शरीर से निष्कासित हो जाते हैं। वृद्धावस्था में अस्थियाँ भी कमजोर एवं भुरभुरी हो जाती हैं जिससे अस्थि विकृति रोग हो जाता है। अत: वृद्ध व्यक्तियों के आहार में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम आवश्यक है। दूध, दही, छाछ, पनीर, हरी पत्तेदार सब्जियाँ कैलिशयम के अच्छे स्रोत हैं, इसलिए इन्हें वृद्ध व्यक्तियों के आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए। वृद्ध पुरुष

एवं महिलाएं जो 60 -69 वर्ष और 70 वर्ष से अधिक आयु के हैं उन्हें 400 मि0 ग्रा0 कैल्शियम प्रति दिन आवश्यक है (आई0सी0एम0आर0, 2000)।

लौह लवण: वृद्धावस्था में लौह लवण का अवशोषण प्रभावित होने की वजह से व्यक्ति में लौह तत्व की कमी हो जाती है जिसे रक्ताल्पता/एनीमिया कहा जाता है। अत: आहार में लौह लवण युक्त भोजय पदार्थों को अवश्य ही सम्मिलित किया जाना चाहिए। वृद्ध पुरुष जो 60 -69 वर्ष और 70 वर्ष से अधिक आयु के हैं उन्हें 28 मि0 ग्रा0 लौह लवण प्रति दिन आवश्यक है। महिलाएं जो 60 -69 वर्ष और 70 वर्ष से अधिक आयु के हैं उन्हें 30 मि0 ग्रा0 लौह लवण प्रति दिन आवश्यक है (आई0सी0एम0आर0, 2000)।

विटामिन ए: वृद्धावस्था में आँखों की रोशनी कम हो जाती है जिसकी वजह से वृद्ध व्यक्तियों को धुंधला दिखाई देता है। स्वस्थ आँखों व स्वस्थ त्वचा के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन ए लेना बहुत आवश्यक है। विटामिन ए की पर्याप्त मात्रा लेने के लिए आहार में पत्तेदार सब्जियाँ, पीले फल, दूध, अंडा, मक्खन आदि शामिल किया जाना चाहिए।

विटामिन सी: मसूढ़ों एवं दाँतों के स्वास्थ्य, त्वचा के स्वास्थ्य तथा रोग रोधक क्षमता में वृद्धि के लिए आहार में विटामिन सी का होना अति आवश्यक है। विटामिन सी के अभाव में वृद्धों की रोगरोधक क्षमता में कमी आ जाती है जिसकी वजह से उन्हें सर्दी, जुकाम, बुखार और संक्रमण से होने वाली बीमारियाँ जल्दी घेर लेती हैं। इस कारण पोषक तत्वों का अवशोषण ठीक से नहीं हो पाता और व्यक्ति का पोषण स्तर और अधिक गिर जाता है। इसलिए इन बीमारियों से बचाव के लिए आहार में विटामिन सी का पर्याप्त मात्रा में होना अति आवश्यक है। इसकी पूर्ति के लिए आहार में नींबू, संतरा, अमरूद, आँवला आदि फलों का समावेश करना चाहिए।

विटामिन डी: कैल्शियम एवं फॉस्फोरस के अवशोषण हेतु आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन डी होना चाहिए। सूर्य की प्राय: कालीन किरणें विटामिन डी का अच्छा स्रोत हैं किन्तु यदि वृद्ध व्यक्ति चलने में असमर्थ है तो आहार के माध्यम से पर्याप्त विटामिन डी दिया जाना चाहिए।

विटामिन बी समूह: वृद्धावस्था में नाड़ी संस्थान कमजोर हो जाता है। इस कारण वृद्ध व्यक्तियों की धारण क्षमता, दृश्य क्षमता, श्रवण क्षमता तथा स्वाद क्षमता में कमी आ जाती है और साथ ही भूलने की बीमारी भी हो जाती है। वृद्धावस्था में इन समस्याओं से बचने के लिए आहार में पर्याप्त मात्रा में विटामिन बी समूह लेने चाहिए। थायमिन और राइबोफ्लेविन की

दैनिक आवश्यकता वृद्ध पुरूषों एवं महिलाओं के लिए भिन्न है और 70 वर्ष के पश्चात इनकी दैनिक मांग भी पुरूषों एवं महिलाओं में कम होती है।

जल: वृद्धावस्था में जल भी अति आवश्यक है। शरीर की विभिन्न क्रियाओं के समुचित सम्पादन के लिए जल की जरूरत होती है। अत: जल समुचित मात्रा में लेना चाहिए। जल की पूर्ति हेतु आहार में दूध, फलों का रस, सब्जियों का सूप, शिकंजी आदि का समावेश करना चाहिए।

आहारीय रेशा: वृद्धावस्था में आँतों की पेशियाँ कमजोर होने की वजह से प्राय: कब्ज की शिकायत रहती है। कब्ज की स्थिति से बचने के लिए वृद्ध व्यक्तियों के आहार में रेशा पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित करना चाहिए। यद्यपि रेशे का कोई पोषक मूल्य नहीं होता है फिर भी आहार में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। कब्ज के अलावा, अन्य बीमारियों जैसे मोटापा, मधुमेह, हृदय संबंधित रोग आदि से बचाव में भी रेशे का महत्वपूर्ण योगदान है। फल, हरी पत्तेदार सब्जियाँ, भिंडी, पत्ता गोभी, मूली, गाजर, चुकन्दर, खीरा, ककड़ी, तोरई आदि में रेशा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है।

अभ्यास प्रश्न 2

1. निम्नलिखित कथनों को सत्य एवं असत्य बताइए।
   a. वृद्धावस्था में कैल्शियम की कमी से ऑस्टियोपोरोसिस की समस्या होती है।
   b. बढ़ती आयु के साथ होने वाले परिवर्तन सार्वभौमिक हैं।
   c. वृद्धावस्था में संवेदी क्षमताओं में परिवर्तन नहीं होता है।
   d. डिमेंशिया बिमारी नहीं बल्कि एक सिंड्रोम है।
   e. वृद्धावस्था में शरीर में हार्मोन का असंतुलन हो जाता है।

15.8 सारांश

वृद्धावस्था को आमतौर पर जीवन काल का समापन काल माना जाता है। वृद्धावस्था में शरीर में कई तरह के शारीरिक परिवर्तन होते हैं जो पोषक तत्वों की माँग को भी प्रभावित करते हैं। वृद्धावस्था अक्सर निर्भरता की अवधि होती है क्योंकि आयु बढ़ने की प्रक्रिया के दौरान शारीरिक शक्ति और बुजुर्गों की क्षमता में गिरावट आती है। अधिकांश बुजुर्गों को अनेक शारीरिक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जैसे कि हृदय रोग, मुधमेह रोग, रक्तचाप बढ़ना, पाचन तंत्र का कमजोर होना आदि। वृद्धावस्था के साथ दृष्टि में भी कई समस्याएं उत्पन्न होती हैं। पुतलियाँ आकार में छोटी और अनियमित हो जाती हैं जिस वजह से पलकें

झपकने की प्रवृत्ति हो जाती है। रंग दृष्टि में कमी हो जाती है। वृद्धावस्था के साथ सुनने की क्षमता में धीरे-धीरे गिरावट आ जाती है। अधिकांश वृद्ध व्यक्तियों में सुनने की क्षमता खत्म ही हो जाती है। मुँह में स्वाद ग्रंथियों और गालों की आंतरिक सतह में बदलाव होने के कारण वृद्धावस्था में स्वाद में परिवर्तन होता है और कभी कभी खाना अच्छा भी नहीं लगता है और भूख भी कम हो जाती है। वृद्धावस्था के विशेष लक्षण मानसिक और शारीरिक गिरावट हैं।

15.9 पारिभाषिक शब्दावली

- **व्यक्तित्व:** व्यवहार का एक संगठित और विशिष्ट प्रतिरूप है जो किसी व्यक्ति विशेष की विशेषता होती है।
- **पोषण:** स्वास्थ्य और विकास के लिए आवश्यक भोजन प्रदान करने या प्राप्त करने की प्रक्रिया।
- **सिंड्रोम:** शरीर में संकेतों या परिवर्तनों का एक समूह जो एक बीमारी का लक्षण होता है।
- **आई0 सी0 एम0 आर0:** इंडियन कॉउन्सिल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च/ भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

इकाई का मूल भाग देखें।

अभ्यास प्रश्न 2

1. निम्नलिखित कथनों को सत्य एवं असत्य बताइए।
   a. सत्य
   b. सत्य
   c. असत्य
   d. सत्य
   e. सत्य

15.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. Hurlock, E. B. 2016. Developmental Psychology: A Life Span Approach. 5th ed. New Delhi , Tata McGraw-Hill Education (India), Pvt. Ltd. 200p
2. Sandy, O.B. 2005. Cousins Overcoming Ageism in Active Living: Report for the active living condition for Older. Canada.
3. Dietary Guidelines for Indians- A Manual National Institute of medical Research. Indian Council of Medical Research. Hyderabad, India second edition. 2011.

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. आयु बढ़ने के साथ होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का वर्णन करें।
2. वृद्धावस्था के दौरान होने वाले मानसिक परिवर्तन की व्याख्या करें।
3. बर्निस न्यूगार्टन द्वारा दिए गए चार प्रकार के व्यक्तित्व का वर्णन करें।
4. वृद्धावस्था के समय पोषक तत्वों की आवश्यकता का वर्णन करें।

इकाई 16: वृद्धावस्था में सामाजिक और भावनात्मक विकास

16.1 परिचय
16.2 उद्देश्य
16.3 सामाजिक और भावनात्मक विकास एवं समायोजन
16.4 सामाजिक और भावनात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक
16.5 सामाजिक दृष्टिकोण और पारिवारिक समायोजन
16.6 सेवानिवृत्ति के उपरान्त समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक
16.7 मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक समर्थन
16.8 सारांश
16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.10 पारिभाषिक शब्दावली
16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.12 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में विकास प्रक्रिया अनेक परिवर्तन लाती है। हर आयु एवं अवस्था में नये गुणों को मनुष्य विकास प्रक्रिया के दौरान सीखता है। प्रारंभ में मनुष्य का शारीरिक व मानसिक विकास तीव्र होता है जो कि जीवन के विकास की आधारशिला होता है। वयस्कता के अंतिम चरण से वृद्धावस्था के प्रारंभ तक मनुष्य में शारीरिक, मानसिक परिवर्तन आने लगते हैं जो प्राणी के सामाजिक और भावात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। वृद्धावस्था के दौरान सामाजिक तंत्र संकीर्ण होता जाता है। सामाजिक भूमिकाएं मात्रात्मक और गुणात्मक रूप से परिवर्तित हो जाती हैं। सार्थक रिश्तों में निवेश बढ़ता है। संकलित शारीरिक कार्यप्रणाली कुछ सामाजिक गतिविधियों का प्रयास करती है जो एक बार आसानी से पूरी हो जाती हैं। संवेदी हानि होने के कारण बातचीत करने में तनाव उत्पन्न होने लगता है और

शारीरिक गतिविधियों को अच्छी तरह से विनियमित नहीं किया जाता है। पिछली इकाई में हमने वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक और संज्ञानात्मक परिवर्तनों के बारे में पढ़ा। इन सभी परिवर्तनों एवं सेवानिवृत्ति के उपरान्त वृद्ध लोगों को कई सामाजिक और भावात्मक विकास का समायोजन करना पड़ता है जिसके बारे में हम इस अध्याय में चर्चा करेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद शिक्षार्थी जानेंगे:

- वृद्धावस्था के दौरान होने वाले विभिन्न सामाजिक और भावनात्मक विकास;
- वृद्धावस्था के समय सामाजिक और भावनात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक;
- वृद्धावस्था के दौरान होने वाले पारिवारिक समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक;
- वृद्धावस्था के प्रति सामाजिक अभिवृत्तियाँ और पारिवारिक समायोजन।

16.3 सामाजिक और भावनात्मक विकास एवं समायोजन

आयु बढ़ने की प्रक्रियाओं के दौरान कुछ वृद्ध व्यक्ति आमतौर पर सामाजिक भूमिकाओं में खुद को व्यस्त रखकर बहुत सक्रिय रहने की कोशिश करते हैं और पारस्परिक संबंधों में आनंद लेते हैं। जबकि अन्य वृद्ध व्यक्ति सामाजिक रूप से अलग-थलग रहते हैं और अपने को सामाजिक गतिविधियों से अलग रखते हैं। वृद्ध व्यक्तियों की भागीदारी की गतिविधि और प्रकृति अक्सर स्वास्थ्य की स्थिति, सामाजिक आर्थिक स्थिति और पारिवारिक स्थिति से निर्धारित होती है।

निम्नलिखित आधारों पर हैविगुर्स्ट द्वारा वृद्धावस्था को एक सामाजिक और भावनात्मक समायोजन के रूप में परिभाषित किया गया है:

- **अस्वस्थता और शारीरिक शक्ति में गिरावट के लिए समायोजन:** वृद्ध लोगों को इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ता है कि अस्वस्थ स्वास्थ्य और शारीरिक शक्ति के कारण वे शारीरिक रूप से कमजोर हैं। जैसा कि वृद्ध लोग खुद को उन गतिविधियों में संलग्न नहीं कर सकते हैं जिनके लिए उच्च स्वास्थ्य भागीदारी की आवश्यकता होती है, इसलिए

उन्हें अपने आप को उन अवकाश गतिविधियों में संलग्न करना चाहिए जिसमें उनकी क्षमता के अनुकूल मानसिक और शारीरिक शक्ति का उपयो करना हों।

- **सेवानिवृत्ति और कम आय के लिए समायोजन:** एक केंद्रीय विकासात्मक कार्य जो वृद्धावस्था में परिवर्तन की विशेषता रखता है वो सेवानिवृत्ति के लिए समायोजन है। सेवानिवृत्ति के लिए समायोजन और अनुकूलन में संभावित लाभ (आत्म-प्राप्ति) और नुकसान (आत्म-सम्मान की हानि) दोनों शामिल हैं।
- **सामाजिक और नागरिक दायित्व का पूर्ण होना:** यह विकास कार्य आयु बढ़ने के दौरान नई भूमिका में बदलाव लाता है। इस स्तर पर बुजुर्गों से अपेक्षा की जाती है कि वे आर्थिक गतिविधियों में न्यूनतम भूमिका निभाएंगे। इस आयु के दौरान वृद्ध लोग खुद को ज्ञान से जुड़ी गतिविधियों में संलग्न करते हैं और संभावित सामाजिक बातचीत के माध्यम से युवा पीढ़ी को अपने बहुमूल्य अनुभव का साझा करते हैं।
- **पति या पत्नी की मृत्यु के दौरान समायोजन:** वृद्धावस्था के दौरान जीवनसाथी की मृत्यु का सामना करना कठिन समय और दुःख की भावना का सामना करना है। यह समय पुरुषों के अपेक्षा उन महिलाओं के संदर्भ में अधिक कठिन है जो अपने आर्थिक स्रोतों के लिए पुरुषों पर निर्भर होती हैं।
- **एक आयु समूह के सदस्यों के साथ संचार और संबद्धता:** अकेलापन वृद्ध लोगों के लिए एक अभिशाप है। इसलिए नए दोस्त बनाने और अपनी आयु के लोगों के साथ अच्छी दोस्ती करने से बुजुर्ग अकेलेपन, दुःख और उदासी की भावना को दूर करने में मदद पाते हैं। वृद्ध लोगों के छोटे समूह इस संबंध में बहुत मददगार होते हैं।
- **अच्छे जीवन निर्वाह के लिये व्यवस्था:** सफल और संतुष्ट वृद्धावस्था के लिए जीवन का न्यूनतम मानक आवश्यक है। उस के लिए एक व्यक्ति को अपने मध्य आयु के दौरान से वृद्धावस्था के लिए अच्छी योजना के माध्यम से समान व्यवस्था करने की आवश्यकता होती है जहां उन्हें अपने रहने वाले वातावरण में सुनिश्चित अच्छी गुणवत्ता देखभाल मिल सके।
- **बौद्धिक शक्ति का संवर्धन:** वृद्ध लोग अनुभवी और अक्सर शिक्षित होते हैं। उन्हें अपने अनुभव का रचनात्मक और सामान्य गतिविधियों में उपयोग करना चाहिए।

- **मृत्यु को स्वीकारना:** वृद्धावस्था की परिणति मृत्यु के रूप में है। सभी बुजुर्गों को आसन्न भविष्य और मृत्यु के लिए खुद को तैयार करने की आवश्यकता है। उन्हें धार्मिक विचारों, विचारों और दर्शन में अपनी रुचि को बदलने की आवश्यकता होती है जो मृत्यु की अवधारणा को स्वीकार करने में मदद करता है।
- **आत्मनिरीक्षण:** वृद्ध लोगों को यह विश्लेषण करने की आवश्यकता है कि मानव जाति के इतिहास में आयु बढ़ने की एक सार्वभौमिक प्रक्रिया कैसे हुई है और अतीत के लोगों ने मनोवैज्ञानिक रूप से इसका सामना कैसे किया।
- **सामाजिक संबंधों और दृष्टिकोणों में वृद्धावस्था:** यह उन दृष्टिकोणों, कार्यों और शब्दसंग्रह को संदर्भित करता है जिसके द्वारा हम लोगों को मुख्य रूप से उनकी कालानुक्रमिक आयु के संदर्भ में एक कम सामाजिक स्थिति प्रदान करते हैं। यह दृष्टिकोण अंतर्वैयक्तिक से संस्थागत स्तर तक काम कर सकता है।

16.4 सामाजिक और भावनात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

आयु बढ़ने के साथ होने वाले शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के लिए पुरुष और महिलाओं को सामंजस्य बैठना पड़ता है, जिनमें से कुछ उनके नियंत्रण से परे हैं। जिन वृद्ध लोगों ने अनिवार्य रूप से होने वाले परिवर्तनों के लिए खुद को मनोवैज्ञानिक या आर्थिक रूप से तैयार नहीं किया है, वे अक्सर इन परिवर्तनों को एक दर्दनाक अनुभव में समायोजित करते हैं। सामाजिक और भावनात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में से सबसे महत्वपूर्ण निम्न दिए गए हैं:

1. **अनुभव:** कुछ रूपों में वयस्कता में अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों को बुढ़ापे के दौरान समायोजित करने में समस्या पैदा होती है।
2. **आवश्यकताओं की संतुष्टि:** बुढ़ापे में अच्छी तरह से समायोजित होने के लिए, पुरुषों और महिलाओं को अपनी व्यक्तिगत जरूरतों को पूरा करने में सक्षम होना चाहिए और उनके लिए प्रदान किए गए जीवन की रुपरेखा के भीतर दूसरों की अपेक्षाओं पर खरा उतरना चाहिए।

3. **पुरानी मित्रता का प्रतिधारण:** वृद्ध लोग जितनी पुरानी दोस्ती बनाए रखने में सक्षम होते हैं तब उतना ही बेहतर समायोजित और खुश होते हैं जब वे अन्य क्षेत्रों में या सैर के लिये अपने दोस्तों के साथ जाते हैं।
4. **विकसित बच्चे:** वयस्क बच्चों का अपने बुजुर्ग माता-पिता के प्रति मनोभाव और उनके साथ लगातार जुड़ाव वृद्ध लोगों की ओर से अच्छे व्यक्तिगत और सामाजिक समायोजन में योगदान देता है।
5. **सामाजिक दृष्टिकोण:** वृद्धावस्था के दौरान अच्छे समायोजन के लिए सबसे बड़ी बाधाएं समाज में वृद्धों के प्रति प्रतिकूल नज़रिया है।
6. **व्यक्तिगत दृष्टिकोण:** वृद्ध लोगों के प्रति कठोर और प्रतिरोधी नज़रिया समायोजन के लिए गंभीर बाधाएं लाता है।
7. **समायोजन की विधि:** तर्कसंगत तरीकों में आयु की सीमा को स्वीकार करना शामिल है। नए हितों को विकसित करना, यह स्वीकारना की वयस्क बच्चे बाहर जाएंगे और अतीत में निवास नहीं करना। तर्कहीन तरीकों में आयु के साथ आने वाले बदलावों का नकारना और पहले की तरह जारी रखने की कोशिश करना, गुजरे दिनों के सुखों और विजय के साथ व्यस्त होना और शारीरिक देखभाल के लिए दूसरे पर निर्भर रहना चाहते हैं।
8. **स्वास्थ्य की स्थिति:** पुरानी बीमारी अस्थायी बीमारियों की तुलना में समायोजन के लिए एक बड़ा बाधा देती है, हालांकि बाद में वे पहले की तुलना में अधिक गंभीर हो सकती हैं।
9. **रहने की स्थिति:** जब बुजुर्ग लोगों को उन जगहों पर रहने के लिए मजबूर किया जाता है जहाँ वे हीन,अपर्याप्त और नाराज महसूस करते हैं, तो वृद्धावस्था के दौरान इस तरह के समायोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
10. **आर्थिक स्थिति:** बुजुर्ग लोगों के लिए वित्तीय समस्याओं को समायोजित करना विशेष रूप से कठिन होता है क्योंकि सेवानिवृति के उपरान्त मासिक आय में कमी होती है।

16.5 सामाजिक दृष्टिकोण और पारिवारिक समायोजन

वृद्धावस्था में आने पर जीवन पद्धति को जो कि वयस्कता के दौरान बनी हुई थी उसमें बदलाव करना ही पड़ता है। कम आय के साथ या वृद्धावस्था में जीवनसाथी की मृत्यु के साथ

सेवानिवृत्ति द्वारा इन परिवर्तनों को अधिक स्पष्ट किया जाता है। किसी भी वृद्ध व्यक्ति के भावनात्मकता और सामाजिक कार्य को निम्नलिखित पारिवारिक सम्बन्ध प्रभावित करते हैं:

- **युगल संबंध:** पहला महत्वपूर्ण समायोजन पारिवारिक रिश्तों पर केंद्रित है। वृद्ध लोगों को अपने जीवनसाथी के साथ अच्छे संबंध स्थापित करने चाहिए। सेवानिवृत्ति के बाद वृद्ध लोगों की भूमिका में बदलाव के साथ उन्हें अपना अधिक समय घर पर व्यतीत करना पड़ता हैं, जितना वे पहले कभी नहीं करते थे। सेवानिवृत्ति के उपरान्त पति और पत्नी एक-दूसरे के साथ समायोजन करते हैं, क्योंकि पहले के अपेक्षा उन्हें अधिक समय व्यतीत करना होता है। अधिकतर उनका समायोजन एक दूसरों की रुचियों पर निर्भर करता है। काफी हद तक समायोजन इस बात पर भी निर्भर करता है कि वे पहले कितने अनुकूल रहे हैं, विशेष रूप से मध्यम आयु में, जब उनके बच्चे घर से चले गए और इस तरह वे माता-पिता की जिम्मेदारियों और बच्चे-उन्मुख मनोरंजन से मुक्त हो गये हों। मध्यम और उच्च वर्ग के वयस्क अपने जीवनसाथी के साथ अवकाश का अधिक समय बिताते हैं और अधिक मनोरंजक रुचि रखते हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी मनोरंजक गतिविधियों में "एकजुटता" का एक स्वरुप विकसित किया होता है। अतः सेवानिवृत्ति के उपरान्त व्यक्तियों को इस स्वरुप को अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू करने में आसान होता है।
- **यौन व्यवहार में बदलाव:** पारिवारिक रिश्तों पर केंद्रित दूसरा महत्वपूर्ण समायोजन वृद्ध लोगों का यौन व्यवहार में परिवर्तन है। इन समायोजन को इस लोकप्रिय धारणा से मुश्किल बनाया जाता है कि सेक्स में रुचि और कमी आयु बढ़ने की स्वाभाविक संगत है। माना जाता है कि यह न्यूरो एंडोक्राइन परिवर्तनों के कारण होता है जो शारीरिक आयु बढ़ने के साथ होता है। इस बात के परिणामस्वरुप वृद्ध लोगों में यौन व्यवहार में बदलाव शारीरिक कारणों से अधिक मनोवैज्ञानिक कारणों के कारण होता है। जीवनसाथी के साथ एक विरोधी संबंध और असंगति वृद्ध लोगों के यौन व्यवहार को प्रभावित करती है। वृद्ध लोगों के बीच कामुकता के प्रति प्रतिकूल सामाजिक दृष्टिकोण भी यौन व्यवहार को प्रभावित करते हैं।
- **संतान के साथ संबंध:** परिवार के वृद्धों पर केंद्रित तीसरा महत्वपूर्ण समायोजन उनका अपनी संतानों के साथ संबंधों में परिवर्तन है। वृद्ध लोग अपने बड़े हो चुके बच्चों पर साहचर्य और सहायता के लिये कम अपेक्षा कर सकते हैं क्योंकि आधुनिक पीढ़ी के

सदस्यों में अतीत की तुलना में और आंशिक रूप से अपने माता-पिता के प्रति दायित्व की भावना कम है और बच्चों को नौकरी के कारण अपने परिवारों से दूर रहना पड़ता है। जब माता-पिता बच्चों की आयु और विकासात्मक स्तर के अनुरूप अपने बच्चों के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदलने के लिए तैयार होते हैं, तो माता-पिता के बाल सम्बन्ध अच्छे होने की सम्भावना होती है और वृद्धावस्था में उन माता पिता का अपने बच्चों के साथ संलग्न और संतुष्ट व्यवहार रहता है।

- **अभिभावक की निर्भरता:** जैसा की हम जानते हैं कि वृद्धावस्था के दौरान वृद्ध लोग अपने बच्चों में आर्थिक या शारीरिक रूप से निर्भर हो जाते हैं जो कि वृद्ध लोगों की भूमिका में परिवर्तन लाता है और वृद्धों को इस स्थिति में समायोजन करना बहुत कठिन होता है। वृद्ध लोग अपने बच्चों पर अधिकार की अपनी भूमिका को त्यागने में असमर्थ होते हैं। वे उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसा उन्होंने युवा होने पर किया था परन्तु बढ़ते बच्चे इस बात से नाराज हो जाते हैं, खासकर जब वे अपने माता-पिता का समर्थन कर रहे होते हैं और उनकी शारीरिक और सामाजिक जरूरतों का ख्याल रखते हैं। अपने बच्चों पर वित्तीय निर्भरता ज्यादातर माता-पिता के लिये बहुत गंभीर स्थिति है। यह उन पुरुषों के लिए विशेष रूप से सच है जिन्होंने अपने जीवन के प्रमुख हिस्से के लिए प्रदाता की भूमिका निभाई है।
- **पोते एवं पोती के साथ संबंध:** पारिवारिक रिश्तों के भीच वृद्धों के लिए पांचवा महत्वपूर्ण समायोजन यह है की वे अपने पोते-पोतियों के साथ किस प्रकार सम्बन्ध रखते हैं। जब तक पुरुष और महिला वृद्धावस्था में पहुंचते हैं, तब तक उनके पोते किशोर या युवा वयस्क हो गये होते हैं। इस स्थिति में दादा-दादी को अब उनकी देखभाल में मदद करने के लिए नहीं बुलाया जाता है। वे नाती-पोतों को कितना देखते हैं और उनके साथ किस तरह के संपर्क होते हैं, यह आंशिक रूप से इस बात पर निर्भर करता है कि वे एक-दूसरे के कितने करीब रहते हैं और एक साथ रहने का उन्हें कितना अच्छा साथ मिलता है। अगर दादा-दादी पोते पोती से दूर रहते हैं, जैसा कि आजकल अक्सर होता है तो उनके साथ कभी-कभार ही संपर्क होता है, जब तक कि दादा-दादी माता-पिता के घरों में रहने के लिए नहीं जाते हैं। इस प्रकार कई का दादा-दादी के साथ कम संपर्क होता है। तेजी से बदलते महत्व, दृष्टिकोण, पोशाक और व्यवहार के स्वरूप और नैतिक मानकों के

परिणामस्वरूप, दादा-दादी अक्सर पाते हैं कि उनके और उनके पोते के बीच बहुत अंतर है और पोते-पोती उन्हें पुराने जमाने का मानते हैं। अगर दादा-दादी अपने पोते पोती के साथ एक ही छत के नीचे रहते हैं तो यह एक काल्पनिक संबंध विकसित करता है, अगर उनके साथ उनके संपर्क केवल सामयिक और संक्षिप्त हैं।

- **वृद्धावस्था में जीवन साथी की मृत्यु के दौरान समायोजन:** निर्विवाद रूप से प्रमुख समायोजन वृद्ध लोगों में जीवनसाथी की मृत्यु के दौरान होता है। जब पुरुष सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद अपनी पत्नी को खो देते हैं, तो इससे सेवानिवृत्ति के बाद समायोजन करने में उनकी मुश्किलें बढ़ जाती हैं। हालांकि यह सच है कि पुरुषों को अपनी पेंशन, सामाजिक सुरक्षा और आय के अन्य स्रोतों के कारण महिलाओं की तुलना में गंभीर आर्थिक समस्याएं होने की संभावना बहुत कम होती है। परन्तु पारिवारिक एवं भावात्मक समस्याओं के लिए अक्सर उन्हें समायोजित करना बहुत मुश्किल होता है। महिलाओं को भी पति की मृत्यु के उपरान्त पारिवारिक एवं भावात्मक समस्याओं का सामना करना पड़ता है और समायोजन में भी कठनाई होती है। यदि महिला के पास खुद की आमदनी का स्रोत है या पति की पेंशन और रखा हुआ रुपया है तब आर्थिक समस्याओं का सामना काम करना पड़ता है नहीं तो महिलाओं को आर्थिक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। यदि वृद्धजन का परिवार में अपने बच्चों व नाती पोतों के साथ अच्छे सम्बन्ध हैं, तब उन्हें परिवार से इस स्थिति से उभरने की लिये भावात्मक समर्थन मिलता है।
- **वृद्धावस्था में अकेलेपन का समायोजन:** लोकप्रिय धारणा है कि एक वृद्धजन जिसने कभी शादी नहीं की है, वह दुखी और अकेलेपन का सामना करता है जो की वास्तविक अनुभवों से पैदा नहीं होता है। एकल व्यक्ति ने अपने स्वयं के परिवार के साहचर्य की कमी की भरपाई के लिए हितों को विकसित करने और गतिविधियों में शामिल होने के लिए वर्षों से सीखा है। नतीजतन, वह शादीशुदा लोगों की तुलना में अकेले वृद्धावस्था का सामना करने की संभावना कम रखते हैं। आधुनिक, वृद्ध अकेली महिला अपने जीवन का निर्माण उसी तरह करती है, जिस तरह एक पुरुष करते हैं। नतीजतन, वो अपने वृद्धावस्था में खुश रहती हैं। भले ही वह सेवानिवृत्त हो गई है, लेकिन उसे आमतौर पर पेंशन या सामाजिक सुरक्षा का लाभ होता है। इसके अलावा उसने जो कुछ भी बचाया है, उसे जीने के लिए और जितना वह चाहती है उतना करने में सक्षम होती है।

16.6 सेवानिवृत्ति के उपरान्त समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक

सेवानिवृत्ति जीवन के एक चरण की समाप्ति या जीवन के एक नए स्वरुप के लिए परिवर्तन हो सकता है। इसमें भूमिका परिवर्तन, रुचियों और मूल्यों में परिवर्तन और व्यक्ति के जीवन के पूरे स्वरुप में परिवर्तन शामिल होते हैं। कुछ परिस्थितियाँ है जो सेवानिवृत्ति के उपरान्त समायोजन को प्रभावित करती हैं, ये निम्नवत हैं:

- जो कर्मचारी स्वेच्छा से सेवानिवृत्त होते हैं, वे उन लोगों की तुलना में बेहतर समायोजित करते हैं जो अनिवार्य सेवानिवृत्त होते हैं, खासकर यदि वे काम करना जारी रखना चाहते हैं।
- सेवानिवृत्ति के समय खराब स्वास्थ्य समायोजन में कठनाई देता है जबकि अच्छा स्वास्थ्य इसके विपरीत अच्छी तरह से समायोजन की संभावना रखता है।
- सेवानिवृत्ति से पूर्व परामर्श और नियोजन समायोजन में सहायता करता है।
- वे कार्यकर्ता जो स्थानापन्न गतिविधियों में रुचि विकसित करते हैं जो उनके लिए सार्थक हैं और जो कार्य करने के उपरान्त संतोष प्राप्त करते हैं, उन्हें सेवानिवृत्ति के बाद समायोजन में कठिनाई होती है।
- सामाजिक संपर्क सेवानिवृत्ति के उपरान्त समायोजन में सहायता देता है।
- सेवानिवृत्ति के बाद जीने के पैटर्न में कम बदलाव वृद्ध लोगों को बेहतर समायोजन प्रदान करता है।
- एक अच्छी आर्थिक स्थिति जो आरामदायक जीवन जीना संभव बनाती है और सेवानिवृत्ति के अच्छे समायोजन के लिए सार्थक आनंद प्रदान करती है।
- एक खुश वैवाहिक स्थिति सेवानिवृत्ति के लिए समायोजन प्रदान करती है।
- कार्य संतुष्टि और सेवानिवृत्ति की संतुष्टि के बीच एक विपरीत संबंध है।
- निवास का स्थान सेवानिवृत्ति के समायोजन को प्रभावित करता है। समुदाय जितना बुजुर्गों के लिए साहचर्य और गतिविधियों की पेशकश करता है, उतना ही बेहतर वृद्ध लोग सेवानिवृत्ति के लिए समायोजित होते हैं।

- सेवानिवृत्ति के प्रति परिवार के सदस्यों के दृष्टिकोण का गहरा प्रभाव वृद्धों के दृष्टिकोण पर पड़ता है। विशेष रूप से जीवनसाथी का उसकी सेवानिवृत्ति को लेकर क्या दृष्टिकोण है।

16.7 मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक समर्थन

प्रत्येक व्यक्ति को अपने कठिन समय में मदद करने के लिए दोस्तों, रिश्तेदारों, अनुभवी व्यक्ति की सहायता प्रणाली की आवश्यकता होती है। अध्याय के इस भाग में हम आकलन करेंगे कि वृद्ध लोगों को कठिनाइयों से निपटने और उन्हें दैनिक आधार पर जीवन का सामना करने में सक्षम बनाने के लिए किस प्रकार के मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप का उपयोग किया जा सकता है। इस संबंध में चिंतित होने से वृद्ध लोगों के जीवन स्तर में सुधार किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप के सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य निम्नवत हैं:

- व्यवहार में अंतर्दृष्टि
- चिंता या अवसाद से राहत
- एक वर्तमान स्थिति के लिए अनुकूलन
- स्व-देखभाल कौशल में सुधार
- उत्साहवर्धक गतिविधि
- स्वतंत्रता की सुविधा
- किसी की कमजोरी और कठिनाइयों को स्वीकार करना
- पारस्परिक संबंधों में सुधार

कुछ महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप जो बुजुर्गों के लिए बहुत उपयोगी प्रमाणित हुए हैं निम्न प्रकार हैं:

मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से मदद लेना: मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ किसी विशिष्ट सुविधा से सम्बन्धित नहीं हैं जैसे कि अस्पताल की सुविधा बल्कि यह एक देखभाल प्रणाली को संदर्भित करती हैं जो मानसिक बीमारी वाले लोगों के लिए एकमात्र देखभाल प्रदाता है। सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का मुख्य उद्देश्य रोगी मनोरोग उपचार प्रदान करने से कहीं अधिक है। यह पेशेवर मदद परिवार, दोस्तों या पड़ोसियों से उनकी व्यक्तिगत या सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए भी प्रदान की जा सकती है। अपने संसाधनों के

आधार पर, बुजुर्गों को अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक मामलों के लिए पेशेवर मदद लेने की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक और परामर्शदाता वृद्ध लोगों को संभावित तनावपूर्ण जीवन की घटनाओं जैसे सेवानिवृत्ति, पति-पत्नी की मृत्यु और वित्तीय असुरक्षा से निपटने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

संज्ञानात्मक व्यवहार हस्तक्षेप: यह एक हस्तक्षेप है जिसमें लक्ष्य सिद्धांत को बढ़ाने, घटाने, बनाए रखने या लक्ष्य व्यवहार को सामान्य बनाने के लिए व्यवस्थित रूप से सीखने के सिद्धांतों को लागू किया जाता है। अधिकांश वृद्ध व्यक्तियों में स्वयं के बारे में यथार्थवादी होने की कमी होती है और इस प्रकार वे अपनी सोच गलत कर देते हैं। इस चरण के दौरान स्वयं के बारे में अपर्याप्तता की भावनाओं से भय, क्रोध, निराशा और अवसाद हो सकता है। संज्ञानात्मक-व्यवहार उपचार तर्कसंगत विचारों के साथ तर्कहीन विचारों को प्रतिस्थापित करने में बहुत प्रभावी हैं। विश्राम प्रशिक्षण चिंता और तनाव को कम करने में मदद करता है। संज्ञानात्मक-व्यवहार संबंधी हस्तक्षेपों को अवसाद, चिंता, स्मृति हानि और वृद्धों में प्रतिक्रिया की गति के उपचार में उपयोगी पाया गया है।

व्यवहार हस्तक्षेप: यह एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक परामर्श (मनोचिकित्सा) है जो परिवार के सदस्यों से संचार में सुधार करने और संघर्षों को हल करने में मदद करती है। व्यवहार हस्तक्षेप सकारात्मक और नकारात्मक सुदृढ़ीकरण उत्तेजनाओं पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए बुज़ुर्ग व्यक्तियों को सकारात्मक सुदृढ़ीकरण दिया जा सकता है जैसे कि वांछित आत्म-देखभाल व्यवहार के लिए मौखिक या भौतिक इनाम और अवांछनीय आक्रामक व्यवहार के लिए नकारात्मक सुदृढ़ीकरण (इनाम से वंचित)। यह अपेक्षाकृत संक्षिप्त और किफायती है। हालांकि, इसे प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए बहुत अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता है।

परिवार चिकित्सा: परिवार की चिकित्सा विभिन्न जीवन समस्याओं जैसे कि सेवानिवृत्ति, परिवार की देखभाल की भूमिका, युवा और वृद्धों के बीच पारिवारिक संघर्ष, बुजुर्गों की बीमारी का मुकाबला करने और परिवार के निर्णय, संचार और सामंजस्य के समायोजन में मदद करती है। यदि स्थिति को सावधानीपूर्वक नियंत्रित किया जाता है, तो परिवार चिकित्सा विशेष रूप से बुजुर्गों की ओर परिवार में प्यार, निकटता और अन्योन्याश्रय की भावनाओं को मजबूत कर सकती है।

सामाजिक हस्तक्षेप: सामाजिक हस्तक्षेप एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सामाजिक मामलों में सरकार या संगठन का हस्तक्षेप शामिल है। ध्यान घर के वातावरण, गतिविधि कार्यक्रमों, साथ

ही साथ पड़ोस और समुदाय के लिए दिया जाना चाहिए जिसमें बुजुर्ग व्यक्ति रहता है। सामाजिक हस्तक्षेप वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण को बदलने और समुदाय, परिवार और दोस्तों पर वृद्ध व्यक्ति की निर्भरता को बढ़ाने में मदद करता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्लिखित कथनों को सत्य या असत्य बताए।
   a. अनुभव और सामाजिक दृष्टिकोण सामाजिक और भावात्मक विकास को प्रभावित नहीं करते हैं।
   b. सेवानिवृत्ति के लिये समायोजन और अनुकूलन में संभावित लाभ और नुकसान दोनों शामिल हैं।
   c. वृद्धावस्था के दौरान मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक समर्थन की आवश्यकता होती है।
   d. किसी के व्यवहार में अंतर्दृष्टि मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप का लक्ष्य है।
   e. अस्वस्थता और शारीरिक शक्ति में गिरावट वृद्ध लोगों के सामाजिक एवं भावात्मक विकास में अवरोध उत्पन्न करती है।

16.8 सारांश

इस अध्याय में हमने वृद्धावस्था के दौरान होने वाले सामाजिक और भावात्मक विकास के बारे में जाना और उसको प्रभावित करने वाले कारकों का भी अध्ययन किया। सामाजिक आर्थिक विकास के साथ साथ विश्व अनेक समस्याओं से ग्रस्त होता जा रहा है। साथ ही वृद्धजन की समस्याएं भी गंभीर हैं। आज वृद्धजनों की एकमात्र समस्या शारीरिक शिथिलता, शारीरिक शक्ति का ह्रास होना या मानसिक रूप से कमजोर होना ही नहीं बल्कि सामाजिक, आर्थिक, संवेगात्मक व सामाजिक समस्याएं भी हैं। वृद्धावस्था के दौरान सबसे कठिन विकास कार्यों में से सामाजिक और भावनात्मक विकास दो ऐसे क्षेत्र हैं जो विशेष रूप से सभी वयस्कों के लिए महत्वपूर्ण हैं परन्तु वृद्धजन के जीवन को प्रभावित करते हैं। वृद्धजन को इन क्षेत्रों में भावनात्मक और सामाजिक समायोजन की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वृद्धजन स्थिर कार्यों में अधिक रुचि रखते हैं। मनोवैज्ञानिक और भावात्मक समर्थन और हस्तक्षेप वृद्धजन के सामाजिक एवं भावात्मक विकास में उपयोगी होते हैं।

16.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्लिखित कथनों को सत्य या असत्य बताए।
   a. असत्य
   b. सत्य
   c. सत्य
   d. सत्य
   e. सत्य

16.10 पारिभाषिक शब्दावली

- **मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप:** ये लोगों में परिवर्तन लाने के लिए की जाने वाली क्रियाएं हैं। हस्तक्षेप रणनीतियों की एक विस्तृत श्रृंखला मौजूद है और वे विभिन्न प्रकार के मुद्दों की ओर निर्देशित हैं।
- **व्यवहार हस्तक्षेप:** यह एक व्यवहारिक विश्लेषण हस्तक्षेप है जिसमें सीखने के सिद्धांत को व्यवस्थित और औसत दर्जे के तरीके से लागू किया जाता है।
- **पारिवारिक चिकित्सा:** एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक परामर्श (मनोचिकित्सा) है जो परिवार के सदस्यों को संचार में सुधार करने और संघर्षों को हल करने में मदद करती है। पारिवारिक चिकित्सा एक मनोवैज्ञानिक, नैदानिक सामाजिक कार्यकर्ता या लाइसेंस प्राप्त चिकित्सक द्वारा प्रदान की जाती है।

16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Achenbaum, V. and Lewin, M.S. 1998. Ageing and life adjustment. In Birren J.E. (Eds.). Ageing and Individual. John Hopkins Press,Chicago pp 825-842
2. Ada, C.M. 2001. Coping strategies and health status of elderly. *Journal of Advanced Nursing* **29**: 1243-1249.
3. Chung, N. and Fisher, S.L. 1996. Family life and family substitute in old age. American Sociological Review 14: 71-83.
4. Crowley, J.E. 1997. Changing aspect of the family. Social Welfare 44: 25-27.

5. Dak, T.M. and Sharma, M.L. 1999. Changing status of aged in North India villages. In Sharma, M.L. and Dak, T.M. (Eds.) Ajanta Publications, New Delhi pp 43-45.
6. Glamsen, E.1999. The impact of pre- retirement programmes on the retirement experience. Indian Journal of Gerontology 54: 101-109.
7. Green, P. 1999. Malnutrition in the elderly. The Gerontologist 22: 181-183.
8. Grewal, J. 1999. Economic adjustment of the aged. In Srivastva R.C (Eds.).The problems of the old age. Classical Publications, New Delhi pp 201-217.
9. Wasson, S. (1994). Social adjustment of women in urban areas. In Mahajan D.V.K. (Ed.). Contemporary Indian women: collected works 1996. Academic publishers, New Delhi pp 177-248.
10. William J.E. 2003. The psychological, financial and social problems of aged. Journal of Geriatric Psychology 28: 41-46.
11. Hurlock, E. B. (2016), Developmental Psychology: A Life Span Approach, Fifth Edition, Tata McGraw-Hill Education (India), Pvt. Ltd. New Delhi, 01-Aug-2001
12. E.B. Hurlock (2001), Child Development, Tata McGraw-Hill Education.

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. वृद्धावस्था के दौरान सामाजिक और भावनात्मक समायोजन की व्याख्या करें।
2. वृद्धावस्था के प्रति दृष्टिकोण और पारिवारिक समायोजन पर चर्चा करें।
3. वृद्ध लोगों के लिये उपयोगी मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप की व्याख्या करें।

इकाई 17: वृद्धावस्था में समस्यायें

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 भारत में वृद्धों की जनसांख्यिकीय रूपरेखा
17.4 वृद्धावस्था में समस्याओं का कारण
    17.4.1 शारीरिक समस्यायें
    17.4.2 स्वास्थ्य समस्यायें
    17.4.3 आर्थिक समस्यायें
    17.4.4 पारिवारिक समस्यायें
    17.4.5 सामाजिक समस्यायें
    17.4.6 मनोवैज्ञानिक समस्यायें
17.5 वृद्धावस्था के दौरान विशेष आवश्यकतायें
17.6 सारांश
17.7 शब्दावली
17.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
17.9 संदर्भग्रन्थ सूची
17.10 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक और संज्ञानात्मक परिवर्तनों के बारे में पढ़ा। इन सभी परिवर्तनों एवं सेवानिवृत्ति के उपरान्त वृद्धों को कई सामाजिक और भावात्मक विकास का समायोजन करना पड़ता है जिसके बारे में हमने चर्चा की। मानव जीवन चक्र को नौ चरणों में विभाजित किया गया है और प्रत्येक चरण में विशोष्ट विकास कार्यों को बताया गया है ताकि एक सफल जीवन सुनिश्चित किया जा सके। जीवन के प्रत्येक चरण में मनुष्य कई परिवर्तनों और समस्याओं से गुजरते हैं। वृद्धावस्था मूल रूप से एक जैव भौतिक घटना है जिसके दौरान किसी अंग और कार्य में परिवर्तन, सजगता का धीमा होना, समय के साथ शारीरिक और मानसिक क्षमताओं में कमी होती है, जिसके परिणामस्वरूप तनाव और पर्यावरण का सामना करने में असमर्थता होती है।

वृद्धावस्था आयु बढ़ने का एक हिस्सा है जो किसी के जीवन में होने वाले परिवर्तनों की विभिन्न स्थितियों से जुड़ा हुआ है। वृद्धावस्था को परिभाषित करना बहुत मुश्किल है। प्रस्तुत इकाई में हम वृद्धावस्था के दौरान महत्वपूर्ण परिवर्तनों, वृद्धों के स्तर, वृद्धावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तन के कारण और उनकी विशेष आवश्यकताओं के बारे में चर्चा करेंगे।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत शिक्षार्थी निम्न बिंदुओं को जानेंगे;

- भारत में वृद्धों की विशेष जरूरतों और सामाजिक-जनसांख्यिकीय रूपरेखा;
- वृधावस्था के दौरान होने वाली समस्याओं के कारण;
- वृद्ध व्यक्तियों की विशेष जरूरतों (पोषण, चिकित्सा और मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप) को समझेंगे।

17.3 भारत में वृद्धों की जनसांख्यिकीय रूपरेखा

हमारे भारतीय समाज में वृद्धावस्था को अक्सर ऐसे समय के रूप में माना जाता है जब मानव विकास क्षमता अपरिवर्तनीय और अपरिहार्य पड़ाव पर आ जाती है। वृद्धावस्था सबसे बड़ी चुनौती है जिसमें एक व्यक्ति तेजी से बदलते परिदृश्य का सामना करता है। वृद्धावस्था को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है। इक्कीसवीं सदी में दुनिया जनसांख्यिकीय संक्रमण से गुजर रही है। पिछले कुछ दशकों के दौरान दुनिया में वृद्धों की आबादी में कुल जनसंख्या के अनुपात में जबरदस्त वृद्धि हुई है और भारत भी इसका अपवाद नहीं है। इसका कारण बहु-संचरित्र सामाजिक-आर्थिक प्रगति, स्वस्थ जीवन शैली, बेहतर पर्यावरण की स्थिति, उच्च गुणवत्ता की चिकित्सा देखभाल की बढ़ती उपलब्धता और टीकाकरण कार्यक्रम हैं जिन्होंने सभी देशों में मृत्यु दर में भारी कमी की है और जीवन प्रत्याशा में वृद्धि हुई है।

पिछले 50 वर्षों में वैश्विक जीवन प्रत्याशा में 20 वर्ष की वृद्धि हुई है और यह 60 वर्ष के वर्तमान स्तर तक पहुंच गया है। भारत वर्तमान में चीन के बाद दुनिया में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला एक देश बन गया है। विभिन्न आंकड़ों और अनुसंधानों के अनुसार लगभग 12% आबादी 65 वर्ष या उससे अधिक है। वर्ष 2030 तक यह आंकड़ा 21% तक पहुंचने की उम्मीद है। यह बड़ी समस्या होने वाली है क्योंकि इसके साथ निर्भरता अनुपात भी बढ़ेगा। इससे पता चलता है कि निकट भविष्य में भारत में वृद्धों की समस्याओं की तीव्रता बढ़ रही है।

यह सिर्फ जनसांख्यिकीय कारणों के लिए नहीं है, बल्कि एक तेज सामाजिक-सांस्कृतिक रूपांतर के लिए भी है जिससे अनुभवजन्य ध्यान वृद्धों की आबादी पर शून्य हो गया है।

युनाइटेड नेशन द्वारा वर्ष 1982 और फिर 1999 को "इंटरनेशनल ईयर फॉर द एजेड" घोषित किया जाना वृद्धों की समस्या की गंभीरता को दर्शाता है। प्रति वर्ष 1 अक्टूबर वृद्ध दिवस के रूप में मनाया जाता है। वृद्धों की स्थिति में सुधार के लिए अपेक्षाकृत कम प्रयास किया जाता है। अब वृद्धों की देखभाल के लिए वृद्धाश्रम स्थापित किये जा रहे हैं। वृद्धों की समस्याओं के कुछ अन्य समाधान पेंशन, सामाजिक सुरक्षा योजनाएं, शौक क्लब और स्वास्थ्य क्लब हैं। वृद्धों के लिये यक़ीनन यह महत्वपूर्ण कदम हैं परन्तु पर्याप्त नहीं हैं। वृद्धों की जरूरतों, स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं की उपलब्धता के बीच बहुत बड़ा अंतर है। वृद्धों की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करने वाली बहुत कम विशिष्ट एजेंसियां हैं। परिणामस्वरूप जीवन की बेहतर गुणवत्ता का आनंद लेने के लिए वरिष्ठ नागरिकों के पक्ष में विशेष योजनाएँ और नीतियाँ बनाने की आवश्यकता है। हमारे देश में वृद्धों की देखभाल करने की पूरी जिम्मेदारी परिवार की पारंपरिक संस्था के पास है।

17.4 वृद्धावस्था में समस्याओं का कारण

वर्तमान जीवन स्थितियों से निपटने के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अपना रक्षा तंत्र है। वृद्धावस्था के दौरान जहां कुछ वृद्ध लोग सामाजिक भूमिकाओं में खुद को उलझाकर बहुत सक्रिय रहने की कोशिश करते हैं, पारस्परिक संबंधों का आनंद लेते हैं और खुशी से कुछ प्रकार की व्यावसायिक गतिविधियों में भाग लेते हैं, वहीं कुछ सामाजिक रूप से अलग-थलग रहते हैं। इस तरह की गतिविधि और प्रकृति स्वास्थ्य की स्थिति, सामाजिक आर्थिक स्थिति और वृद्धों की पारिवारिक स्थिति से निर्धारित होती है। यहाँ पर हम वृद्धावस्था से सम्बंधित समस्याओं पर चर्चा करने जा रहे हैं जो कि निम्नवत हैं:

17.4.1 शारीरिक समस्यायें

वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक परिवर्तन कई समस्याएं लाते हैं और वृद्धों की दैनिक दिनचर्या की गतिविधियों को प्रभावित करते हैं जैसे आँखों की रोशनी का क्षीण होना, कानों से कम सुनाई देना, हाथ पैरों में दर्द रहना, घुटनों में दर्द रहना, भोजन का न पचना वृद्धावस्था की प्रमुख स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएं हैं। ये समस्यायें आयु बढ़ने के साथ साथ बढ़ती हैं। वृद्धावस्था में शारीरिक क्षीण एवं दुर्बल होना तो आम बात है।

17.4.2 स्वास्थ्य समस्यायें

वृद्धावस्था शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों से संबंधित बहुत सारी समस्याओं से घिरी हुई है। व्यक्ति के लिए स्वास्थ्य उन कार्यों को करने की उनकी क्षमता को निर्धारित करता है जो सामाजिक और आर्थिक जीवन में उनकी भागीदारी को सुविधाजनक बनाते हैं। जबकि समाज अपनी ओर से अपने सदस्यों के अच्छे स्वास्थ्य पर निर्भर करता है ताकि वे अपनी भूमिका को पर्याप्त रूप से निभा सकें, चाहे वे आर्थिक उत्थान में हों या सामुदायिक सेवाओं में। यह अक्सर देखा जाता है कि बेहतर स्वास्थ्य, बेहतर जीवन का समायोजन है जिसके परिणामस्वरूप जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए खुशी और उत्साह की ओर ले जाता है। वृद्धों की कुछ आम समस्याओं का वर्णन नीचे दिया गया है-

1. **मोटापा:** मोटापा मूल रूप से शरीर में अतिरिक्त वसा का संचय है, जिससे शरीर के वजन में वृद्धि होती है। मोटापे से व्यक्ति न केवल बेडौल दिखता है बल्कि यह कई अन्य समस्याओं जैसे गठिया, हृदय रोग, मधुमेह आदि रोगों को जन्म देता है। वृद्ध लोग सामान्य वजन बनाए रखकर स्वस्थ और सक्रिय रह सकते हैं।
2. **उच्च रक्तचाप और हृदय रोग:** उच्च रक्तचाप और अधिकांश हृदय रोग धमनियों में वसा के अत्यधिक जमाव के कारण होते हैं। इसलिए, हृदय रोग और उच्च रक्तचाप की रोकथाम के लिए आहार संबंधी दिशानिर्देश मोटापे को कम करने के साथ-साथ हृदयवाहिनी सुरक्षा प्रदान करने के लिए निर्देशित किए जाते हैं।
3. **श्वसन संबंधी रोग:** इस रोग में लोगों को सांस लेने में कठिनाई होती है। आयु बढ़ने से कभी-कभी सांस लेने में तकलीफ, सीने में तकलीफ, घरघराहट और खांसी के साथ सांस लेने में तकलीफ होती है। जबकि ये लक्षण आम हैं, उन्हें आयु बढ़ने का सामान्य हिस्सा नहीं माना जाना चाहिए। साँस लेने में समस्या पैदा करने वाली चिकित्सा स्थितियों में निमोनिया, हृदय विफलता, मस्तिष्क संबंधी विकार (जैसे स्ट्रोक) और कैंसर शामिल हैं। लंबे समय तक फेफड़ों में रुकावट (chronic obstructive pulmonary disease) का कारण वातस्फीति, जीर्ण श्वसनीशोथ और अस्थमा बीमारी हो सकती है। श्वास संबंधी समस्याएं कभी-कभी एनीमिया, एलर्जी, सर्दी, साइनस की समस्याओं से भी जुड़ी होती हैं। जो लोग अधिक वजन वाले होते हैं उन्हें सांस लेने की समस्या होने का खतरा अधिक होता है। वृद्धावस्था के दौरान वायु प्रदूषण और रासायनिक धुएं के संपर्क में आने से फेफड़ों से सम्बंधित बीमारी हो सकती है। वृद्ध व्यक्ति जिन्हें फेफड़ों से सम्बंधित बीमारी है

उन्हें साँस लेने में कठिनाई होती है क्योंकि कम हवा वायुमार्ग से बाहर और अंदर जाती है।

4. **मधुमेह:** मधुमेह रोग में रक्त शर्करा के स्तर में वृद्धि हो जाती है। यह बीमारी शरीर में इंसुलिन की कमी के कारण होती है। मोटापा इसके लिये एक रोग कारक है। हालांकि मधुमेह का कोई इलाज नहीं है, इसे उपयुक्त आहार हस्तक्षेपों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। यदि यह अनियंत्रित है तब यह आंखों, रक्त वाहिकाओं और गुर्दे को प्रभावित करने वाली कई जटिलताओं को जन्म दे सकता है। वजन को नियंत्रित करना इस बीमारी के प्रबंधन में पहला कदम है।
5. **ऑस्टियोपोरोसिस:** ऑस्टियोपोरोसिस एक ऐसी स्थिति है जो हड्डी के घनत्व में कमी, इसकी ताकत कम करने और नाजुक हड्डियों के परिणामस्वरूप होती है। यह रोग के परिणामस्वरूप हड्डियों में लगातार फ्रैक्चर (टूटना) होता है। कैल्शियम और विटामिन डी का उपयुक्त सेवन ऑस्टियोपोरोसिस से बचाते हैं। प्रारंभिक वयस्कता के दौरान उच्च कैल्शियम का सेवन, अधिक से अधिक चरम अस्थि द्रव्यमान में योगदान देता है जहां बाद के वर्षों में कैल्शियम, विटामिन डी के साथ मिलकर हड्डियों के नुकसान की दर को कम करता है। वृद्धावस्था के दौरान अस्थि द्रव्यमान के संरक्षण के लिए शक्ति प्रशिक्षण सहित अच्छे पोषण और सक्रिय शारीरिक भागीदारी की आवश्यकता होती है।
6. **कुपोषण:** कुपोषण एक ऐसी स्थिति को संदर्भित करता है जो अपर्याप्त पोषक तत्वों के साथ अस्वास्थ्यकर आहार लेने के कारण होता है जिसके परिणामस्वरूप स्वास्थ्य समस्याएं होती हैं। आर्थिक बाधाएं, शारीरिक निष्क्रियता, पुरानी बीमारी और दवा का संचयी प्रभाव, सामाजिक अलगाव और शरीर की आवश्यकता को पूरा करने के लिए पर्याप्त भोजन तैयार करने में ज्ञान की कमी भी वृद्धावस्था के दौरान कुपोषण की समस्या पैदा कर सकती है।
7. **कब्ज:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें जठरांत्रिय मार्ग को खाली करने में कठिनाई होती है और यह आमतौर पर कठोर मल के निष्कासन से सम्बंधित है। वृद्धावस्था के दौरान तनाव, दवाओं का सेवन, व्यायाम की कमी, आहार में कम रेशा, अपर्याप्त तरल पदार्थ का सेवन और रेचकों के अधिक उपयोग के कारण बृहदान्त्र के प्राकृतिक लयबद्ध संकुचन में परेशानी होती है जिसके परिणामस्वरूप कब्ज की समस्या हो जाती है।

8. **कैंसर:** कैंसर शब्द का तात्पर्य कोशिकाओं में असामान्य वृद्धि से है जिसमें शरीर के अन्य भागों में फैलने की क्षमता होती है। वैज्ञानिकों ने आयु बढ़ने और कैंसर के बीच एक गहन सम्बंध सिद्ध किया है। शोधों ने सिद्ध किया है कि 50 वर्ष या उससे अधिक आयु के कैंसर के मामले प्रतिरक्षा प्रणाली की क्षमता में गिरावट के कारण सह मौजूदा स्थितियों के रूप में होते हैं। आमतौर पर ट्यूमर कैंसर के संकेतक हो सकते हैं और आजकल विकिरण, कीमोथेरेपी और कुछ मामलों में, कैंसर के इलाज के लिए सर्जरी का उपयोग किया जा रहा है।
9. **गठिया:** गठिया एक या एक से अधिक जोड़ों में सूजन से सम्बंधित है। गठिया के मुख्य लक्षण जोड़ों में दर्द और जकड़न हैं, जो आमतौर पर आयु के साथ जटिल हो जाते हैं। वृद्धावस्था के वर्षों में ऑस्टियोआर्थराइटिस वयस्कों में सबसे अधिक होने वाले रोगों में से एक है। गठिया के विभिन्न प्रकार होते हैं जिसमें जोड़ों में दर्द, जोड़ों में अकड़न, लगातार दर्द, और जोड़ों को हिलाने में दर्द जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।
10. **कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली:** प्रतिरक्षा प्रणाली कोशिकाओं, ऊतकों और इन्द्रियों का एक नेटवर्क है जो बाहर से आक्रमण करने वाले तत्वों जैसे बैक्टीरिया, परजीव और कवक जैसे छोटे जीव जो संक्रमण पैदा करते हैं, के विरुद्ध शरीर की रक्षा करने के लिए एक साथ काम करते हैं। कमजोर प्रतिरक्षा वाले वृद्ध लोग आसानी से संक्रमण के शिकार होते हैं। आयु बढ़ने की प्रक्रिया संक्रमण के प्रति प्रतिरक्षा प्रणाली की प्रतिक्रियाशीलता में भी बदलाव लाती है जिससे नए संक्रमणों की पहचान मुश्किल हो जाती है।

17.4.3 आर्थिक समस्यायें

वृद्धावस्था के दौरान लगभग सभी व्यक्तियों को उनके वित्तीय प्रबंधन के परिणामों का सामना करना पड़ता है जो उन्होंने अपने पुरे जीवनकाल में किये होते हैं। विकासशील देशों जैसे भारत में आय असुरक्षा एक प्रमुख समस्या है और काफी संख्या में वृद्ध लोग वित्तीय समस्याओं से पीड़ित हैं। वृद्धों के रहने की व्यवस्था, परिवार के सदस्यों और दोस्तों के साथ उनके सम्बंध उनकी वित्तीय स्थिति से प्रभावित होते हैं। अधिकांश सामाजिक रिश्तों में एक आर्थिक घटक होता है और कई सामाजिक सम्बंध सीधे आर्थिक गतिविधियों से जुड़े होते हैं। वृद्धावस्था कई समस्याओं का संकेत देती है, अधिकांश वृद्धों में से एक प्रमुख समस्या आर्थिक कठिनाई है। निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति से संबंधित वृद्ध व्यक्ति उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति से संबंधित वृद्धों की तुलना में स्वास्थ्य और अन्य प्रासंगिक कारकों को नियंत्रित किए जाने पर

भी असुरक्षा, कम जीवन संतुष्टि और खराब समायोजन का प्रदर्शन करते हैं। शहरी क्षेत्रों में अधिकांश वृद्ध व्यक्ति वित्तीय सहायता के लिए अपने बेटों पर निर्भर हैं जिसके कारण वे दुख और निराशा का सामना करते हैं। यद्यपि वृद्ध लोग न केवल युवा पीढ़ी से आर्थिक समर्थन की अपेक्षा करते हैं, बल्कि सामाजिक - भावनात्मक समर्थन की भी अपेक्षा करते हैं।

17.4.4 पारिवारिक समस्यायें

समस्या का स्रोत जो भी हो, परिवार का समर्थन समस्या के प्रभाव को एक मजबूत प्रतिरोध प्रदान करता है। परिवार हमारे जीवन में, विशेष रूप से भारतीय समाज में एक बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है जहां रक्त संबंध को अन्य संबंधों के अपेक्षा प्राथमिकता दी जाती है। पारिवारिक संरचना में परिवर्तन के साथ जनसांख्यिकीय परिवर्तन, प्रवासन की बढ़ती गति, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और पश्चिमीकरण ने परिवारों में वृद्धों के जीवन को काफी प्रभावित किया है। संयुक्त परिवार संरचना के साथ-साथ हमारी संस्कृति में वृद्धों से जुड़े मूल्य और सम्मान, उन्हें भावनात्मक समर्थन, सुरक्षा और समायोजन प्रदान करते हैं। लेकिन संयुक्त परिवारों का क्रमिक रूप से गायब होना और बदलते सामाजिक मूल्य वृद्धों की अवमूल्यन की स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं और उन्होंने हमारे समाज में वृद्धों की विशेष समस्याओं में योगदान दिया है जिनके लिए समायोजन की विभिन्न रणनीतियों की आवश्यकता है। युवा पीढ़ी में विशेषकर विवाहित पुत्र और पुत्रवधु को अपने माता-पिता का हस्तक्षेप पसंद नहीं होता है। आमतौर पर हस्तक्षेप नहीं करने वाले माता-पिता को रूढ़िवादी माता पिता की तुलना में युवा पीढ़ी से अधिक सम्मान और स्नेह मिलता है। वृद्धों के पास अपने युवा परिवार के सदस्यों के जीवन को तैयार करने के लिए बहुत ज्ञान और अनुभव होता है, लेकिन उनकी रूचियों में कमी आ जाती है जो कि आयु बढ़ने की प्रक्रिया के कारण होता है और वो स्वयं को समय के साथ कई गतिविधियों से अलग करना शुरू कर देते हैं। भूमिका और जिम्मेदारी के स्तर में गिरावट होती है। परिवार के ढांचे, सामाजिक संबंधों, कार्य संबंध और आर्थिक बदलावों के कारण परिवार में वृद्धों ने अपना महत्व और प्रासंगिकता खो दी है। अध्ययनों से संकेत मिलता है कि वृद्धों को सम्मान के साथ देखभाल, सुरक्षा, प्यार और स्नेह की आवश्यकता होती है। अतः वृद्धों के प्रति युवाओं में सकारात्मक दृष्टिकोण के निर्माण के माध्यम से समाजों में पारिवारिक बंधनों को मजबूत करने की आवश्यकता है।

वृद्धों की आवश्यकताएं और समस्याएं आपस में जुड़ी हुई हैं। आयु के साथ-साथ खराब आर्थिक स्थितियां दबाव बढ़ा सकती हैं और परिवार पर पोषण, स्वास्थ्य, चिकित्सा देखभाल और मौद्रिक दबाव की समस्याओं को जन्म दे सकती हैं। उनकी समस्याएं युवा पीढ़ी की जीवन शैली के एक या अन्य तरीके से संबंधित हैं, जो रिश्तों में तनाव का कारण बनती हैं।

इसलिए स्वास्थ्य, आय असुरक्षा, पारिवारिक, वित्तीय और सामाजिक-भावनात्मक पहलू प्रमुख क्षेत्र हैं जिनमें वृद्धों को समस्याओं का सामना करना पड़ता है और इसलिए उन्हें मदद की आवश्यकता होती है।

17.4.5 सामाजिक समस्यायें

वृद्धावस्था के बारे में रूढ़िवादिता का वृद्धावस्था और वृद्धों, दोनों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है और क्योंकि अधिकांश रूढ़ियाँ प्रतिकूल होती हैं, वैसे ही सामाजिक दृष्टिकोण भी प्रतिकूल होता है। वृद्धों के प्रति प्रतिकूल सामाजिक दृष्टिकोण का महत्व यह है कि यह वृद्धों के इलाज के तरीके को प्रभावित करता है। कई संस्कृतियों में वृद्धों के प्रति श्रद्धा और सम्मान के बजाय प्रतिकूल सामाजिक दृष्टिकोण से वृद्धों को लगता है कि वे अवांछित हैं तथा अब सामाजिक समूह के लिए उपयोगी नहीं हैं। बढ़ती आयु के साथ वृद्धों को निम्न सामाजिक समस्याओं का अनुभव करना पड़ता है।

- भूमिका परिवर्तन के कारण समायोजन में समस्या
- जीवनशैली में बदलाव के कारण समायोजन में समस्या
- सेवानिवृत्ति के कारण समायोजन में समस्या
- पारिवारिक संबंध समस्यायें
- कम आत्म सम्मान
- चिंता और अवसाद
- आक्रामक व्यवहार
- एकाकीपन
- अलगाव

17.4.6 मनोवैज्ञानिक समस्यायें

कमजोर आत्म-अवधारणा: सामान्य रूप से वृद्ध लोग खुद को उतना पसंद नहीं करते हैं जितना कि छोटे लोग खुद को पसंद करते हैं। वृद्ध पुरुषों में वृद्ध महिलाओं की अपेक्षा आमतौर पर कम आत्म-सम्मान पाया जाता है। इसके पीछे तथ्य यह है कि पुरुषों का आत्म-सम्मान उनकी व्यवसायिक उपलब्धि से संबंधित है, जबकि महिलाएं पारिवारिक परिस्थितियों से आत्म-मूल्य की अपनी भावनाओं को प्राप्त करती हैं। इसलिए जब वृद्ध पुरुष सेवानिवृत्त हो जाते हैं या अपनी व्यवसायिक स्थिति खो देते हैं, तो उनका आत्म-सम्मान का

स्तर गिर जाता है। दूसरी ओर महिलाएं अपने परिवार की भागीदारी से आत्म-संतुष्टि प्राप्त करना जारी रखती हैं।

खुशी: वृद्धावस्था के दौरान शायद ही कोई वृद्ध पुरुष और महिलाएं यह बताती हैं कि उनके जीवन में उत्साह की कोई भावना है। उनमें से अधिकांश आमतौर पर बताते हैं कि उनका जीवन बहुत ही सुस्त है जिसके आगे देखने के लिए कुछ भी नहीं है। एक व्यक्ति की स्वयं के प्रति उदासीनता और दुखी जीवन के लिए कई कारक हैं जिसमें प्रमुख हैं; वृद्धावस्था और जीवन से अपेक्षाएं।

मृत्यु: अधिकांश वृद्ध इस तथ्य को समझते हैं कि वे जीवन के अंतिम चरण में हैं और मृत्यु से संबंधित उनकी भावनाएं उनके जीवन में विशिष्ट घटनाओं के कारण हो सकती हैं जैसे घर से नर्सिंग होम में स्थानांतरित किया जाना, स्वास्थ्य में विफल होना, या किसी के पति या पत्नी की मृत्यु होना। इसलिए मृत्यु के बारे में उनके डर को वर्तमान जीवन परिस्थितियों, व्यक्ति की अपनी मूल्य प्रणाली, और व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति के लिए मृत्यु के अर्थ के संदर्भ में समझा जाना चाहिए।

अवसाद: अवसाद एक मानसिक स्थिति को संदर्भित करता है जिसे गंभीर निराशा और अस्वीकृति की भावनाओं से परिभाषित किया जाता है। आमतौर पर अपर्याप्तता और अपराध की भावनाओं के साथ अक्सर ऊर्जा की कमी, भूख और नींद की गड़बड़ी के साथ भी अवसाद जुड़ा होता है। वृद्ध व्यक्ति में अक्सर अवसाद के दो प्रमुख लक्षण दिखते हैं: अवसादग्रस्त मनोदशा (उदासी, अपराधबोध, असहायता) और व्यवहार की कमी (उदासीनता, निठुराई)। कई वृद्ध व्यक्ति शिकायतों (जैसे कि भूख न लगना, नींद की गड़बड़ी) के द्वारा अपने अवसाद का प्रतिनिधित्व करते हैं। जैविक (जैव रासायनिक गड़बड़ी) और सामाजिक/ सांस्कृतिक कारक (वृद्ध व्यक्ति के मूल्य के बारे में सांस्कृतिक विचार, अलगाव, सेवानिवृत्ति, संस्थागतकरण) वृद्धावस्था के दौरान अवसाद का कारण बन सकते हैं। अन्य कारक जैसे कि कामुकता की हानि, भौतिक संपत्ति और असफलताएं भी अवसाद में योगदान करती हैं।

संज्ञानात्मक परिवर्तन: मस्तिष्क की क्रियाशीलता हमारे व्यक्तित्व, भावनाओं और बुद्धि (अनुभूति) को निर्धारित करती हैं। वृद्धावस्था के दौरान संज्ञानात्मक परिवर्तनों का अध्ययन जटिल प्रकार का शोध है। इस चरण में वृद्ध लोग तंत्रिका और क्रियात्मक प्रतिक्रिया गति में गिरावट को बताते हैं। कुछ शोधकर्ता यह भी मानते हैं कि आयु बढ़ने के साथ काम करने,

स्मृति में कमी, वृद्धों की संज्ञानात्मक कार्यों को करने की खराब कार्यक्षमता एक अंतर्निहित महत्वपूर्ण कारक है और इसके उदहारण इस प्रकार हैं:

- वस्तु खोजने में असमर्थता।
- कार्यों को याद रखने में परेशानी।
- अचेत होने का खतरा बढ़ जाता है।
- घर के आसपास सुरक्षा में कमी।

मनोभ्रंश (Dementia): मनोभ्रंश से तात्पर्य है केंद्रीय तंत्रिका तंत्र की शिथिलता के कारण ज्ञानक्षेत्र में स्मृति, भाषा और दृश्य-स्थानिक कौशल सहित कई संज्ञानात्मक कमी का होना। मनोभ्रंश के दो रूप विद्यमान हैं: अपक्षयी और गैर-अपक्षयी। गैर-अपक्षयी मनोभ्रंश, जैसे सिर के आघात और मस्तिष्क में संक्रमण जिनको कम किया जा सकता है। अपक्षयी मनोभ्रंश जैसे पार्किंसन्स रोग, अल्जाइमर रोग और हनटिंग्टन रोग जो अपरिवर्तनीय और लाइलाज हैं।

अल्जाइमर रोग: जर्मन न्यूरोपैथोलॉजिस्ट और मनोचिकित्सक डॉ0 एलोइस अल्जाइमर ने 1907 में अल्जाइमर रोग की खोज की। यह एक जीर्ण न्यूरोडीजेनेरेटिव बीमारी के रूप में परिभाषित की जा सकती है जो आमतौर पर धीरे-धीरे शुरू होती है और समय के साथ अधिक खराब हो जाती है। मनोभ्रंश के 67 प्रतिशत मामले अल्जाइमर में परिवर्तित होते हैं।

पार्किंसन्स रोग: पार्किंसंस रोग पहली बार 1817 में जेम्स पार्किंसन द्वारा वर्णित किया गया था। यह आमतौर पर 50 वर्ष से अधिक आयु के लोगों को प्रभावित करता है। पार्किंसंस रोग जीर्ण और प्रगतिशील शारीरिक गतिविधि विकार है जो समय के साथ जारी रहती है और बिगड़ती जाती है।

बौद्धिक परिवर्तन: बुद्धिमत्ता एक व्यक्ति की समझ, आत्म-जागरूकता, सीखने, भावनात्मक ज्ञान, योजना, रचनात्मकता और समस्या समाधान की क्षमता है। वृद्धावस्था के दौरान बौद्धिक क्षमता हमेशा कम नहीं होती है। द्रव बुद्धिमता जिसे समस्याओं को हल करने के लिए पैटर्न और रिश्तों को देखने और उपयोग करने की क्षमता के रूप में संदर्भित किया जाता है जबकि क्रिस्टलीकृत बुद्धिमत्ता जो समस्याओं को हल करने और निर्णय लेने को संदर्भित करता है।

17.5 वृद्धावस्था के दौरान विशेष आवश्यकतायें

17.5.1 वृद्धावस्था के दौरान पोषण

स्वस्थ जीवनशैली के लिए पौष्टिक भोजन करना महत्वपूर्ण है। आमतौर पर हम जो भोजन पसंद करते हैं, उसे अपने दैनिक भोजन में चुनते हैं। वृद्धावस्था में पोषण के बारे में आप पूर्व की इकाईयों में भी जानकारी ले चुके हैं। आयु बढ़ने की प्रक्रिया एक अपरिहार्य, अपरिवर्तनीय और प्रगतिशील घटना है। पोषण पुरानी बीमारी और आयु से संबंधित शारीरिक गिरावट के एक प्रमुख परिवर्तनशील निर्धारक के रूप में उभरा है। आहार न केवल वर्तमान स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, बल्कि यह भी निर्धारित करता है कि वह व्यक्ति के जीवन में अपक्षयी रोग जैसे मधुमेह, हृदय रोगों का विकास करेगा या नहीं। इसलिए आयु बढ़ने के साथ स्वस्थ रहने के लिए उचित पोषण की आवश्यकता होती है।

- वृद्धों की पोषण संबंधी आवश्यकतायें किसी भी अन्य आयु के व्यक्ति की तुलना में बहुत अलग हैं। वृद्धावस्था के दौरान शारीरिक गतिविधि का स्तर कम हो जाता है और शरीर का चयापचय भी धीमा हो जाता है। इसलिए आयु बढ़ने के साथ हमें कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है और इसके लिए कम मात्रा में भोजन की आवश्यकता होती है।
- आमतौर पर वृद्धों को कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है तथा उन्हें वयस्कों के बराबर या उससे अधिक विटामिन और खनिजों की मात्रा की आवश्यकता होती है। कुछ विटामिन जैसे विटामिन ई और विटामिन सी को आयुर्वृद्धि विरोधक लाभ के साथ-साथ कैंसर, हृदय रोग और मोतियाबिंद जैसी बीमारियों से बचाने के लिए जाना जाता है। आहार में सब्जियों और फलों की अधिक मात्रा इन पोषक तत्वों को प्रदान करने में मदद करती है।
- बढ़ती आयु के साथ दांतों का नुकसान और दाँत सम्बंधित समस्यायें हो जाती हैं। कई वृद्ध व्यक्ति आंशिक रूप से या पूरी तरह से दांत रहित होते हैं जिसके परिणामस्वरूप भोजन चबाना बेहद मुश्किल हो जाता है। इसलिए वृद्ध तरल पदार्थ या नरम पका हुआ या मसला हुआ भोजन पसंद करते हैं। हालांकि, ऐसे खाद्य पदार्थ पर्याप्त पोषण की आपूर्ति नहीं कर सकते हैं और खाद्य पूरक आवश्यक हो सकते हैं।
- भोजन को पचाने और अवशोषित करने की शक्ति धीरे-धीरे कम हो जाती है। पाचन क्षमता में गिरावट के कारण भोजन की मात्रा और प्रकार में कुछ संशोधनों की

आवश्यकता होती है। क्योंकि वृद्ध लोग आमतौर पर पेट में भारीपन, पेट में गैस और अम्लता की शिकायत करते हैं इसलिए आहार को सावधानीपूर्वक चुना जाना चाहिए।

स्वस्थ भोजन करने के लिए मार्गदर्शक

जीवन के प्रत्येक चरण के दौरान विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ खाना महत्वपूर्ण है। यदि आप अच्छा खाते हैं, तो आप स्वस्थ महसूस करते हैं, लंबे समय तक सक्रिय रहते हैं और खुद को बीमारी से बचाते हैं। भोजन की योजना बनाने के लिए सरल मार्गदर्शक नीचे दिये गये हैं:

- **विभिन्न प्रकार के पौष्टिक खाद्य पदार्थों का आनंद लें:** खाद्य पदार्थों की विविधता के लाभ यह हैं कि यह पर्याप्त पोषक तत्व प्राप्त करने की संभावना को बढ़ाता है, छोटी मात्रा में विषाक्त पदार्थों के संपर्क को कम करता है और पुरानी बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है। यदि कोई व्यक्ति सभी पोषक तत्वों से समृद्ध विभिन्न प्रकार के भोजन लेता है उससे विभिन्न कारकों के प्रतिकूल प्रभावों को कम किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के अनाज, सब्जियां और फल का प्रयोग भोजन में करें। आप जो भोजन करते हैं उसका आनंद लें। बच्चों, पोते-पोतियों, दोस्तों और पड़ोसियों के साथ भोजन करें और उसका आनंद लेने का प्रयास करें। भोजन में खाद्य पदार्थों जैसे मिठाई, आइसक्रीम, केक, पेस्ट्री का नियमित उपयोग नहीं करना चाहिए।
- **पोषक तत्वों से भरपूर भोजन का उपयोग करें:** पोषक तत्वों से भरपूर आहार जैसे मछली, कम वसायुक्त मांस, यकृत, अंडे, सोया उत्पाद और कम वसा वाले डेयरी उत्पाद, खमीर आधारित उत्पाद, फल और सब्जियां, मसाले, साबुत अनाज और मेवों का भोजन में प्रयोग करें।
- **स्वस्थ पारंपरिक खाद्य पदार्थों पर आधारित व्यंजनों पर जोर दें:** विभिन्न पारंपरिक व्यंजन / खाद्य पदार्थ जो पोषक तत्वों, जड़ी-बूटियों और मसालों से समृद्ध होते हैं, को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रसंस्कृत व्यंजनों का प्रयोग कम करना चाहिए जैसे अचार आदि। खाद्य संस्कृति, स्वास्थ्य ज्ञान और संबंधित कौशल को बच्चों, नाती-पोतों और व्यापक समुदाय में स्थानांतरित किया जाना चाहिए।
- **दैनिक भोजन में अपने कुछ पसंदीदा खाद्य पदार्थों को शामिल करें:** बढ़ती आयु के साथ, खाने का आनंद और भोजन का स्वाद कम हो जाता है। इसलिए विभिन्न प्रकार

के खाद्य पदार्थों को शामिल करके और विभिन्न परोसने के तरीकों का प्रयोग करके भोजन को पौष्टिक और आकर्षक बनाया जाना चाहिए।

- **हर दिन कम से कम तीन से चार बार भोजन खाएं**: यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वृद्ध हर दिन, निश्चित समय पर 3-4 आहार लें। यदि कोई व्यक्ति कभी-कभार भोजन छोड़ देता है, तो इससे कोई नुकसान नहीं होता है लेकिन ऐसा करने से शरीर आवश्यक पोषण से वंचित रह जाएगा। भूख न लगने की स्थिति में धीरे-धीरे वजन कम होने पर डॉक्टर से सलाह लेनी चाहिए।
- **चबाने की समस्याओं पर काबू पाएं:** लगभग सभी वृद्धों को दाँतों की हानि और उनसे संबद्ध समस्याओं की शिकायत होती है, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें खाना चबाने में समस्या होती है। इसलिए नर्म, अच्छी तरह से पके हुए खाद्य पदार्थ जैसे दलिया, खिचड़ी आदि को वृद्धों के भोजन में शामिल करना चाहिये। कच्ची सब्जियों और फलों जैसे कठोर खाद्य पदार्थों को कसकर या उबले हुए रूप में आहार में शामिल किया जाना चाहिये।
- **आहार में आसानी से पचने वाले भोजन लेना सुनिश्चित करें:** वृद्धावस्था के दौरान पाचन संबंधी समस्याएं आम हैं। इसलिए इस आयु के दौरान तला हुआ, वसायुक्त, मसालेदार और बहुत मीठे खाद्य पदार्थों को भोजन में शामिल नहीं करना चाहिए। दिन भर में कई बार छोटे-छोटे आहार लेने चाहिए। भोजन के बीच कम मात्रा में पौष्टिक स्नैक्स खाने से एसिडिटी और हार्टबर्न को कम करने में मदद मिल सकती है।
- **कब्ज को रोकने के उपाय:** शारीरिक निष्क्रियता के कारण बुजुर्ग अक्सर कब्ज से पीड़ित होते हैं। रेशा युक्त खाद्य पदार्थ जैसे साबुत अनाज, साबुत दालें, सब्जियां और फल शामिल करने से कब्ज को दूर करने में मदद मिलती है और रोजाना कम से कम 6-8 गिलास तरल पदार्थ जैसे पानी, दूध, जूस, चाय, सूप आदि पीने से भी कब्ज की समस्या दूर हो सकती है।
- **यदि आप शराब पीते हैं, तो उसका सेवन सीमित करें:** शराब का थोड़ी मात्रा में सेवन स्वास्थ्य लाभ बढ़ाने के लिए प्रस्तावित किया जाता है। परंतु शराब का अत्यधिक मात्रा में सेवन के कई संभावित दुष्प्रभाव होते हैं, जैसे यकृत क्षति। शराब के विषाक्त प्रभाव के लिए वृद्ध व्यक्ति अधिक संवेदनशील होते हैं।

- **खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करें**: वृद्धों को विशेष रूप से खाद्य विषाक्तता से जटिलताओं का खतरा होता है। अधिक अवधि तक खाना पकाने से खाद्य विषाक्तता को रोका जा सकता है। भोजन बनाते समय खाद्य सामग्री और व्यक्तिगत स्वच्छता का ध्यान देना चाहिये।
- नियमित रूप से शारीरिक रूप से सक्रिय रहें और मांसपेशियों को मजबूत बनाने और स्वस्थ रहने हेतु व्यायाम नियमित रूप से करें।

17.5.2 चिकित्सा देखभाल और सहायता

अस्सी की आयु से अधिक आबादी सबसे तेजी से बढ़ता आयु समूह है जिसे गहन चिकित्सा देखभाल की आवश्यकता होती है। वृद्ध लोग अक्सर कई अपक्षयी रोगों से पीड़ित होते हैं और एक ही समय में कई दवाएं लेते हैं जिनमें से प्रत्येक दवाई व्यक्ति की बीमारी पर केंद्रित होती है। यह पॉलीफार्मास्यूटिकल उपचार कई बार पुराने रोगियों के स्वास्थ्य लक्ष्य के अनुरूप नहीं होता है और इससे काफी स्वास्थ्य जोखिम भी हो सकता है। दवाओं के सेवन में उचित दिशानिर्देशों की कमी जोखिम को बढ़ा देती है। निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखते हुए वृद्ध व्यक्ति को स्वस्थ्य सम्बन्धी समस्यायों से आराम मिल सकता है:

- वृद्धों के स्वास्थ्य की नियमित जाँच करें।
- वृद्धों से सम्बंधित दैनिक जीवन की आवश्यकताओं और समस्यायों का समय समय पर आंकलन करें।
- सरकार, गैर-सरकारी संस्थाओं और अन्य पेशेवरों द्वारा स्थानीय रूप से उपलब्ध स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं का उपयोग करें।
- आयु बढ़ने के साथ होने वाले बदलावों को स्वीकार करने और स्वास्थ्य मुद्दों के लिए उपलब्ध सहायक उपकरणों का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करें।

17.5.3 वृद्धावस्था के दौरान मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप

प्रत्येक व्यक्ति को गंभीर तनाव के समय में मदद करने के लिए परिवार, दोस्तों, सम्बंधियों, पेशेवरों की सहायता की आवश्यकता होती है। इकाई के इस भाग में हम ये जानेंगे कि वृद्धों को कठिनाइयों से निपटने और उन्हें दैनिक आधार पर जीवन का सामना करने में सक्षम बनाने के लिए किस प्रकार के मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप का उपयोग किया जा सकता है और उनके

जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो सकता है। मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप के सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नवत हैं:

- व्यवहार में अंतर्दृष्टि
- चिंता या अवसाद से राहत
- वर्तमान स्थिति के लिए अनुकूलन
- स्व-देखभाल कौशल में सुधार
- उत्साहवर्धक गतिविधियाँ
- स्वतंत्रता की सुविधा
- किसी की कमजोरी और कठिनाइयों को स्वीकार करना
- पारस्परिक संबंधों में सुधार

कई मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप हैं जो वृद्धों के लिए आवश्यक हैं और बहुत उपयोगी साबित हुए हैं। कुछ महत्वपूर्ण हस्तक्षेप निम्न दिए गए हैं:

मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से मदद लेना: मानसिक स्वास्थ्य सेवा एक प्रणाली को संदर्भित करती है जो मानसिक बीमारी वाले लोगों के लिए एकमात्र देखभाल प्रदाता है। सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का मुख्य उद्देश्य रोगी मनोरोग उपचार प्रदान करने से कहीं अधिक है। यह पेशेवर मदद परिवार, दोस्तों या पड़ोसियों से वृद्धों की व्यक्तिगत या सामाजिक समस्याओं को हल करने के लिए भी प्रदान की जा सकती है। अपने संसाधनों के आधार पर, वृद्धों को अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक मामलों के लिए पेशेवर मदद लेने की आवश्यकता होती है। मनोवैज्ञानिक परामर्शदाता वृद्धों को संभावित तनावपूर्ण जीवन की घटनाओं जैसे सेवानिवृत्ति, जीवनसाथी की मृत्यु और वित्तीय असुरक्षा से निपटने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

संज्ञानात्मक व्यवहार हस्तक्षेप: यह एक हस्तक्षेप है जिसमें सीखने के सिद्धांतों को लक्ष्य व्यवहार को बढ़ाने, घटाने, बनाए रखने और / या सामान्य बनाने के लिए व्यवस्थित और व्यवहार में लाया जाता है। अधिकांश वृद्ध व्यक्तियों में खुद के बारे में यथार्थवादी सोच की कमी होती है। इस चरण के दौरान स्वयं के बारे में अपर्याप्तता की भावनाओं से भय, क्रोध, निराशा और अवसाद हो सकता है। संज्ञानात्मक-व्यवहार उपचार तर्कसंगत विचारों के साथ तर्कहीन विचारों को प्रतिस्थापित करने में बहुत प्रभावी हैं। विश्राम प्रशिक्षण चिंता और तनाव

को कम करने में मदद करता है। संज्ञानात्मक-व्यवहार हस्तक्षेप वृद्धों में अवसाद, चिंता, स्मृति हानि और प्रतिक्रिया की गति के उपचार में उपयोगी पाए गए हैं।

व्यवहार संबंधी हस्तक्षेप: यह एक प्रकार का मनोवैज्ञानिक परामर्श (मनोचिकित्सा) है जो परिवार के सदस्यों को संचार में सुधार करने और संघर्षों को हल करने में मदद करता है। व्यवहार हस्तक्षेप सकारात्मक और नकारात्मक सुदृढ़ीकरण उत्तेजनाओं पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए वृद्ध व्यक्तियों का सकारात्मक सुदृढीकरण दिया जा सकता है जैसे वांछित आत्म-देखभाल व्यवहार के लिए मौखिक या भौतिक इनाम और अवांछनीय आक्रामक व्यवहार के लिए नकारात्मक सुदृढ़ीकरण (इनाम से वंचित) दिया जा सकता है। यह अपेक्षाकृत संक्षिप्त और किफायती है। हालांकि इसे प्रभावी ढंग से उपयोग करने के लिए बहुत अधिक विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है।

परिवार मनश्चिकित्सा: परिवार मनश्चिकित्सा विभिन्न जीवन समस्याओं जैसे सेवानिवृत्ति, परिवार की देखभाल की भूमिका, दादा-दादी, युवा और वृद्धों के बीच पारिवारिक संघर्ष, वृद्धों की बीमारी से मुकाबला करने और परिवार के निर्णय, संचार और सामंजस्य के समायोजन में मदद करती है। यदि स्थिति को सावधानीपूर्वक नियंत्रित किया जाता है तब परिवार मनश्चिकित्सा विशेष रूप से वृद्धों की ओर परिवार में प्यार, निकटता और अन्योन्याश्रय की भावनाओं को मजबूत कर सकती है।

सामाजिक हस्तक्षेप: सामाजिक हस्तक्षेप एक कार्रवाई है जिसमें सामाजिक मामलों में सरकार या संगठन का हस्तक्षेप शामिल है। घर के वातावरण, गतिविधि कार्यक्रमों, साथ ही साथ पड़ोस और समुदाय के लिए ध्यान दिया जाना चाहिए जिसमें वृद्ध व्यक्ति रहता है। सामाजिक हस्तक्षेप वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण को बदलने में मदद करता है और समुदाय, परिवार और दोस्तों पर वृद्ध व्यक्ति की निर्भरता को बढ़ाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्लिखित कथनों को सत्य या असत्य बताए।
   a. ………………. प्रति वर्ष वृद्ध दिवस के रूप में मनाया जाता है।
   b. ………………… मूल रूप से शरीर में अतिरिक्त वसा का संचय है जिससे शरीर के वजन में वृद्धि होती है।
   c. ……………… के साथ-साथ ज्यादातर हृदय रोग धमनियों में वसा के अत्यधिक जमाव के कारण होते हैं।

d. ………………… एक ऐसी बीमारी है जिसमें लोगों को सांस लेने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

e. ……………….. रक्त शर्करा के स्तर में वृद्धि के कारण होता है। यह बीमारी शरीर में इंसुलिन की कमी के कारण होती है।

f. ……………….. को हड्डी की घनत्व में कमी, इसकी ताकत कम करने और नाजुक हड्डियों के परिणामस्वरूप परिभाषित की गई स्थिति के रूप में संदर्भित किया जाता है।

17.6 सारांश

भारतीय समाज में वृद्धावस्था को अक्सर ऐसे समय के रूप में माना जाता है जब मानव विकास क्षमता अपरिवर्तनीय और अपरिहार्य पड़ाव पर आ जाती है। वृद्धावस्था सबसे बड़ी चुनौती है जिसमें एक व्यक्ति तेजी से बदलते परिदृश्य का सामना करता है। प्रस्तुत इकाई में हमने वृद्धावस्था के दौरान होने वाले शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक और संज्ञानात्मक परिवर्तनों के बारे में जाना। इन सभी परिवर्तनों एवं सेवानिवृत्ति के उपरान्त वृद्धों को कई सामाजिक और भावात्मक विकास का समायोजन करना पड़ता है जिसके बारे में हमने समझा। आयु बढ़ने के साथ जुड़ी शारीरिक समस्याएं, वृद्धों की व्यक्तिगत एवं दैनिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं और इस दौरान पाचन संबंधी समस्या आम है। वृद्धावस्था के दौरान, जहां कुछ वृद्ध लोग सामाजिक भूमिकाओं में खुद को उलझाकर बहुत सक्रिय रहने की कोशिश करते हैं, पारस्परिक संबंधों का आनंद लेते हैं और खुशी से व्यवसायिक गतिविधियों में भाग लेते हैं, वहीं कुछ वृद्ध व्यक्ति सामाजिक रूप से हट कर रहते हैं।

17.7 पारिभाषिक शब्दावली

- **श्वसन संबंधी रोग:** ऐसे रोग जिनमें लोगों को सांस लेने में कठिनाई होती है।
- **कब्ज:** यह एक ऐसी स्थिति है जिसमें जठरांत्रिय मार्ग को खाली करने में कठिनाई होती है और यह आमतौर पर कठोर मल के निष्कासन से सम्बंधित है।
- **ऑस्टियोपोरोसिस:** एक चिकित्सा स्थिति जिसमें ऊतक के नुकसान से हड्डियां भंगुर और नाजुक हो जाती हैं। आमतौर पर हार्मोनल परिवर्तन या कैल्शियम या विटामिन डी की कमी के परिणामस्वरूप यह रोग होता है।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. निम्लिखित कथनों को सत्य या असत्य बताए।
   - a. 1 अक्टूबर
   - b. मोटापा
   - c. उच्च रक्तचाप या उच्च रक्तचाप
   - d. श्वसन रोग
   - e. मधुमेह मेलेटस
   - f. ऑस्टियोपोरोसिस

17.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bourgeois, F. John; Gehrig, Paola A.; Veljovich, Daniel S. (1 January 2005). "Obstetrics and Gynecology Recall". Lippincott Williams & Wilkins – via Google Books.
2. Chumlea, 1982."For girls, puberty begins around 10 or 11 years of age and ends around age 16. Boys enter puberty later than girls-usually around 12 years of age-and it lasts until around age 16 or 17." "Teenage Growth & Development: 11 to 14 Years". pamf.org.
3. Churchill's Medical Dictionary (1989).
4. Erik H. Erikson, Joan M. Erikson, The Life Cycle Completed: Extended Version (W. W. Norton, 1998),
5. Forrance, E.P. Guiding Creative Talent, Englewood Cliffs, N.J. : Prentice – Hall, 1980.
6. Gordon-Salant, Sandra; Frisina, Robert D.; Fay, Richard R.; Popper, Arthur (3 May 2010). "The Aging Auditory System". Springer Science & Business Media – via Google Books.
7. International Dictionary of Medicine and Biology (1986)

8. Jung, C.G., Modern Man in Search of a Soul, New York: Harcourt Porace, 1968.
9. Maranz Henig, Robin (2010-08-18). "What Is It About 20-Somethings?". New York Times. p. 10. Retrieved 2010-09-24. THE DISCOVERY OF adolescence is generally dated to 1904, with the publication of the massive study "Adolescence," by G. Stanley Hall, a prominent psychologist and first president of the American Psychological Association.
10. Shabnam, Adulthood Age Group Growth & Development, 1001242_Adulthood%20Age%20Group%20GD%20(1).pdf
11. Stern, Theodore (2016). Massachusetts General Hospital comprehensive clinical psychiatry. London: Elsevier. ISBN 978-0-323-29507-9. Access provided by the University of Pittsburgh
12. Hurlock, E. B. (2016), Developmental Psychology: A Life Span Approach, Fifth Edition, Tata McGraw-Hill Education (India), Pvt. Ltd. New Delhi, 01-Aug-2001
13. E.B. Hurlock (2001), Child Development, Tata McGraw-Hill Education

17.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में वृद्धों की विशेष आवश्यकताओं और सामाजिक-जनसांख्यिकी स्थिति के बारे में बताएं।
2. वृद्धावस्था के दौरान समस्याओं के कारणों का वर्णन करें।
3. भारत में वृद्धों की विशेष अवश्यकताओं (पोषण, चिकित्सा और मनोवैज्ञानिक हस्तक्षेप) की व्याख्या करें।